अनुक्रम

1. स्वयंपूर्ण का अनुभव है कैवल्य 2
2. असंभव से प्रेम-संबंध है श्रद्धा 17
3. हृदय-गुहा में प्रवेशः विराट अस्तित्व में प्रवेश 32
4. अज्ञान व ज्ञान के विसर्जन में परम अनुभव.... 48
5. शरीर से अतादात्म्य ही शरीर का शुद्धिकरण.... 60
6. व्यक्त माध्यम है अव्यक्त के प्रकाशन का.... 79
7. मिलन तक मिलन अनिश्चत में.... 93
8. सभी नाम इशारे अनाम की ओर.... 108
9. धर्म अंतःकरण की तलाश है 121
10. तृप्ति का सम्मोहन जीवनक्रांति में बाधा 135
11. तीन शरीर चार अवस्थाओं की बात 152
12. वही तुम हो, तुम वही हो.... 167
13. स्वयं पर लौटती चेतना का प्रकाश ही ध्यान.... 184
14. तर्क से पार है द्वार प्रभु में.... 197
15. परमात्मा को पाना नहीं, जीना है 211
16. समग्र का माध्यमरहित ज्ञान है परमात्मा 225
17. हृदय-गुहा में प्रवेश--कैसे? 236

पहला प्रवचन

स्वयंपूर्ण का अनुभव है कैवल्य

शांति पाठ

ओम आप्यायन्तु ममाग्डनि वाक घ्राणश्चक्षु श्रोत्रमथो

बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्व ब्रह्मौपनिषद माह ब्रह्म

निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत अनिराकरणं मे मऽस्तु।

तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तुं

ते मयि सन्तु। ओम शांतिः शांतिः शांतिः।

ओम मेरे अंग वृद्धि को प्राप्त हों; वाणी, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और बल सब इंद्रियां वृद्धि को प्राप्त हों।

सब उपनिषद ब्रह्मरूप हैं। मुझसे ब्रह्म का त्याग न हो और ब्रह्म मेरा त्याग न करे। उसमें रत हुए मुझको उपनिषद-धर्म की प्राप्ति हो।

ओम शांतिः शांतिः शांतिः।

कैवल्य उपनिषद। कैवल्य उपनिषद एक आकांक्षा है, परम स्वतंत्रता की। कैवल्य का अर्थ हैः ऐसा क्षण आ जाए चेतना में, जब मैं पूर्णतया अकेला रह जाऊं, लेकिन मुझे अकेलापन न लगे। एकाकी हो जाऊं, फिर भी मुझे दूसरे की अनुपस्थिति पता न चले। अकेला ही बचूं, तो भी ऐसा पूर्ण हो जाऊं कि दूसरा मुझे पूरा करे इसकी पीड़ा न रहे। कैवल्य का अर्थ हैः केवल मात्र मैं ही रह जाऊं। लेकिन, इस भांति हो जाऊं कि मेरे होने में ही सब समा जाए। मेरा होना ही पूर्ण हो जाए। अभीप्सा है यह मनुष्य की, गहनतम प्राणों में छिपी।

सारा दुख सीमाओं का दुख है। सारा दुख बंधन का दुख है। सारा दुख मैं पूरा नहीं हूं, अधूरा हूं। और मुझे पूरा होने के लिए न मालूम कितनी-कितनी चीजों की जरूरत है। और सब चीजें मिल जाती हैं तो भी मैं पूरा नहीं हो पाता हूं; मेरा अधूरापन कायम रहता है। सब कुछ मिल जाए, तो भी मैं अधूरा ही रह जाता हूं।

तो एक आकांक्षा मनुष्य के भीतर जगी, जिसे हम धर्म कहते हैं, कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं जिन चीजों को पाने चलता हूं, उनको पा लेने पर भी जब पूर्णता नहीं मिलती है तो उन्हें पाने की यात्रा ही व्यर्थ और गलत हो। तो फिर कोई और मार्ग खोजा जाए, जहां मैं वस्तुओं को पाकर पूरा नहीं होता, बल्कि मैं ही पूरा हो जाता हूं। और तब किसी वस्तु की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

इसलिए जिनने भी गहन खोज की है उन्हें लगा कि आदमी तब तक आनंद को न पा सकेगा, जब तक कोई भी जरूरत किसी और पर निर्भर है। जब तक दूसरा जरूरी है, तब तक दुख रहेगा। जब तक मेरा सुख दूसरे पर निर्भर है, तब तक मैं दुखी रहूंगा। जब तक मैं किसी भी कारण दूसरे पर निर्भर हूं, तब तक मैं परतंत्र हूं और परतंत्रता में आनंद नहीं हो सकता। अगर हम सारे दुखों का निचोड़ निकालें तो पाएंगे, परतंत्रता। और सारे आनंद का सारफूल जो है, वह है स्वतंत्रता।

इस परम स्वतंत्रता को हमने मोक्ष कहा है। इस परम स्वतंत्रता को हमने निर्वाण कहा है। और इसी परम स्वतंत्रता को हमने कैवल्य कहा है। तीन कारणों से।

इस परम स्वतंत्रता को मोक्ष कहा है, क्योंकि वहां कोई बंधन नहीं। इस परम स्वतंत्रता को निर्वाण कहा है, क्योंकि वहां मैं भी नहीं, मेरा होना भी मिट जाता है--बस अस्तित्व रह जाता है। जब मैं कहता हूं, मैं हूं, तो मुझे दो शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है, मैं और हूं। हमने निर्वाण कहा इसे, उस क्षण में मैं भी मिट जाता है, केवल हूं, होना मात्र रह जाता है। मैं का भी भाव नहीं होता, बस होता हूं। और हमने इसे कैवल्य भी कहा, क्योंकि इस क्षण में अकेला मैं ही होता हूं। अकेला मैं ही होता हूं--इसका अर्थ हुआ कि सभी कुछ मुझमें ही समा जाता है। आकाश मेरे भीतर होता है, चांद-तारे मेरे भीतर चलते हैं। सृष्टियां मेरे भीतर बनती और बिगड़ती हैं। मैं ही फैलकर इस ब्रह्मांड से एक हो गया होता हूं। मैं ब्रह्म हो गया होता हूं। इसलिए इसे कैवल्य कहा।

यह कैवल्य उपनिषद इस परम स्वतंत्रता की खोज। उसकी जिज्ञासा, उसकी जिज्ञासा के मार्ग का अनुसंधान।

इसका प्रारंभ होता है एक प्रार्थना से। इसे भी हम थोड़ा समझ लें। क्योंकि किसी भी यात्रा का प्रारंभ साधारणतया प्रयास से होना चाहिए, प्रार्थना से नहीं। प्रयत्न से होना चाहिए, प्रार्थना से नहीं। लेकिन उपनिषद शुरू होता है एक प्रार्थना से।

बहुत संकेत हैं उसमें।

पहली बात, जिसे हम खोजने चले हैं, वह हमारे प्रयास से मिलनेवाला नहीं है। लेकिन इसका यह भी अर्थ नहीं है कि वह हमारे बिना प्रयास के मिल जाएगा। यहीं थोड़ी कठिनाई है। और यहीं सारे धर्म की, साधना की गांठ है, उलझन है।

जिसे हम खोजने चले हैं, वह हमारे प्रयास से ही नहीं मिल जाएगा। और हमारे बिना प्रयास के भी नहीं मिलता है। हमारे ही प्रयास से इसलिए नहीं मिल जाएगा कि हम जिसे खोजने चले हैं, वह हमसे बहुत बड़ा है। कारागृह में बंद एक आदमी स्वतंत्रता को खोजने चला है। कैदी, परतंत्र, जंजीरों में बंधा स्वतंत्र आकाश को खोजने चला है। जिसकी खोज है, वह बहुत बड़ा है। कैदी की सामर्थ्य बड़ी सीमित है। सीमित न होती तो वह कैदी ही न होता। सीमित न होती तो वह कारागृह में न होता। सीमित न होती तो कौन उसके हाथ पर जंजीरें बांध पाता? कौन उसके पैरों में बेड़ियां डालता? कौन उसके आसपास कारागृह बनाता? सीमित है, कमजोर है, इसलिए तो कारागृह में है। कारागृह में है, यह उसकी कमजोरी की खबर है। इसलिए अकेले उसके प्रयास से कुछ भी न हो सकेगा। अगर उसके ही प्रयास से हो सकता, तो वह कारागृह में ही नहीं होता।

लेकिन इसका यह अर्थ भी नहीं है कि उसके बिना प्रयास के ही हो सकेगा। क्योंकि वह कारागृह में पड़ा हुआ कैदी अगर अपनी जंजीरों से राजी हो जाए और सो जाए, तो दुनिया की कोई ताकत उसे कारागृह से मुक्त न कर पाएगी। वह अकेला भी मुक्त नहीं हो सकता और दुनिया की बड़ी से बड़ी ताकत भी बिना उसके सहयोग के उसे मुक्त नहीं कर सकती। इसलिए धर्म की सबसे गहरी, जटिल समस्या को हम पहले ही समझ लें।

आदमी मुक्त हो सकता है। उसे प्रयास भी करना पड़ेगा। लेकिन प्रयास के भी पहले उसे अपने से विराट को पुकार लेना होगा। प्रयास से भी पहले उसे प्रार्थना करनी होगी। प्रार्थना से ही उसका प्रयास शुरू होगा। समझें कि प्रार्थना उसका पहला प्रयास है। लेकिन प्रार्थना प्रयास जैसा नहीं मालूम होता।

प्रार्थना का मतलब है--तू कर। प्रार्थना का अर्थ है--तू सहायता दे। प्रार्थना का अर्थ है--तू मेरे हाथ को पकड़। प्रार्थना का अर्‌थ है--मुझे बाहर निकाल। अगर प्रार्थना इतने पर ही रुक जाए, तो भी प्रार्थना काम नहीं कर पाएगी। अगर प्रार्थना करके ही कैदी सो जाए, तो भी कारागृह से मुक्त नहीं हो पाएगा। प्रार्थना केवल एक आनेवाले प्रयास का सूत्रपात है।

प्रार्थना जरूरी है, काफी नहीं है। प्रयास अनिवार्य है, पर्याप्त नहीं। और जहां प्रार्थना और प्रयास संयुक्त हो जाते हैं, वहां विराट ऊर्जा का जन्म होता है, जिससे असंभव भी संभव है।

प्रार्थना का अर्थ है, मैं उस विराट की सहायता मांगता हूं। और प्रयास का अर्थ है कि मैं उस विराट के साथ चलने को राजी हूं, सहयोग करूंगा। प्रार्थना का अर्थ है, तुम मुझे उठाओ। और प्रयास का अर्थ है, मैं उठने की जितनी मेरे पास ताकत है, पूरी लगा दूंगा। लेकिन प्रार्थना का यह भी अर्थ है कि मैं अपनी ताकत से न उठ सकूंगा, तुम्हारी जरूरत है। और प्रयास का यह अर्थ है कि अगर मैं ही न उठना चाहूं, तो तुम्हारी अनुकंपा भी मुझे कैसे उठा सकेगी? इसलिए मैं उठूंगा, अपने पैरों पर खड़ा होऊंगा। इन जंजीरों को तोड़ने की कोशिश करूंगा। फिर भी मैं जानता हूं कि मैं कमजोर हूं और तुम्हारी सहायता के बिना कुछ भी नहीं हो सकता।

यह उपनिषद शुरू होता है प्रार्थना से। वह प्रार्थना भी बहुत अनूठी है। अनूठी, कठिन, थोड़ी चिंता में भी डालेगी। बहुत बार पढ़ी होगी इस तरह की प्रार्थनाएं, लेकिन विचार नहीं किया होगा। विचार हम करते ही नहीं; अन्यथा यह प्रार्थना बहुत हैरानी में डालेगी।

ऋषि ने प्रार्थना की है, "मेरे अंग वृद्धि को प्राप्त हों। मेरी वाणी, मेरी घ्राण, मेरी आंखें, मेरे कान बलशाली हों। मेरी इंद्रियां शक्तिशाली बनें।"

हैरानी होगी सोचकर कि जो ब्रह्म की खोज पर चला है, वह इंद्रियों को शक्तिशाली करने की बात सोचता है। शक्तिशाली करने की प्रार्थना कर रहा है! हमने तो यही सुना है कि जिसे उस तरफ जाना हो, उसे इंद्रियों को नष्ट ही कर देना है। हमने तो यही सुना है कि जिसे उसे पाना हो, उसे इंद्रियों को निर्बल करना है। हमने तो यही सुना है कि इंद्रियों का दमन ही उसे पाने का मार्ग है। लेकिन यह उपनिषद कैसी हमसे उल्टी बात कह रहा है!

बहुत लोग इस उपनिषद को पढ़ते हैं, लेकिन उन्हें कभी खयाल में नहीं आता कि ऋषि क्या कह रहा है? यह कह रहा है कि हमारी इंद्रियों को शक्ति दो, परमात्मा! हमारी आंखें मजबूत हों और हमारे कान बलशाली हों। हमारी वाणी शक्तिशाली बने, हमारी इंद्रियां मजबूत हों, वृद्धि को उपलब्ध हों। या तो यह ऋषि पागल है, या जो हम समझते रहे हैं, वह नासमझी है।

न मालूम कैसे हमारे मन में गहरे में यह बात बैठ गई है कि परमात्मा और संसार में विरोध है। नहीं, जरा भी नहीं है। क्योंकि परमात्मा और संसार में विरोध हो, तो या तो फिर संसार ही हो सकता है, या फिर परमात्मा ही हो सकता है। दोनों नहीं हो सकते। अगर उन दोनों में विरोध हो तो एक कभी का टूट ही गया होता।

इसीलिए जो परमात्मा को बहुत ज्यादा मानता है, वह कहता है संसार माया है। क्योंकि उसे कठिनाई होती है कि अगर परमात्मा को मानता हूं, तो संसार को भी कैसे मानूं? दो में से एक ही हो सकता है। इसीलिए जो संसार को मानता है, वह कहता है, परमात्मा झूठा है, हो नहीं सकता। सब कल्पना है, सब खयाल है, सब सपना है। है नहीं परमात्मा कहीं। क्योंकि उसे भी यह लगता है कि अगर संसार है, तो फिर परमात्मा नहीं हो सकता। दोनों की गहरी मान्यता यह है कि दोनों में विरोध है, तो दोनों में से एक ही हो सकता है। अन्यथा जीवन असंभव हो जाएगा।

लेकिन यह ऋषि कुछ और कह रहा है। यह ऋषि परमात्मा और संसार को विरोधी नहीं मानता है। यह ऋषि इंद्रियां और आत्मा को विरोधी नहीं मानता है। यह ऋषि परम ज्ञान की खोज के लिए भी इंद्रियों की शक्तिशाली होने की प्रार्थना से यात्रा शुरू करता है।

कोई विरोध है भी नहीं। हो भी नहीं सकता। होना संभव ही नहीं है। परमात्मा और संसार के बीच विरोध तो दूर, द्वैत भी नहीं है, द्वंद्व भी नहीं है। परमात्मा और संसार दो चीजें भी नहीं हैं।

संसार हम कहते हैं उस परमात्मा को, जो हमारी इंद्रियों से पकड़ में आ जाए। जौर परमात्मा कहते हैं उस संसार को, जो हमारी इंद्रियों से पकड़ में नहीं आता।

यह ऋषि अदभुत प्रार्थना कर रहा है। यह कह रहा है कि अभी मैं वह प्रार्थना दूसरी करूं तुमसे कि तुम भीतर से मुझे पकड़ में आ जाओ, तो थोड़ा छोटे मुंह बड़ी बात होगी। अभी तो मैं इतनी ही प्रार्थना करता हूं कि जिन इंद्रियों से तुम मुझे थोड़े-थोड़े पकड़ में आते हो, संसार की तरह, वे इतनी वृद्धि को प्राप्त हो जाएं कि संसार में ही तुम सब जगह मुझे दिखाई पड़ने लगो। आंख मेरी ऐसी वृद्धि को उपलब्ध हो जाए कि जब मैं वृक्ष को देखूं तो वृक्ष ही दिखाई न पड़ें, तुम भी उसके भीतर बढ़ते हुए दिखाई पड़ो। और जब कान मेरे वाणी को सुनें तो वाणी सिर्फ ओठों से जो पैदा होती है वही सुनाई न पड़े, वह वाणी भी सुनाई पड़ जाए जो कि बिना ओठों के ही सदा निनादित हो रही है। और जब मेरे हाथ किसी को छुएं तो शरीर तो छुआ ही जाए, मेरी अंगुलियां उस आत्मा के स्पर्श को भी पा लें जो शरीर के भीतर छिपा है। इसलिए मेरी इंद्रियों को मजबूत करो। इसलिए मेरी इंद्रियों को वृद्धि दो।

अनूठी दृष्टि है।

अब आज का मनस्विद इसका सहयोगी है। मनस्विद कहता है, जिस व्यक्ति की इंद्रियां जितनी संवेदनशील है, जितनी जीवंत हैं, उतना ही जीवन में जो छिपा है उसकी उसे प्रतीति और झलक मिलनी शुरू हो जाएगी। इंद्रियों को मार कर हम सिर्फ इतना ही कह रहे हैं कि हम संसार के दुश्मन हैं। और हम यह भी कह रहे हैं कि संसार में हम कितनी ही चेष्टा करें, तू हमें दिखाई नहीं पड़ता, तो हम आंखें ही फोड़ लेंगे, हम कान ही तोड़ देंगे। हम इंद्रियों को दीन-हीन और क्षीण कर लेंगे। सुखा डालेंगे। हम तो तुझे भीतर ही खोजेंगे।

लेकिन समझें थोड़ा। जिसे हम बाहर भी न खोज पाए--जो कि सरल था--उसे हम भीतर खोज पाएंगे? और फिर बाहर और भीतर में जिसे हम बांटते हैं, वह क्या दो है? मेरे घर के बाहर जो आकाश है और मेरे घर के भीतर जो आकाश है, वह क्या दो हैं? और मेरी जो श्वास बाहर जाती है और मेरी जो श्वास भीतर आती है, वह क्या दो हैं? मेरी भीतर जो समाया है वह, और मेरे बाहर जो फैला है, क्या वे दो हैं? और बाहर इतना विराट फैला है, अगर वहां भी मैं अंधा हूं और वह मुझे दिखाई नहीं पड़ता, तो भीतर के मेरे इस बिंदु में मैं उसे खोज पाऊंगा?

ऋषि कहता है, पहले तू मेरी इंद्रियों को मजबूत कर। मेरी इंद्रियों को शक्ति दे, ताकि इंद्रियों से मैं उसको भी उनुभव कर पाऊं जो मेरी कमजोर इंद्रियों की पकड़ में नहीं आता।

हिम्मत की प्रार्थना है। कमजोर क्षणों में यह उपनिषद नहीं लिखा गया है।

भारत के मानसिक इतिहास में एक शक्तिशाली समय भी था। जब कोई कौम अपनी पूरी मेधा में जलती है, जब कोई कौम अपनी पूरी आत्मा में प्रगट होती है, तब कमजोर नहीं होती; तब उसके वक्तव्य बड़े बलशाली होते है। और जब भी कोई कौम युवा होती है, ताजी होती है, बढ़ती होती है, शिखर की तरफ उठती होती है; जब किसी कौम के प्राणों में सूर्योदय का क्षण होता है, तब कोई भी चीज अस्वीकार नहीं होती। सभी स्वीकार होता है। और तब, इतनी सामर्थ्य होती है उस कौम की आत्मा में कि वह जहर को भी स्वीकार करे तो अमृत हो जाता है। वह जिसको भी छाती से लगा ले, वही कांटा भी हो तो फूल हो जाता है। और जिस रास्ते पर पैर रखे, वहीं स्वर्ण बिछ जाता है।

लेकिन फिर कमजोर क्षण भी होते हैं कौमों के।

तो भारत कोई ढाई हजार वर्षों से बहुत कमजोर और दीन क्षण में जी रहा है, उधार में जी रहा हैं। जैसे सूर्यास्त हो गया हो। सिर्फ याद रह गई है सूर्योदय की। अंधेरा छा गया हो। दीन-हीन मन हो गया है। पैर रखते डर होता है। नये मार्ग पर चलते में भय होता हैं। पुरानी लीक पर ही घूमते रहना अच्छा मालूम पड़ता हैं। नये सोचने में, नये विचार में, नई उड़ान में, कहीं भी हिम्मत नहीं जुटती। ऐसे कमजोर क्षण में अमृत भी पीने में डर लगता है। पता नहीं जहर हो, अपरिचित, अनजान! फिर पता क्या कि इससे मैं बचूंगा कि मरूंगा? तब सब चीजों से आत्मा सिकुड़ने लगती है। एक सिकुड़ाव शुरू होता है। सब चीजों से भय हो जाता है। सब छोड़ों। सबसे बचो। इस बचाव और छोड़ने में सब सिकुड़ जाता है।

जिसे हम तथाकथित त्याग कहते हैं उस त्याग की भी दो अवस्थाएं होती हैं। एक तो शक्तिशालियों का त्याग होता है। वे उन चीजों को छोड़ देते हैं, जिन्हें अनुभव से व्यर्थ पाते हैं। एक कमजोरों का भी त्याग होता है वे उन सभी चीजों को छोड़ देते हैं, जिन्हें भी उपने से ज्यादा शक्तिशाली पाते हैं।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लेना।

शक्तिशालियों का भी त्याग होता है। वह उन चीजों को छोड़ देते हैं, जिन्हें व्यर्थ पाते हैं। कमजोर भी त्याग करते हैं। वे उन चीजों को छोड़ देते हैं, जिन्हें भी अपने से शक्तिशाली पाते हैं। जहां भी शक्ति है, वहीं उन्हें डर लगता हैं। शक्तिशालियों ने भी इंद्रियों को छोड़ा है, लेकिन इसलिए नहीं कि भय था। इसलिए कि उन्होंने और भी गहन अनुभव के द्वार खोल लिए, उन्होंने देखने की वे भीतर आंखें पा लीं कि बाहरी आंखें बंद करने में वे समर्थ हो गए। उन्होंने भीतर की वह अनुभूति का द्वार खोल लिया कि अब उन्हें साधारण इंद्रियों की और उनके उपयोग की जरूरत न रही।

कमजोरों ने भी इंद्रियों का त्याग किया हैं, लेकिन भय के कारण। आंख बंद कर ली है कि डर है कहीं रूप दिख जाए, तो आत्मा बह जाए। कि कहीं स्पर्श हो जाए, तो संयम नष्ट हो जाए। कि कहीं मधुर वाणी कान में पड़ जाए, तो भीतर चित्त डांवाडोल हो जाए। कमजोरों ने भी इंद्रियों को छोड़ा है, शक्तिशालियों ने भी छोड़ा है। शक्तिशाली इसलिए छोड़ते हैं कि जब भी श्रेष्ठतर उपलब्ध हो जाता है तो निकृष्ट की जरूरत नहीं नह जाती।

यह ऋषि उन दिनों की बात कर रहा है, जब इस कौम की प्रतिभा जीवंत, जाग्रत, स्वस्थ, युवा थी। तब महर्षि हिम्मत से कह सकता था--हे परमात्मा, मेरी इंद्रियों को मजबूत कर!

समझें इसका मतलब यह हुआ कि आत्मा इतनी मजबूत है कि इंद्रियों से डरने का कोई कारण भी तो नहीं है। हम उनका उपयोग कर सकेंगे। हम उनके मालिक हो सकेंगे। हम उनका साधन की तरह--साध्य की तर नहीं--साधन की तरह हम उनका उपयोग करने में समर्थ हैं।

इंद्रियों की वृद्धि की इस प्रार्थना में जीवन और आत्मा की एकता का सूत्र छिपा है। जीवन एक वर्तुल है। चाहे हम बाहर से और चाहे हम भीतर से, जिसे भी हम पा लेंगे वह एक ही हैं। यह वर्तुल--चाहे हम बाहर से खोज करते हुए आएं तो भी हम भीतर पहुंच जाएंगे; चाहे हम भीतर से खोज करते हुए आएं तो भी हम बाहर पह ंच जाएंगे। क्योंकि जिसे हम बाहर और भीतर में बांट रहे हैं, वह अपने आप में अनबंटा है, अविभाज्य है, अखंड है। हम कहीं से भी शुरू करें।

लेकिन यह उपनिषद का ऋषि बाहर से शुरू कर रहा है। इस बाहर से शुरू करने में और भी कारण हैं। पहला तो यह कि मनुष्य सहज ही बहिर्मुखी है। तो जहां मनुष्य है, वहीं से शुरू करना उचित है। और जो सहज ही हो रहा है, उसको ही हम साधना क्यों न बना लें? सहज ही साधना क्यों न हो? असहज कि तरफ हम क्यों

झुकें? तो इंद्रियां देख ही रही हैं, इन इंद्रियों के लिए हम क्यों न प्रार्थना करें और क्यों न प्रयास करें कि यह इतना देख पाएं कि अदृश्य भी दृश्य हो जाए? कान सुन ही रहे हैं, तो हम इन कानों की और शक्ति को क्यों न बढ़ाएं कि ये उसे भी सुन लें, जो सदा ही अनसुना है! छिपा है, अप्रगट है, परोक्ष है, वह भी क्यों न इनके सामने आ जाए! इनकी देखने की तीक्ष्णता ऐसी क्यों न हो, संवेदना इनकी इतनी प्रगाढ़ क्यों न हो, कि जो नहीं दिखता है, उसकी भी झलक मिले! क्यों न हम वहीं से शुरू करें जहां आदमी सहज ही खड़ा है! क्यों न हम आदमी के स्वभाव से शुरू करें!

उपनिषद अति स्वाभाविक हैं, अति सहज। उपनिषद अस्वाभाविक नहीं हैं, असहज नहीं हैं, वे किसी ऐसी चर्चा में नहीं पड़ने में उनका रस है, जहां आदमी को व्यर्थ ही उल्टा-सीधा होना पड़े। सीधा ही, आदमी जैसा है, उपनिषद को स्वीकार है। उस आदमी को ही हम निखार सकते हैं। उपनिषद नहीं कहते कि पत्थर को फेंक दो, क्योंकि यह हीरा नहीं है। उपनिषद कहते हैं, इसे निखारो, साफ करो, तराशो, यह हीरा है। इसमें हीरा छिपा हैं। वह प्रकट हो सकता है। जो आज पत्थर दिखाई पड़ रहा है, वह तराशने पर हीरा बन सकता हैं। फेंको मत, बदलो रूपांतरित करो।

आदमी इंद्रियों का जोड़ है। जैसा आदमी है। और जिसे हम मन कहते हैं, वह भी हमारी इंद्रियों से इंद्रियों का संग्रह है। जैसा मन हमारे पास है, अगर हम अपने भीतर खोजने जाएं, तो हम इंद्रियों के सिवाय और क्या है? और हमारी सारी इंद्रियों के अनुभव का जोड़ ही तो हमारा ज्ञान है। यह हमारी स्थिति है। यह हमारा अंत नहीं है। यह हमारी परम अवस्था नहीं है। यह हमारी आज की अवस्था है। क्यों न इसे हम निखारें?

तो ऋषि परमात्मा से पहली प्रार्थना करता है कि जो भी मेरे पास ज्ञान के साधन हैं--मेरी इंद्रियां--तू उन्हें प्रखर कर।

"उपनिषद ब्रह्मरूप हैं, मुझसे ब्रह्म का त्याग न हो, ब्रह्म मेरा त्याग न करे, उसमें रत हुए मुझको उपनिषद-धर्म की प्राप्ति हो।"

इतनी सी ही प्रार्थना हैं। सब उपनिषद ब्रह्मरूप हैं। दो बातें कही हैं इन थोड़े से शब्दों में। सब उपनिषद ब्रह्मरूप हैं। भारतीय मनीषा को सदा से ही एक दृष्टि रही है, वह दृष्टि है अनेकांत की। वह दृष्टि है, एकांत विरोध की। वह दृष्टि है, एक ही ठीक है इसे नासमझी समझ लेना। उचित होता, इस ऋषि को कहना चाहिए था--कैवल्य उपनिषद ब्रह्मरूप है। कहना चाहिए था--यह उपनिषद ब्रह्मरूप है। लेकिन ऋषि कहता है, सब उपनिषद ब्रह्मरूप हैं। बेशर्त। सब उपनिषद ब्रह्मरूप हैं।

और उपनिषद का मतलब सिर्फ उन किताबों से नहीं है, जिन्हें हम उपनिषद कहते हैं। उपनिषद शब्द का अर्थ है, रहस्य। उपनिषद शब्द का अर्थ है, वे रहस्यपूर्ण कुंजियां जो उस परमात्मा के द्वार को खोलती हैं। तो जब ऋषि ने कहा, सब उपनिषद ब्रह्मरूप हैं, तो उसने कहा है, वे सभी रहस्य-पथ, वे सभी मार्ग, वे सभी शब्द, वे सभी शास्त्र, जो परमात्म का द्वार खोलते हैं, वे ब्रह्मरूप हैं। यह मजेदार है बात। क्योंकि शास्त्र को, शब्द को, रहस्य को, पथ को ब्रह्मरूप कहना!

दो बातें खयाल में लेने जैसी हैं। ब्रह्म तो अरूप है, ब्रह्म का तो कोई रूप नहीं है। ब्रह्म का तो कोई आकार नहीं है। ब्रह्म की तो हम कोई, कोई धारणा भी न कर पाएंगे। कोई रेखा भी न खींच पाएंगे उसके आसपास। कोई परिभाषा भी न कर पाएंगे। ब्रह्म तो निराकर है। अस्तित्व तो निराकार है। लेकिन जिन रहस्यवादियों ने उस निराकार के आसपास भी रेखाएं खींची हैं, रेखाएं उसके आसपास खिंच नहीं पाती है। और रेखाएं खींचने से कोई ब्रह्म के रहस्य का हल भी नहीं होता--लेकिन वे रेखाएं खींच कर ही हम उन लोगों को जो केवल रेखाओं

को ही समझ सकते हैं, उस रेखा-शून्य की तरफ ले जाने का उपयोग कर सकते हैं। जो उस निराकार को सीधा नहीं समझ सकते हैं, उनके हाथ में हम आकार दे सकते हैं और आकार से धीरे-धीरे निराकार की यात्रा पर ले जा सकते हैं। आकार देकर धीरे-धीरे आकार छीने जा सकते हैं।

एक छोटे बच्चे को हम खेलने के लिए एक खिलौना दे देते हैं। खिलौने से प्रेम हो जाता है सघन। वह बच्चा उस खिलौने के बिना रात सो भी नहीं सकता। रात नींद भी खुल जाए और खिलौना न मिले तो वैसी हो बेचैनी होती है जैसा किसी भी प्रमी को प्रमी के बिछड़ जाने पर हो। लेकिन शीघ्र ही वह दिन आ जाएगा, जब यह खिलौना किसी कोने में पड़ा रह जाएगा।

लेकिन एक मजे की बात है। खिलौना तो कोने में पड़ा रह जाएगा, लेकिन खिलौने से जो प्रेम का अनुभव हुआ, वह साथ चल पड़ेगा। खिलौने से जो प्रेम का नाता बना, जो संबंध बना, जो प्रतीति हुई, जो अनुभव हुआ, प्रेम का जो द्वार खुला, वह साथ रह जाएगा। खिलौना तो कल पड़ा रह जाएगा किसी कोने में। यह खिलौना फिर कभी इसे याद भी न आएगा। लेकिन जब भी यह किसी और को भी प्रेम करेगा, तो ध्यान रखें, उस खिलौने का भी दान उस प्रेम में रहेगा।

लेकिन हो सकता है यह बच्चा बच्चा तो न रह जाए शरीर से, लेकिन मन से फिर भी बच्चा रह जाए। फिर किसी व्यक्ति से प्रेम करने लगे और तब फिर उस व्यक्ति के लिए भी वैसा ही रोने लगे जैसे खिलौने के लिए कभी रोया था। और बिल्कुल भूल जाए कि जिसके लिए इतना रोया था, उसे भी एक दिन छोड़ दिया, और फिर याद भी नहीं आई उसकी कि वह खिलौना कहां है! अब उसका कोई पता भी नही है।

लेकिन अगर यह बच्चा भीतर से भी बड़ा हो जाए, शरीर से ही नहीं, मन से भी बड़ा हो जाए, एक भीतरी प्रौढ़ता भी इसकी आए, तो एक दिन यह बाहर का खिलौना भी ऐसा ही भूल जाएगा। लेकिन तब भी इस बाहर के व्यक्ति से भी जो प्रेम का नाता बना था, जो संबंध बना था जो रस पाया था, किसी दिन वह और सघन हो कर भीतर भर जाएगा। यह प्रेम भक्ति भी बन सकता है और जिस दिन यह प्रेम भक्ति बनेगा और भगवान की तरफ बहेगा, उस दिन याद भी न आएगी उन प्रेमियों की, उन खिलौनों की-- चाहे बचपन के, और चाहे बड़ेपन के--लेकिन उनका भी दान होगा। लेकिन भक्ति भी तब तक पूरी नही होती, जब तक भक्त भगवान ही न हो जाए।

और एक दिन आखिरी खिलौना भगवान का भी छूट जाता है। और तब वही शेष रह जाता है, जो बचा इन सब अनुभवों में--प्रेम! सब खिलौने छूट जाते हैं। लेकिन खिलौनें से जिसको पाने में सहायता मिली थी वह बच जाता है। सब रूप छूट जाते है, लेकिन वह जो अरूप प्रेम है वह धीरे-धीरे संगृहीत होता जाता है, संगृहीत होता जाता है। एक दिन ऐसा आता है कि भक्त सिर्फ प्रेम ही रह जाता है। प्रेमी सब खो जाते हैं। उस दिन वह भगवान हो जाता है।

ऐसे ही इस ऋषि ने कहा है--सब उपनिषद ब्रह्मरूप हैं। वे ब्रह्म नहीं हैं--ब्रह्मरूप हैं। वे रेखाएं हैं, जिनके अनुभव से गुजर कर किसी दिन रेखा-मुक्त में प्रवेश हो जाएगा। वह सीमाएं हैं शब्दों की, सिद्धांतों की, शास्त्रों की। लेकिन उन सीमाओं में असीम की तरफ इशारा है। और इसलिए जैसे एक दिन सब खिलौने छूट जाते हैं, ऐसे ही एक दिन सब उपनिषद भी छूट जाते हैं। ऐसे ही एक दिन सब शास्त्र भी छूट जाते हैं। जो शास्त्र पकड़ जाए, समझ लेना कि आप भूल में पड़ गए। शास्त्र है ही इसलिए कि छूट जाए। वह सिर्फ इशारा है। वह सिर्फ संकेत है। पकड़ना उपयोगी है, उससे भी ज्यादा उपयोगी छोड़ देना है।

लेकिन दो तरह के नासमझ हैं, दुनिया में। एक वे, जो कहते हैं, जब छोड़ना ही है तो हम पकड़े ही क्यों? एक वे, जो कहते हैं जब हमने पकड़ ही लिया तो हम छोड़े क्यों? वे एक ही तरह के हैं। उनमें जो फर्क है वह शीर्षासन का है। उनमें कोई मौलिक फर्क नहीं है। एक हैं, वे कहते हैं, हम पकडें ही क्यों? हम पकड़ेंगे ही नहीं। तो ध्यान रखो उस बच्चे का जिसको खिलौने न दिए गए हों, जिसे कभी कोई प्रेम भी न मिला हो, जिसे कभी कोई भगवान की धारणा न मिली हो। तो आशा मत करना कि उसके जीवन में वह घड़ी आ जाए जहां वह भगवान की स्थिति को पा ले, भगवत्ता को पा ले। यह असंभव है। क्योंकि यह रूप के सारे अनुभ... अनुभव तो अरूप है। अनुभव के जो माध्यम हैं, वे रूपायित होते हैं। सत्य तो अरूप है, लेकिन सत्य कि तरफ जो इशारे हैं, वे शब्द, वे रूप हैं।

ऋषि ने कहा है, सब उपनिषद ब्रह्मरूप हैं। सब मार्ग, सब शास्त्र, सब रहस्य। जो भी आज तक मनुष्य ने इशारे किए हैं, वे सभी ब्रह्मरूप हैं। वे सभी ब्रह्म को रूपायित करते हैं... उसको, जो रूपायित नहीं हो सकता है। उसके लिए नहीं, उनके लिए जो रूप के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं समझ सकते।

ब्रह्मरूप का अर्थ हुआ--जितनी मेरी सीमा है, जहां तक मेरी बुद्धि और और मेरी इंद्रियां समझ पाती हैं, वहां तक समझाने के प्रयत्न।

बंद है एक आदमी कारागृह में। आकाश दूर है, उड़ नहीं सकता। खिड़की से ही देख सकता है। खिड़की में भी सींखचे लगे हैं। जो आकाश दिखता है, वह सींखचों में बंटा हुआ दिखता है। जो आकाश दिखता है खिड़की के चौखटे में बंधा हुआ दिखता है। आकाश में कोई बंधन नहीं है, आकाश पर कोई चौखटा नहीं है, आकाश पर कोई सींखचे नहीं है, लेकिन कारागृह में बंद जो कैदी बैठा है, उसे तो खिड़की से ही आकाश दिखता है।

अगर उसने कभी बाहर का आकाश न देखा हो, तो वह कहेगा कि आकाश दो फीट चौड़ा, चार फीट लंबा, इतने सींखचों से बंद, इस तरह के चौखटे में घिरा है। अगर उसने कभी आकाश न देखा हो, तो इस सींखचों में बंद आकाश में भी सूर्योदय होगा। जब ये सींखचे के ऊपर सूर्य आएगा और इस चौखटे में सूर्य दिखाई पड़ेगा, ता वह कहेगा, सूर्योदय हुआ। फिर इस सींखचे में ही, इसी चौखटे में सूर्यास्त भी हो जाएगा। उस सूर्यास्त का पृथ्वी पर होनवाले सूर्यास्त से कोई संबंध नहीं होगा। इस खिड़की से संबंध होगा। तो यह कहेगा कि सूर्योदय होता है, फिर पांच मिनिट बाद सूर्यास्त हो जाता है। और यह कहेगा कि सूर्योदयके पहले भी बहत देर तक प्रकाश रहता है, सूर्यास्त के बाद भी बहुत देर तक प्रकाश रहता है। कभी कोई पक्षी भी इस खिड़की के बाहर से उड़ेगा तो उतना ही इसे दिखाई पड़ेगा, जितना इसका आकाश है। यह कहेगा, पक्षी जन्मते हैं और फिर लीन हो जाते हैं।

इसका जानना क्या बिल्कुल गलत है? इसका जानना गलत तो है, लेकिन बिल्कुल गलत नहीं है। क्या इसका जानना सही है? इसका जानना सही तो है, लेकिन बिल्कुल सही नहीं है। इसका जानना सीमित है। इसकी गलती भी सीमित है। इसकी गलती है, आकाश पर चौखटे को बिठा लेना। इसका जानना तो ठीक ही है, जितना आकाश जान रहा है उतना तो ठीक ही जान रहा है, लेकिन उतना ही आकाश है, तो भूल हो जाती है।

उपनिषद ब्रह्मरूप हैं, लेकिन जो उपनिषद को ही ब्रह्म मान लेता है, तो फिर भूल हो जाती है। चौखटे को उसने ब्रह्म मान लिया। ब्रह्मरूप मानें तो भूल की कोई संभावना नहीं है, क्योंकि उसका अर्थ हुआ कि हम स्मरण रखे हुए हैं कि रूप तो उसका है नहीं, रूप हमें दिखाई पड़ रहा है, वह हमारी आंखों से दिया गया है। वह हमारी सीमाओं से स्थापित हुआ है। वह उसका नहीं है, हमारा दिया हुआ है।

ऋषि कहता है, "मुझसे ब्रह्म का त्याग न हो।"

बड़ी पीड़ा की बात है। जानता है ऋषि कि त्याग हो हो जाता है। जानता है भलीभांति कि चाहता हूं बहुत उसका त्याग न हो, वह मेरे स्मरण से न छूटे, मैं उसे भूलूं नहीं, उससे मेरा हाथ अलग न हो, लेकिन क्षण भी नहीं होता और भूल जाते है। स्मरण टूट जाता है। खयाल ही भूल जाता है कि ब्रह्म भी है। ऋषि कहता है,"मुझसे ब्रह्म का त्याग न होगा।" मैं उसे भूलूं न, उसे छोड़ूं न, यह प्रार्थना है उसकी।

और फिर कहता है, "और ब्रह्म भी मेरा त्याग न करे।"

यह भी प्रार्थना है उसकी। क्योंकि मैं भी उसे स्मरण रखता रहूं, और अगर उस विराट में मेरे तरफ कोई भी संवेदन न होता हो, मैं चिल्लाता रहूं और उस विराट तक मेरी कोई खबर ही न पह ंचती है; मैं पुकारता रहूं लेकिन मेरी पुकार को सुनने का वहां कोई उपाय ही न हो। मैं उसका त्याग भी न करूं लेकिन उसे ही मेरी याद न रह गई हो--ऐसा नहीं है कि ऋषि सोचता है कि ब्रह्म उसका त्याग कर सकता है; नहीं यह सिर्फ उसकी आकांक्षा है।

इसे समझ लेना ठीक से।

यह अर्थ नहीं है कि ऋषि सोचता है कि ब्रह्म उसका त्याग कर सकता है। नहीं, यह उसकी प्रार्थना है। यह कातर प्रार्थना है कि मेरा त्याग मत कर देना--भलीभांति जानते हुए कि उससे कोई त्याग नहीं होता; भलीभांति जानते हुए कि मैं उसका त्याग कर सकता हूं, वह मेरा त्याग नहीं कर सकता है, क्योंकि उसके बिना तो मैं हो ही नही सकता हूं। मैं उसका त्याग कर सकता हूं, क्योंकि वह मेरे बिना भी हो सकता है।

इसे थोड़ा समझ लेना।

मै उसका त्याग कर सकता हूं, मै उसे भूल सकता हूं, क्योंकि उसके होने के लिए मेरे स्मरण की, या मेरे याददाश्त की कोई भी जरूरत नहीं है। मै उसके होने मे अनिवार्य नहीं हूं। मेरे बिना वह हो सकता है। मेरे बिना वह था, मेरे बिना वह रहेगा। मै उसे भूल सकता हूं। लेकिन वह मुझे अगर भूल जाए तो मैं इसी क्षण शून्य हो जाऊं। उसके भूलने का अर्थ होगा, मैं गया! मेरे होने का उपाय ही न रह जाएगा। सागर अगर लहर को भूल जाए तो लहर होगी कैसी? लहर सागर को भूली रहे तो भी सागर होता है। और लहर के भूलने से सागर को कहीं भी कोई पीड़ा नहीं होती, इसलिए लहर को मिटाने का कोई सवाल नहीं है। लेकिन अगर सागर लहर को भूल जाए, तो लहर बचेगी ही नहीं। हो ही नहीं सकती। सागर की स्मृती है, इसीलिए लहर हैं। सागर के प्राणों में उसकी जगह है, इसीलिए लहर है।

ऋषि भलीभांति जानता है कि ब्रह्म मेरा त्याग नहीं कर सकता, लेकिन यह प्रार्थना है। यह आकांक्षा है। यह आकांक्षा में वह यह कह रहा है कि मैं तो भूल भी जाऊं एक बार, लेकिन तू मुझे मत भूल जाना। मैं तो भूल ही जाता हूं मै न भूलूं, इसकी तुझसे प्रार्थना करता हूं। फिर भी मुझे पक्का नहीं है कि मैं तुझे याद रख ही सकूंगा। मै अपने को भलीभांति जानता हूं, मैं तुझे भूलता ही रहूंगा, भूलता ही रहूंगा; लेकिन तू मुझे मत भूल जाना। मेरे भूलने में भी मेरा कुछ मिटनेवाला नहीं। मैं तुझे भूलूं, तो भी मैं रहूंगा; लेकिन तू मुझे भूले, तो फिर मेरा कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। यह बहुत आंसू भरी कातर प्रार्थना है। यह सूचना नहीं है ब्रह्म के स्वरूप की, यह केवल ऋषि के हृदय की सूचना है।

"उसमें रत हुए मुझको उपनिषद-धर्म की प्राप्ति हो।"

मैं तुझमें डूबा हुआ, मैं तेरी याद में खोया हुआ, मैं तुझमें लीन हुआ उस धर्म को पा लूं, जिसके लिए सब उपनिषद इशारा करते हैं। नहीं हिंदू ने कहा ऋषि ने नहीं कहा कि हिंदू धर्म की उपलब्धि हो, कि मुसलमान धर्म

कि उपलब्धी हो, कि जैन धर्म की उपलब्धि हो; इतना ही कहा कि सब रहस्यों ने जिस तरफ इशारा किया है, उस धर्म की मुझे उपलब्धि हो; उपनिषद जिस तरफ इंगित करते हैं, उस धर्म की मुझे उपलब्धि हो।

यह जो समस्त संकेतों द्वारा, समस्त इशारों से, जिस धर्म की बात कही गई है, वह धर्म क्या है? और उसकी उपलब्धि की क्यूं आकांक्षा है?

धर्म क्या है? धर्म का अर्थ हैः इस जगत का सारभूत नियम। इस जगत का आधारभूत नियम। इस जगत का स्वभाव। इस अस्तित्व का जो प्राण है, वही। इस समस्त अस्तित्व की जो आत्मा है, वही। धर्म का अर्थ होता है, जिसने सबको धारण किया हुआ है, जिसने सबको संभाला हुआ है। जिसमें सब है, और जिसमें ही सब विकसित होता है और लीन हो जाता है। धर्म का अर्थ है, परम आधार। वह परम आधार मुझे उपलब्ध हो, तुझमें रत हुए, तुझमें लीन हुए।

एक बहुत मजे की बात है इस सूत्र में। ऋषि कहता है कि अगर तुझमें बिना लीन हुए मुझे वह परम आधार भी उपलब्ध होता है, तो मेरी आकांक्षा नहीं है। वह परम नियम भी मुझे मिल जाए, वह सत्य भी मैं पा लूं जिस पर सब टिका है, लेकिन तुझमें मेरी लीनता न हो, तो उसे पाने की कोई मेरी आकांक्षा नहीं हैं। क्यूं?

यहीं धर्म और विज्ञान का भेद है। विज्ञान भी उस परम नियम की खोज में लगा है, उस धर्म की खोज में लगा है, जिस पर सारा अस्तित्व टिका है, लेकिन उसमें लीन होने की आकांक्षा से नहीं। उस पर कब्जा करने की, उसका मालिक होने की, उसके ऊपर विजेता होने की आंकांक्षा से। विज्ञान भी धर्म की ही खोज है। धर्म की ही खोज है। धर्म का अर्थ : नियम; आत्यंतिक सत्य, जिस पर अस्तित्व टिका है। विज्ञान भी उसीकी खोज में रत है, लेकिन वैज्ञानिक की जो दृष्टि है, वह उसे जानकर, खोजकर उसके मालिक हो जाने की, उसको कब्जे में ले लेने की, उससे काम करवाने की, उसका उपयोग करने की है।

धर्म भी, धार्मिक व्यक्ति भी, ऋषि भी उसी धर्म की खोज में है, लेकिन आकांक्षा दूसरी है। उसे मालिक बना देने की। उसमें लीन हो जाने की। उसके उपयोग में आ सकूं, इसकी। विजित हो जाने की, हार जाने की, समर्पित हो जाने की। सत्य को अगर हम ऐसे जीतने चले हों कि उसे पाकर हम उपयोग करेंगे उसका, तो इस खोज का नाम विज्ञान है। और सत्य को हम ऐसे खोजने चले हैं कि मिल जाए तो उसके चरणों में लीन कर देंगे अपने को, तो ऐसी खोज का नाम धर्म है।

उपनिषद के इस सूत्र के संबंध में इतना ही।

कल के ध्यान के संबंध में थोड़ी बातें आपसे कह दूं। सुबह के ध्यान के संबंध में।

सुबह का ध्यान चार चरणों में है। पहले दस मिनिट तीव्र श्वास लेनी है। श्वास के द्वारा ही अस्तित्व में प्रवेश करना है। श्वास को ही शक्ति और ऊर्जा देनी है। श्वास में ही सारा प्राण डाल देना है--कि श्वास बाहर जाए तो आपकी पूरी आत्मा श्वास के साथ बाहर चली जाए, कि श्वास भीतर आए तो सारा अस्तित्व आपकी श्वास के साथ भीतर आ जाए। इतनी तीव्रता से श्वास लेनी है कि सब भूल जाना है, सिर्फ श्वास ही ह जाए। आप जैसे श्वास ही हो गए।

दस मिनट की यह तीव्र श्वास आपके भीतर उन शक्तियों को जगा देगी, जो सोई पड़ी हैं। उन ऊर्जाओं को उठा देगी, सक्रिय कर देगी, जिन्हें आपने कभी स्पर्श ही नहीं किया। लेकिन कंजूसी, कृपणता नहीं चलेगी। ऐसा मत सोचना कि धीरे-धीरे लेंगे, तो न जगेगी बहुत तो थोड़ी तो जगेगी। नहीं, बिल्कुल नहीं जगेगी। क्योंकि जागने की प्रक्रिया एक सीमा के बाद शुरू होती है। जैसे पानी गरम करते हैं तो सौ डिग्री पर गरम होता है, फिर भाप बनता है। ऐसा मत सोचना कि आप कि तीस डिग्री पर थोड़ा तो भाप बनेगा। कि पचास डिर्गी पर नहीं

पूरा बनेगा तो आधा तो भाप बनेगा गणित यहां काम नहीं करेगा। सौ डिग्री पर भाप बनता है, तो ऐसा मत सोचना कि पचास डिग्री पर आधा तो भाप बन जाएगा। बिल्कुल नही बनेगा। सौ डिग्री पर ही भाप बनना शुरू होगा।

और सौ डिग्री क्या है?

पानी के लिए तो बिल्कुल एक है। कहीं दुनिया के किसी कोने में पानी को गरम करो, वह सौ डिग्री पर भाप बनता है। और तालाब का पानी हो, कि नदी का, कि कुएं का, कि नल का, कि कहां का; कि आकाश से वर्षा का आया हो, पानी जिद्द नहीं करता कि मै कुएं का हूं कि हूं कि नल का--सब पानी सौ डिग्री पर भाप बन जाता है, क्योंकि पानी के पास कोई व्यक्तित्व नहीं है।

आदमी के साथ एक और कठिनाई है। उसके पास व्यक्तित्व है। और एक-एक आदमी अलग-अलग डिग्री पर भाप बनता है। या ऐसा समझो कि हर आदमी की सौ डिग्री अलग-अलग होती है। सो डिग्री पर ही भाप बनता है, लेकिन हर आदमी की सौ डिग्री अलग अलग होती है तो बड़ी कठिनाई है कि मैं आपको कैसे कहूं कि किस डिग्री पर आपका भाप बनेगा। एक बात पक्की है, आप अपनी सौ डिग्री क्या है उसकी जांच रख सकते हैं। वह यह है कि अगर आपने अपने को बिल्कुल नहीं बचाया, तो आप सौ डिग्री पर हैं। आपने प्रयास में अपने को पूरा डाल दिया, आप भलीभांति आश्वस्त गए कि मैं पीछे उपने को जरा भी रोक नहीं रहा हूं। और इसमें दूसरे का कोई लेना-देना नहीं है, आपका ही सवाल है। इसलिए दूसरा जाने या न जाने, यह सवाल नही, आपको ही जानना है कि मैं अपने को रोक तो नहीं रहा हूं? मैं अपने को पूरा डाल रहा हूं? अगर पूरा डाल रहा हूं, तो आप सौ डिग्री पर हैं। फिर कोई चिंता नहीं है।

यह भी हो सकता है कि आपका पड़ोसी आपसे ज्यादा श्रम उठा रहा हो और सौ डिग्री पर न हो। क्योंकि उसने अपने को अभी बचा रखा हो। और यह भी हो सकता है कि एक आदमी आपसे कम मेहनत उठा रहा हो और सौ डिग्री पर हो, अगर उसने अपने को पूरा लगा दिया हो। इसलिए आप दूसरे की चिंता मन करें, अपने भीतर ही समझ लें कि मैं अपने को पूरा लगा रहा हूं दांव पर।

ध्यान एक जुआ है। और सब जुओं में हम कुछ और दांव पर लगाते हैं, ध्यान में खुद को लगाते हैं। तो जुआरी का ही काम है, व्यापारी का बिल्कुल नहीं। क्योंकि व्यापारी इस फिकर में रहता है कि खतरा कम हो, चाहे लाभ भी कम हो। जुआरी इस फिकर में रहता है कि लाभ पूरा हो, चाहे हानि पूरी हो जाए। यह जुआरी और व्यापारी का फर्क है।

ध्यान व्यापारी का काम बिल्कुल नहीं है। ध्यान बिल्कुल जुआरी का काम है। वह अपने को पूरा लगाता है। जो हो। एक फर्क जरूर है, कि बाहर के जुए में लाभ शायद ही कभी होता है। शायद इसलिए कहता हूं कि भ्रम बना रहता है कि होगा; कभी होता तो नहीं। कभी नही होता। बाहर के जुए में जीत भी हो, तो किसी बड़ी हार की शुरुआत होती है। और जीत भी हो तो किसी बड़ी हार का प्रलोभन होती है। इसलिए जुआरी कभी नहीं जीतता, कितनी ही बार जीतता है तो भी कभी नहीं जीतता, आखिर मे हारता ही है।

भीतर का जुआ बिल्कुल उलटा है। इसमें हार भी हो, तो किसी आने वाली जीत का प्रारंभ है। और ध्यानी कभी नहीं हारता है। बहुत बार हारता है, अंततः जीत जाता है। ऐसा मत सोचना कि महावीर पहले दिन जीत जाते हैं, कि बुद्ध पहले दिन जीत जाते हैं, कि मोहम्मद या क्राइस्ट, कोई पहले दिन जीत जाता है। कोई नहीं जीतता। सब बुरे हारते हैं। लेकिन अंततः जीत जाते हैं।

तो पूरी शक्ति, दस मिनट तीव्र श्वास।

फिर दस मिनट तीव्र श्वास के बाद जब ऊर्जा जग जाती है, तो सारी ऊर्जा को बाहर फेंक देना है, जिस मार्ग से भी जाना चाहे। शरीर उछले, कूदे, नाचे, रोए, चिल्लाए, आवाज, करे, बिल्कुल विक्षिप्त मालूम होने लगे, तो उस वक्त भी रोकना नहीं है। पूरी ढील छोड़ देनी है और सहयोगी बन जाना है। शरीर को बिल्कुल पगल होना हो, तो बिलकुंल पगल हो जाने देना।

क्यो?

क्योंकि हमारे भीतर न मालूम कितने-कितने पागलपन संगृहीत हैं। अभी मत करिए, यह सुबह के लिए कह रहा हूं। सुबह, हूं पुरा पागल हो जाने देना है। पूरे पागल का अर्थ है कि आप कोई भी भय न रखें कि यह मैं क्या कर रहा हूं। यह मैं चिल्ला रहा हूं? कॉलेज का प्रोफेसर हूं, यह मैं क्या कर रहा हूं? कि डाक्टर हूं; यह मैं उछल-कूद कर रहा हूं! यह मैं क्या कर रहा हूं? कहीं कोई मरीज यहां आस-पास देख ले! डाक्टर मरीज से डरा रहता है; अध्यापक विद्यार्थी से डरा रहता है; दुकानदार ग्राहक से डरा रहता है। जिन-जिन से आपका डर हो, पागल होने का मतलब है, उन उन का डर छोड़ देना। किसी का भी डर हो। पति पत्नी से डरा रहता है, पत्नी पति से डरी रहती है। बाप बेटे से डरा रहता है, बेटा बाप से डरा रहता है। जिनका भी आपको डर हो, पागल होन का मतलब है कि अब मैं डर छोड़ता हूं। और निडर होकर जो होना हो उसे होने देना है, पूरी तरह। क्यों?

क्योंकि हमारे भीतर न मालूम कितना पागलपन इकट्ठा है। हम उसे इकट्ठा करते हैं। अभी हमारी जो दुनिया में व्यवस्था है, वह पागलपन को डिस्पोज करने की नही है। फेंक देने की नहीं, इकट्ठा करने की है। जैसे घर में कचरा हो तो उसको कोने में छिपा कर इकट्ठा करते चले जाएं। तो घर पूरा गंदा हो जाएगा। एक दिन घर में बदबू आने लगेगी। एक दिन हालत ऐसी हो जाएगी कि घर में कचरे के सिवाय कोई जगह ही नहीं रह जाएगी। अभी हम इसी तरह अपने साथ करते हैं। जो-जो कचरा होता है मन में, उसको इकट्ठा करते जाते हैं। क्रोध हो तो क्रोध; बेईमानी हो तो बेईमानी; घृणा हो तो घृणा; हंसी, रोना, कुछ भी इकट्ठा करते जाते हैं।

धीरे-धीरे यह इतना इकट्ठा हो जाता है कि फिर हमें इसी संभालने में हमारी जिंदगी व्यतीत होती है। कहीं यह बाहर न निकल जाए, कहीं गिर न जाए, कहीं फिंक न जाए, कोई देख न ले। फिर इतना डर इससे हमें पैदा हो जाता है कि हम अपने भीतर खुद भी देखना बंद कर देते हैं। क्योंकि इतना डरने लगता है कि इतना कचरा है कि कहीं यह दिखाई न पड़ जाए। ध्यान में तो केवल वे ही लोग प्रवेश कर सकेंगे, जो इस कचरे को बाहर फेंकने को तैयार हैं। बाहर फेंकते से ही सब कुछ हल्का हो जाएगा।

दूसरा चरण रेचन का है। सब बाहर फेंक देना है। एक स्वच्छता भीतर आ जाए। और आप जब तक साहस न करेंगे, फेंक न पाएंगे। और एक बार आप फेंक पाए, तो आप दूसरे आदमी हो जाएंगे। दूसरा चरण पूरी तरह पागल हो जाने का है।

और तीसरा चरण हू की आवाज करने का है। सतत दस मिनिट तक नाचते-कूदते हू की आवाज करनी है। यह हू की आवाज एक हथौड़ी की तरह है। इसकी चोट करनी है। आपके शरीर में, आपके ठीक काम केंद्र के निकट जिस शक्ति का वास है, जिसे योग कुंडलिनी कहता है--या फिर और नाम कोई देना चाहे तो दे सकता है--अब वैज्ञानिक उसको बॉडी इलेक्ट्रिसिटी कहते हैं, कि वह वहां छिपी है। हू की अगर जोर से आवाज की जाए तो उस पर चोट पड़ती है और वह छिपी हुई शक्ति, सोई हुई शक्ति सक्रिय हो जाती है।

पुराने ऋषियों ने उसके लिए कहा है कि जैसे सांप कुंडली मार कर बैठा हो, उस पर चोट की जाए तो वह फन उठाकर ऊपर उठ आता है। उसकी कुंडली टूटने लगती है--और सांप अगर पूरे जोश में आ जाए तो वह सिर्फ पूंछ के बल पर पूरा खड़ा हो जाता है--ठीक वैसे ही हमारे भीतर भी यह शक्ति दबी हुई पड़ी है। इसको अगर

चोट की जाए तो यह उठनी शुरू हो जाती है। लेकिन चोट तभी करनी चाहिए जब आपके भीतर से पागलपन बाहर फेंकने की क्षमता हो। अन्यथा यह शक्ति अगर पागलपन के बीच में उठ आए, तो आप बिल्कुल पागल हो सकते हैं। इसलिए बहुत दफा साधक पागल हो जाते हैं। और उनके पागल होने का कारण यह है कि कुंडलिनी जगाना वे शुरू कर देते हैं, बिना गहरी स्वच्छता के। इसलिए अक्सर पागल हो जाते हैं। वह पागलपन का कारण है, वैज्ञानिक खयाल न होना।

इस स्वच्छता को पहले कर लेना जरूरी है। इसलिए दो चरण आपको गहरे रूप से स्वच्छ करने के लिए हैं। पहला चरण आपके भीतर सारी शक्तियों को जगाने के लिए, दूसरा चरण जगी हुई शक्तियों के साथ जिन-जिन चीजों का विरोध पड़ रहा है, उनको बाहर फेंक देने के लिए। फिर तीसरा चरण नीचे छिपी हुई कुंडलिनी को जगाने के लिए।

तो हूं का दस मिनट तक तीव्रतम प्रयोग करना है। और फिर चौथे चरण में मुर्दे की भांति पड़ जाना है। जैसे आप हैं ही नहीं। शांत। शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ देना है ऐसा मान कर कि मैं बिल्कुल मर गया हूं। और आंख बंद करके चुपचाप भीतर प्रतीक्षा करनी है। बहुत कुछ होगा। उस भीतर की प्रतीक्षा में बहुत कुछ होगा। अगर यह तीन चारण पूरे किए गए, तो अनूठे परिणाम आने शुरू हो जाएंगे।

यह सुबह के ध्यान का खयाल रखें।

सात दिन के लिए, आठ दिन के लिए, जितनी देर यह हमारा शिविर चलेगा, इसमें दिन में ज्यादा से ज्यादा मौन--ज्यादा से ज्यादा। बिल्कुल मौन रख सकें आठ दिन तो बहुत ही अच्छा। ज्यादा से ज्यादा मौन रखें। ज्यादा से ज्यादा शांत रहें। पट्टियां दी जाएंगी, आंख पर ज्यादा से ज्यादा आंख पर पट्टियां बांधे रहें। एकांत में कहीं भी बैठ जाएं, जंगल में चले जाएं, जितनी बार आपको मौज आए उतनी बार जोर से श्वास लें; जितनी बार आपको मौज आए उतनी बार कैंपस के भीतर कहीं भी खड़े होकर, भीतर से कुछ भी फेंकना हो तो फेंकें। सुबह के ध्यान के बाद भी अगर किसी को लगता है कि उतने में उसका कुछ नहीं फिंक पाया, कुछ अटका रह गया है, उसे दोपहर में खयाल आता है, किसी वृक्ष के नीचे चला जाए, फेंके।

कोई शिविरार्थी किसी को बाधा न दे, और न कोई शिविरार्थी किसी के संबंध मे चर्चा करे कि कौन क्या कर रहा है। जिसको जो करना हो वह करने दें। आप जरा भी बाधा न दें। अच्छा तो हो कि जितनी शक्ति आप बाधा देने में लगा रहे हैं, उतनी अपना ही कुछ निकालने में लगाएं, तो ज्यादा उचित होगा। दूसरे पर बिल्कुल ध्यान न दें। सारा ध्यान अपने पर देना है। दूसरे पर बिल्कुल ध्यान को मत बांटें।

मौन से रहें। मौन उसी समय तोड़ें, जब आपको भीतर से कुछ फेंकना हो। अन्यथा मौन, बंद रखें बातचीत। बातचीत मत करें। ज्यादा से ज्यादा ये आठ दिन आपके ध्यान में लगें, इसकी चिंता लें।

यहां जो हम कहेंगे, वह इसीलिए है कि आप कुछ करें। तीन बार तो हम यहां मिलेंगे ध्यान के लिए, लेकिन बाकी समय में भी जो समय आपको मिल जाए उसे ध्यान में लगाएं।

अगर आपको ऐसा लगता हो कि तीन बार के गहरे प्रयोग से आप थक गए हैं, तो झाड़ों के नीच मौन लेट जाएं; शांत पड़े रह कर प्रतीक्षा करें। किन्हीं मित्र को अगर इतना गहरा प्रयोग वृद्धावस्था के कारण, बीमारी के कारण असंभव हो, तो उन मित्रों से मेरा कहना है, वे--अगर असंभव हो, उन्हें ऐसा लगता हो कि कोई ऐसी बीमारी है कि वे नहीं कर पाएंगे; शरीर इतना कमजोर है कि संभव नहीं है--तो उनके लिए मैं एक प्रयोग बताता हूं।

जब भी यहां सक्रिय प्रयोग चलता हो, तो वे ग्राउंड के आस-पास--यहां बीच में तो लोग सक्रिय प्रयोग करते होंगे--किनारों पर बैठ जाएं। उनके लिए एक अलग प्रयोग देता हूं, वे अपना यह प्रयोग करें। लेकिन ध्यान रखें, उनके लिए सिर्फ कह रहा हूं, जो बीमार है, वृद्ध हैं। उनके लिए नहीं कह रहा हूं जो आध्यात्मिक रूप से बीमार हैं। जिनको ऐसा लगता है कि चलो झंझट से बचे, एक कोने में बैठ जाएं, चुपचाप बैठे रहें--उनके लिए नहीं कह रहा हूं। क्योंकि जो सक्रिय प्रयोग का परिणाम होगा, वह तो बहुत अनूठा है। यह तो सिर्फ मजबूरी में उनको बता रहा हूं--नंबर दो का है प्रयोग--सिर्फ मजबूरी में; क्योंकि कुछ न कर पाएं, उससे कुछ करें।

वे लोग एकांत में कहीं भी बैठ जाएं, जब यहां ध्यान का प्रयोग चलता हो सक्रिय, और यहां पर इतने जोर से शोरगुल, चिल्लाहट, विक्षिप्तता प्रकट होगी कि वे शांत बैठकर सिर्फ इस पूरी विक्षिप्तता को अपने चारों तरफ सुनते रहें। सिर्फ सुनने का काम करें। तीस मिनट तक उन्हें अपना सारा ध्यान चारों तरफ जो हो रहा है, इस पर रखना है। ध्यान रखना, इस पर विचार नहीं करना है कि कौन आदमी चिल्लाया, कि चिल्लाना नहीं था कि चिल्लाना था, इस पर नहीं ध्यान करना है। कि यह आदमी ठीक नहीं कर रहे हैं, यह नहीं करना चाहिए--विचार नहीं करना है आपको। आपको सिर्फ सुनना है। यह आपके बस के बाहर है, यह हो रहा है, इसको आपको सिर्फ सुनना है। शांत बैठ कर या लेट कर सिर्फ सुनते रहना है।

आप हैरान होंगे जानकर कि अगर आप तीस मिनट इसको ठीक से सुनने में भी समर्थ हो जाएं, तो भी आपका रेचन होगा। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि एक आदमी अगर फिल्म देखता है, जिसमें हत्या बहुत-बहुत चर्चा होती है (यह कौन मित्र बात किए जा रहे हैं? इनको वहां से हटाइए। पूरे समय से आप बात किए जा रहे है। वहां से हटिए, अलग-अलग होइए जरा। कौन? पुजारी हैं; हटाओ वहां से इन्हें!) मनस्विद कहते हैं कि अगर फिल्म को भी कोई देख रहा हो, हत्या के दृश्य हों, खून हो, मार-पीट हो, युद्ध हो तो देखनेवाला, इसको देख कर भी उसके भीतर की हिंसा, हत्या के भाव विसर्जित होते हैं। उसे लाभ होता है।

तो आप अगर खुद न कर पाएं, तो तीस मिनट आप शांत बैठ जाएं, सारी स्थिति को मौनपूर्वक, साक्षीभाव से सुनते और देखते रहें। तीस मिनट बाद जब सब लोग शांत हो जाएं, तब आप भी शांत हो जाएं। लेकिन सब लोगों को शांत होना तो आसान होगा, क्योंकि वे काफी अशांत हो लिए हैं, आपको शांत होना इतना आसान नहीं होगा, क्योंकि आप अशांत ज्यादा नहीं हुए। तो आप, जब लेटें सारे लोग तो आप भी लेट जाएं और आप सिर्फ एक काम करें कि अपनी नाभि पर ध्यान रखें। गहरी श्वास लें, पेट ऊपर उठे; श्वास बाहर छोड़ें, पेट नीचे गिरे। आप पेट के उठने और गिरने को, आंख बंद करके भीतर से नाभि पर ध्यान रखें। तो दस मिनट में शांति का उन्हें परिणाम हो सकेगा। करीब-करीब उस जैसा कुछ परिणाम आपको भी होगा। दोपहर, रात्रि, जिनको भी ऐसा लगे कि कठिन है करना, वह इस भांति चारों तरफ बैठ सकते हैं।

आंख की पट्टियां जो मित्र ले आए हों, वह ठीक है, अन्यथा यहां मित्रों से प्राप्त कर लेंगे सुबह, ताकि आप आंख पर पट्टियां बांध लेंगे।

रात की बैठक हमारी पूरी हो उससे पहले मैं चाहूंगा, हम पांच मिनट आंख बंद करके प्रार्थना करके उठें। ऋषि ने प्रार्थना की है, हम भी प्रार्थना कर लें।

आंख बंद कर लेनी है, दोनों हाथ जोड़ लेने हैं। आंख बंदकर लें। नाव क्लोज योवर आईज एंड पुट योर बोथ हैंडस इन नमस्कार पोस्चर टु प्रे। आंख बंद कर लें। दोनों हाथ जोड़ लें। सिर झुका दें परमात्मा के चरणों में। और ह्नदय में एक भाव ही गूंजने दें। क्लोज योर आईज, बो डाउन योर हेड इन ए सरेंडर। नाव बिगिन टू प्रे इन योर हार्ट। हृदय में प्रार्थना करें कि मनुष्य बहुत कमजोर है। मैं बहुत कमजोर हूं, मुझ अकेले से क्या होगा! प्रभु

की सहायता चाहिए। उसकी अनुकंपा चाहिए। तेरी अनुकंपा चाहिए। तेरा अनुग्रह चाहिए। मैन अलोन इ.ज हेल्पलेस। आई एम हेल्पलेस। वॉट आई कैन डू विदाउट दि डिवाइन हेल्प! विदाउट यू वॉट कैन आई डू! हेल्प मी, हेल्प मी, हेल्प मी! खोल दें अपने हृदय को उसकी तरफ कि उसकी अनुकंपा से भर जाए। ओपेन योवर हार्ट्स टुवर्डस दि डिवाइन टू बी फिल्ड बाय हिज ग्रेस। उसके प्रसाद से भर जाए। इस प्रार्थना को हम हृदय से... हमारा यह शिविर शुरू हो रहा है, इस आशा में कि अंतिम दिन हम इसी तरह हाथ जोड़ कर परमात्मा को धन्यवाद भी दे सकेंगे। विद दिस केंप वी रिज्यूम दिस प्रेयरफुल थ्रिल दैट ऑन दि लास्ट डे वी विल बी एबल नॉट ओनली टु प्रे, बट आलसो टु थैंक हिम।

आज की रात की हमारी बैठक पूरी हुई।

दूसरा प्रवचन

असंभव से प्रेम-संबंध है श्रद्धा

अथ अश्वलायनो भगवंत परमेष्ठिनं उपसमेत्योवाचः

अधीहि भगवन ब्रह्मविद्यां वरिष्ठां

सदा सदभिः सेव्यमानां निगूढाम

यया। .चिरात सर्वपापं व्यपोह्य

परात्परं पुरुषमुपैति विद्वान।। 1।।

तस्मै सहोवाच पितामहश्च--श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि।। 2।।

तब ब्रह्मविद्या की जिज्ञासा से महर्षि अश्वलायन ब्रह्माजी के पास (शिष्यभाव से समिधा लेकर) गए और नम्रतापूर्वक कहाः

हे भगवन्! कृपया मुझे ब्रह्मविद्या का गोपनीय व अत्यंत श्रेष्ठ मार्ग बताइए, जिस पर संतजन सदैव से चलते आए हैं और जिसके माध्यम से विद्वान लोग अपने पूर्वकृत दोषों को निवृत्त करके उस परब्रह्म को पा जाते हैं।

इस पर ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया--उस परमतत्व को प्राप्त करने के लिए श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और योग का आश्रय लेना पड़ता है।

मनुष्य के प्राणों में जो गहनतम अभीप्सा है, वह जानने की है। जानना जैसे मनुष्य की आत्मा है। जो भी छिपा है, उसे प्राण उघाड़ना चाहते हैं। जो भी अज्ञात है, उसे ज्ञात कर लेना चाहते हैं। जो भी अदृश्य है, वह दृश्य हो जाए और जो अस्पर्शित है, वह स्पर्शित हो जाए। ऐसा कुछ भी शेष न रहे, जो अंधकारपूर्ण है। ऐसा कुछ भी शेष न रहे, जो नहीं जाना गया हैं; क्योंकि जहां मनुष्य के अज्ञान की सीमा आती है, वहीं मनुष्य परतंत्र हो जाता है। जिस जगह मुझे लगता है इसके पार मुझे पता नहीं है, वहीं मेरी सीमा आ जाती है, वही मेरा कारागृह है। मेरे कारागृह की दीवालें मेरे अज्ञान से निर्मित हैं। जिस दिन ऐसा कुछ भी शेष न रहेगा जो अनजाना है, उस दिन मेरी कोई सीमा न रह जाएगी।

अज्ञान सीमा है और इसलिए अज्ञान पीड़ा है।

ज्ञान असीम है और इसलिए ज्ञान मुक्ति है।

मनुष्य के भीतर इन सीमाओं को तोड़ने का सतत ही प्रयास चलता है। लेकिन इस प्रयास की दो दिशाएं हो सकती हैं। एक दिशा तो है कि जो भी मेरे चारों ओर विस्तार है, उस विसतर के एक-एक अंश को मैं जान लूं। यह जो एक-एक अंश को, एक-एक कण को जानने की चेष्टा है, वही विज्ञान है। विज्ञान का अर्थ है, विश्लेषण से पाया हुआ ज्ञान। एक तो रास्ता है चीजों को जानने का कि हम उन्हें तोड़ें और उनके मौलिक घटक को खोज लें। अगर पानी को जानना है तो पानी को तोड़ें और उन मौलिक उपकरणों को खोज लें, जिनसे पानी निर्मित हुआ है। तो जिस दिन हम पानी के मौलिक परमाणु को खोज लेंगे, उन दिन हमने पानी को जान लिया। इस जानने का अर्थ हुआ कि अब हम चाहें तो पानी को बना भी सकते हैं और चाहें तो पानी को मिटा भी सकते हैं।

तो विज्ञान पानी को तोड़ेगा, आक्सीजन, हाइड्रोजन की आखिरी इकाई को खोजेगा, लेकिन फिर भी उसका ज्ञान पानी का तो पूरा हो गया, फिर हाइड्रोजन और आक्सीजन को जानना जरूरी हो जाएगा। अज्ञान एक कदम आगे हटाया गया, मिट नहीं गया। हमने एक धक्का दिया अंधेरे को, एक कदम अंधेरा पीछे हट गया, लेकिन अंधेरा वहीं खड़ा है। अंधेरा मिट नहीं गया, सिर्फ एक कदम पीछे हट गया, तो आक्सीजन को तोड़ना पड़ेगा। विज्ञान आक्सीजन को तोड़ेगा, हाइड्रोजन को तोड़ेगा। और आक्सीजन और हाइड्रोजन के परमाणु जिनसे निर्मित हैं, उनको खोजेगा। इलेक्ट्रांस को खोज लेगा। एक कदम और अज्ञान को धक्का दिया गया। अब हम हाइड्रोजन भी निर्मित कर सकते हैं लेकीन इलेक्ट्रान फिर हमारे अज्ञान कि सीमा बन गई।

विज्ञान विगत दो हजार वर्षों में अज्ञान को धक्का दे देकर बड़े दूर हटाया, ऐसा लगता रहा है। लेकिन अज्ञान मिटता नहीं है। दूसरे कदम पर पुनः खड़ा हो जाता है। और अब तो वैज्ञानिक इसको स्वीकार करने लगे हैं कि ऐसा कोई दिन नहीं आएगा, जिस दिन हम अज्ञान को विज्ञान से मिटा पाएंगे। क्योंकि जिस चीज को भी हम तोड़ कर जानेंगे, जो टूट कर बचेगा, उसे फिर जानना पड़ेगा लेकिन अज्ञान सदा ही शेष रह जाएगा।

विज्ञान अब इसको अनुभव करता है कि अज्ञान सदा ही शेष रह जाएगा। हम कितना ही जान लें, लेकिन वह जो अनजाना है, वह सदा हमें घेरे रहेगा। और हमारे और अज्ञान के बीच का फासला सदा बराबर रहेगा, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। पहले मैं पानी को नहीं जानता हूं, तो पानी का अज्ञान मुझे घेरे हुए है। फिर मैं पानी को जान लेता हूं, तो पानी तो समाप्त हो गया, हाइड्रोजन और आक्सीजन का अज्ञान मुझे घेर लेता है। हाइड्रोजन-आक्सीजन को जान लेता हूं, तो इलेक्ट्रॉन का अज्ञान मुझे घेर लेता है। कल इलेक्ट्रान भी जान लिया जाएगा, तब जो शेष रह जाएगा वह मुझे घेर लेगा, और यह अंतहीन है।

एक तो ज्ञान का यह प्रयास है जगत में, तोड़कर जानना। लेकिन टूट कर सदा कुछ शेष रह जाएगा। जब भी हम किसी चीज को तोडेंगे, तो कुछ शेष रह जाएगा। एक और मजे की बात है, पानी का अज्ञान था, तोड़ा तो दो चीजों का अज्ञान हो गया--हाइड्रोजन और आक्सीजन का। एक का अज्ञान एक कदम हटता हुआ मालूम पड़ा, लेकिन एक कदम बढ़ भी गया। क्योंकि तब हम एक चीज को नहीं जानते थे, अब हम दो चीजों को नहीं जानते।

तोड़ने की प्रक्रिया एक अर्थ में अज्ञान को तोड़ती हुई मालूम पड़ती है, दूसरे अर्थ में बढ़ाती हुई मालूम पड़ती है। यह मजे की बात है कि विज्ञान ने जितना जाना है, उतना ही हमारा अज्ञान बड़ा भी हो गया है। ऐसा समझें, पुराने वैज्ञानिक पांच तत्वों की बात करते थे। तो पांच तत्वों का ही अज्ञान था। विज्ञान अब एक सौ आठ तत्वों की बात करता है, तो एक सौ आठ तत्वों का अज्ञान है। पांच को तोड़-तोड़ कर एक सौ आठ हमने बना लिए। अब हम एक सौ आठ को नहीं जानते। एक सौ आठ को तोड़ेंगे, तो हजार हो जाने वाले हैं।

तो वैज्ञानिक यह भी कहने लगे हैं कि हम अज्ञान को घटा रहे हैं या बढ़ा रहे हैं? टूटने की प्रक्रिया से अज्ञान पीछे हटता मालूम पड़ता है, लेकिन बढ़ता हुआ भी मालूम पड़ता है।

यह मजे की बात है कि आज का आदमी जितना जानता है, इतना कभी का आदमी नहीं जानता था, लेकिन आज का अदमी जितना अज्ञान का अनुभव करता है, इतना कभी किसी आदमी ने अनुभव नहीं किया। अगर हम सौ वर्ष पीछे के वैज्ञानिक से पूछें, तो वह बहुत आश्वस्त था। कहता था, यह मैं जानता हूं; और सौ वर्ष पीछे के वैज्ञानिक यह भरोसा थ कि सौ वर्ष में दुनिया का सारा अज्ञान मिट जाएगा। आज के वैज्ञानिक से पूछें, उसे बिल्कुल भरोसा नहीं कि अज्ञान कभी भी मिटेगा। और उसे अब यह भी भरोसा नहीं है कि जिसे वह कहता

है मैं जानता हूं, उसे जानता भी हूं? क्योंकि एक बात और साफ हो गई है--सब भरोसे दो-चार साल में टूट जाते हैं। न्यूटन आज अज्ञानी है। आइंस्टीन के ज्ञान की ईंटें भी गिरनी शुरू हो गयीं।

वैज्ञानिक कोई बड़ा ग्रंथ नहीं लिख सकते हैं विज्ञान के संबंध में। क्योंकि जब तक बड़ा ग्रंथ लिखा जाए, तब तक विज्ञान की अनेक आधारशिलाएं बदल जाती हैं। जो कल ज्ञान मालूम होता था, वह आज अज्ञान हो जाता है। और ज्ञान की इतनी शाखाएं होती चली जाती हैं कि अगर एक दिन एक आदमी था तो वह चिकित्सा कर लेता था पूरे आदमी के शरीर की। एक वैद्य था गांव में, आज से हजार साल पहले, तो वह सभी बीमारियों का जानकार था। फिर हमारी जानकारी बढ़ी, तो हमने पाया कि आंख तो खुद ही इतनी बड़ी चीज है कि एक आदमी अपना पूरा जीवन लगाए तो आंख के संबंध में ही नहीं जान पाएगा। कान तो इतनी बड़ी चीज है कि एक आदमी अपना पूरा जीवन समर्पित करे तो कान के संबंध में जितना साहित्य है, वह नहीं पढ़ पाएगा। तो एक ही आदमी पूरे शरीर की चिकित्सा कैसे कर सकता है?

तो फिर आंख का डाक्टर हमें अलग कर देना पड़ा। फिर शरीर के एक-एक हिस्से के डाक्टर होते चले गए। अब एक एक हिस्से में भी हिस्से करने करने की नौबत आ गई है। तो आज कोई भी डाक्टर आदमी के पूरे शरीर का डाक्टर नहीं है। या जो है उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है। उसे लोग समझते हैं कि वह पुराने दिन का डाक्टर है। उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है। यह स्वाभाविक है। यह होना था। क्योंकि ज्ञान को जब हम खंड-खंड बांटते हैं, एक-एक खंड अपना विस्तर लेने लगता है।

और अंततः... पश्चिम के एक बहत बड़े विचारक सी.पी. स्नो ने अभी कुछ समय पहले एक बहत क्रांतिकारी किताब लिखी है, जिसमें उन्होंने कहा है कि दो संस्कृतियां हो गई हैं अब। विज्ञान को जानने वाले लोग अलग ही जाति के हो गए हैं। जो नहीं जानते है, वह अलग जाति के हो गए हैं। लेकिन ठीक होगा यह कहना कि विज्ञान को जानने वाले लोगों के भीतर भी बहुत जातियां हैं। उसमें भी एक जाति दूसरी जाति को बिल्कुल नहीं समझती है। आज भैतिकविद क्या कहता है, यह रसायनविद बिल्कुल नहीं समझता है। रसायनविद की अपनी भाषा है, अपना जगत है। भौतिकविद की अपनी भाषा है, अपना जगत है। और फिजिक्स और केमेस्ट्री कहां मेल खाते हैं, इसका कुछ पता नहीं चलता। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी तीन सौ साठ विज्ञानों में प्रशिक्षण देती है। और वे तीन सौ साठ विज्ञान की जो शाखाएं हैं, वे भी रोज नई शाखाओं में विभाजित होती जाती हैं। जैसे कोई वृक्ष रोज बड़ा होता जाता है और नई शाखाएं निकलती जाती हैं, एक शाखा दो शाखाओं में बंटती चली जाती है। और विज्ञान की एक शाखा पर जो आदमी बैठा हुआ है, उसे बाकी विज्ञान के वृक्ष का कोई भी पता नहीं हैं।

इस बात का डर पैदा हुआ है कि अगर सौ वर्ष ऐसा ही हुआ, तो वैज्ञानिक एक-दूसरे से बात करने में बिल्कुल असमर्थ हो जाएंगे। क्योंकि सबकी अपनी भाषा होती जा रही है। दो विज्ञान की शाखाएं कोई तालमेल नहीं बिठा पाएंगी कि उनके चिंतक क्या सोचते हैं? और आज तो एक भी आदमी ऐसा जगत में नहीं है जो यह कह सके कि वह पूरे विज्ञान का जानकार है। जो कह सके कि मैं फिजिक्स को भी समझता हूं, केमेस्ट्री को भी समझता हूं, मनोविज्ञान को भी समझता हूं, ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है। इसलिए कुछ पता ही नहीं चलता कि क्या हो रहा है। जानकारी कितनी बढ़ रही है, कहां जा रही है, किसी को कुछ पता नहीं है।

और आज का आदमी गहन अज्ञान में खड़ा हो गया है। एक आदमी जो आंख के संबंध में सब कुछ जानता है, उसे और चीजों के संबंध में कुछ भी पता नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि एक दिशा में उसे ज्ञान है,

लेकिन बाकी दिशाओं में अज्ञान हो गया। एक बड़े से बड़ा वैज्ञानिक अपनी दिशा के संबंध में बहुत कुछ जानता है, लेकिन बाकी सारी दिशाओं के संबंध में अंधकार हो गया है। उसे और कुछ भी पता नहीं है।

ज्ञान की एक दिशा थी, जो असफल हो गई।

एक दूसरे ज्ञान की दिशा है, जिसको ब्रह्मविद्या कहा है। ब्रह्मविद्या का प्रयोग बिल्कुल अन्यथा है। विज्ञान का प्रयोग है, चीजों को तोड़कर जानना। ब्रह्मविद्या का प्रयोग है, चीजों को उनकी समग्रता में, जोड़ में जानना। ब्रह्म का अर्थ है, इस सारे अस्तित्व का जो जोड़ है--समग्र--उसको सीधा ही जानना, बिना तोड़े। उसको अलग-अलग खंडों में बांट कर नहीं जानना; उसकी समग्रता में, उसके अंतर्संबंधों में, उसकी इकाई में, उसकी एकता में जानना। यह अस्तित्व पूरा का पूरा सीधा जाना जा सके। वृक्ष को मैं अलग से जानने न जाऊं; पशुओं को अलग से पहचानने न जाऊं; आदमी को अलग से खोजने न जाऊं, पत्थर और पहाड़ और चांद और तारे, इनको अलग-अलग बांटूं नहीं, यह जो सारा अस्तित्व का इकट्ठा जोड़ है, इस जोड़ को ही सीधा जानने की कोशिश में लगूं, उस कोशिश का नाम ब्रह्मविद्या है।

अब यह मजे की बात है कि विज्ञान अज्ञान को थोड़ा हटा पाता है, बढ़ा भी जाता है। ब्रह्मविद्या अज्ञान को हटाती नहीं पीछे, विसर्जित करती है। ब्रह्मविद्या अज्ञान के साथ संघर्ष नहीं है, बल्कि ज्ञान का जागरण है। ब्रह्मविद्या अज्ञान को धक्के नहीं देती, ज्ञान को जगाती है।

यह भी समझने जैसा है कि विज्ञान जब चीजों को तोड़ता है, तो भीतर मनुष्य के मन को भी तोड़ता है। इसीलिए स्पेशलाइजेशन पैदा होता है। जो आदमी पदार्थ के संबंध मे खोज करता है, उसके मन का एक ही हिस्सा विकसित हो पाता है--वह हिस्सा जो पदार्थ के संबंध में खोज में लगता है। वैज्ञानिक यह कहते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क के सब हिस्से अलग-अलग काम करते हैं। जिस हिस्से से आप प्रेम करते हैं, उस हिस्से से आप गणित नहीं करते। और जिस हिस्से से आप गणित करते हैं, उस हिस्से से आप खेती-बाड़ी नहीं करते। और जिस हिस्से से आप दुकान चलाते हैं, उससे आप पेंटिंग नहीं करते, चित्र नहीं बनाते, कविता नहीं लिखते।

मनुष्य का मन कोई सात करोड़ कोशों से निर्मित है। और मन के अलग-अलग हिस्से अलग-अलग काम करते हैं। इसलिए काम बदलने में रिलैक्सेशन भी हो जाता है। एक आदमी किताब पढ़ रहा है, किताब पढ़ना छोड़कर उसने रेडियो सुनना शुरू कर दिया। अगर मन इकट्ठा काम करे तो किताब पढ़ने में जो मन लगा था वही रेडीयो सुनने मे लगे, तो थकान और बढ़गी, घटेगी नहीं। लेकिन मन का एक कोना किताब पढ़ता है, दूसरा कोना रेडियो सुनता है, इसलिए जब आप किताब पढ़ना बंद कर देते हैं, रेडियो खोल लेते हैं, तो आपके मन को विश्राम मिल जाता है। वह जो हिस्सा काम कर रहा था किताब पर वह विश्राम कर लेता है। काम बदलना विश्राम का ढंग है। जब आप एक काम से दूसरा काम करते हैं, तत्काल मन को विश्राम हो जाता है। वह हिस्सा शांत हो जाता है जिसको काम करना पड़ा था, दूसरा हिस्सा काम में लग जाता है।

और आमतौर से यह होता है कि जो लोग सब काम करके बंद करके बैठते हैं, जैसे कोई आदमी ध्यान करने बैठता है, तो मुश्किल में पड़ जाता है। मुश्किल में इसलिए पड़ जाता है कि उसकी जो निश्चित एनर्जी प्रतिपल काम करती है वह एक कोने में काम करती है, अगर दूसरे कोने मे काम करने लगे, तो एक कोना आराम कर लेता है। अगर वह सब कोनों को विश्राम देना चाहे तो वह जो शक्ति उसकी काम करती है, वह भटकती है और विश्राम मुश्किल हो जाता है। इसलिए ध्यान में लोगों को कठिनाई होती है।

लोग ध्यान के लिए बैठते हैं तो कहते हैं, ना मालूम कहां-कहां के खयाल आते हैं, इतने खयाल तो अगर हम जमीन में गड्ढा भी खोदने लगें तो नहीं आते। कोई भी ताश खेलने लगें तो नहीं आते। सिगरेट पीने लगें, तो

नहीं आते। यह जब ध्यान के लिए बैठते हैं, तो मन ना मालूम कितने विचारों से भर जाता है। उसका कुल कारण इतना है कि आपने अपनी पूरी शक्ति को विश्राम देने का कभी कोई अभ्यास नहीं किया है। एक कोने में काम को हटाकर दूसरे कोने में सदा लगा दिया है। लेकिन शक्ति काम में लगी रहती है। एक कोने से दूसरे, दूसरे से तीसरे, और मन के हजार खंड हैं।

विज्ञान जब बाहर चीजों को बांटता है, तो भीतर मन को भी बांट देता है। तो वैज्ञानिक के मन का एक हिस्सा तो विकसित हो जाता है, शेष हिस्से अविकसित रह जाते हैं। ब्रह्मविद्या में यहां फिर फर्क है। ब्रह्मविद्या अस्तित्व को बांटती नहीं, इसलिए मन को भी नहीं बांटती। अस्तित्व बाहर एक है, यह जानने वाला भी भीतर एक हो जाता है। जब हम पूरे अस्तित्व को एक मानकर चलते हैं, तो भीतर हमारा मन भी एक हो जाता है। और इस मन की इकाई में ही वह ज्ञान का जन्म होता है, जिससे अज्ञान पीछे नहीं हटता, समाप्त हो जाता है। निश्चित ही यह ज्ञान और तरह का होगा।

अगर आप महावीर से, या बुद्ध से, या उपनिषद के ऋषि से जाकर पूछें कि मेरे दांत में दर्द है तो कौन सी दवाई का मैं उपयोग करूं, तो महावीर, या बुद्ध, या उपनिषद का ऋषि आपका जवाब नहीं दे पाएगा। क्योंकि दांत के दर्द का मतलब हुआ, दर्द को हमने बांट लिया। दांत का दर्द है, सिर का दर्द है, पैर का दर्द है, दर्द भी हमने बांट लिए।

हां, अगर आप महावीर से पूछें कि मैं दर्द में हूं, क्या करूं, तो महावीर उत्तर दे सकते हैं। अगर आप कहें मैं दुख में हूं और महावीर से पूछें तो महावीर उत्तर दे सकते हैं। लेकिन आप कहें मेरा पेट दुखता है, तो महावीर उत्तर नहीं दे सकते। तब आपको वैज्ञानिक के पास ही जाना चाहिए। जहां सब चीजें बंटकर चलती हैं।

महावीर या बुद्ध के पास सब चीजें अनबंटी, अविभाज्य हैं। आप पूछें कि दुख कैसे मिटे, विशेष दुख की बात न पूछें, तो महावीर बता सकेंगे कि दुख ऐसे मिटे। आप अगर पूछें कि यह यह बीमारी कैसे मिटे, तो महावीर न बता सकेंगे। लेकिन आप यह पूछें कि यह जीवन का रोग ही कैसे विलीन हो जाए, तो महावीर बता सकेंगे।

बुद्ध ने स्वयं को वैद्य कहा है। बुद्ध ने कहा है, मै वैद्य हूं, लेकिन बीमारियों का नहीं, बीमारी का। और यह सारा जीवन एक दुख है अगर, तो मैं वैद्य हूं। बुद्ध एक-एक पत्ते वाली बीमारी को काटने नहीं जा सकते हैं, लेकिन बीमारी की पूरी जड़ को काटने के लिए तैयार हैं। उनका जो जानना है, वह समग्रीभूत है, इकट्ठा है। उन्होने जो भी जाना है अस्तित्व के बाबत, स्वयं के बाबत, वह तोड़ कर नहीं जाना है, इकट्ठा ही जाना है।

इसलिए यह मजे की बात है कि वैज्ञानिक आपके दर्द मिटने की आपको सलाह दे सकता है, लेकिन स्वयं दर्द के पार कभी नहीं जा पाता। आपको हजार दुखों को मिटाने की सहायता पहुंचाता है, लेकिन खुद हजार तरह के दुखों में घिरा रहता है। महावीर या बुद्ध आपके किसी भी एक दुख को मिटाने का उपाय नहीं बता सकते, लेकिन दुख के बाहर हो जाते हैं। आपको भी दुख के बाहर हो जाने का उपाय बताते हैं।

तो ब्रह्मविद्या का अर्थ है, ब्रह्म को, ब्रह्मांड को, अस्तित्व को एक इकाई मान कर जानने का प्रयास। और जब अस्तित्व को कोई इकाई मान कर जानने चलता है, तो स्वयं के भीतर भी एकता निर्मित हो जाती है, सारा मन इकट्ठा हो जाता है। और यह मन का इकट्ठा होना ही शांति है। यह मन का इकट्ठा हो जाना ही मौन है। यह मन का इकट्ठा हो जाना ही भीतर से समस्त तरंगों और लहरों का समाप्त हो जाना है।

"ब्रह्मविद्या की जिज्ञासा से अश्वलायन ब्रह्मा के पास शिष्य-भाव से समिधा लेकर नम्रतापूर्वक गए।"

दो-तीन बातें इसमें खयाल ले लेनी चाहिए।"ब्रह्मविद्या की जिज्ञासा से महर्षि अश्वलायन ब्रह्मा के पास शिष्य-भाव से समिधा लेकर विनम्रता से गए।"

महर्षि हैं वे, लेकिन ब्रह्मविद्या की जिज्ञासा है। महा ऋषि हैं--ब्रह्मविद्या की जिज्ञासा है। तो अर्थ हुआ कि महर्षि होने से कोई ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध नहीं होता। महर्षि का तब अर्थ हुआ कि जानते हैं; वे सब, बिना जाने। शब्दों से उन्हें सब पता है; शस्त्रों ने जो कहा है, उन्हें ज्ञात है; सिद्धांत से वे परिचित हैं; इसलिए महर्षि हैं। पांडित्य उनके पास है, लेकिन ज्ञान उनके पास नहीं है।

तो पंडित होना एक बात है। आप जान सकते हैं सब कुछ, लेकिन होगा उधार, अपना नहीं। महर्षि भी हो सकते हैं और अज्ञानी भी रह सकते हैं, जहां तक ब्रह्मज्ञान का संबंध है। पांडित्य हो सकता है और प्रज्ञा न जगे। दुसरों ने जो जाना है, उससे आपका परिचय गहन हो जाए, लेकिन स्वयं की कोई अपनी प्रतीति और अनुभूति न हो, तो फिर महर्षि को भी शिष्य-भाव से ही पहुंचना पड़ेगा।

शिष्य-भाव का क्या अर्थ होता है? शिष्य-भाव का अर्थ होता है कि मैं नहीं जानता हूं, आप मुझे जनाएं। शिष्य-भाव का मतलब क्या होता है? इसलिए पंडित को अत्यंत कठिनाई हो जाती है। वह गुरु-भाव से तो कहीं भी जा सकता है, शिष्य-भाव से जाना बहुत मुश्किल हो जाता है। वह स्वयं ही जानता है, तो शिष्य-भाव से कैसे जाए?

और जिस दिन कोई महर्षि होकर भी शिष्य-भाव से जा सकता है जानने, उस दिन उसे एक बात का स्पष्ट साक्षात्कार हो गया कि जो मैने जाना है, वह जानना बौद्धिक है, अस्तित्वगत नहीं है। मैंने ऐसा अपनी तरफ से पहचाना नहीं, सुना है; स्मृति है मेरी। एक बाहर से परिचय हुआ है मुझे, लेकिन अंतःप्रवेश नहीं हुआ है। इसलिए पंडित को ज्ञान की तरफ जाना बहुत कठिन हो जाता है। कठिन इसलिए हो जाता है कि शिष्य-भाव मुश्किल हो जाता है। शिष्य-भाव का अर्थ है, यह जानकर जाना कि मैं नहीं जानता हूं। मैं अज्ञानी हूं। तभी शिष्य-भाव।

समिधा प्रतीक थी। समिधा लेकर जाने का अर्थ था कि व्यक्ति घोषणा करता आ रहा है कि मैं अज्ञानी हूं और जानने को आया हूं। वह प्रतीक है। वह प्रतीक है इस बात की कि मुझे कहने की जरूरत नहीं, आपको समझाने की जरूरत नहीं, मैं अज्ञानी की तरह आपके चरणों में आया हूं।

लेकिन अज्ञानी की तरह चरणों में जाना सिर्फ प्रतीक नहीं है, बड़ी गहन आत्मिक-स्थिति है। अज्ञानी की तरह आने का अर्थ है, मैं जिज्ञासा करूंगा उस संबंध में जिस संबंध में मैं नहीं जानता हूं। जब आप ज्ञानी की तरह कहीं जाते हैं तो आप जिज्ञासा उस संबंध में करते हैं जिस संबंध में आप जानते हैं। लोग प्रश्न पूछते हैं--इसलिए नहीं कि उनको पता नहीं है, बल्कि इसलिए कि उनको पता है। तो वह जांच कर रहे हैं कि आपको भी पता है या नहीं। और आपको जो पता है, वह उनके ज्ञान से मेल खाए तो ही ठीक हो सकता है। अगर मेल न खाए, तो गलत होगा। तो शिष्य-भाव वहां नहीं है। जब भी कोई व्यक्ती इस खयाल से कहीं पूछने जाता है कि जानता तो मैं हूं ही, देखूं तुम भी जानते हो या नहीं, तो जिज्ञासा नहीं होती, सिर्फ विवाद की एक तैयारी होती है। फिर संवाद घटित नहीं होता।

बुद्ध के पास जब पहली दफा महाकाश्यप गया, तो महाकाश्यप बड़ा पंडित था। तो बुद्ध से उसने कहा कि मैं कुछ जिज्ञासाएं लेकर आया हूं। बुद्ध ने पूछा कि जिज्ञासाएं तुम्हारे ज्ञान से उठती हैं या तुम्हारे अज्ञान से? तुम इसलिए पूछते हो कि कुछ जानते हो, या इसलिए पूछते हो कि कुछ नहीं जानते? महाकाश्यप ने कहा, इससे आपको क्या प्रयोजन? बुद्ध ने कहा, इससे मुझे प्रयोजन है क्योंकि तुम किस भाव से पूछते हो, वह भाव मेरे

ध्यान में न हो तो मेरे उत्तर का कोई अर्थ न होगा। अगर तुम जान कर ही पूछने आए हो, तो व्यर्थ समय को व्यय मत करो। तुम जानते ही हो, बात समाप्त हो गई। अगर तुम न जानते हुए आए हो, तो मैं तुमसे कुछ कहूं।

महाकाश्यप ने कहा कि मेरी स्थिति थोड़ी बीच-बीच की है। थोड़ा जानता भी हूं, थोड़ा नहीं भी जानता हूं। तो बुद्ध ने कहा कि उसमें हिस्से कर लो। जो तुम नहीं जानते हो पूरा, उस संबंध में ही हम चर्चा शुरू करें। जो तुम जानते हो, उसे छोड़ें।

महाकाश्यप ने जो नहीं जानता था पूछना शुरू किया और धीरे-धीरे, जैसे-जैसे पूछता गया, उसे पता चलता गया कि जो वह जानता है, वह भी नहीं जानता है। एक वर्ष निरंतर बुद्ध के पास रह कर उसने बहुत कुछ जिज्ञासाएं कीं, सब उसकी जिज्ञासाएं शांत हो गईं। तब बुद्ध ने उससे कहा कि अब मैं तुम्हारे उस संबंध में थोड़ा जानना चाहता हूं, जो तुम जानते हो। महाकाश्यप ने कहा, मैं कुछ भी नहीं जानता था। जैसे-जैसे मुझे पता चला, वैसे-वैसे मेरा जानना बिखरता गया। मैं कुछ भी नही जानता था।

गुरजिएफ के पास जब पहली दफा आस्पेंस्की गया तो गुरजिएफ न उससे कहा, एक कागज पर लिख लाओ तुम जो भी जानते हो, ताकि उसे मैं सम्हाल कर रख लूं, उस संबंध में कभी चर्चा न करेंगे। क्योंकि जो तुम जानते ही हो, जानते ही हो; बात समाप्त हो गई। आस्पेंस्की को कागज दिया। आस्पेंस्की बड़ा पंडित था। ठीक महाकाश्यप जैसा पंडित था और गुजरिएफ से मिलने के पहले एक बहुत किमती किताब टर्शियम आर्गनम लिख चुका था। जो कही जाती है--और मुझे भी लगता है कि है--पश्चिम के इतिहास में लिखी गई तीन किताबों में एक महत्वपूर्ण किताब है। वह गुरजिएफ से मिलने के पहले लिख चुका था। और गुरजिएफ को तो कोई जानता भी नहीं था, एक अनजान फकीर था।

और जब गुरजिएफ के पास आस्पेंस्की गया, तो एक ज्ञाता की तरह गया था। आस्पेंस्की जगत विख्यात आदमी था। गुरजिएफ को कोई जानता भी नहीं था। किसी मित्र ने कहा था गांव में, फुरसत थी, आस्पेंस्की ने सोचा कि चलो मिल लें। जब मिलने गया तो गुरजिएफ कोई बीस मित्रों के साथ चुपचाप बैठा हुआ था। आस्पेंस्की भी थोड़ी देर बैठा, फिर घबड़ाया। न तो किसी ने परिचय कराया उसका कि कौन है, न गुरजिएफ ने पूछा कि कैसे आए हो। बाकी जो बीस लोग थे, वे भी चुपचाप बैठे थे तो चुपचाप ही बैठे रहे। पांच-सात मिनट के बाद बैचैनी बहुत आस्पेंस्की की बढ़ गई। न वहां से उठ सके, न कुछ बोल सके।

आखिर हिम्मत जुटा कर उसने कोई बीस मिनट तक तो बरदाश्त किया, फिर उसने गुरजिएफ से कहा कि माफ करिए, यह क्या हो रहा है? आप मुझसे यह भी नहीं पूछते कि मै कौन हूं? गुरजिएफ ने आंखें उठा कर आस्पेंस्की की तरफ देखा और कहा, तुमने खुद कभी अपने से पूछा है कि मैं कौन हूं? और जब तुमने ही नहीं पूछा, तो मुझे क्यों कष्ट देते हो? या तुम्हें अगर पता हो कि तुम कौन हो, तो बोलो। तो आस्पेंस्की को नीचे से जमीन खिसकती मालूम पड़ी। अब तक तो सोचा था कि पता है कि मैं कौन हूं। सब तरफ से सोचा, कहीं कुछ पता न चला कि मैं कौन हूं।

तो गुरजिएफ ने कहा, बेचैनी में मत प.ड़ो, कुछ और जानते हो, उस संबंध में ही कहो। नहीं कुछ सूझा तो गुरजिएफ ने एक कागज उठा कर दिया और कहा, हो सकता है संकोच होता हो, पास के कमरे में चले जाओ, इस कागज पर लिख लाओ जो-जो जानते हो। उस संबंध में फिर हम बात न करेंगे। और जो नही जानते हो, उस संबंध में कुछ बात करेंगे।

आस्पेंस्की कमरे में गया। उसने लिखा है, सर्द रात थी, लेकिन पसीना मेरे माथे से बहना शुरू हो गया। पहली दफा मैं पसीने-पसीने हो गया। पहली दफे मुझो पता चला कि जानता तो मै कुछ भी नहीं हूं। यद्यपि मैंने

ईश्वर के संबंध में लिखा है, आत्मा के संबंध में लिखा है, लेकिन न तो मैं आत्मा को जानता हूं, न मैं ईश्वर को जानता हूं। वे सब शब्द मेरी आंखों में घूमने लगे। मेरी ही किताबें मेरे चारों तरफ चक्कर काटने लगीं। और मेरी ही किताबें मेरा मखौल उड़ाने लगीं, और मेरे ही शब्द मुझसे कहने लगे--आस्पेंस्की, जानते क्या हो?

और तब उसने वह कोरा कागज ही लाकर गुरजिएफ के चरणों में रख दिया और कहा, मैं बिल्कुल कोरा हूं, जानता कुछ नहीं हूं, अब जिज्ञासा लेकर उपस्थित हुआ हूं। वह जो कोरा कागज था, वह आस्पेंस्की की समिधा थी--वापस उसके चरणों में रख देना। समिधा प्रतीक है।

इस मुल्क ने तो हजारों आस्पेंस्की और हजारों महाकाश्यप देखे हैं। फिर हमने प्रतीक बना लिया था कि जब भी कोई पूरे विनम्र भाव से... विनम्र भाव का अर्थ है, पूरे अज्ञान के बोध से किसी के पास सीखने जाए, तो समिधा लेकर जाए। समिधा प्रतीक थी। चर्चा की जरूरत नहीं होगी। यह जो दो घंटे आस्पेंस्की और गुरजिएफ के बीच व्यतीत हुए, यह व्यतीत नहीं होंगे। समिधा लेकर आया हुआ व्यक्ति कहता हुआ आ रहा है कि मैं अज्ञानी हूं; मुझे पता नहीं; मैं अपने ज्ञान से नहीं पूछूंगा; अपने अज्ञान से पूछूंगा। मैं उत्तर की जिज्ञासा लेकर आया हूं। मैं शिष्य की तरह सीखने आया हूं। मुझे सिखाने का कोई भाव नहीं है। कुछ जांच-पड़ताल नहीं करनी है। कोई आपकी परीक्षा नहीं लेनी है। मैं नहीं जानता हूं।

"नम्रतापूर्वक अश्वलायन ने कहाः हे भगवान! मुझे ब्रह्मविद्या का, जो कि सदा ही गोपनीय है, अत्यंत श्रेष्ठ मार्ग बताइए।"

ब्रह्मविद्या के संबंध में मैंने कहा--अस्तित्व को उसकी समग्रता में जानने की कला। लेकिन अश्वलायन कहते हैं, जो सदा ही गोपनीय है। यह बहुत मजेदार बात है। क्योंकि कोई चीज सदा ही गोपनीय कैसे हो सकती है। कभी तो बताई जाती होगी। नहीं तो यह भी कैसे पता चलेगा कि वह है? और यह भी कैसे पता चलेगा कि वह गोपनीय है? जिसको हम गोपनीय कहते हैं, वह भी बताया तो जाता ही है। अगर मैं किसी के कान में भी कुछ कहता हूं, तो भी बताता तो हूं ही। और अगर यह भी कहता हूं कि गोपनीय है, तो इतना ही कहता हूं कि किसी को बताना मत। लेकिन बताया तो गया ही है। बताया तो जाता ही है। वह जो ब्रह्मविद्या है, वह भी तो बार-बार बताई गई है, बार-बार बताई जाती है। लेकिन अश्वलायन कहते हैं, कि वह जो सदा ही गोपनीय है। जिसे बता भी देते हैं, तो भी गोपनीय बनी रह जाती है।

यह बात थोड़ी समझने की है। क्योंकि अश्वलायन को सब कुछ पता है, जो भी कभी बताया गया है, वह महर्षि हैं, उन्हें मालूम है; लेकिन उस मालूम होने से भी तो मालूम नहीं हुआ। सब मालूम है, फिर भी अज्ञान तो शेष ही रह गया। तो अश्वलायन को यह बात स्पष्ट खयाल में आ गई होगी कि बता भी जो दिया जाता है, उससे भी वह बात पता तो नहीं चलती। सब शास्त्रों में उसे कहा है; सब मुनियों ने, ऋषियों ने उसे कहा है; सब जानने वालों ने उसे कहा है; फिर भी वह अनकहा रह जाता है। वह जिसे कहने की कोशिश की जाती है, वह छूट ही जाता है पीछे। और जो कहा जाता है, वह कुछ और ही हो जाता है। जैसे हम लकड़ी को पानी में डालें और डालते से ही वह तिरछी दिखाई पड़ने लगती है; होती नहीं, लेकिन तिरछी दिखाई पड़ने लगती है। ऐसे ही सत्य को शब्द में डाला कि वह तिरछा हो जाता है। शब्द के माध्यम में पड़ते ही तिरछा हो जाता है। और शब्द के अतिरिक्त कहने का कोई उपाय भी तो नहीं है।

तो कहते हैं जरूर, फिर भी छूट जाता है। कुछ छूट जाता है। और जो छूट जाता है, वही सदा गोपनीय है। यहां गोपनीय का अर्थ नहीं है कि जिसे गुप्त रखना है। यहां गोपनीय का अर्थ है, जो गुप्त रह जाता है। यहां गोपनीय का अर्थ यह नहीं है कि इसे बताना मत। यहां गोपनीय का अर्थ है, जो बताया ही नहीं जा सकता है।

बताना, जितना बन सकें बताना, लेकिन जो पीछे रह जाए, वही ब्रह्माविद्या है। जो छूट जाए, जो न बताया जा सके। तब तो बड़ी कठिनाई है। क्योंकि अगर बताया ही न जा सके, तो फिर अश्वलायन पूछ भी लें और ब्रह्मा बता भी दें, तो भी कहां बताया जा सकेगा?

यहां दूसरी बात खयाल में ले लेनी जरूरी है।

शब्द से जो नहीं बताया जा सकता, वह किन्हीं और इशारों से, किन्हीं और रास्तों से इंगित किया जा सकता है। शब्द बहुत ही कमजोर माध्यम हैं। बहुत कमजोर माध्यम हैं।

कोई सारीपुत्त से पूछा है कि बुद्ध के पास तुमने कैसे सीखा? तो सारीपुत्त ने कहा कि जो बुद्ध कहते हैं, वह सुना, लेकिन उससे सीखा नहीं। जो बुद्ध हैं, उसे सुना नहीं, लेकिन उससे सीखा। जो बुद्ध कहते हैं, वह एक बात है। जो बुद्ध स्वयं हैं, वह बिल्कुल दूसरी बात है। तो बुद्ध ने जो-जो कहा है, वह सुना है; लेकिन बुद्ध जो-जो हैं, उसको उनके पास रह कर पीया है, जीया है, उनकी उपस्थिति को, उनकी मौजूदगी को स्पर्श होने दिया है, भीतर प्रवेश करने दिया है। वह जो गुह्य है, वह जो गोपनीय है, वह उपस्थिति से उपलब्ध होता है। लेकिन उस उपस्थिति को उपलब्ध करने के लिए, उस उपस्थिति को पी जाने के लिए ह्नदय के द्वार खुले होने चाहिए। बुद्ध आपके पास भी हों और आपके ह्नदय के द्वार बंद हों, तो पास नहीं हैं। और बुद्ध कितने ही दूर हों--स्थान में या काल में--लेकिन आपके ह्नदय के द्वार खुले हों तो पास हैं।

ह्वेनसांग जब भारत आया, तो उसने चीन में एक भारतीय मंदिर की कथा सुन रखी थी। बहुत कारणों से भारत आया था, उसमें वह एक मंदिर भी था। उसने सुन रख था कि कश्मीर की किसी घाटी में छिपा हुआ बुद्ध का एक मंदिर है, जहां बुद्ध की कोई प्रतिमा नहीं है। और जहां बुद्ध का कोई अवशेष नहीं है। जहां बुद्ध की कोई किताब नहीं है, कोई शास्त्र नहीं है। जहां बुद्ध का कोई भिक्षु नहीं है, कोई पुरोहित नहीं है। वह मंदिर एक गुफा में छिपी हुई एक सफेद दीवाल मात्र है। लेकिन उस दीवाल के पास जो परम विनम्रता से बैठ जाता है और प्रतीक्षा करता है, तो बुद्ध उस दीवाल पर प्रकट हो जाते हैं। ह्वेनसांग बहुत कारणों से आया था। उसमें एक वह दीवाल भी थी। क्योंकि बुद्ध को बीते तो बहुत समय हो चुका था।

महर्षि तो ह्वेनसांग भी था। कहते हैं, चीन में उस समय वह बुद्ध-शास्त्र का जाननेवाला सबसे बड़ा पंडित था। चीन के सम्राट ने उसे आने की मनाही कर दी थी, क्योंकि वह इतना कीमती पंडित था कि चीन से बाहर जाए, न लोंटे, न लौट पाए, तो चीन की महा हानि होगी। लेकिन ह्वेनसांग की पीड़ा वही थी, जो अश्वलायन की थी कि जानता वह सब था और फिर भी जानता कुछ नहीं था। क्योंकि बुद्ध का कोई संस्पर्श नहीं मिला। कोई भगवत्ता की प्रतीति नहीं हुई। कहीं से किरण प्रवेश नहीं पाई। सिवाय बुद्धि में शब्दों के आंदोलन के और कुछ भी नहीं हुआ। तो चीन से चोरी से ह्वेनसांग भागा।

सम्राट विपरीत था, सम्राट नाराज हो गया तो सम्राट ने सेनाएं लगा दीं कि ह्वेनसांग चीन के बाहर न निकल पाए। तो जान की जोखिम लेकर, कोई साथ देने को तैयार नहीं, चीन की सेनाओं के पहरों को बचाता हुआ, किसी तरह, बामुश्किल--दो बार, तीन बार मरने के निकट पह्ंच गया, पकड़ लिया गया; फिर किसी की दया से, और बुद्ध का उसके लिए जो प्रेम और उसकी प्रार्थना कि मुझे, मुझे पहुंच जाने दो उस देश में जहां बुद्ध चले हैं; जिन रास्तो से वे गुजरे, शायद उन रास्तों पर भी उनकी मौजूदगी की कुछ ध्वनि मौजूद हो; जहां उनके चरण पड़े, उस धूल पर मुझे बैठ जाने दो, लोट जाने दो, शायद उस धूल को उनकी कुछ खबर हो; क्योंकि शास्त्रों में तो मुझे उनकी खबर नहीं मिली; जिन वृक्षों के नीचे वे बैठे, मुझे उन वृक्षों के नीचे सो जाने दो, शायद वृक्ष ने उनकी उपस्थिति को आत्मसात कर लिया हो; तो बुद्ध के चरणों में जहां-जहां बुद्ध चले, उठे, बैठे, वहां

चले जाने दो; उसके भाव को देख कर सैनिकों को भी दया आ गई और उन्होंने उसे छोड़ दिया--दुश्मनों से किसी तरह छूट कर वह चीन के बाहर हुआ, तो तुरफान नाम के एक छोटे से मुल्क में प्रवेश किया, वहां का सम्राट उससे इतना प्रभावित हुआ कि उस सम्राट ने उसके चरण पकड़ लिए, शिष्य हो गया और कहा कि अब तुम्हें यहां से जाने न दूंगा।

तो ह्वेनसांग ने प्रार्थना की है कि हे परमात्मा, किसी तरह शत्रुओं से छूट गया, लेकिन अब मित्र से कैसे छूटूंगा? और उस शिष्य ने कहा कि कुछ भी हो जाए, अब इस महल के बाहर तुम्हें न जाने दूंगा। तुम्हारे बिना अब मैं न जी सकूंगा। ह्वेनसांग ने जिद्द की तो उसने चारों तरफ पहरे लगा दिए। और चरणों में बैठता था, ह्वेनसांग जब चढ़ता था सिंहासन पर बैठने के लिए तो वह नीचे लेट जाता था, सीढ़ी बन जाता था-- उस पर पैर रखकर ही ह्वेनसांग को सिंहासन पर बैठकर प्रवचन करना पड़ता था, ऐसी उसकी विनम्रता थी; लेकिन ऐसा उसका मोह था कि अंत में जब ह्वेनसांग नहीं माना तो उसने कहा कि तुम्हारा यह विनम्र शिष्य कहता है कि चाहे कुछ भी हो जाए, तुम्हें यहां से जाने की आज्ञा नहीं। चार दिन ह्वेनसांग भूखा, बिन पानी पीए, आख बंद किए बैठा रहा। बुद्ध से प्रार्थना करता रहा कि अब मेरे बस के बाहर दिखता है, अब तुम्हीं बुला लो तो कोई रास्ता है।

तुरफान का सम्राट पिघला। ह्वेनसांग भारत आया।

वह उस मंदिर में पहुंचा। अब तो वह मंदिर खो गया; लेकिन ह्वेनसांग उस मंदिर में पहुंचा। उस मंदिर की कथा थी कि वहां जो जाता है, वापस नहीं लौटता। इसलिए लोग वहां जाते नहीं थे। दूर छिपी घाटी में वह मंदिर-मंदिर क्या, सिर्फ एक दीवाल थी। सफेद दिवाल मात्र थी। वर्षों से वहां कोई गया नहीं था। ह्वेनसांग ने कहा कि उस दीवाल के सामने मिट जाऊं, इससे और बड़ा होना क्या हो सकता है। गया, बामुश्किल उसे खोज पाया, क्योंकि कोई रास्ते नहीं थे। जहां वर्षों से कोई न गया हो, वहां की पगडंडियां खो गई थीं। लेकिन वह पहुंच गया।

एक सप्ताह वह वहां था। छाती पीटता है, रोता है, लौटता है और उस दिवार के सामने चिल्लाता है, चीखता है कि प्रकट हो जाओ। फिर उसका गला रुंध जाता है, फिर उसके आंसू भी सूख जाते हैं, फिर उसका रुदन भी नही निकलता। फिर वह बैठा ही रह जाता है और रोता है। भीतर ही रोता है, प्राण रोते हैं, आंसू भी नहीं बहते, आवाज भी नहीं निकलती, लेकिन बस एक ही आशा है कि प्रकट हो जाओ। चौथे दिन सिर्फ ऐसा लगा जैसे एक छोटी सी बदली जैसा आकार दीवाल पर गुजर गया है। फिर उसकी आशा बहुत बढ़ गई। फिर तो वह न रात सोता था न दिन सोता था, पता नहीं कब वह आकार प्रकट हो जाए। और कहीं मैं सोने में न चूक जाऊं।

सातवें दिन बुद्ध का आकार उस दीवार पर प्रकट हुआ। ह्वेनसांग तृप्त हुआ। रूपांतरित हुआ। बदल गया। दूसरा आदमी हो गया। हजारों साल बीत गए बुद्ध को हुए, दीवाल पर बुद्ध की एक छवि का आ जाना--और वह छवि बुद्ध से नहीं आती, ह्वेनसांग के मन से ही आती है--लेकिन इतनी प्यास से, इतने समर्पण से समय का फासला टूट जाता है और ह्वेनसांग अनुभव करता है कि वह बुद्ध के निकट है। हजारों वर्ष गिर जाते हैं। हजारों मील का फासला टूट जाता है। कोई फासला नहीं रह जाता। यह निकटता की प्रतीति कि बुद्ध के निकट हूं, उनकी आकृति के ही निकट हूं, उसको रूपांतरित कर जाती है। जो उसने शास्त्रों से नहीं जाना था, वह इस निकटता से जान लेता है। और दीवाल थी सिर्फ सफेद!

मैं यह कह रहा हूं कि अगर बुद्ध के पास आप हों और आपका हृदय का द्वार न खुला हो, तो आप सफेद दीवाल के पास हैं। और अगर आपके हृदय का द्वार खुला हो तो सफेद दीवाल के पास भी आप बुद्ध के पास हो सकते हैं। जानने की जो गहनतम घटना घटित होती है, वह शब्दों से नहीं, सान्निध्य से।

"अश्वलायन ने कहा है, वह गोपनीय मार्ग मुझे बताइए, जो सदा ही गुप्त है। उस श्रेष्ठ मार्ग पर मुझे ले चलिए, संतजन जिस पर सदा से चलते आए हैं। और जिसके माध्यम से विद्वानों ने अपने पूर्वकृत दोषों को निवृत्त करके परम ब्रह्म को पा लिया है।

"इस पर ब्रह्मा ने कहा उस परम तत्व को प्राप्त करने के लिए श्रध्दा, भक्ति ध्यान और योग का आश्रय चाहिए।"

यह चार शब्द हम थोड़ा समझ लें।

श्रद्धा पहली बात कही। श्रद्धा का क्या अर्थ है? शब्द तो हमारा परिचित है, लेकिन श्रद्धा का सार बिल्कुल परिचित है। श्रद्धा बहुत जटिल घटना है। बहुत जटिल है। जटिल इसलिए कि हमें खयाल भी नही होता है कि श्रद्धा का क्या अर्थ होगा। तो दो-तीन कोनों से हम इसे समझें।

एक, जिसे हम मान सकते हैं, उसे मान लेने में श्रद्धा नहीं है। जिसे हमारी बुद्धि स्वीकार कर सकती है, उसे स्वीकार करने में श्रद्धा नहीं है। जिसे हमारा तर्क समर्थन दे सकता है, उसमें श्रद्धा कर लेने में श्रद्ध नही है। जिसे हमारी बुद्धि मानने को राजी नहीं होती, जिसे हमारा तर्क स्वीकार करने को राजी नहीं होता, जिसे संभव मानना भी असंभव लगता है, उसके लिए राजी हो जाने का नाम श्रद्धा है। असंभव की स्वीकृति श्रद्धा है। इसलिए श्रद्धा कठिनतम दुस्साहस है।

कीर्कगार्ग, सोरेन कीर्कगार्ग से कोई पूछता है कि तुम्हें परमात्मा पर श्रद्धा है इसका कारण? तो सोनेर कीर्कगार्ग ने कहा है, अगर कारण ही मुझे पता होता, तो श्रद्धा की क्या जरूरत थी? अगर कारण ही मुझे पता होता, तो श्रद्धा की क्या जरूरत थी? और परमात्मा न करे कि मुझे कारण पता चल जाए, क्योंकि जिस दिन कारण मुझे पता चल जाएगा उसी दिन श्रद्धा गिर जाएगी। कारण मुझे पता नहीं है और सोरेन कीर्कगार्ग ने कहा, कारण किसी को भी पता नहीं है। लेकिन जब तक आदमी कारण के भीतर जीता है, जब तक बुद्धि के भीतर जीता है। जब अकारण के साथ जुड़ता है, तो श्रद्धा शुरू होती है।

ईश्वर को मानने का कोई भी तो कारण दिखाई नहीं पड़ता। अगर कारण ही खोज रहे है, तो विज्ञान हर चीज के कारण बता देता है। अगर कारण ही खोजने हैं, तो धर्म की कोई भी जरूरत नहीं, दर्शनशास्त्र काफी है। वह सब कारण बता देता है। लेकिन सब कारण ज्ञात हो जाएं, तब भी उन सब कारणों का होना बिल्कुल अकारण मालूम पड़ता है। मैं हूं, यह बिल्कुल अकारण है। मुझे यह भी पता चल जाए कि मेरे पिछले जन्मों के कारण हूं, तो पिछले जन्म का कोई कारण नहीं मिलता। मैं कितना ही पीछे चलता जाऊं, हर पिछले जन्म को कारण बनाता चला जाऊं, तो भी मेरे जन्मों की यह श्रृंखला बिल्कुल अकारण है।

यह वृक्ष क्यों है? पता चल जाए कि बीज बोया गया था; लेकिन बीज? हम सिर्फ कारण को पीछे हटा रहे हैं। फिर बीज किसी वृक्ष में था, और फिर वृक्ष किसी बीज में था और यह श्रृंखला अनंत है। लेकिन यहशृंखला क्यों है? यह बहुत मजे की बात है कि कारण केवल श्रृंखला में ले जाते हैं। जैसा मैंने कहा कि विज्ञान अज्ञान को एक कदम आगे हटाता, है ऐसे ही कारण की खोज अज्ञान को एक कदम पीछे हटाती है। तो कारण मिल जाता है, एक कदम पीछे; फिर वहीं की वहीं बात खड़ी हो जाती है। लेकिन जीवन की समस्तशृंखला बिल्कुल अकारण

है। फिर भी है। जो अकारण है वह भी है। इसके होने के साथ जो प्रेम का संबंध है, उसका नाम श्रद्धा है। जो अकारण है, उसके साथ प्रेम का संबंध श्रद्धा है।

पहला सूत्र श्रद्धा ही का है। धर्म का प्रारंभ ही नहीं होता श्रद्धा के बिना और जहां तक श्रद्धा नहीं होती, वहां तक और सब कुछ हो सकता है, धर्म नहीं होता। इसलिए धर्म इस जगत में सबसे बेबूझ घटना है। और धार्मिक होना इस जगत की आंखों में पागल होने के बराबर है। धार्मिक होना इस जगत की आंखों में पागल होने के बराबर है। इसलिए पागल होने से कम की तैयारी हो, तो काई धार्मिक नहीं हो पाता। श्रद्धा बिल्कुल पागलपन है। श्रद्धा का अर्थ ही यह है, कि हम एक छलांग लेते है। जहां तर्क चुक जाते हैं, हम वहां भी एक छलांग लेते हैं। जहां रास्ता समाप्त हो जाता है, वहां भी हम एक छलांग लेते हैं।

इसे थोड़ा समझें।

तर्क क्रमबद्ध होता है। श्रद्धा छलांग है। तर्क क्रमबद्ध होता है। तर्क पिछली घटना से जुड़ा होता है। तर्क सदा ही पीछे जुड़ा होता है। तर्क कहता है कि कोई चीज क्यों है? कारण खोज लेता है। कारण मिल जाता है। श्रद्धा कहती है, कोई चीज है और क्यों के लिए कोई उत्तर नहीं है, बस है। इसलिए अगर बहुत तार्किक व्यक्ति हो, तो सामान्य प्रेम में भी नहीं उतर पाता है। क्योंकि प्रेम के लिए कोई कारण नहीं मिलता। और प्रेम के लिए जितने कारण लोग खोजते हैं, वह सब पीछे खोजे गए होते है। प्रेम पहले घट जाता है, फिर आदमी पीछे कारण खोज लेता है।

किसी को देखा है और भीतर कोई तरंग उठ आती है, प्रेम घट जाता है। लेकिन आदमी बुद्धिमान है। तो बिना बुद्धि के तो वह प्रेम भी नहीं कर सकता। तो फिर वह कारण खोजता है; कि इस व्यक्तित्व में यह कारण है--चेहरा सुंदर है, कि आचरण ऐसा है... फिर वह कारण खोजता है। लेकिन कारण खानापूरी है, पीछे है। प्रेम पहले घट जाता है, कारण पीछे चले आते हैं। फिर हम कारणों को पहले रख लेते हैं और प्रेम को पीछे मानते हैं। लेकिन प्रेम की घटना ऐसे घटती है जैसे गाड़ी पहले आ जाए और बैल पीछे। फिर हम व्यवस्था जमा लेते हैं, बैल को आगे कर लेते हैं, गाड़ी को पीछे कर लेते हैं। फिर सब ठीक चल पड़ता है।

लेकिन इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण है, अकारण घटता है। लेकिन जिन्हें प्रेम ही कभी न हुआ हो, उन्हें श्रद्धा बहुत मुश्किल हो जाएगी। क्योंकि प्रेम जैसी सामान्य घटना भी जिनके जीवन में न घटी हो, श्रद्धा जैसी असामान्य घटना बिल्कुल न घट सकेगी। प्रेम का अर्थ है दो व्यक्तियों के बीच असंभव का घट जाना। प्रेम का अर्थ है, दो व्यक्तियों के बीच असंभव की छलांग हो जाना। और श्रद्धा का अर्थ है, व्यक्ति और समष्टि के बीच असंभव का घट जाना। मेरे और समष्टि के बीच जब प्रेम घटता है तो उसका नाम श्रद्धा है; और मेरे और किसी के बीच जब घटता है--वही घटना--तो उसका नाम प्रेम है।

इसलिए प्रेम की सीमा है, श्रद्धा की कोई सीमा नहीं। इसलिए प्रेम चुक जाता है, श्रद्धा नहीं चुकती। इसलिए प्रेम होता है, खिलता है, मुर्झाता है, लेकिन श्रद्धा नहीं मुर्झाती। प्रेम क्षणिक ही है, वे क्षण कितने ही लंबे हो जाएं, लेकिन श्रद्धा शाश्वत है। इसलिए जो प्रेम में शाश्वत को खोजता है, वह गलत जगह खोजता है। उसे श्रद्धा में ही शाश्वत को खोजना चाहिए।

श्रद्धा... भक्ति दूसरा सूत्र कहा है। श्रद्धा तो अंतर्घटना है, भक्ति उसकी अभिव्यक्ति है। श्रद्धा तो भीतर घटती है। श्रद्धा तो अंतस अनुभव है। एक व्यक्ति को श्रद्धा घट गई, उसे अनहोने, अपरिचित, रहस्यपूर्ण अस्तित्व के प्रति वह भाव आ गया जिसे हम प्रेम कहते हैं, उसे पत्थर और पौधे में और तारे में प्रेमी दिखाई पड़ने लगा।

उस परम मित्र के दर्शन होने लगे, या उस परम प्रेयसी काअनुभव होने लगा जो सब जगह छिपी है, यह तो श्रद्धा है, भक्ति इसकी अभिव्यक्ति है।

वैसा व्यक्ति अब... अब जहां भी उठेगा, चलेगा, बैठेगा, जो भी करेगा, उस सब में उसकी श्रद्धा प्रकट होगी। सब में। वह जो प्रकट होना है, वह भक्ति है। वह अगर एक वृक्ष के पास भी जाएगा तो उसे नमस्कार करके ही बैठेगा। पागलपन है! पागलपन तो घट गया। अगर श्रद्धा की घटना घट गई, तो वह वृक्ष को भी नमस्कार करके ही बैठेगा। अगर वृक्ष ने उसे छाया दी है, तो धन्यवाद देकर ही उठेगा।

अभी एक बहुत-बहुत हैरानी की घटना पश्चिम के विज्ञान में घट रही है। एक रशियन वैज्ञानिक और एक अमरीकन वैज्ञानिक, दोनों ने अलग-अलग मार्गों से एक बहुत हैरानी का सूत्र खोजा है। वह मैं आपसे कहना चाहूंगा। यह दोनों वैज्ञानिक अलग-अलग, अपरिचित एक-दूसरे से, एक प्रयोग कर रहे थे कि आदमी के भीतर जो भी भावदशा होती है, क्या उस भावदशा को नापा जा सकता है? थोड़े प्रयोग सफल हुए हैं।

अगर एक आदमी अचानक भय से भर जाए, तो उसके हृदय की धड़कन बदल जाती है। उसकी श्वास की गति बदल जाती है। उसकी नाड़ी की गति बदल जाती है। उसके पसीने की ग्रंथियां अलग तरह से काम करने लगती हैं। उसके शरीर का रस-स्राव बदल जाता है। उसके रासायनिक परिवर्तन शरू हो जाते हैं। और वैज्ञानिक अब जानते हैं कि शरीर के भीतर बहती हुई जो विद्युत है, जिसे हम प्राण कहते हैं, उसकी तरंगों में भी परिवर्तन तत्काल हो जाता है। यह सब नापा जा सकता है। अब वैसे यंत्र उपलब्ध हैं, जिनसे नापा जा सकता है।

आप बताएं मत, आप बैठे हैं और अचानक आप की छाती पर एक बंदूक लाकर लगा दी गई है, तो आपके शरीर से यंत्र तारों से जुड़ा है, वह यंत्र बता देगा कि आप कितने भय से भर गए है। लेकिन तभी जो बंदूक लाया है वह हंसने लगा और उसने कहा कि मैंने मजाक किया, तो यंत्र फौरन बता देगा कि भय विलीन होता जा रहा है, शिथिल होता जा रहा है। विद्युत अपनी पुरानी और रासायनिक प्रक्रियाएं, अपने पुराने ढांचे पर वापस लौट रही हैं। अगर आपका प्रेम कमरे के भीतर आ गया है, तो आपके भीतर जो परिर्वतन होते हैं, वह यंत्र बता देता है।

इन वैज्ञानिकों को यह खयाल आया कि आदमी में तो ठीक है, लेकिन क्या पशुओं में भी नापा जा सकता है? तब तो हम पशुओं में भी प्रवेश कर सकते हैं। अभी तक पशुओं से हमारी कोई मुलाकात नहीं हो पाती। उनके भीतर क्या होता है, हमें पता नही। लेकिन जब आदमी नापा जा सका, तो फिर पशु भी नापे गए और पाया गया कि पशु तो और भी सुनिश्चितता से नापे जा सकते हैं। क्योंकि उनके परिवर्तन और भी स्पष्ट होते हैं। अचानक इन वैज्ञानिकों को खयाल आया, क्या पौधों को भी नापा जा सकता है? क्या पौधों में कोई भी परिवर्तन होते होंगे? भरोसा नहीं था। सिर्फ जानने के लिए प्रयोग किए और हैरान हो गए।

और हैरान हो गए, रखा हुआ है एक पौधा--गुलाब का पौधा रखा हुआ है, और उसकी, उसकी शाखाओं से तार बंधे हुए हैं बिजली के, जो कि यंत्र को खबर देते हैं कि पौधे में क्या हो रहा है; और वह वैज्ञानिक काटने की मशीन लेकर पौधे के पास आया, सोचता था कि काटे, तभी उसकी दृष्टी गई पास में रखे हुए यंत्र पर, यंत्र की सुई तेजी से घूम रही थी--भय की तरफ। तो घबड़ा गया। काटता, तब उसने सोचा था कि पौधे में कुछ होगा। लेकिन पौधे के पास काटने का इंतजाम लाया था सिर्फ अभी, लेकिन काटने का भाव था भीतर। क्या पौधे को भाव की खबर लगती है? और हैरानी की बात है कि पौधे ने जितने तेजी से सूचनाएं दीं, वह पशु से भी ज्यादा स्पष्ट। तब तो इस वैज्ञानिक ने सैकड़ों प्रयोग करके... , क्योंकि भरोसा उसे अपनी आंख पर नहीं आया...

कि मेरा भाव, बिना कुछ किए और पौधे को प्रभावित करता होगा, और पौधे के प्राणों में रूपांतारण हो जाता है।

तब उसने एक और अनूठा प्रयोग किया और वह यह कि पौधा यह रखा हुआ है, इस पौधे को नहीं काटना है उसे, काटने के लिए दूसरा पौधा रखा हुआ है, और इस पौधे के यंत्र से संबंध जुड़े हैं, लेकिन दूसरे पौधे के पास काटने के लिए गया, तो भी इस पौधे ने पीड़ा की खबर दी--दूसरे पौधे को काटने गया तो भी इस पौधे ने खबर दी कि वह भयभीत हो गया है और दुखी और पीड़ित हो गया है। और उसके भीतर रासायनिक-परिवर्तन हु गए हैं।

ये तो विज्ञान के यंत्र से पकड़ी गई बातें हैं। श्रद्धा के तंत्र से भी यह अनुभव पकड़े गए हैं। श्रद्धावान ने भी एक-एक पत्ते में, एक-एक पत्थर में उस परम प्राण को अनुभव किया है। भक्ति उसकी अभिव्यक्ति है। ऐसा व्यवहार इस जगत के साथ, जैसा यह सारा जगत मेरा प्रेमी है। इस अस्तित्व के साथ ऐसा व्यवहार, जैसे इससे एक अंतर्मैत्री है। तो एक आदमी पौधे के पास पूजा का थाल लिए हुए जूजा कर रहा है, तो हमें पागलपन लगता है। लगेगा, क्योंकि हमें उस तंत्र का कोई पता नहीं है। और हो सकता है उसे भी पता न हो, वह भी सिर्फ परंपरागत किय जा रहा हो। तब वह बिल्कुल नासमझी है। एक आदमी नदी को हाथ जोड़ कर प्रणाम कर रहा है, तो बिल्कुल पागलपन है। लेकिन अगर परंपरागत ही कर रहा हो तो आप ठीक हैं, और अगर हार्दिक कर रहा हो, तो आप बिल्कुल गलत हैं। एक नदी से भी यह संबंध हो सकता है। एक पौधे से भी यह संबंध हो सकता है। एक पत्थर की मूर्ती से भी यह संबंध हो सकता है। यह संबंध कहीं भी हो सकता है। और एक दफा श्रद्धा का जन्म हो, तो भक्ति अनिवार्य छाया की तरह उसके पीछे चली आती है।

ऋषि ने भक्ति के बाद ध्यान को रखा है। अगर भक्ति हृदय में हो, तो मन को ध्यान में ले जाना इतना सुगम है जिसका कोई हिसाब नहीं। श्रद्धा भीतर हो, तो भक्ति छाया की तरह आ जाती है। श्रद्धा भीतर हो, भक्ति छाया की तरह आती हो, तो ध्यान सुगंध की तरह पीछा करता है। ध्यान में हमें कठिनाई होती है, क्योंकि श्रद्धा न है, न भक्ति है, तो ध्यान हमें सीधा ही करना पड़ता है। सीधा करने में तकलीफ होती है। क्योंकि तब ध्यान में हमें बहुत ताकत लगानी पड़ती है। फिर भी उतने परिणाम नहीं होते; क्योंकि बहुत मौलिक दो आधार नहीं हैं।

जो सारे अस्तित्व के साथ प्रेम से भरा है, और जिसका उठना-बैठना, जिसकी आंख की पलक का हिलना, जिसकी मुद्रा, सब इस जगत के प्रति भक्ति से भरी है, उसे ध्यान में जाने में क्षण-भर की भी देर न लगेगी। उसे खयाल भर आ जाए कि ध्यान, और ध्यान हो जाए। क्योंकि यहां कोई संघर्ष ही न रहा। कोई तनाव न रहा। तनाव तो वहां है जहां जगत शत्रु है। तनाव तो वहां है जहां अस्तित्व मेरा विरोधी है। तनाव तो वहां है जहां एक लड़ाई चल रही है, जीवन एक... एक युद्ध है। तनाव नहीं होगा, भक्त ध्यान में ऐसे ही चला जाता है।

इसलिए भक्तों ने तो यहां तक कहां है कि क्या ध्यान, क्या योग! उसका कारण है। भक्तों ने कहा क्या ध्यान, क्या योग, भक्ति काफी है। वह ठीक कहते हैं। वह ठीक इसलिए कहते हैं--इसलिए नहीं कि ध्यान का कोई मतलब नहीं--इसलिए कि ध्यान तो उन्हें सहज हो जाता है। एक मीरा नाचती है और ध्यान में चली जाती है। उसने ध्यान का कोई प्रयोग कभी सीखा नहीं। एक चैतन्य अपने कीर्तन में हैं और ध्यान में चले जाते हैं। उन्हें पता ही नहीं कि ध्यान!

चैतन्य के साथ बड़ी मजेदार घटना घटी है। चैतन्य ने सुना कि एक बड़ा योगी गांव के पास ठहरा हुआ है और लोग उसके पास जाते हैं, ध्यान सीखते हैं। तो चैतन्य ने कहा, मैं भी जाऊं और ध्यान सीखूं। तो चैतन्य उस

योगी के पास ध्यान सीखने गए। हैरान हुए बहुत, क्योंकि जब चैतन्य पहुंचे तो वह योगी चैतन्य के चरणों मे सिर रखकर लेट गया। तो चैतन्य ने कहा, यह क्या करते हो? यह क्या करते हो? मैं तो तुमसे ध्यान सीखने आया हूं। मैंने तो सुना कि ध्यान अनेक लोग सीखते हैं, तो मैं भी सीख आऊं। तो उस योगी ने कहा, अगर ध्यान ही सीखना था, तो भक्ति के पहले आना था। ध्यान में तो तुम हो, लेकिन तुम्हें पता भी नही। भक्ति को पता भी नहीं होता कि वह ध्यान में है। क्योंकि ध्यान उसके लिए बाई-प्रॉडक्ट है, पीछे आती है, श्रद्धा और भक्ति का सहज फल होता है।

सबसे आखिर में रखा है योग। जिसे ध्यान सध जाता है, उसके पीछे योग चला आता हैं। हम सब उल्टे चलते हैं। लोग योग से शुरू करते हैं, फिर ध्यान करते है। फिर सोचते हैं कोई तरह खींचतान कर भक्ति लाओ, फिर आखिर में किसी तरह श्रद्धा बन जाए। जिस व्यक्ति का मन ध्यान में चला जाता है, उसका शरीर योग में चला जाता है। योग शरीर की घटना है, ध्यान मन की।

इसे हम ऐसा समझें। श्रद्धा कॉस्मिक है, ब्रह्मभाव है। भक्ति आत्मिक है, व्यक्तिभाव है। ध्यान मानसिक है। योग शारीरिक है। हम शरीर से शुरू करते हैं, फिर मन पर जाते है, फिर आत्मा पर, फिर ब्रह्म पर। ऋषि ने कहा है, पहले ब्रह्म के प्रति श्रद्धा, फिर आत्मा में भक्ति, फिर मन में ध्यान, फिर शरीर में योग। ऐसा कोई चलेगा तो हर दूसरा चरण सहज होता है। उल्टा कोई चलेगा, तो हर दूसरा चरण और भी कठिन होता है। योग से जो शुरू करेगा, उसे ध्यान और कठिन होगा। इसलिए आमतौर से ऐसा होता है कि योग से शुरू करने वाले योग पर ही रुक जाते हैं। आसन वगैरह करके निपट जाते हैं, ध्यान तक नहीं पहुंच पाते हैं। ध्यान से शुरू करेगा, तो भक्ति कठिन होगी। इसलिए ध्यान करने वाले अक्सर ध्यान पर रुक जाते हैं, भक्ति तक नहीं पह ंच पाते हैं। भक्ति से जो शुरू करेगा, अक्सर भक्ती पर रुक जाएगा। उस परम श्रद्धा तक भी नहीं पहुंच पाएगा। यह आंतरिक केंद्र से यात्रा की शुरुआत है--श्रद्धा केंद्र से; दूसरी परिधि भक्ति, फिर तीसरी परिधि ध्यान, फिर चौथी परिधि योग। ध्यान में गया मन, शरीर अपने आप योग में प्रवेश कर जाता है।

बहुत लोग मेरे पास आकर कहते हैं कि जब हम ध्यान करते हैं, तो न मालूम कैसे-कैसे आसन अपने आप शुरू हो जाते हैं। वे हो जाएंगे; जब मन, भीतर ध्यान की स्थिति बदलेगी, तो शरीर को तत्काल स्थिती बदलनी पड़ेगी और मन के अनुकूल अपने को संभालना पड़ेगा।

यह चार सूत्र बहुमूल्य हैं। इनकीशृंखला सर्वाधिक बहुमूल्य है। श्रद्धा से प्रारंभ करें।

सुबह के लिए इतना ही।

अब हम ध्यान के लिए तैयार हों। दूर-दूर फैल जाएं। आस-पास जगह बना लें। और कोई अपनी जगह से भागें नहीं। यहां-वहां दौड़ कर दूसरों को धक्का न दें। अपनी जगह पर ही कूदें। दूर-दूर फैल जाएं। जो मित्र देखने आ गए हों वह चट्टान पर बैठ जाएं, यहां बीच में न रहे। कोई देखने वाला बीच में न रहे, सिर्फ करने वाले रहें। किन्हीं मित्रों को शांति से बैठकर रहना हो, वे भी दूर हट कर बैठ जाएं और करें। पट्टियां आ गई हैं, जिन मित्रों को चाहिए, वे ले लें। किसी को भी ऐसा लगे कि वस्त्र अलग कर देने हैं, वह कर सकता है। ठीक है, आंख पर पट्टियां बांध लें।

तीसरा प्रवचन

हृदय-गुहा में प्रवेशः विराट अस्तित्व में प्रवेश

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।
परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति।। 3।।

उस परमत्व को धन, संतान अथवा कर्म के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। त्याग ही एक ऐसा मार्ग है, जिसके द्वारा ब्रह्मज्ञानियों ने अमृतत्व को प्राप्त किया है। स्वर्गलोक से ऊपर हृदय की गुफा ब्रह्मलोक में स्थित वह परमतत्व आलोकित है, जिसे निष्ठावान साधक ही प्राप्त कर सकते हैं।। 3।।

मृत्यु मनुष्य को घेरे हुए है, चारों और, सब दिशाओं में। कहीं भी मनुष्य चले, अंततः मृत्यु को उपलब्ध हो जाता है। चाहे हम सोचें चाहे न सोचें; ... यह कौन मित्र बात कर रहे हैं वहां, बात बंद करें... चाहे सचेतन हो हमारा मन, या न हो, मृत्यु का भय प्रतिपल खड़ा रहता है। वस्तुतः शेष सारे भय मृत्यु के ही भय की छायाएं हैं।

चाहे कोई निर्धनता से डरता हो, चाहे कोई बीमारी से डरता हो; और चाहे अपयश से डरता हो, असफलता से डरता हो लेकिन समस्त भय के पीछे, गहरे में मृत्यु का ही भय खड़ा हुआ है। निर्धनता से इसलिए मन डरता है कि धन होगा, तो मृत्यु से सुरक्षा की जा सकती है। असफलता से इसलिए मन डरता है कि सफलता होगी, तो शायद हम सबल होंगे और मृत्यु से लड़ सकेंगे।

मृत्यु का भय एक पहलू है जीवन के सिक्के का। और दूसरा पहलू है जीवन को पकड़ रखने की तीव्र लालसा। जिस मात्रा में लालसा तीव्र होती है कि जीवन को हम पकड़ रखें, उसी मात्रा में भय भी तीव्र हो जाता है कि जीवन कही हमारे हाथ से छूट न जाए। जितनी होती है पकड़, उतना ही भय भी हो जाता है।

यह मृत्यु का भय मनुष्य को न मालूम कितने प्रयत्नों में ले जाता है। जीवन भर हम जीते कम हैं, मृत्यु से बचने के उपाय ज्यादा करते हैं। शायद जीने का अवसर ही नहीं मिल पाता। मृत्यु से भय इस बुरी तरह छिदा रहता है हृदय में कि हृदय में जीवन का फूल भी खिले तो कैसे खिले। दौड़ते हैं, भागते हैं, धन कमाते हैं, यश कमाते हैं, दीवालें बनाते हैं, तिजोड़ियां निर्मित करते हैं, सुरक्षा का इंतजाम करते हैं, सिर्फ इसलिए कि कहीं मिट न जाएं। और फिर भी मिट तो जाते है। सब उपाय पड़े रह जाते हैं। सब आयोजन व्यर्थ हो जाता है। सब प्रयत्न, सब प्रयास सब चेष्टाएं शुन्य सिद्ध होती हैं। और मृत्यु द्वार पर एक दिन आ ही जाती है।

अरबों-खरबों लोगों ने मृत्यु से लड़कर ऐसे ही जीवन को नष्ट किया है। फिर भी हम भी वैसा ही करते हैं। बिना यह खयाल किए कि जिस मृत्यु से लड़ रहे हैं, उससे कभी भी कोई जीत नहीं सका है। कैसे ही उपाय किए हों। कोई सोचता है कि मैं तो मर जाऊंगा, लेकिन मेरी संतान तो रहेगी। तो व्यक्ति संतान को सम्हालता है। जिनके बेटे नहीं हैं, वे पीड़ीत होते हैं कि हमारे साथ ही हमारीशृंखला टूट जाएगी। तो बेटे हैं, तो मैं मर जाऊंगा कोई चिंता नहीं, लेकिन किसी के द्वारा मैं जीता रहूंगा। किसी में मेरा कोई अंश जीवित रहेगा। संतति में भी आदमी मृत्यु से बचाव ही खोजता है। मैं तो मर जाऊंगा, लेकिन मेरा कोई हिस्सा जीवित रहेगा, तो भी एक अर्थ में मैं अमर हुआ। नहीं, कोई संतान में खोजता हैं, तो कोई व्यक्ति अमर कृतियों में खोजता है।

एक चित्रकार सोचता है, मैं मिट जाऊंगा मेरे चित्र तो रहेंगे। मूर्तिकार सोचता है, मैं मिट जाऊंगा, मेरी मूर्ति तो रहेगी। संगीतज्ञ सोचता है, मैं मिट जाऊंगा, लेकिन मेरा संगीत रहेगा। यह भी अमरता को खोजने की विधियां हैं। लेकिन जब मैं ही मिट जाऊंगा, मै पूरा-का पूरा मिट जाता हूं, तो मेरा जो अंश है, मेरी जो संतान है, वह भी कितनी देर बच सकेगी? और जब मैं ही मिट जाता हूं, तो मेरा चित्र, और मेरी बनाई मूर्ति और मेरे हाथ से निर्मित साहित्य और मेरा काव्य, वह भी कितनी देर बच सकेगा? वह भी मिट जाएगा।

वस्तुतः इस जगत में समय की धारा में जो भी पैदा होता है, वह मिटेगा ही। समय के भीतर मृत्यु सुनिश्चित घटना है। समय के भीतर मृत्यु होगी ही। समय में जो भी घटेगा, वह मिटेगा ही।

असल में बनना और मिटना एक ही चीज के दो छोर हैं। जब कोई चीज बनती है, तो मिटना शुरू हो जाती है। और जब कोई जन्मता है, तो मृत्यु की यात्रा शुरू हो जाती है। जब प्रारंभ हो गया, तो अंत भी होगा ही। वह अंत कितनी देर से होगा, यह गौण है। इसका मुल्य भी नहीं। कितनी ही देर से हो, लेकिन अंत होगा ही। बुद्धने कहा है, फिर मैं सात वर्ष में मरूं, कि सत्तर वर्ष में, कि सात सौ वर्ष में, इससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता। जब मे मरूंगा ही, तो जन्म के साथ ही मेरे भीतर मृत्यु का बीज भी आ ही गया। कितनी देर, यह गौण है। और देर में भी मैं क्या करूंगा? अगर मृत्यु पीछे खड़ी ही है, तो कोई सात वर्ष मृत्यु से भयभीत होकर जिएगा, कोई सत्तर वर्ष, कोई सात सौ वर्ष, लेकिन इस जीने में हम करेंगे क्या? जब द्वार पर मृत्यु निरंतर खड़ी ही हो, और किसी भी क्षण घटित हो सकती हो, तो यह जीवन एक कंपता हुआ जीवन होगा।

महावीर ने कहा है कि जैसे ओस की बूंद घास के पत्ते पर सुबह पड़ी हो, हवा के झोंके में कंपती हो, कितनी देर सधी रहेगी? कितनी देर हवा के झोंकों से बचेगी? कितनी देर अपने को संभालेगी घास की पत्ती की नोक पर? गिरेगी ही। अभी, थोड़ी देर बाद कभी, गिरेगी ही। महावीर ने कहा है, आदमी का जीवन भी ऐसा ही पत्ते की नोक पर सधी हुई ओस की बूंद के जैसा है। अभी, अभी, अभी गिरता ही है। गिर ही जाएगा।

आदमी ने जितने उपाय किए हैं अमृत को पाने के, वे सभी निष्फल जाते हैं। सिर्फ एक उपाय निष्फल नहीं गया है, इस सूत्र में उसकी चर्चा है--

"उस परमतत्व को धन, संतान अथवा कर्म के द्वार प्राप्त नहीं किया जा सकता। त्याग ही एक ऐसा मार्ग है, जिसके द्वारा ब्रह्मज्ञानियों ने अमृत को प्राप्त किया है। स्वर्गलोक से भी ऊपर हृदय की गुफा में स्थित वह परम तत्व आलोकित है, जिसे निष्ठावान साधक ही प्राप्त कर सकते हैं।"

इस सूत्र में कुछ बातें समझें।

वह जो अमृत है, वह जो जीवन की गहन पिपासा है, उसे पा लेने की जो कभी नष्ट न हो, जो कभी मिटे नहीं--जो मिट ही जाता है, उसे पाकर भी क्या करेंगे! उसे पा भी लिया तो क्या पाया! जो हाथ में आकर छूट ही जाएगा, उसके हाथ में आने की घटना का मूल्य क्या है! जो मुझे मिलेगा, मिल भी नहीं पाएगा और बिछुड़ ही जाएगा, उसके लिए जो मैने श्रम किया वह व्यर्थ ही गया।

इसलिए ब्रह्मज्ञानी कहते ही हम उस व्यक्ति को हैं जो उसकी खोज कर रहा है जो मिलेगा तो फिर मिला ही रहेगा। जिसके मिलन में फिर बिछोह नहीं। और जिसका प्रारंभ तो है लेकिन जिसका अंत नहीं। यह बड़ी कठिन बात है। क्योंकि जिसका भी प्रारंभ होगा, उसका अंत होते हम देखते हैं। इस जगत में ऐसा कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है जो प्रारंभ तो हो, लेकिन अंत न हो। सभी चीजें बनती और मिटती हुई दिखाई पड़ती है। क्या ऐसा कोई अनुभव हो सकता है, क्या कोई ऐसी प्रतीति, अनुभूति हो सकती है, जिसके ऊपर हम खड़े हों और वह शाश्वत हो? फिर उससे हमारा अलगक होना न हो? यही खोज ब्रह्मज्ञान की खोज है।

ब्रह्म की खोज का अर्थ है, उसकी खोज जो शाश्वत है, अनादि है, अनंत है। जो सदा है, जो कभी भी मिटता नहीं। मरेगा नहीं। मरेगा नहीं, समाप्त नहीं होगा। अगर हम उसे पा लें, तो ही हमने जीवन को जाना। यदि हम उसके साथ एक हो जाएं, तो ही हमने अमृत को जाना। और जब तक हम उसके साथ एक न हो जाएं तब तक हमारा जीवन भय में कांपता हुआ एक पत्ता ही होगा। क्योंकि मृत्यु चारों तरु कंपाती रहेगी। मृत्यु के झोंके आते ही रहेंगे। उस परम तत्व को जानकर ही, उसके साथ एक होकर ही भय समाप्त होता है। और जहां भय है समाप्त, अभय का है प्रारंभ, वहीं जीवन का सुर्योदय है, वहीं सुबह होती है जीवन की।

लेकिन इसको क्या धन से पाया जा सकता है। क्योंकि व्यक्ति पूरा जीवन धन इकट्ठा कररने में लगा देता है। आशा यही होती है कि शायद धन से कुछ ऐसा मिल जाए जो मिटे नहीं। लेकिन जिन हाथों से धन कमाया जाता है वे हाथ ही मिट जाएंगे, तो उन हाथों से कमाया गया धन कैसे बच सकता है? जिनको बनाने वाला ही इतना निर्बल है, उससे बनी हुई चीजें और भी निर्बल होंगी।

धन एक धोखा है। लेकिन धन से स्थायित्व का धोखा पैदा होता है। ऐसा लगता है कि धन मेरे पास है तो कोई स्थिर चीज मेरे पास है, जिसके सहारे मैं इस क्षणभंगुरता से लड़ सकुंगा। जिसके सहारे शायद मैं मौत के खिलाफ भी इंतजाम कर पाऊं। इसीलिए तो आदमी इतना पागल होकर धन को इकट्ठा करना शुरु किया था। फिर धन इकठ्ठा ही करता चना जाता हो अपने को गंवा देता है उस धन के इकठ्ठा करता है। और यह पागलपन उस सीमा पर पहूंच जाता है, जब वह भूल ही जाता है कि किसलिए धन को इकट्ठा करने में, जिसे उसने इसलिए कमाना शुरू किया था कि अपने को बचा सके। कब साधन साध्य बन जाता है, पता ही नहीं चलता।

मनुष्य की मूल्य बीमारियों में एक बीमारी यही है--साधन साध्य बन जाता है। जिसे हमने सोचा था कि इसका उपयोग करेंगे, वही हमारा मालिक हो जाता है। जिसे हमने सोचा था कि इससे हम फलां चीज पा लेंगे, अखिर में हम पाते हैं कि जिसे पाने के लिए हमने चेष्टा की थी, वही साधन के पाने में खो गया है।

जीवन के लिए आदमी धन कमाता है। लेकिन अगर धनियों की तरु हम देखें तो पता चलेगा कि वे धन कमाने के लिए ही जीते हैं। क्योंकि हैरानी की बात मालूम पड़ती है, उनसे भी हम पूछें तो वे भी कहेंगे कि जीवन के लिए धन को कमा रहे है।

एण्डू कारनेगी मरा तो अरबों रुपये छोड़ गया। लेकिन मरते समय तक, आखिरी समय तक फोन पर कमाई की ही बात कर रहा था। आखिरी क्षण, शस उसकी टूटी है तो हाथ में उसका फोन था, सौदे की बात हो रही थी। एण्डू कारनेगी के जीवन-लेखक ने लिखा है कि ऐसा मैने एक भी क्षण नहीं देखा कारनेगी के जीवन में, जब हम कहें कि वह जी रहा है। हर क्षण वह कमा रहा था। संभवतः पृथ्वी पर सबसे बड़ा धनी आदमी था, लेकिन एक अर्थ में उससे निर्धन कोई भी नहीं। क्योंकि जीवन की कोई पुंलक उसे मिली नहीं। जीवन की कोई लहर उसे मिली नहीं। अनेक बार मित्रों ने उसे कहा भी कि इतना कमा लोगे, लेकिन करोगे क्या? तो वह कहात था, रूकों, एक बार कमाई पूरी हो जाए तो मैं जीना शुरू करूं।

लेकिन कमाई कभी पूरी नहीं होती, और जीना कभी शुरू नहीं होता। किसकी कमाई कभी पूरी हुई है? कभी ऐसा कोई धनी आदमी देखा है, जिसने कहा हो, मैं उस जगह आ गया जहां कमाई पूरी हो जाती है? नहीं, कुछ कमाई का अपना तर्क है। कमाई कोई ऐसी चीज नहीं है कि जिसकी हम एक सीमा-रेखा बना लें कि वहां पहुंच जाएंगे तो पूरी हो जाएगी। कमाई हटती है क्षितिज की भांति। जितना हम आगे बढ़ते हैं, क्षितिज भी आगे हट जाता है। लगता है कि वह पास, बहुत पास, ज्यादा दूर नहीं, आकाश को छू रहा है, पृथ्वी आकाश मिल रहे

हैं, आकाश पृथ्वी को छू रहा है। ऐसा लगता है कि दस-पांच मील की ही यात्रा की बात है और हम उस जगह पहुंच जाएंगे यहां आकाश मिलता है पृथ्वी से।

आकाश कहीं भी पृथ्वी से मिलता नहीं। सिर्फ मिलता हुआ मालूम पड़ता है। जितना हम बढ़ते हैं, उतना ही वह जो प्रतीती का बिंदू है, वह भी आगे बढ़ जाता है। हम पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा आएं, आकाश हमें कहीं भी मिला हुआ नहीं मिलेगा। यद्यपि हर जगह मालूम पड़ेगा कि थोड़ी ही दूर और, आकाश पृथ्वी से मिल रहा है। पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा कर भी, आकाश थोड़ी ही दूर मिलता हुआ मालूम पड़ता रहेगा।

जीवन में अहंकार जहां-जहां दौड़ता है, वहां-वहां भी अहंकार ऐसी ही क्षितिज-रेखा निर्मित करता है। धन भी एक क्षितिज रेखा है। कहीं भी पहूंच जाए पहूंचना नहीं होता। रेखा आगे हट जाती है, दौड़ जारी रहती है। और यह अंतहीन है, और जीवन तो चुक जाता है।

धनी आदमी अक्सर निर्धन का जीवन जीते हैं। निर्धन जीता है, वह उसकी मजबूरी है। धनी जीते हैं, उनको क्षमा नहीं किया जा सकता। और तब, इस धन से ही जिन्होंने जीवन के सारतत्व को पाने को सोचा हो, उन्हें हम विक्षिप्त ही कह सकते हैं। न धन से मिलेगा, न संतान से मिलेगा।

कुछ लोग अपना सारा जीवन इसमें ही व्यतीत करते हैं कि उनके बच्चे बड़े हों, उनके बच्चे शिक्षित हों, उनके बच्चे विवाहित हों, उनके बच्चे व्यवस्थित हो जाएं। उनसे कोई पूछे कि यही तुम्हारे पिता कर रहे थे तुम्हारे लिए, यही तुम्हारे बच्चे उनके बच्चों के लिए करेंगे, यह गोरखधंधा किसलिए है? तुम्हारे पिता इसलिए जिए कि तुम बड़े हो जाओ, शिक्षित हो जाओ, व्यवस्थित हो जाओ; तुम इसलिए जी रहे हो कि तुम्हारे बच्चे बड़े हो जाएं, तुम्हारे बच्चे भी इसलिए जिएंगे। इस जीने का प्रयोजन क्या है?

कहीं ऐसा तो नहीं कि जीने का ढंग समझ में नहीं आता है, इसलिए कहीं भी लगा कर मन को व्यस्त रख लेते हैं? बच्चों में लगा कर व्यस्त रख लेते हैं। जिनके बच्चे हैं, वे परेशान हैं कि इनकी वजह से जी नहीं पाते; जिनके बच्चे नहीं है, वे परेशान हैं कि जिएं कैसे, बच्चे हैं ही नहीं?

ऐसा मालूम पड़ता है कि हमें पता ही नहीं कि जीवन की रसधार कहांहै। और ऐसा नहीं है कि जो जीवन की रसधार को पा लेगा, वह धन नहीं कमाएगा। और ऐसा भी नहीं है कि जो जीवन की सरधार को पा लेगा, वह अपने बच्चों की फिकर न करेगा। लेकिन उसकी फिक्र बदल जाएगी। उसके धन के कमाने का सारा आधार बदल जाएगा। जिसने जीवन की रसधार पा ली है, वह भी अपने बच्चों के लिए फिकिर करेगा, लेकिन अब यह फिकिर उसकी व्यस्तता नहीं है और पोस्टपोनमेंट नहीं है। यह वह स्थगित नहीं कर रहा है अपना जीवन। वह यह नहीं कह रहा है कि मैं तुम्हारे लिए जिऊंगा।

लेकिन कोई किसी के लिए जी सकता है। जिसने अपने जीवन की रसधार पाई, वह स्वयं जिएगा; उसके जीवन से उसके बच्चों को भी जीवन मिलेगा, यह बिल्कुल दूसरी बात है। लेकिन अपने जीवन को बच्चों के कंधों पर रखकर नहीं वह जिएगा कि इनके द्वारा मैं जी लूंगा। ऐसे तो हर व्यक्ती एक दुसरे पर स्थगीत करता चला जाता है और कोई भी नहीं जी पाता।

कुछ हैं, जो सोचते हैं कि कर्म के द्वारा, विराट कर्म के द्वारा, सतत कर्म के द्वारा हम उस अमृत तत्व को पा लेंगे। सतत लगे रहते हैं। सुबह से सांझ तक, जन्म से मृत्यु तक, कुछ न कुछ करते रहते हैं। सोचते हैं कि करेंगे, तो मिल सकेगा। लेकिन कर्म उन चीजों को हमें दे सकता है जो कर्म से पैदा होती हैं। अमृत कर्म से पैदा नहीं होता। कभी पैदा नहीं हुआ। अमृत कहीं छिपा है। मौजूद है। अमृत कोई उत्पत्ति नहीं है जो हम अपने कर्म से पैदा कर लेंगे। अमृत कहीं मौजूद है, उसे पैदा नही करना, उघाड़ना है। उसे डिस्कवर करना है। उसे निर्मित नहीं करना

है। हमारे कर्म की कोई भी व्यवस्था उसे पैदा न कर पाएगी। वह है ही। और ध्यान रहे, हम मरणधर्मा हैं, हमारे कर्म से अमृत कैसे पैंदा होगा? हम अज्ञानी हैं, हमारे कर्म से ज्ञान का जन्म कैसे होगा? हम मृत्यु से घिरे हैं, हमारा कर्म भी मृत्यु से घिरा है। हमारा सब कुछ मृत्यु से घिरा है। हम अंधेरा हैं, तोहमसे प्रकाश का जन्म कैसे होगा?

वह परम तत्व हमसे पैदा नहीं होता। वस्तुतः उस परम तत्व से ही हम पैदा होते हैं। उस परम तत्व को हमें पैदा नहीं करना, उस परम तत्व से ही हम आए हैं, इसकी हमें खोज करनी है। वह परम तत्व भविष्य में होने वाली कोई घटना नहीं, अतीत में, हमारे पीछे, हमारे अस्तित्व में ही छिपा हुआ मूल आधार है। कर्म से हम दूसरे को पा सकते हैं, स्वयं को नहीं। मैं अपने हाथ से आपको पकड़ सकतां हूं, स्वयं को नहीं। मैं अपनी आंख से आपको देख सकता हूं, स्वयं को नहीं। सब कर्मों के पीछे मेरा छिपा है रूप। कर्म न हों, तो भी मैं हूं। मैं कर्मों से गहरा हूं। तो मुझे अगर स्वयं के मूल तत्व को पाना हो, तो किसी भी कर्म से उसे पाया नहीं जा सकता।

फिर कैसे पाया जा सकता है?

"त्याग ही एक ऐसा मार्ग है, जिसके द्वारा ब्रह्मज्ञानियों ने उस अमृत को जाना।"

यह त्याग शब्द बहुत जटिल है। और सुनते ही जो खयाल आएगा, वह त्या का अर्थ नहीं है। त्याग का साधारण अर्थ होता है--धन को छोड़ देना।

इसे थोड़ा समझें।

हम कहते हैं, एक आदमी त्यागी है। हम कहते हैं, महावीर त्यागी हैं, उनह्नोंने इतना-इतना धन छोड़ दिया। हम कहते हैं, बुद्ध त्यागी हैं, उन्होंने राजमहल छोड़ा, राज्य छोड़ा, सुख-संपदा छोड़ी, सब छोड़ दिया। हमारे मन में त्याग का अर्थ होता है, छोड़ना। लेकिन वस्तुतः त्याग का अर्थ होता हैःपकड़ना ही नहीं। महावीर ने धन छोड़ा, ऐसा हम सोचते हैं, लेकिन महावीर ने केवल पकड़ छोड़ी है।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

महावीर ने धन छोड़ा, ऐसा हम सोचते हैं, महावीर ने केवल पकड़ छोड़ी? धन तो महावीर का कभी था नहीं, उसे छोड़ा कैसे जा सकता है? पकड़ उनकी थी। धन तो महावीर का नहीं था। क्योंकि महावीर नहीं थे, तब भी धन था। महावीर नहीं रहे, तब भी वह धन रहा।

साम्राज्य तो बुद्ध का नहीं था। वह तो बुद्ध के पहले भी था। बुद्ध के बाप के पास भी था। बुद्ध के बाप के बाप के पास भी था। बुद्ध ने छोड़ दिया तो भी किसी के पास था। बुद्ध ने राज्य नहीं छोड़ा, राज्य की पकड़ छोड़ी। पकड़ बुद्ध की थी।

मेरे हाथ में मैं धन पकड़े हुंए हू, सभी को दिखाई पड़ता है मैं धन पकड़े हुए हूं, सच तो बात यह है कि मैं सिर्फ अपनी मुट्ठी बांधे हुए हूं। धन को पता भी नहीं होगा कि मेरी मुट्ठी में है। और जब मैं धन को छोड़ दूंगा तब भी उसे पता नहीं चलेगा कि मुट्ठी से छोड़ दिया गया हूं। धन कितने लोगों की मुट्ठीयों में रह चुका है। उसके पास कोई हिसाब भी नहीं है। सिर्फ मेरी मुट्ठी बंधती और खुलती है।

त्याग का अर्थ हैः पकड़ का छूट जाना। या त्याग का अर्थ है, पकड़ना ही नहीं। त्याग का अर्थ है, इस बात को जान लेना कि जो मेरा नहीं है, वह मेरा नहीं है। लेकिन हमारे मन में त्याग का कुछ और अर्थ है। एक आदमी के पास धन है, तो वह कहता है धन मेरा है। फिर वह त्याग करता है--हमारे अर्थों में--तो वह कहता है कि मैंने मेरे धन का त्याग कर दिया। लेकिन त्याग करके भी वह धन की मालकियत नहीं छोड़ता। अभी भी वह मानता है कि मैंने मेरा धन छोड़ा।

तो मैं ऐसे त्यागियों को जानता हूं, जिनको वर्षों हो गए--कोई तीस वर्ष हो गए, किसी को चालीस वर्षा हो गए छोड़े, लेकिन हिसाब नहीं छोड़ा है उन्होंने। अभी भी वह कहते हैं कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी। यह चालीस साल पहले लात मारी थी! और अगर धन तुम्हारा था ही नहीं, तो तुम्हें क्षमा मांगनी चालिए धन से कि मैंने तुम्हें लात मारी। धन तुम्हारा था ही नहीं। लेकिन नहीं, धन उनका था! अब धन की जगह त्याग उनका है!

इसे थोड़ा ठीक से समझें।

उन्होंने अब त्याग को भी धन बना लिया। अब वह चालीस साल से उनकी क्रेडिट है, यह पूंजी है उनकी कि हमने लाखों रुपये छोड़े हैं। ये जो लाखों रुपये छोड़े है, यह त्याग अब उनकी संपदा है। अगर आप अब उनसे कहें कि नहीं, लाख नहीं थे, कुछ कम थे, तो उनको वैसी ही पीड़ा होगी।

एक मित्र मेरे पास आए। पत्नी को साथ लेकर आए थे। क्योंकि जरा उन्हें मुश्किल लगा होगा कि अपना परिचय खुद ही कैसे दें। तो पत्नी ने परिचय उनका कराया। उन्होंने पत्नी का परिचय कराया। पत्नी ने कहा कि यह बड़े दानी है। कोई लाख रुपया तो अब तक दान कर चुके हैं। पति ने तिरछी आंख से पत्नी को देखा और कहा, लाख! अब तो एक लाख दस हजार पर संख्या पहुंच चुकी है। यह जो त्याग है--यह धन ही है। यह नये तरह का धन है। और यह ज्यादा सुविधापूर्ण है। इसको चोर चुरा नहीं सकते। इसको सरकारें बदल जाएं तो इस पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

और यह धन ऐसा है कि मैंने उन मित्र से कहा कि आपने बड़ी होशियारी की, आप बड़े कुशल हैं। जो आपके पास एक लाख दस हजार रुपये थे, वे तो चोर भी ले जा सकते थे, डाका भी पड़ सकता था, सरकार टैक्स लगा सकती थी, समाजवाद आ सकता था, कुछ भी हो सकता था; अब आप पर कोई डाका नहीं पड़ सकता। कोई साम्यवाद-समाजवाद आपसे छीन नहीं सकता। रीढ़ उनकी टिकी थी कुर्सी से, सीधी हो गई। उन्होंने कहा, आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। इसीलिए तो त्यागा है कि इसको मृत्यु भी नहीं छीन सकती। यह पुण्य है। इसको अब संसार की कोई शक्ती नहीं छीन सकती। धन को उन्होंने पुण्य में बदल लिया।

पुण्य का अर्थ है:ऐसा धन जो परलोक में भी चलेगा। और क्या अर्थ होता है! पुण्य का अर्थ है; ऐसा धन, जिसका सिक्का यहीं मान्य नहीं है, परलोक में भी चलेगा। अब यह इस पूंजी को लेकर, इस बैलेंस को लेकर परलोक में प्रवेश करेंगे।

और समस्त शास्त्र--तथाकथित शास्त्र--लोगों को यही समझाते है कि यहां छोड़ो तो वहां मिलेगा। यहां छोड़ोगे तो वहां दस हजार गुना, हजार गुना वहां मिलेगा। उस मिलने की आशा में लोग छोड़ते हैं। लोभ के लिए लोग त्याग करते हैं। पाने के लिए लोग छोड़ते हैं। तो छोड़ना ही नहीं हुआ, छोड़ना असंभव है। इस व्यवस्था में छोड़ना असंभव है। छोड़ने का अर्थ त्या को धन बना लेगा नहीं है।

छोड़ने का अर्थ यह जानना है कि धन धन ही नहीं है। छोड़ने का अर्थ, त्याग का अर्थ है कि ऐसी कोई संपदा नहीं है जो यहां संपदा हो, या परलोक में संपदा हो। संपदा है ही नहीं। इस भाव में प्रतिष्ठीत हो जाना कि कोई धन नहीं है मेरे पास, और कोई धन मेरा नहीं है, मैं निपट निर्धन हूं। जीसस ने इसके लिए जो शब्द प्रयोग किया है, वह कहा है--पुअर इन स्प्रिट। पुअर इन स्प्रिट। जो आत्मा में अपनी दरिद्रता को अनुभव करते हैं, वे त्यागी हैं। जो जानते हैं कि आत्मा के पास संपदा है ही नहीं। कोई धन नहीं है आत्मा के पास।

और मजा यह है कि जिस क्षण कोई आत्मा ऐसा जान पाती है कि कोई धन मेरे पास नहीं है, उसी क्षण अमृत उपलब्ध हो जाता है। उसी क्षण! क्योंकि जिस मुट्ठी में हम धन को पकड़ हैं, वही मुट्ठी पूरी निर्भय होकर

खुल जाए तो अमृत की वर्षा उसी मुट्ठी में हो जाती है। लेकिन ध्यान रहे, धन को पकड़ना हो तो मुट्ठी बांधनी पड़ती है और अमृत को पकड़ना हो तो मुट्ठी खोलनी पड़ती है। अमृत बरसता है खुले हुए हाथ पर। बंधे हुए हाथ पर तो सिर्फ जहर इकट्ठा होता है।

इसलिए जिसको हम संपत्ति कहते हैं, वह संपत्ति कम और विपत्ति ही ज्यादा होती है। इसलिए संपत्ति के साथ-साथ विपत्तियां आती हैं और घनी होती चली जाती हैं और बढ़ती चली जाती है।

खुला हाथ, अगर अमृत भी बरस रहा हो तो पकड़ने की इच्छा नहीं है। बस जिस दिन, अमृत भी हो और पकड़ने की इच्छा न हो, और परम धन भी हो और मुट्ठी बांधने की इच्छा न हो, उसी दिन व्यक्ती त्याग को उपलब्ध हुआ। जहां पकड़ने की आकांक्षा न रही, वहां त्याग को उपलब्ध हुआ।

त्याग का अर्थ है, पकड़ने की वृत्ति का खो जाना--समस्त आयामों में--न किसी व्यक्ती को पकड़े, न किसी धन को पकड़े, न किसी शास्त्र को पकड़े, न किसी पुण्य को पकड़े; यह भी सवाल नहीं है कि क्या पकड़े। क्योंकि हम इतने कुशल हैं कि हम यह कर सकते हैं कि एक चीज को छोड़ कर दूसरी को पकड़ लें, लेकिन पकड़ना जारी रखें।

हमारी मुसीबत हमारी पकड़ में, है, हमारी चीजों में नहीं। एक आदमी धन छोड़ देता है, तो त्याग को पकड़ लेता है। एक आदमी घर छोड़ देता है, तो आश्रम को पकड़ लेता है। एक आदमी गार्हस्थ्य को छोड़ देता है तो संन्यास को पकड़ लेता है। पकड़ने की वृत्ति!

संन्यासी का अर्थ ही होता है कि जिसने पकड़ना छोड़ दिया। यही अर्थ है उसका। उसने पकड़ना छोड़ दिया। जिसने निर्णय किया कि अब नहीं पकडूंगा कुछ; यही संन्यास का अर्थ है। अब बिना पकड़े जियूंगा। इस संकल्प का नाम संन्यास है। लेकिन बारीक है मामला। हम चाहें तो संन्यास कोभी पकड़ ले सकते है। वह भी हमारी मुट्ठी बन सकती है। हमारी मुट्ठी इतनी कुशल है कि किसी भी चीज पर बंध सकती है। इससे कोई संबंध नहीं कि वह चीज क्या है। यहां इतनी कुशल हो गई है कि चीज न भी हो तो शून्य पर भी हम मुट्ठी को बांध सकते हैं। मुट्ठी की बांधने की आदत छूट जाए तो त्याग है। नॉन-क्लिंगिंग, कोई पकड़ने का भाव न आए।

तो त्याग का मतलब धन का त्याग नहीं होता। त्याग का मतलब घर का त्याग नहीं होता। त्याग का मतलब किसी चीज के छोड़ने से नहीं, त्याग का मतलब मेरी पकडने की वृत्ती को छोड देने से हैं। मेरी पकड़ने की वृत्ति विसर्जित हो जाए, इस विसर्जन का नाम त्याग है।

ऐसे त्याग से ब्रह्मज्ञानियों ने उस अमृत को पाया है। यह त्याग बहुत सचेत होकर जिएं तो ही संभव हो पाएगा। और यह त्याग अब कोई बाहरी कृत्य न रहा, एक आंतरिक दशा हो गई। मैं पकडूं और सजग रहूं और जागता रहूं कि मेरी मुट्ठी किसी चीज पर बंध न जाए। कहीं भी ऐसा न हो कि मैं पकडूं और बंध जाऊं। किसी भी चीज से न बंध जाऊं। इतनी सजगता से कोई जिए तो त्याग में जीता है।

बुद्ध के पास हजारों लोगों ने संन्यास में दीक्षा ली। बुद्ध कहते थे उन संन्यासियों को कि तुम जो कर रहे हो, ध्यान रखना, जो तुम्हारे पास था उसे छोड़ रहे हो, लेकिन मैं तुम्हें कुछ दे नहीं रहा हूं। अनेक बार तो अनेक लो वापस बुद्ध के पास से लौट जाते थे। क्योंकि आदमी के तर्क के बाहर हो गई यह बात। आदमी छोड़ने को राजी है, अगर कुछ मिलता हो।

बुद्ध से लोग पूछते थे कि हम घर छोड़ देंगे, मिलेगा क्या? हम धन छोड़ देंगे, मिलेगा क्या? हम सब छोड़ने को तैयार हैं, फल क्या होगा? हम सारा जीवन लगा देंगे ध्यान में, योग में, तप में, इसकी फलश्रुति क्या है, निष्पत्ति क्या है? लाभ क्या है, यह तो बता दें। तो बुद्ध कहते थे, जब तक तुम लाभ पूछते हो तब तक तूम

जहा हों वही रहों, वही बेहतर हैं। क्योंकी लाभ को पूछने वाला मन ही संसार है। लाभ को खोजने वाला मन ही संसार है। तुम यहां मेरे पास भी आए हो तो तुम लाभ को ही खोजते आए हो!

लेकिन यही व्यक्ती अगर किसी और साधारण साधु-संन्यासी के पास गए होते तो वह कहता, ठीक है, इस स्त्री में क्या रखा है, यह क्षणभंगुर है, असली स्त्रियां तो स्वर्ग में हैं, उनको पाना हो तो इनको छोड़ो। यह तू जो भोजन का सुख ले रहा है, इसमें क्या रखा है! यह तो साधारण-सा स्वाद है, फिर कल भूख लग आएगी, असली स्वाद लेना हो तो कल्पवृक्ष हैं स्वर्ग में, उनके नीचे बैठो। और यह धन तू क्या पकड़ रहा है! इस धन में कुछ भी नहीं, ठीकरे हैं। असली धन पाना हो, तो पुण्य कमाओ। और यहां क्या मकान बना रहाहै! यह तो सब रेत पर बनाए गए मकान हैं। अगर स्थायी सीमेंट-कांक्रीट के ही बनाने हों तो स्वर्ग में बनाओ। वहां फिर कभी, जो बन गया बन गया, फिर कभी मिटता नहीं। यह जो साधारण साधु-संन्यासी लोगों को समझा रहे हैं, यह मोक्ष की भाषा नहीं है, यह लोभ की ही भाषा है। यह संसार की ही भाषा है। यह गणित बिल्कुल सांसारिक है। इसीलिए हमको जंचता भी है। इसीलिए हमें पकड़ में भी आ जाता है।

लेकिन बुद्ध के पास जब कोई जाता था ऐसी ही भाषा पूछने, तो बुद्ध से लोग पूछते थे--और हमें लगता है कि ठीक ही पूछते हैं--वे पूछते हैं कि हम जीवन भर तप करें, ध्यान करें, योग करें, फिर होगा क्या? मोक्ष में मिलेगा क्या? और बुद्ध कहते हैं कि मोक्ष में! मोक्ष में मिलने की बात ही मत पूछो। क्योंकि तुमने मिलने की बात पूछी कि तुम संसार में चले गए। तुमने मिलने की बात पूछी कि तुम्हारा ध्यान ही संसार में हो गया, मोक्ष से कोई संबंध न रहा। मोक्ष की बात तो तुम उस दिन पूछो, जिस दिन तुम्हारी तैयारी हो छोड़ने की, और पाने की नहीं। जिस दिन तुम तैयार हो कि मैं छोड़ता तो हूं और पाने के लिए नहीं पूछता, उस दिन तुम्हें मोक्ष मिल जाएगा। और क्या मिलेगा मोक्ष में, यह मुझसे मत पूछो, यह तुम पा लो और जानो।

बहुत लोग लौट गए। आते थे, लौट जाते थे। यह आदमी बेबूझ मालूम पड़ने लगा। लोगों ने कहा, कुछ भी न हो, कम से कम आनंद तो मिलेगा। बुद्ध कहते थे, आनंद भी नहीं, इतना ही कहता हूं--वहां दुख न होगा। बुद्ध को सारी की सारी भाषा संसार से उठी हुई भाषा है। आर शायद पृथ्वी पर किसी दूसरे आदमी ने इतनी गैर-सांसारिक भाषा का प्रयोग नहीं किया। इसलिए हमारे इस बहत बड़े धार्मिक मुल्क में भी बुद्ध के पैर न जम पाए। इस बड़े धार्मिक मुल्क में, जोहजारों साल से धार्मिक है। लेकिन उसके धर्म की तथाकथित भाषा बिल्कुल सांसारिक है। तो बुद्ध जैसा व्यक्ती, पैर नहीं जम पाए, बुद्ध की जड़ें नहीं जम पाई, क्योंकि बुद्ध हमारी भाषा में नहीं बोल पाए। और चीन और जापान में जाकर बुद्ध की जड़ें जमीं, उसका कारण यह नहीं कि चीन और जापान में लोग उनकी भाषा समझ पाए, बौद्ध भिक्षु अनुभव से समझ गए कि यह भाषा बोलनी ही नहीं बुद्ध की। उन्होंने जाकर वहां लोभ की भाषा बोलनी शुरू कर दी।

चीन में और जापान में बुद्ध के पैर जमे उन बौद्ध भिक्षुओं की वजह से, जिन्होंने बुद्ध की भाषा छोड़ दी। उन्होंने फिर संसार की भाषा बोलनी शुरू कर दी। उन्होंने कहा, आनंद मिलेगा, सुख मिलेगा, महासुख मिलेगा और यह मिलेगा, और यह मिलेगा और मिलने की भाषा की, तो चीन और जापान और बर्मा और लंका--भारत के बाहर पूरे एशिया में--बुद्ध के पैर जमे; लेकिन वे बुद्ध के पैर ही नहीं है। बुद्ध के पैर थे, वह जमे नहीं। जो जमे, वह बुद्ध के पैर नहीं है।

बुद्ध कहते थे, आनंद? नहीं आनंद नही, दुख-निरोध। लोग पूछते थे, न सही आनंद, कम से कम आत्मा तो बचेगी? मैं तो बचूंगा? इतना तो आश्वासन दे दें। बुद्ध कहते थे, तुम तो हो एक बीमारी, तुम कैसे बचोगे? तम तो मिट जाओगे, तुम तो खो जाओगे। और जो बचेगा, वह तुम नहीं हो। यह कठिन था समझना। बुद्ध ठीक ही

कहते हैं। वे कहते हैं कि आदमी का लोभ इतना तीव्र है कि वह यह भी राजी हो जाता है कि कोई हर्ज नहीं है, कुछ भी न मिले, लेकिन कम से कम मैं तो बचूं। मैं बचा रहा तो कुछ न कुछ उपाय, इंतजाम वहां भी कर ही लेंगे। लेकिन अगर मैं ही न बचा, तब तो सारी... सारी साधना ही व्यर्थ हो जाती है।

साधना भी हमें सार्थक मालूम होती है यदि कोई प्रयोजन, कोई फल, कोई निष्पत्ति आती हो, कोई लाभ मिलता हो। लाभ की भाषा लोभ की भाषा है। और जहां तक लाभ की भाषा चलती है, वहां तक लोभ चलता है। जहां तक लोभ चलता है, वहां तक क्षोभ होता ही रहेगा।

क्यों?

क्योंकि हम एक बिल्कुल ही गलत दिशा में निकल गए हैं, जहां मौलिक जीवन का स्रोत नहीं है। मौलिक जीवन का स्रोत वहां है, जिसे पकड़ने की जरूरत ही नहीं है, जो हमारे भीतर मौजूद है, अभी और यहीं। सिर्फ हम अगर सब छोड़कर खड़े हो जाएं, सब पकड़ छोड़कर खड़े हो जाएं, तो वह द्वार अभी खुल जाए। जिसे हम खोज-खोजकर नहीं खोज पाते हैं, वह हमें अभी मिल जाए। वह मिलाही हुआ है; वह यही, अभी, हमारे भीतर ही मौजूद है। लेकिन हम बाहर पकड़ने में इतने व्यस्त हैं!

सुना है मैंने, एक अंधेरी रात में एक आदमी एक पहाड़ के कगार से गिर गया। अंधेरा था भयंकर। नीचे खाई थी बड़ी। जड़ों को पकड़ कर किसी वृक्ष की लटका रहा। चिल्लाया, चीखा, रोया। घना था अंधकार। दूर-दूर तक कोई भी न था, निर्जन था। सर्द थी रात, कोई उपाय नहीं सूझता था। जड़ें हाथ से छूटती मालूम पड़ती थीं। हाथ ठंडे होने लगे, बर्फीले होने लगे। रात गहराने लगी। वह आदमी चीखता है, चिल्लाता है, पकड़े है, सारी ताकत लगा रहा है। ठीक उसकी हालत वैसी थी जैसी हमारी है। पकड़े हैं, जोर से पकड़े हुए है कि छूट न जाए कुछ। और उसको तो खतरा निश्चित ही भारी था। हमें मौत का पता भी न हो, उसको तो नीचे सामने ही मौत थी। ये हाथ छूटे जड़ों से कि उसके प्राण समाप्त हुए।

लेकिन कब तक पकड़े रहता! आखिर पकड़ भी तो थक जाती है। और मजा यह है कि जितने जोर से पकड़ो, उतने जल्दी थक जाते हैं। जोर से पकड़ा था, अंगुलियों ने जवाब देना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे आंखों के सामने ही हाथ खिसकने लगे, जड़ें हाथ से छूटने लगीं। चिल्लया, रोया, लेकिन कोई उपाय न था। आखिर हाथ से जड़े छूट गई।

लेकिन तब उस घाटी में हंसी की आवाज गूंज उठी। क्योंकि नीचे कोई गड्ढा न था, जमीन थी। अंधेरे में दिखाई नहीं पड़ती थी। वह नाहक ही परेशान हो रहे थे इतनी देर तक! नीचे जमीन थी, कोई गड्ढा न था। और इतनी देर जो कष्ट उन्होंने उठाया, वह अपनी पकड़ के कारण ही उठाया, वहां कोई गड्ढा था ही नहीं। वह घाटी जो चीख-पुकार से गूंज रही थी, हंसी की आवाज से गूंज उठी। वह आदमी अपने पर हंसा था।

जिन लोगों ने भी यह पकड़ के पागलपन को छोड़ कर देखा है, वे हंसे हैं। क्योंकि जिससे वह भयभीत हो रहे थे, वह है ही नहीं। जिस मृत्यु से हम भयभीत हो रहे हैं, वह हमारी पकड़ के कारण ही प्रतीत होती है। पकड़ छूटते ही वह नहीं है। जिस दुख से हम भयभीत हो रहे हैं, वह दुख हमारी पकड़ का हिस्सा है, पकड़ से पैदा होता है। पकड़ छूटते ही खो जाता है। और जिस अंधेरे में हम पता नहीं लगा पा रहे हैं कि कहां खड़े होंगे, वहीं हमारी अंतरात्मा है। सब पकड़ छूटती है, हम अपने में ही प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

उपनिषद ने कहा हैः "स्वर्गलोग से ऊपर, हृदय की गुफा में स्थित वह परमतत्व आलोकित है।"

"स्वर्ग से ऊपर।" अजीब लगात है। "स्वर्ग से ऊपर हृदय की गुफा में।" स्वर्ग और हृदय की गुफा में क्या ऊपर-नीचे का संबंध है? कहां हृदय की गुफा, कहां स्वर्ग! लेकिन ठीक कहता है। स्वर्ग ऊपर अर्थात लोभ से

ऊपर। स्वर्गअर्थात लोभ। स्वर्गलोभ का गहनतम प्रतीक है। स्वर्ग लोभ का साकार रूप है। स्वर्ग लोभी की आत्यंतिक आकांक्षा है। स्वर्ग की जिन्होंने चर्चा की है वे धार्मिक लोग नहीं हैं। धार्मिक व्यक्ती तो सिवाय मुक्ती के, सिवाय मोक्ष के और कोई चर्चा नहीं करता। स्वर्ग की चर्चा तो सांसारिक मन का फैलाव है। मृत्यु के भी पार हम अपने लोभ को बचाने की चेष्टा में लगे हैं। शरीर मिटे मिट जाए, कम से कम लोभ तो बचे। कम से कम वासना तो बचे। कम से कम वासना की तृप्ति का कोई क्षेत्र तो बचे। स्वर्ग हमारी वासनाओं का संग्रह, हमारी कामनाओं का जोड़ है।

तो ऋषि ठीक कहता है, स्वर्ग के ऊपर। जो नहीं उठा है इस लोभ और वासना और कामना के जाल से, वह हृदय की गुफा में प्रवेश न कर पाएगा। असल में हृदय की गुफा में प्रवेश करने में स्वर्ग और नरक ही बाधा है।

एक सूफी फकीर औरत हुई है राबिया। राबिया एक दिन गुजरी है गांव से, एक हाथ में पानी का एक बर्तन और एक हाथ में जलती मशाल लेकर, भागती हुई। लोगों ने समझा कि क्या राबिया पागल हो गई" ऐसे शक तो लागों को था ही। राबिया पर शक तो था ही! क्योंकि जिसने भी कभी ईश्वर को प्रेम किया है, उसे दूसरों ने पागल की नजर से देखा है।

यह भी उनका बचाव है। क्योंकि अगर राबिया पागल नहीं है, तो फिर उनको शक होगा कि फिर हम क्या हैं? तो भीड़ राबिया को पागल बनाकर अपने को बचा लेती है। तो भीड़ कहती है कि यह औरत पागल हो गई है। कैसा ईश्वर? ठीक है, है एक ईश्वर मस्जिद में; तो हर सप्ताह में एक बार जाकर उसके चरणों में सिर झुका आना चाहिए। है मंदिर में, तो ठीक है, एक औपचारिक नियम है वह पूरा कर देना चाहिए। है चर्च में, तो वह संडे-गॉड है, वह रविवार के दिन का है, उस दिन जैसे फुरसत के दिन और सब चीजें निबटा लेते हैं, उसे भी निबटा देते हैं। लेकिन बाकी छह दिन में जो ईश्वर की बात करे, वह पागल है। यह राबियाचौबीस घंटे ईश्वर-ईश्वर लगाए रखती है, यह पागलहो गई है।

लेकिन उस दिन तो साफ ही हो गया। बाजार भरा हुआ था और राबिया हाथ में मशाल लिए और एक हाथ में पानी का बर्तन लिए बीच बाजार से भागने लगी। तो लोगों ने कहा कि राबिया, अब तक तो हम सोचते थे मन ही मन में, अब तो तुमसे प्रगट भी कहना पड़ेगा--क्या दिमाग खराब हो गया है? यह क्या कर रही हो? तो राबिया ने कहा कि मैं यह पानी ले जा रही हूं, ताकि तुम्हारे नरक को डुबा दूं। और यह आग की लपट ले जा रही हूं, ताकि तुम्हारे स्वर्ग में आग लगा दूं। क्योंकि तुम्हारे स्वर्ग और तुम्हारे नरक के कारण ही तुम स्वयं से चूक गए हो। लेकिन उस बाजार में शायद ही कोई उसकी बात समझा हो।

जीसस के जीवन में भी ऐसा एक उल्लेख है कि जीसस एक गांव से गुजरते हैं। और उन्होंने एक जगह बैठे कुछ फकीरों को देखा, जो पीले पड़ गए हैं और भय से कांप रहे हैं। तो जीसस ने उनसे पूछा कि तुम्हें क्या हो गया है? तुम पर कैसी विपत्ति आई है? यह कौन-सी मुसीबत, कौन-सा दुर्भाग्य कि तुम पीले पड़ गए हो पत्तों जैसे, और कांप रहे हो? क्या हो गया है? उन सबने कहा, हम नरक से भयभीत हैं। हम पापी हैं, हमने बड़े पाप किए हैं। और हम डर रहे हैं, अब नरक में पड़ना पड़ेगा। गांव के लोगों ने कहा कि ये बड़े धार्मिक लोग हैं। ये पीले पड़ गए लोग, ये भय से कांपते हुए लोग, ये नरक से कंपित--ये बड़े धार्मिक लोग हैं!

जीसस आगे बढ़े तो उसी गांव के दूसरे हिस्से में उन्हें कुछ और लोग बैठे दिखाई पड़े। वेभी त्याग और तपश्चर्या से अपने को जला डाले थे, राख कर दिए थे, सूख गए थे, कांटे हो गए थे। जीसस ने पूछा, तुम पर कौन सी महामारी आ गई? तुम्हें क्या हुआ? उन्होंने कहा कि हम स्वर्ग से लालायित हैं, स्वर्ग को पाने की आकांक्षा से

पीड़ित हैं। हम कुछ भी करने को तैयार हैं, लेकिन स्वर्ग चाहिए। जीसस बहुत हैरान हुए। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि बड़ी हैरानी की बात है, स्वर्ग और नरक में कोई संबंध मालूम पड़ता है। स्वर्ग से जो लालायित हैं, वे भी सूख कर पीले पड़ गए हैं और कांप रहे हैं; और नरक से जो भयभीत हैं, वे भी पीले पड़ गए हैं और कांप रहे हैं। और अगर दोनों का हम ऊपर से देखें तो फर्क बिल्कुल मालूम नहीं पड़ता। जब तक वे बताएं न कि उनका कारण क्या है? दोनों में कोई संबंध मालूम पड़ता है।

संबंध है। स्वर्ग और नरक एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लोभ और भय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लोभी आदमी कभी भय के बाहर नहीं हो सकता; भयभीत आदमी कभी लोभ के बाहर नहीं हो सकता। भय लोभ का निषेधात्मक रूप है--निगेटिव। लोभ भय का पाजिटिव रूप है--विधायक। भय और लोभ एक ही घटना के दो छोर हैं।

ठीक कहता है ऋषि कि स्वर्गालोक से ऊपर। नरक की उसने बात नहीं की। क्योंकि जब स्वर्ग के ऊपर है, तो नरक के ऊपर तो होगा ही। इसकी चर्चा नहीं की। और जान कर नहीं की। क्योंकि आदमी नरक के ऊपर हो, इससे परेशान नहीं होगा; स्वर्ग केऊपर हो, इससे परेशान होता है। नरक के ऊपर तो हम सब चाहते ही हैं कि हों। वह कोई कठियाई नहीं है।

हम सभी चाहते हैं कि वह परमतत्व दुख के ऊपर हो; लेकिन सुख के भी ऊपर हो, यह हम न चोहेंगे। हम भी छोड़ने को तैयार हो जायेंगे, कोई हमसे कहे, छोड़ दो सब दुख, मिल जाएगा वह तो हम भी कहेंगे, हम तो छोड़ने को सदा तैयार हैं, ये दुख ही हमें नहीं छोड़ रहे हैं। और कोई हमसे कहे छोड़ दो अपने सुख, तो हम कहेंगे, यह बहुत मुश्किल बात है। छोड़ने का उपाय कहां? सुख ही हमें छोड़ कर भागे चले जाते हैं। हम पकड़ते हैं और पकड़ में नहीं आते। सुख हम न छोड़ सकेंगे। दुख तो हम छोड़ने को तैयार हैं।

लेकिन ऋषि कहता, है, स्वर्ग के ऊपर। सुखों की वासना के ऊपर। जिसने अभी सुख की वासना नहीं छोड़ी, वह दुख में गिरता ही रहेगा। दुख में गिरना सुख की वासना का परिणाम है। जिसने सुख नहीं छोड़ा, उससे दुख नहीं छूटेगा। लेकिन दुख तो हम सब छोड़ना चाहते हैं। फिर भी दुख नहीं छूटता, क्योंकि हम सुख नहीं छोड़ना चाहते। जिसने सुख नहीं छोड़ा, उसका दुख तो जारी रहेगा। क्योंकि सुख को पकड़े हुए है। सुख के साथ-साथ दुख की छाया बनती रहेगी।

दुख को केवल वही छोड़ सकता है जिसने सुख छोड़ा। फिर दुख का कोई उपाय न रहा। दुख के खड़े होने की भूमि न रही। सुख के छूटते ही दुख छूट जाता है।

इसलिए ऋषि ने कहा है, स्वर्ग के ऊपर हृदय की गुफा में, ब्रह्मलोक में... इस हृदय की गुफा को ब्रह्मलोक भी कहा... स्थित वह परमतत्व अलोकित है, जिसे निष्ठावान साधक प्राप्त कर सकते हैं।

हृदय की गुफा को हम थोड़ा हम समझ लें, क्या प्रयोजन है? साधारणतः हृदय का हमें बोध ही नहीं होता। इसीलिए उसे गुफा कहते हैं, क्योंकि वह गुप्त है। हमें हृदय का पता ही नहीं चलता। ऐसे हम जानते हैं कि हृदय कहां है--जहां धड़कन होती है वहां, और जहां श्वास चलती है वहां। लेकिन वहां फेफड़ा है, हृदय नहीं है। फुफ्फस है।

अगर वैज्ञानिक से कहेंगे तो आपकी छाती काट कर वह निकाल कर रख देगा कि यह पंपिंग सिस्टम है। यह भीतर जो श्वास को चलाने का इंतजाम है, वहां है। इसलिए वैज्ञानिक तो कहता है हृदय जैसी कोई जीस ही आदमी के शरीर में नहीं है; कवियों की कल्पना है। है भी नहीं। जहां हम हाथ रखते हैं, वहां फुफ्फुस, फेफड़ा ही है अभी तो हृदय तो उसके पीछे बहुत गहे में छिपा है।

हृदय तो गुफा है। गुफा का मतलब है, गुप्त है, गुह्य है, छिपा है; हिन हैं। गुफा का मतलब ही यह है कि हम उसके बाहर के ही रूप से परिचित हो पाते हैं, भीतर का पता नहीं चलता। बाहर घूम आते हैं, उसकी दीवालों का पता चल जाता है, हृदय का पता नहीं चलता। फुफ्फस सिर्फ बाहर की दीवाल है; वैज्ञानिक तोड़ेगा।

ऐसा समझ लें कि आप अगर किसी मकान की दीवालें तोड़ लें तो क्या भीतर आपको मकान मिलेगा फिर? दीवालें गिर जाएंगी, मकाप आकाश में खो जाएगा। अगर मकान खोजना है तो दीवालों के रहते मकान खोजना पड़ेगा। वैज्ञानिक यही भूल करता है। वह कहता है, लाओ, हम चीर-फाड़कर बताए देते हैं कि यहां कोई हृदय नहीं है। ऐसे ही वह कहता है, हम मस्तिष्क को काट कर बताए देते हैं, यहां कोई मन नहीं है। मस्तिष्क को काटकर बताए देते हैं, यहां कोई मन नहीं है। मस्तिष्क है, मन नहीं है। क्योंकि मन भीतरी अंतर-गुहा है।

मस्तिष्क दीवाल है, मन भीतर का स्थान है। फेफड़ा बाहर की दीवाल है, हृदय भीतर का स्थान है। काटकर तो दीवाल हाथ में आती है, भीतर का शून्य तो विराट शून्य में खो जाता है। बिना काटे प्रवेश करें, तो हृदय मिलेगा। इसलिए वैज्ञानिक हृदय को कभी नहीं खोज सकता। सिर्फ योगी कोज पाता है। क्योंकि वह इस हृदय को तोड़ता नहीं है, बिना तोड़े प्रवेश करता है। इसकी दीवाल को नहीं मिटाता। इसकी दीवाल को बना रहने देता है और जिसको इस दीवाल ने घेरा है, उस रिक्त स्थान में प्रवेश करता है।

उस रिक्त स्थान में प्रवेश मार्ग हैं। मार्गकहना शायद ठीक नहीं है। क्योंकि मार्ग से लगेगा कि कोई दरवाजा है। अगर दरवाजा है तो यह फिर गुफा नहीं है। यह फिर गुह्य-स्थान न रहा। लेकिन कुछ ऐसे प्रवेश द्वार हैं जहां दरवाजे नहीं होते। जैसे अगर एक्स-रे की किरण आपके भीतर डालें, तो कोई दरवाजे की जरूरत नहीं होती, एक्स-रे की किरण भीतर प्रवेश कर जाती है, कोई छेद भी नहीं करती। जब तक एक्स-रे की किरण नहीं की तो हम यह मान ही नहीं सकते थे कि हमारे भीतर कोई चीज प्रवेश कर सकती है और छेद न करे। क्योंकि हमारा अनुभव यही था कि छुरा प्रवेश कर सकता है लेकिन छुरा छेद कर जाएगा। अब एक्स-रे की किरण प्रवेश करती है, छेद नहीं करती। छेद तो बहुत दूर की बात है, एक्स-रे की किरण प्रवेश करती है तो आपको पता भी नहीं चलता कि वह प्रवेश कर गई। वह तो फोटो-प्लेट में पता चलता है कि किरण प्रवेश कर गई, भीतर के चित्र भी ले आई है। आपको तो पता ही नहीं चलता। अगर आपसे पूछा जाए कि कुछ पता चला, तो कुछ भी पता नहीं चलता।

इसका अर्थ हुआ कि अगर... और एक्स-रे किरण तो बिल्कुल भौतिक, मैटीरियल वस्तु है, ध्यान उस किरण का नाम हैं जो भीतर प्रवेश कर सकती है और कहीं कोई चोटी नहीं, कहीं कोई दरवाजा नहीं टूटता, कहीं कोई ताले नहीं खोलने पड़ते, कहीं कोई चाबी नहीं लगती। फेफड़े की दीवालों को पता ही नहीं चलता कि कब भीतर प्रवेश हो गया।

ध्यान उस किरण का नाम है जो इस अंतर-गुहा में प्रवेश करती है। इस अंतर-गुहा को ब्रह्मलोक भी कहां है। क्योंकि यह अंतर-गुहा में जो प्रवेश कर जाता है, जिससे वहां मुलाकात होती है, जिस अनुभूति का वहां अनुभव होता है, वह अनुभूति ही समस्त ब्रह्मांड के हृदय में भी छिपी हुई है। जैसे मेरे छोटे से हृदय में जो छिपा है, वही इस विराट ब्रह्मांड के हृदय में भी छिपा है। जो मेरे मस्तिष्क के भीतर छिपा है, वही इस विराट मस्तिष्क के भीतर भी छिपा है।

व्यक्ती एक छोटा अणु है। इस विराट का एक छोटा जीवित प्रतिरूप है। इसलिए उसे हृदय की गुफा भी कहा, उसे ब्रह्मलोक भी कहा। आण्विक अर्थों में हम उसे जानेंगे अपने भीतर, और तब हम परम अर्थों में उसे

विराट के भीतर अनुभव कर लेंगे। अपने हृदय में प्रवेश परम हृदय में प्रवेश का पहला चरण है। कला हमें आगई। हम समझ गए।

करीब-करीब वैसा ही है जैसे किसी बच्चे को अगर नदी में तैरना सिखाना होता है, तो नदी के किनारे तैरना सिखाते हैं, जहां डूबने का डर न हो। उथले में तैरना सिखाते हैं। मतलब यह हुआ कि वहां तैरना सिखाते हैं जहां तैरने की कोई जरूरत न हो। क्योंकि तैरने की जरूरत हो तब तो खतरा आ जा। तैरना वहां सिखाते हैं जहां तैरने की कोई जरूरत न हो। किनारे पर तैरना सिखा देते हैं। फिर एक बार तैरना आ गया तो फिर कितनी ही गहराई पर तैरा जा सकता है। क्योंकि तैरने से गहराई का कोई संबंध नहीं है। तैरना तोएक कला है। फिर कहीं भी तेरा जा सकता है। एक बार तैरना आ गया तो फिर यह सवाल नहीं है कि नदी में, कि नाले में, कि कहां। कहीं भी तैरा जा सकता है। फिर यह भी सवाल नहीं है कि मैं कितने गहरे में तैरूंगा। कि हजार फीट गहरा होगा तो तैर सकता हूं, दस हजार फीट गहरा होगा तो नहीं तैर सकूंगा। गहराई का फिर कोई संबंध नहीं है। तैरना एक कला है।

ध्यान भी एक कला है। इस हृदय की गुफा में तो हम किनारे पर तैरना सीख लेते हैं, फिर उस विराट के सागर में उतरने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती। यह किनारा है--हमारा हृदय जो है उस विराट के लिए जरा सा किनारा है। एक तट है, जिस पर बिना खतरे के तैरना सीखा जा सकता है। एक बार यह आ जाए तो ठीक तैरने ही जैसी बात है। जिसे एक दफा तैरना आ जाए पानी में तो आदमी फिर कभी भूलता नहीं है। आपने कभी कोई ऐसा आदभी देखा है जो तैरना भूल गया हो? दुनिया में सब चीजें भूली सकती है, लेकिन कोई आदमी तैरना नहीं भूलता। यह मजे की बात है। क्योंकि इस तैरने की स्मृती में कुछ भेद है क्या? जब सब चीजें भूल जाती हैं... अगर पांच साल का मैं था तो जो बातें मुझे सिखाई गई थी, वह मैं भूल गया, लेकिन तैरना मैं नहीं भूला। चाहे फिर तीस वर्ष तक तैरा ही नहीं, छुआ ही नहीं, पानी में नहीं गया। लेकिन तीस साल बाद फेंक दो मुझे पानी में तो मैं फिर तैरने लगूंगा, और उस वक्त ऐसा नहीं होगा कि मुझे याद करना पड़े कि कैसा तैरते थे? बस तैरना आ जाएगा। क्या बात है?

तैरना स्मृति अगर है, तो और स्मृतियां जब मिट जाती हैं, तैरना भी मिट जाना चाहिए। जब और स्मृतियां प्रयोग न करने से विस्मृत हो जाती हैं, तैरना भी विस्मृत हो जाना चाहिए। लेकिन तैरना नहीं मिटता, नहीं विस्मृत होता। इसका एक ही अर्थ होता है और वह अर्थ यह है कि तैरना वस्तुतः हम सीखते नहीं। क्योंकि जो भी चीज सीखी जाए, वह भूल जाती है। भूल सकती है। लेकिन यह बात अजीब लगेगी, क्योंकि तैरना हम सीखते तो हैं। तब फिर ऐसा समझें कि तैरने में हम शायद तैरना नहीं सीखते, केवल साहस सीखते हैं।

जब हम एक दफा, पहली दफा किसी व्यक्ती को पानी में फेंकते हैं तैरने के लिए. तब भी वह हाथ-पैर फेंकता है--थोड़े अव्यवस्थित। और वह जो अव्यवस्था होती है, वह भय के कारण होती है कि कहीं डूब न जाऊं। दस-पांच बार हाथ-पैर फेंक कर वह समझ जाता है कि डूबता नहीं हूं, कोई भय का कारण नहीं है। भय मिट जाता है, हाथ-पैर व्यवस्थित फेंकने लगता है, तैरना आ जाता है। तैरना जैसे उसे आता ही था, सिर्फ डूबने के भय के कारण व्यवस्थित नहीं हो पाता था। तैरना जैसे उसें मालूम ही था, सिर्फ उसके प्रयोग करने की जरूरत थी। तो तैरना हम शायद सीखते नहीं पुनर्स्मरण करते हैं। यह मैं उदाहरण के लिए कहा रहा हूं।

क्योंकि ठीक ऐसा ही ध्यान के संबंध में होता है। और ठीक ऐसा ही हृदय की गुफा में होता है। एक बार ध्यान आ जाए, तो फिर नहीं भूला जाता। एक किरण ध्यान की उपलब्ध हो जाए, एक झलक तो फिर उसे कभी नहीं भुलाया जा सकता। फिर कोई उपाय नहीं है। फिर आप वही आदमी नहीं हो सकेंगे, जो इस ध्यान के

अनुभव के पहले थे। यह अनुभव अब आपकी आत्मा हो जाएगा। और यह भी इसीलिए कि ध्यान भी सीखना कम है, शायद पुनर्स्मरण है। शायद ध्यान को हम जानते ही हैं किसी गहरे तल में। सिर्फ थोड़े से अभ्यास की जरूरत है कि जिसे हम जानते ही हैं, वह प्रगट होकर जाना जा सके। शायद जो छिपा ही है, थोड़ी धूल-धवांस हटा दी जाए और वह निकर जाए और जाता हो जाए। शायद कोई दरर्पण, जिस पर धूल जम गई है, पोंछ दिया जाए और दर्पण में तस्वीर बन जाए।

जब दर्पण में धूल जमी थी तब भी दर्पण दर्पण ही था। धूल से दर्पण मिटता नहीं। लेकिन धूल से मेरा प्रतिबिंब बनना तो बंद हो जाता है। धूल हट जाती है, दर्पण तोपहले भी दर्पण था, अब भी दर्पण है, लेकिन अब प्रतिबिंब बनता है। ध्यान भी ऐसी ही प्रक्रिया है, जिससे हम भीतर इकट्ठी हो गई धूल हो हटा देते है, दर्पण साफ हो जाता है। तैरना आ जाता है। और एक बार आ जाए, साफ हो जाए, तो फिर कला हमें आ गई। फिर हम किसी बड़े से बड़े सागर में भी उतर सकते हैं। और दर्पण हमें मिल गया, उसमें हम-हम अब अपना ही नहीं, परमात्मा का भी प्रतिबिंब उपलब्ध कर सकते हैं। इसलिए उसे ब्रह्मलोक भी कहा। और कहा, वह परमतत्व भीतर इस गुफा में आलोकित है। जैसे कोई दीया जल रहा हो, चारों तरफ गुफा घिरी हो, गुफा के बाहर अंधेरा हो और हम अंधेरे में जी रहे हों; और गुफा के भीतर दीया जल रहा हो। और गुफा के भीतर हम जाएं तो हम हैरान हों कि यह दीया तो सदा ही जल रहा था, यह ज्योति तो कभी बुझी न थी।

इस अंतर-गुहा में जलने वाली ज्योति के ही कारण पारसियों ने निरंतर अपने मंदिर में आग को जलाने का प्रतीक चुना। लेकिन भूल गए कि यह आग किसलिए जला रहे हैं चौबीस घंटे। आग बुझे न, जलती ही रहे, यह सिर्फ प्रतीक था। उस भीतर की गुफा में जरथुस्त्र को पता चला था, जरथुस्त्र ने जाना था कि भीतर की गुहा में जाकर देका कि वहां जो ज्योति जलती है बिना ईंधन के, बिना तेल के, और शाश्वत है, और कभी बुझी नहीं, वह जीवन का स्वरूप है, वही जीवन है। जरथुस्त्र को जो प्रतीत हुआ था, वह जरथुस्त्र के अनुयायियों ने मंदिर में स्थापित किया। सुंदर था। यह स्थापित करना सिंबॉलिक था। कलात्मक था। लेकिन हमारे सब सत्य संकेतों में खो जाते हैं।

फिर अब वे रोज दीया जलाए चले जा रहे हैं, या आग जलाए चले जा रहे हैं। मंदिर उनका अगियारी हो गया; उसमें आग जलती रहती है चौबीस घंटे, आग न बुझ पाए, इसकी बड़ी चेष्टा करते हैं; लेकिन वह भीतर का मंदिर जिस आग की यह खबर देता था, उसकी कोई स्मृति ही नहीं है। यह आग तो जलानी ही पड़ती है। और जिस आग को जलाना ही पड़ता है, वह न बुझने वाली आग नही। और इसको तो चौबिस घंटे सम्हालना ही पडता हैं। और जिसको सम्हालना ही पड़ता है वह जीवन की आग नहीं।

एक ऐसी आग, एक ऐसी ज्योति भीतर है, जो जलती ही रहती है बिना संभाले, बिना ईंधन के, बिना तेल के, बिना किसी सहारे के। जो जीवंत, शाश्वत जीवंत है। उस, उस ज्योति को कहा कि वह परमतत्व भीतर आलोकित ही है और निष्ठावान साधक उसे पा लेता है।

निष्ठावान साधक के संबंध में भी दो शब्द समझ लेने चाहिए। निष्ठावान साधक का क्या अर्थ है? श्रद्धा और निष्ठा में क्या फर्क है? सुबह हमने श्रद्धा की बात की। निष्ठा दूसरा तत्व है, बहुत भिन्न। आमतौर से हम श्रद्धा और निष्ठा को एक ही तरह प्रयोग कर लेते हैं।

निष्ठा का अर्थ हैः यह जो खोज है, यह दुरूह है; और यह जो खोज है, एक दिन में पूरी होनेवाली नहीं है; और यह जो खोज है, अनेक-अनेक असफलताएं इसमें अनिवार्य हैं। इसमें बहुत बार हारना पड़ेगा। बहुत बार टूट जाना पड़ेगा। बहुत बार ऐसा होगा कि लगेला--हाथ में कुछ भी नहीं आता, छोड़ें बंद करें। निष्ठा का अर्थ हैः जब

असफलता हाथ लगे तब भी प्रयास जारी रहे। निष्ठा का अर्थ हैः जब असफलता हाथ लगे तब भी प्रयास में रत्ती-भर फर्क न हो।

जब सफलता हाथ लगती है तब तो निष्ठा की कोई जरूरत ही नहीं होती। तब तो सफलता ही चलवा देती है। जब कोई आदमी किसी काम में सफल होता है, तो निष्ठा की बिल्कुल जरूरत नहीं होती, क्योंकि सफलता ही धक्का देती है, अगले कदम को उठवा देती है। लेकिन जब असफलता हाथ लगती है, तब पैर उठते नहीं। असफलता भारी हो जाती है। पैरों पर पत्थर बंध जाते हैं। पैर उठने से इनकार कर देते हैं। तब तो निष्ठा ही पैर उठा सकती है। तो निष्ठा का अर्थ हुआ कि असफलता को जो असफलता न माने, हार को जो हार न माने, पराजय को जो पराजय न माने, और उठाता ही चला जाए, उठाता ही चला जाए कदम; कितनी ही हो हार, लेकिन किसी हार को हार न माने।

मैंने सुना है, एडीसन अपनी अन्वेषणाशाला में एक प्रयोग कर रहा था। और उसने एक नये युवक वैज्ञानिक को सहयोगी की तरह रखा था। बहुत विचारशील युवक था, तर्कनिष्ठ था, वैज्ञानिक प्रतिभा का था। और जिस प्रयोग में वे लगे थे, रोज उस पर प्रयोग करते। अठारह-अठारह घंटे उस पर नष्ट करते, और राज असफल होकर वापस लौटते। बूढ़ा एडीसन और वह युवक। तीन महीने हो गए, रोज यह चला। तीन महीने बाद उस युवक ने जवाब दे दिया। जवाब तो वह बहुत दिन पहले से देना चालता था, लेकिन एडीसन--बूढ़े एडीसन की आंखों में जो--जो निष्ठा का दीया जलता था, उसकी वजह से उसकी हिम्मत नहीं पड़ती थी।

रोज एडीसन सुबह होते से ऐसा चला आता था सैजे ताजा बच्चा भागा हुआ अपनी प्रयोगशाला में आ रहा हो। वह युवक तय करके आता था घर से कि आज कह देंगे कि अब क्षमा करो, यह काम अपने बस का नहीं, और यह कभी पूरा होगा नहीं, और ऐसा लगता है कि हमने कुछ गलत ही चुन लिया है, यह, यह प्रयोग होने वाला नहीं है। और इतने हार चुके हो--इतनी बार, इतनी दिशाओं से प्रयोग कर चुके, राख हाथ में लगती है, फिर भी पागल हो कि लगे ही चले जा रहे हो। छोड़ो भी! कुछ और करें, जिसमें सफलता मिले। लेकिन एडीसन की आंखों में जलती हुई ज्योति को देख कर उसकी हिम्मत न पड़ती थी। क्योंकि उसे लगता कि यह बूढ़ा और अभी इतना जवान है और मैं जवान और इतने बुढ़ापे की बात करूं, यह ठीक नहीं है। लेकिन तीन नहीने बहुत हो गया। न रात सो पाता था, न दिन चैन थी। न प्रयोग पूरा होता था, न प्रयोग समाप्त करता था एडीसन। आज हार जाते, कल फिर दूसरे ढंग से शुरू होता।

तीन महीने बाद एक दिन उसने सुबह एडीसन की आंख की तरफ नहीं देखा, नीचे ही आंखें रख कर उसने एडीसन से कहा कि क्षमा करें... एडीसन ने कहा कि आंख ऊपर करो। उसने कहा आंख ऊपर करके ही मैं झंझट में पड़ा हूं, तीन महीने से निरंतर आंख ऊपर करता हूं उसी में तो... नहीं, आज आंख ऊपर करनी ही नहीं है। यह प्रयोग सफल होने वाला नहीं है। एडीसन ने कहा, क्या तू पागल है? सफलता के इतने करीब आकर! उस युवक ने कहाः सफलता के करीब? पहले दिन जितने करीब थे, उतने भी करीब अब नहीं हैं। तीन महीने, हर तरफ से खोज लिया, सब रास्ते बेकार हो गए!

एडीसन ने कहा कि तुझे गणित नहीं आता। इतने रास्ते हमने देख लिए, ये बेकार हो गए, इसका मतलब यह हुआ कि अब बेकार रास्ते कम रह गए। अगर हमने दो सौ रास्ते देख लिए, अगर तीन सौ रास्ते होंगे, तो अब सौ ही बचे। सफलता के हम करीब आ रहे हैं। आज नहीं कल, आज नहीं कल हार-हार कर हम जीत ही जाएंगे। क्योंकि अंततः कोई एक रास्ता होगा, जो सही होगा। हम गलत को काटते जा रहे हैं कि यह भी गलत

हुआ; जीत करीब आ रही है। तू कैसा पागल है। तीन महीने मेहनत करके और लौटने की बात सोचता है। अब तो हम बिल्कुल करीब हैं।

यह निष्ठा है!

निष्ठा का अर्थ हैः पराजय के समक्ष विजय की आस्था। हार के समक्ष, असफलता के समक्ष भी सफलता का ही सूत्र। मेरे रास्ते पर एक पत्थर पड़ा हो, तो मैं चाहूं तो समझ लूं कि यह बाधा है और रास्ता समाप्त हुआ। यह निष्ठाहीन आदमी का लक्षण है। चाहूं तो मैं यह समझूं कि रास्ते पर एक सीढ़ी मिल गई, अब मैं इस पर चढ़ूंगा, और रास्ता अब थोड़ी ऊंचाई पर शुरू होगा। तो जो पत्थर है रास्ते का, वह सीढ़ी भी हो सकता है, वह बाधा भी हो सकता है। वह स्वयं में न तो बाधा है और न सीढ़ी। वह बाधा बन जाती है, अगर मेरे भीतर निष्ठा न हो। और वह सीढ़ी बन जाती है, अगर मेरे भीतर निष्ठा हो।

यह जो परमतत्व है, यह जो गुहा में छिपा हुआ अमृत है, यह जो स्वर्ग के पार हृदय की गहनता में डूबा हुआ ब्रह्मलोक है, इसे पाना अनंत-अनंत असफलताओं के बीच से निखरी हुई सफलता से होता है। बहुत बार हार कर इसमें जीत मिलती है। बहुत बार टूटकर इसमें व्यक्ती जुड़ता है, इकट्ठा जाता है। बहुत बार चूक कर यह मिलन होता है। बहुत बार करीब-करीब से गुजर जाते हैं--इतने करीब से, कि लगता है कि अब बंद करो। अब नहीं हो सकेगा। और जब भी ऐसा लगता हो, तभी निष्ठा की जरूरत पड़ती है। श्रद्धा के बिना कोई प्रारंभ नहीं करता, निष्ठा के बिना कोई अंत को उपलब्ध नहीं होता। श्रद्धा से शुरुआत होती है, निष्ठा से पूर्णता होती है। इसलिए कहा कि निष्ठावान साधक इस तत्व को पा लेता है।

इतना ही।

अब हम रात्रि के ध्यान के लिए तैयार हों। दो-तीन बातें खयाल में ले लें। रात्रि के ध्यान में कोई वस्त्र नहीं निकालें। सिर्फ सुबह के ध्यान में किसी को वस्त्र निकालना हो तो निकाले। रात्रि के ध्यान में कोई वस्त्र न निकाले खयाल रखें।

रात्रि के ध्यान में जिन मित्रों को बहुत तीव्रता से करना हो, वे मेरे आस-पास आ जाएंगे। जिनको उतनी तीव्रता से न करना हो, वे पीछे के घेरे में खड़े होंगे। वैसे कोशिश प्रत्येक करे, जितनी तीव्रता से हो सके उतना ही परिणामकारी है। मेरी तरफ अपलक आंखों से देखना है। पलक न झपे। और नाच कर, कूद कर शक्ती को जगाना है, और शक्ती जागती है तो उसको हू, हू की आवाज से चोट करना है।

चौथा प्रवचन

अज्ञान व ज्ञान के विसर्जन में परम अनुभव

वेदान्तविज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे।। 4।।

अंततः वे ही योगी लोग परमतत्व को प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं, जो वेदांत में निहित विज्ञान का सुनिश्चित अर्थ जानते हैं और संन्यास व योगाभ्यास से अंतःकरण को परिशुद्ध करके ब्रह्मलोक में जाने का प्रयत्न करते हैं।। 4।।

कुछ शब्दों के अर्थ समझने से इस सूत्र को शुरू करें।

पहला शब्द है--वेदांत। वेदांत से सदा ही ऐसा समझा जाता रहा है कि वेद जिन उपनिषदों में पूरे होते हैं, वे उपनिषद; वेद जहां अपने शिखर को पाते हैं, वे उपनिषद वेदांत हैं। पर वैसा अर्थ बहुत गहरा नहीं है और सही भी नहीं।

वेदांत का अर्थ है... वेद का अर्थ हैः ज्ञान... जहां समस्त ज्ञान का अंत हो जाता है, जहां समस्त ज्ञान समाप्त हो जाता है। जहां जानना भी छूट जाता है, सिर्फ होना ही रह जाता है। वेदांत का ठीक-ठीक अर्थ हैः जहां जानने की भी अशांति नहीं रह जाती। जहां सिर्फ होना ही रह जाता है।

जानना भी एक तनाव है। आप खड़े हैं एक वृक्ष के पास और फूल को जानते हैं, तो जानना एक तनाव है। जानना भी एक अशांति है। जानने में भी आप थक जाएंगे। जानने से आप ऊब जाएंगे। थोड़ी देर में आप जानने से भी बचना चाहेंगे। क्योंकि जानना एक क्रिया है, चेष्टा है। और जानने में आप दूसरे से संबंधित होते हैं। जानने का अर्थ ही यह हाता है, माता और मेय के बीच जो संबंध निर्मित होता है, ज्ञाता और ज्ञेय के बीच जो सेतु बनता है, उसी का नाम जानना है। यह जानना भी आखिरी अशांति है। यह आखिरी तनाव है। यह जानना भी जहां छूट जाता है, सिर्फ होना ही रह जाता है, उस होने में जहां जानने की तरंग भी नहीं उठती, जहां कुछ जाना भी नहीं जाता, जहां कोई जानने की आकांक्षा भी नहीं है, उस परम विश्राम के क्षण में ही वेदांत उपलब्ध होता है।

वेदांत का अर्थ है--ज्ञान का जहां अंत हो जाए। ज्ञान से भी जहां छुटकारा हो। ज्ञान भी गहरे में एक बंधन है।

इसे हम दो-चार मार्गों से समझें, तो खयाल आ सके।

दूसरे भी द्वंद्व हमारे पास हैं, उनमें समझना ज्यादा आसान है। जैसे, मैंने कल आपको कहा, दुख छूटे, सुख भी छूटे, तभी हम स्वयं में प्रवेश करते हैं। और मैंने आपसे कहा, जब तब सुख न छूटे, तब तक दुख नहीं छूट सकता। यह हमारी समझ में आ जाता है। अब ठीक इसको हम इस दूसरे द्वंद्व पर भी समझें। अज्ञान छूटे, ज्ञान भी छूटे, तो ही परम अनुभव शुरू होता है। और जब तक ज्ञान न छूटे, तब तक अज्ञान भी नहीं छूटता। सुख और दुख एक द्वंद है। मान और अज्ञान भी एक द्वंद्व है। दुनियामें ज्ञानी हुए हैं, जिन्होंने कहा, अज्ञान छूटे। लेकिन सिर्फ इस भूमि पर ऐसे परम मानी हुए हैं जिन्होंने कहा, ज्ञान भी छूटे।

वेदांत का अर्थ हैः जहां ज्ञान भी छूट जाता है। जहां ऐसा नहीं कि कुछ जानने को शेष रह जाता है; अज्ञान तो छूट ही जाता है, लेकिन मैं कुछ जानता हूं, यह भाव भी छूट जाता है।

अब इसे हम एक और तरह से समझें।

अज्ञान का अर्थ होता है--कोई चीज जिसे मैं नहीं जानता हूं। अज्ञान मिट जाए तो एक स्थिति बनेगी, जब मैं कह सकता हूं मैं सब जानता हूं। अज्ञान दूसरे से संबंधित था। कोई चीज अनजानी थी, इसलिए अज्ञान था। अज्ञान अहकार को निर्मित नहीं करता। क्योंकि मैं नहीं जानता हूं, तो अहकार कैसे निर्मित होगा? ज्ञान अहंकार को निर्मित करता है। मैं जानता हूं, तो "मैं" मजबूत होता हूं। अज्ञान वस्तुओं से संबधित है, ज्ञान अहंकार से। तो जब मैं कहता हूं मैं जानता हूं, तो "मैं" मजबूत होता हूं। अज्ञान वस्तुओं से संबंधित है, मान अहकार से। तो जब मैं कहता हूं मैं जानता हूं, तो "मैं" मजबूत होता है। जोर "मैं" पर पड़ता है। और जब"मैं" कहता हूंमैं नहीं जानता हूं, तो मैं इतना ही कहता हूं कि कोई चीज अनजानी है, अपरिचित है, नहीं जानता हूं। अहंकार अज्ञान से मजबूत नहीं होता।

अज्ञान में भूलें होती हैं। अज्ञान में नासमझियां होती हैं। बहुत-बहुत नासमझियां होती हैं, बहुत-बहुत भूले होती हैं। ज्ञान में एक भूल होती है, और एक ही नासमझी होती है, वह अहंकार है। अज्ञान में अनेक बीमारियां घेरती हैं, ज्ञान में एक ही बीमारी घेरती है। वह अहंकार है। मगर ध्यान रहे, सब बीमारियों का जोड़ भी अहकार से छोटा पड़ता है।

तो प्रक्रिया है ज्ञान से अज्ञान को मिटाएं। लेकिन फिर ज्ञान को पकड़ कर न बैठ जाएं। पैर में मेरे कांटा गड़ जाए, . तो एक दूसरे कांटे से उस कांटे को निकालना पड़ता है। लेकिन ध्यान रहे, दूसरा कांटा भी कांटा ही है। और अगर आपने ऐसा सोचा--जो कि बिल्कुल तर्कयुक्त होगा--कि इस कांटे ने इतनी सहायता दी कांटा निकालने में, तो इसे कांटा न समझें, तो आप भूल में पड़ जाएंगे। यह निकाल ही इसलिए पाया पहले कांटे को क्योंकि यह भी कांटा है। और संभावना तो यह है कि यह पहले कांटे से ज्यादा मजबूत कांटा है, इसीलिए निकाल पाया। अगर आपने सोचा कि इसने कृपा की कि पहले कांटे से छुटकारा दिलाया, तो अज जिस घाव में पहला कांटा था उसमें इस कांटे को रख लें तो यह तर्कयुक्त तो होगा--क्योंकि इसने इतनी सहायता की, वक्त पर काम दिया, और अब इसको छोड़ दें, यह अच्छा मालूम होता नहीं--तो आप कांटे से छूटे जरूर लेकिन और बड़े कांटे से बिंध गए। और अगर यह तर्क आपके मन में फंस जाए, तो आप कांटे से फिर कभी छुटकारा न पा सकेंगे।

अज्ञान में थोड़ा दुख था! अज्ञान चुभता था, घाव करता था, उसमें ही दुख था। अब घाव यह दूसरा कांटा करेगा, और दुख जारी रहेगा। इस कांटे को फेंक दें, सधन्यवाद! धन्यवाद जरूर दे दें, सेवा उसने की है, पर फेंक दें। वह भी कांटा ही है। अज्ञान को निकालना है ज्ञान से, लेकिन ज्ञान को रख कर मत बैठ जाएं, वही वेदांत का निहित अर्थ है। पेंक दें ज्ञान को भी। ज्ञान की उपादेयता तभी तक है जब तक अज्ञान का कांटा नहीं निकला है। निकलते ही अज्ञान का कांटा, ज्ञान व्यर्थ है।

एक आदमी बीमार है। तो औषधि की जरूरत तभी तक है जब तक वह बीमार है। ठीक से समझें तो आदमी को औषधि की जरूरत नहीं है, बीमारी को औषधि की जरूरत है, आदमी औषधि नहीं खाता, बीमारी औषधि खाती है। तो जैसे ही बीमारी समाप्त हो जाती है, औषधि व्यर्थ हो जाती है।

ज्ञान आपको नहीं चाहिए, आपके अज्ञान की बीमारी को काटने की औषधि मात्र है। लेकिन अनेक ऐसे बीमार हैं कि बीमारी तो छूट जाती है, औषधि पकड़ जाती है। और ध्यान रहे, बीमारी से छुड़ाना आसान है,

औषधि से छुड़ाना बड़ा मुश्किल है। अगर औषधि पकड़ जाए तो छुड़ाना बहुत मुश्किल है। क्योंकि औषधि दुश्मन नहीं मालूम होती, मित्र मालूम होती है। जो बीमारी शत्रु मालूम होती है, कठिन नहीं छूटना उससे। जो बीमारी मित्र मालूम होने लगी, उससे छूटना बुहत कठिन हो जाएगा। शत्रु से बचा जा सकता है, मित्र से बचना बहुत मुश्किल है। और ज्ञान ऐसा ही शत्रु है जो मित्र की तरह दिखाई पड़ता है। क्योंकि अज्ञान के शत्रु को हटाता है, तोड़ता है।

वेदांत का अर्थ हैः मान के प्रति सचेत रहना, उसे भी पकड़ नहीं लेना है। अज्ञान छूटता है तो आदमी ज्ञानी होता है। और जब ज्ञान भी छूटता है तब आदमी अनुभवी होता है। ज्ञानी तो अश्वलायन भी था। महर्षि था, अनुभवी नहीं था। अज्ञान की जगह उसने ज्ञान को पकड़ लिया था। अनुभव से उतना ही वंचित था जितना अमानी वंचित होता है। इसीलिए तो पूछने आना पड़ा है उसे गुरु के पास।

तो गुरु जो कह रहा है, उसमे पहली बात कही है उन्होंने--परम तत्व को प्राप्त करने के अंततः वे ही अधिकारी होते हैं जो वेदांत में निहित विज्ञान का सुनिश्चित अर्थ जानते हैं। तो पहला शब्द तो "वेदांत" हम समझें। ज्ञान से मुक्ती।

दूसरी बात हम समझें--"वेदांत में निहित विज्ञान का सुनिश्चित अर्थ।"

जब तक कोई अनुभव को उपलब्ध नहीं होता तब तक सभी अर्थ अनिश्चित होते हैं। कितना ही आप जान लें, जानना आपको अनिश्चित के ऊपर नहीं ले जाता। बल्कि सच तो यह है कि जितना ज्यादा आप जानते हैं, उतना अनिश्चित बढ़ जाता है। पंडितों की कठिनाई यही है, वे इतना जानते हैं कि निश्चिय खो जाता है। अज्ञानी बड़े निश्चित होते हैं।

इसलिए दुनिया में अज्ञानी जितना उपद्रव करवाते हैं, उतने ज्ञानी नहीं करवा पाते। क्योंकि अज्ञानी इतना सुनिश्चित मालूम पड़ता है खुद के भीतर कि वह किसी भी चीज में जी-जान लगा देता है। अज्ञानी की बीमारी यह है कि वह किसी भी चीज में जी-जान लगा सकता है, सुनिश्चित होता है। सुनिश्चितता उसकी बिल्कुल भ्रांत है। न जानने के कारण है।

ज्ञानी एकदम अनिश्चित हो जाता है। कुछ भी करने जाए तो हजार विकल्प उसे दिखाई पड़ते हैं। एक-एक शब्द में हजार अर्थों की झलक मिलने लगती है। एक-एक- सूत्र में हजार-हजार दिशाएं प्रकट होने लगती हैं। कहां जाए, कैसे जाए, क्या चुने, जाना ही बंद हो जाता है, खड़ा हो जाता है। अज्ञानी जाने में बड़े तीव्र होते हैं। कहीं भी चले जाते हैं। क्योंकि उन्हे ज्यादा दिखाई नहीं पड़ता। एक ही मार्ग दिख जाता है थोड़ा तो उतनी झलक उनको ले जाने के लिए काफी है। लेकिन ज्ञानी लचने में असमर्थ हो जाते हैं। वे खड़े रह जाते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, जब तक अर्थही तय न हो जाए... ।

बुद्ध ने कहा है, एक पंडित को तीर लग गया था। बुद्ध पास से गुजरते हैं, तो उन्होंने कहा मैं यह तीर खींच दूं। उस पंडित ने कहा, पहले यह साफ हो कि तीर किसने मारा? क्यों मारा? मारने वाला मित्र है याशत्रु है? प्रयोजन क्या है? अगर मैं मर जाऊंगा तो यह बुरा होगा, या मैं बच जाऊंगा तो वह बुरा होगा? मेरा बचना सुनिश्चित रूप से हितकर है, या मेरा मर जाना? जब तक यह तय न हो जाए तब तक तीर को कैसे निकालें? फिर यह तीर जहर-बुझा है कि नहीं बुझा है? यह नियति है या संयोग है? यह मेरा भाग्य है, या सिर्फ एक दुर्घटना है? यह सब साफ हो जाए, फिर तीर को खींचें।

तो बुद्ध ने कहा--यह साफ तो शायद कभी न हो पाएगा। एक बात साफ है कि इसे साफ करने में तुम मिट जाओगे, मर जाओगे। लेकिन उस पंडित ने कहा, बिना सुनिश्चित किए कुछ कार्यकरना उचित भी तो नहीं है।

अज्ञानी तीव्रता से चला जाता है अंधकार में भी। ज्ञानी को अगर प्रकाश भी दिखाई पड़े तो इतने रूपों में दिखाई पड़ता है कि खड़ा रह जाता है, चल नहीं पाता।

इसलिए दूसरा अर्थ हम समझ ले सुनिश्चित, सुनिश्चितता का।

एक सुनिश्चिय है अज्ञान का, अनिश्चिय है ज्ञान का। फिर एक और सुनिश्चिय है अनुभव का। और अनुभवी जब सुनिश्चित होता है, तब एक अर्थ में वह पुनः अज्ञानी जैसा सुनिश्चित हो जाता है।

रामकृष्ण के पास विवेकानंद जाते हैं तो रामकृष्ण बिल्कुल सुनिश्चित हैं। विवेकानंद पूछते हैं कि ईश्वर है? तो रामकृष्ण कहते हैं? यह बेकार की बात क्यूं करनी, तुझे मिलना है? यह उत्तर ज्ञानी के पास नहीं मिल सकता था। विवेकानंद ज्ञानी के पास भी गए थे। महर्षि देवेंद्रनाथ के पास भी गए थे। महर्षि थे। आश्वलायन जैसे ही महर्षि थे।

विवेकानंद देवेंद्रनाथ के पास जाकर भी यही पूछे थे--ईश्र है? मगर पूछने का ढंग ऐसा था कि मानी घबड़ा गया। विवेकानंद ने कोट का कालर पकड़ कर, हिलाकर पूछा--ईश्वर है? झिझिक गए देवेंद्रनाथ। कहा कि बैठो। आहिस्ता से बैठो। फिर मैं बताऊं। लेकिन विवेकानंद ने कहा--आपकी झिझक ने सब कुछ कह दिया। आप झिझक गए, आपका उत्तर एक झिझक से आ रहा है। आपको भी पता नहीं है। जानते होंगे आप बहुत कुछ उसके संबंध में, उसे नहीं जाना है।

ठीक यही की यही बात रामकृष्ण से पूछी। लेकिन रामकृष्ण! रामकृष्ण ने उलटी हालत पैदा कर दी। रामकृष्ण ने कहा कि यह फिजूल की बातचीत मत कर! तुझे मिलना हो तो बोल! यह प्रश्न के उत्तर में दूसरा प्रश्न था। और इसने विवेकानंद को झिझका दिया। और विवेकानंद ने कहा--यह तो मैं अभी सोचकर नहीं आया था। अभी तो सिर्फ पूछने आया था। मुझे थोड़ा मौका दें तो मैं सोचूं कि मुझे मिलना है या नहीं।

जब भी किसी अनुभवी के पास आप जाएंगे, तो उसकी सुनिश्चतता प्रगाढ़ है। उसकी प्रगाढ़ता को अगर हम ठीक से समझें, तो कहना होगा--उसकी प्रगाढ़ता में विरोधी स्वर ही नहीं है।

सुना है मैंने, झेन फकीर हुआ--बोकोजू। उसके पास एक नास्तिक मिलने गया। और उस नास्तिक ने कहा--मैं तो ईश्वर को नहीं मानता हूं। तो बोकोजू के शिष्यों ने समझा कि अब बोकोजू उसे समझाएगा कि ईश्वर है। लेकि बोकोजू ने कहा--तो मत मानो। तो उसे नास्तिक ने कहा--आप मुझे समझाएंगे नहीं? तो बोकोजू ने कहा कि तुम्हारे न मानने से अगर उसके होने में जरा भी बाधा पड़ती, तो मैं समझाता। मत मानो! लेकिन नास्तिक आग्रहशील था और बोकोजू को विवाद में खींचना चाहता था। तो उसनेक हा--नहीं, इतने से मैं लौट जानेवाला नहीं हूं। या तो तुम कहो कि वह है, तो सिद्ध करो। और अगर सिद्ध नहीं करते हो, तो कहो कि वह नहीं है। तो ही मैं जा सकता हूं।

तो बोकोजू ने कहा इसमें कोई कठिनाई नहीं है। मैं कहता हूं कि ईश्वर नहीं है। नास्तिक थोड़ा घबड़ाया और उसने कहा कि तुम कहते हो नहीं है! बोकोजू, तुम कहते हो कि नहीं है! बोकोजू ने कहा कि मेरे यह कहने से भी उसके होने में कोई फर्क नहीं पड़ा। और मैं उसके संबंध में इतना आश्वस्त हूं कि इनकार भी कर सकता हूं। उसके होने में इतना आश्स्त हूं कि मुझे उसको इनकार करने में भी डर नहीं लगता। वह है ही। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता कि बोकोजू क्या कहता है। मेरी बातें बेकार हैं। हां कहूं, ना कहूं, उसके होने में कोई फर्क नहीं पड़ता। और फिर मैं इतना आश्वस्त हूं। मैं कोई; डरा हुआ आस्तिक नहीं हूं कि मुझे भय लगे कि मैंने कह दिया नहीं है। सारा जगत नहीं कह दे, खुद ईश्वर मेरे सामने खड़ा होकर कह दे कि मैं नहीं हूं, तो भी मैं हंस कर टाल सकता हूं। वह है।

यह जो सुनिश्चिय है, यह सुनिश्चिय ज्ञान से नहीं आता। ज्ञान से अनिश्चिय आता है। अज्ञान में सुनिश्चिय है, पर वह अंधेरे का सुनिश्चिय है। क्योंकि हम कुछ भी नहीं जानते, इसलिए निश्चित मालूम पड़ते हैं। वह निश्चय काम का नहीं है, खतरे का है। खतरनाक है। अंधे का निश्चिय है, जो दीवाल में भी दरवाजा मान सकता है। इसलिए नहीं कि दरवाजा दिखाई पड़ता है, इसलिए कि दरवाजा दिखाई ही नहीं पड़ता है। इसलिए कहीं भी माने, मानना ही पड़ेगा। मानना ही उसके लिए उसका जानना है। अंधे को भी चलना पड़ेगा और चलना है तो दरवाजा मान कर चलना पड़ेगा। टकराएगा सिर, तो भी कल किसी दूसरी दीवाल में दरवाजा मान लेगा और सुनिश्चित रहेगा, नहीं तो फिर पैर उठ नहीं सकते।

ज्ञानी खड़ा हो जाता है, ठिठक जाता है। अनेक दरवाजे दिखाई पड़ने लगते हैं। कौन सा दरवाजा सही है? कौन सा मार्ग उचित है? कौन सी साधना से चलूं? कौन सा पथ चुनूं? इन सब चुनाव और विचार में इतनी शक्ति व्यय होती है कि चलने योग्य कुछ बचता नहीं। और यह निर्णय करना कठिन है। यह निर्णय करना ऐसा ही कटिन है जैसे कोई आदमी कहे कि तैरना तो मुझे सीखना है, लेकिन जब तक मैं तैरना न सीख लूं तब तक पानी में कैसे उतरूं? और ठीक कहता है। क्योंकि पानी में उतर जाए बिना तैरना सीखे, तो खतराहै। तो पहले तैरना सीख लें, फिर पानी में उतरे।

संगत है उसकी बात, लेकिन वह कभी पानी में अब उतर न पाएगा। क्योंकि तैरना सीखने के लिए भी पानी में ही उतरना पड़ता है। असल में जिसे भी तैरना सीखना है, उसे बिना तैरना जाने ही पानी में उतरने का साहस जुटाना पड़ता है। तभी तो वह तैरना सीख पाता है। ज्ञानी तट पर खड़ा हो जाता है और सोचने लगता है मार्गों के द्वारों के, विचारों के, सिद्धांतों के बीच--किसको चुनूं? कौन सी नाव मुझे पार ले जाए,? पार जाना इतना महत्वपूर्ण नहीं रह जाता है, जितना नावें महत्वपूर्ण दिखाई पड़ने लगती हैं--कि कोई नाव डुबा तो न देगी? कहीं नाव गलत तो न ले जाएगी? दिशा कहीं भ्रांत तो न हो जाएगी? खेवैया जोजुन रहा हूं, वह पहुंचा पाएगा या नहीं पहुंचा पाएगा? ज्ञानी दिग्भ्रांत हो जाता है। अज्ञानी अंधा होता है। मानी दुविधा में पड़ जाता है। अज्ञानी कुछ भी पागलपन करने में उतर जाता है, ज्ञानी के सामने मार्ग भी आ जाए तो भी सोच-विचार में चूक जाता है।

तो सुनिश्चित अर्थ का अर्थ है--अनुभव के अतिरिक्त वेदांत का जो सुनिश्चित अर्थ है वह प्रकट नहीं होगा। तो जिन्हें जानना है, अनुभव करना है--जानना नहीं, अनुभव करना है--पहचानना है, प्रत्यभिज्ञा करनी है उस अर्थ की जो वेदांत में छिपा है, उन्हें अनुभव से चलना पड़े।

और ध्यान रहे, अगर कोई गलत मार्ग पर भी चला जाए, साहसपूर्वक, बोधपूर्वक, समझपूर्वक, तो गलत मार्ग पर जाकर भी अनुभव के द्वार खुलते हैं। खड़े रहने की बजाय तो गलत मार्ग पर चला जाना भी बेहतर है। क्योंकि खड़ा हुआ आदमी सही तो दूर, गलत भी नहीं कर पाता। खड़ा हुआ आदमी कहीं पहुंचता ही नहीं। और गलत भी कोई चला जाए तो भी यह जानना, यह पहचानना, यह यात्रा अनुभव बनती है, प्रौढ़ता लाती है। कोई चीज बढ़ती है भीतर। एक तो कम-से-कम पक्का हो जाता है कि इस तरह के गलत मार्ग पर यह आदमी दुबारा न जाए। यह भी कम नहीं। और हम गलत कर-कर के ही तो सही की तरफ जाना सीखते हैं। और कोई उपाय भी तो नहीं है।

भूल करना बुरानहीं है, एक ही भूल बार-बार दोहराना बुरी है। भूल करना जरा भी बुरा नहीं है। जिस आदमी ने ऐसा समझा कि भूल करना बुरा है, वह कुछ कर ही न पाएगा। और जो लोग सही तक पहुंचते हैं, वे वे ही लोग हैं जो अदम्य साहस से भूलें करने की हिम्मत रखते हैं।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि कोई एक ही भूल को बार-बार किए जाए। जो एक ही भूल को बार-बार करता है, वह भी कहीं नहीं पहुंचेगा। रोज नई भूल करने की हिम्मत चाहिए। वही खोजी का लक्षण है। जब भूल समझ में आ जाए, तो कुछ आपके हाथ लगा। कुछ बारीक, सूक्ष्म चीज आपके हाथ में आ गई। आप आगे बढ़े, आप वही न रहे। जिसने भूल की थी, अब आप वही आदमी नहीं हैं। आप दूसरे हो गए।

असत्य को असत्य की भांति जान लेना सत्य की पहचान बन जाती है। भूल को भूल की तरह देख लेना ठीक क तरफ यात्रा का प्रारंभ हो जाता है।

अनुभव पर जोर वेदांत का है। सिर्फ जानकारी परजोर नहीं है। जानकारी ज्ञान दे देती है और आदमी ठिठक कर खड़ा हो जाता है और चलने की क्षमता खो देता है। चलने की क्षमता तो वैसी ही होनी चाहिए जैसी अज्ञानी में होती है, और ज्ञान की प्रगाढ़ता वैसी होनी चाहिए सैजी ज्ञानी में होती है। अगर ज्ञानी का ज्ञान और अज्ञानी का साहस संयुक्त हो जाएं, तो अनुभव का जन्म होता है। ज्ञानी का बोध, जागरूकता और अज्ञानी का साहस, ये संयुक्त हो जाएं तो अनुभव शुरू होता है। लेकिन यह कठिन पड़ता है। जब तक अज्ञानी होते हैं तब तक बड़ा साहस होता है। और जब ज्ञानी हो जाते हैं, तो बोध तो आता है, लेकिन साहस खो जाता है। जब आंखे मिलती हैं, तब पैर लंगड़े हो जाते हैं और जब पैर ठीक होते हैं, तो आंखें नहीं होतीं।

हमने सुनी है पंचतंत्र की सभी ने कथा कि एक अंधे और लंगड़े को, जंगल में आग लग गई तो निकलना मुश्किल हो गया। वह कथा बच्चों की कथा नहीं है। वह कथा वेदांत की कथा है। हम बच्चों को पढ़ाते है, वह बूढ़ों को पढ़ानी चाहिए। वह कथा यह कहती है कि हर आदमी ऐसी स्थिति में है कि या तो वह अंधा है, तो देख नहीं सकता और जंगल में आग है! और या वह लंगड़ा है, देख सकता है तो भाग नहीं सकता; जंगल में आग है! और इसे अंधे और लंगड़े के बीच अगर कोई संबंध न हो जाए, तो वह जलेगा इस जंगल में ही। वह निकल नहीं सकता बाहर। वह जन्मों-जन्मों तक जलेगा।

यह अंधा और लंगड़ा हमारे भीतर की घटनाएं हैं। ज्ञानी अंधा है, मानी लंगड़ा है। और किसी न किसी तरह इस लंगड़े को कंधे पर बिठाना पड़े, क्योंकि यह देख सकता है। और किसी न किसी तरह इस अंधे को राजी होना पड़े चलने के लिए, क्योंकि यह चल सकता है। जिस दिन अज्ञानी के पैर और ज्ञानी की आंखों का मिलन होता है, अनुभव की यात्रा शुरू होती है। और अनुभव से सुनिश्चितता मिलती है।

मेरे पास न मालूम कितने लोग आते है। किसी की तकलीफ अंधापन है और किसी की तकलीफ लंगड़ापन है। और एक दफा अंधे को तो राजी करना आसान भी हो जाए, लंगड़ों को राजी करना बहुत मुश्किल है, क्योंकि उनको वहम है कि उनको दिखाई पड़ता है। उनको वहम है कि उनको दिखाई पड़ता है। और वे यह भूल ही गए हैं कि चलने की टांगें उनकी बिल्कुल टूट गई हैं। उन्होंने यह देखना चलने की कीमत पर पाया है। तो देखने तो वे लगे हैं, लेकिन पैरों की सारी ऊर्जा आंखों में आ गई है। अब पैर चलते नहीं, अब देख कर भी क्या होगा? इसलिए अज्ञानी उतना दुखी नहीं होता--दुखी तो होगा ही, क्योंकि अज्ञानी है--ज्ञानी बहुत दुखी हो जाता है, क्योंकि उसे अब दिखाई भी पड़ता है और चल भी नहीं पाता।

ऐसे लोग हैं, जो कहते हैं हमें मालूम है कि ठीक क्या है, लेकिन कर नहीं पाते। हमें पता है कि शुभ क्या है, लेकिन आचरण में नहीं आता। हमें पता है कि क्या होना चाहिए, वही नहीं हो पाता। और हमें पता है कि क्या नहीं होना चाहिए, वही हमसे रोज हाता है। इसकी पीड़ा बढ़ ही जाएगी। ज्ञानी की जो पीड़ा है, संताप है, वह गहन हो जाएगा। दिखाई पड़ता है, पास ही दिखाई पडता हैं, कि सरोवर है, प्यास भी मालूम पड़ती है, लेकिन पैर उठते नहीं। अंधे की भी पीड़ा है। लेकिन वह पीड़ा एक जगह ठहरे होने की नहीं है। उसे दिखाई नहीं

पड़ता कि कहां सरोवर है। प्यास का उसे पता है, पैरों में ताकत है, वह भागता रहता है--टकराता है, गिरता है, दुख पाता है। उसका दुख जो है वह टकराने से, भटकने से, गिरने से, चोट खाने से हाता है। ज्ञानी का दुख जो है, सरोवर दिखाई पड़ता है, प्यास मालूम पड़ती है, लगता है अभी प्यास और सरोवर का मिलन हो जाए, लेकिन पैर नहीं चलते।

तो किसी न किसी तरह आपको अपने भीतर के अंधे और अपने भीतर के लंगड़े को संयुक्त करना पड़े। साहस अंधा है। इसलिए जितना मूढ़ आदमी हो उतना साहसी होता है। इसलिए जिनमें हमें साहस की जरूरत रखनी पड़ती है, उनको मूढ़ बनाना पड़ता है। जैसे मिलिटरी मे हमें जरूरत होती है कि आदमी में साहस रहे, तो उसे हमे मूढ़ बनाना होता है--सब चेष्टा करके; उसमें बुद्धि पैदा न हो पाए। क्योंकि सैनिक में अगर बुद्धि हो, तो वही खतरा होगा। वह खड़ा हो जाएगा। बंदूक चलाने के पहले पूछेगा कि चलाना कि नहीं चलाना? अमरीका उस भूल में पड़ रहा है। वह अपने सैनिकों को काफी सुशिक्षित कर रहा है। वह हारेगा जगह-जगह। क्योंकि सुशिक्षित सैनिक अशिक्षित सैनिक के सामने कमी नहीं जीत सकता।

यह दुनिया की बड़ी अनूठी घटना है कि इतिहास में सदा ऐसा हुआ है कि सुशिक्षित कौमें अशिक्षित कौमों से हमेशा हारती हैं। भारत में यह हजार बार हुआ है। भारत की बड़ी से बड़ी हारों का कारण यह था कि हमारा सैनिक ज्यादा सुशिक्षित था और जो बर्बर हमला कर रहे थे, वे बिल्कुल अशिक्षित थे। उनमें साहस ज्यादा था। इनमें बुद्धि ज्यादा थी। ये बिल्कुल लंगड़े थे। उनसे नहीं टिक सके।

दुनिया में जब भी कोई सभ्यता ऊंचाई पर पहुंचती है, तो हार के करीब पहुंच जाती है। क्योंकि कोई भी नीची सभ्यता उसको मिटा डालेगी, क्योंकि उसके पास ज्यादा मूढ़ सैनिक होते हैं। मूढ़ता में एक अदम्य साहस होता है। समझदारी में झिझक आ जाती है। और ये दोनों का मेल हो, तो ही वेदांत का सुनिश्चित अर्थ खुल पाता है।

तीसरे, इस संन्यास शब्द का हम अर्थ समझ लें, फिर सूत्र को लेंगे।

"वेदांत में निहित विज्ञान का जो सुनिश्चित अर्थ जानते हैं और संन्यास व योगाभ्यास से अंतःकरण को परिशुद्ध कर लेते हैं, वे ही अंततः उस ब्रह्म को उपलब्ध होते हैं, उसे पाने के अधिकारी होते हैं।"

संन्यास और योग। यहां संन्यास और योग का जो अभिप्राय है, वह एक प्रक्रिया के निषेध और विधेय का है। संन्यास शब्द निगेटिव है। उसका अर्थ हैः सम्यक त्याग। छोड़ना। योग शब्द विधायक है, पाजिटिव है। उसका अर्थ है--अभ्यास, पाना। संन्यास का अर्थ है--छोड़ना गलत का। और योग का अर्थ है--पाना सही का। संन्यास का अर्थ है--जो व्यर्थ है, उसे छोड़ो। और योग का अर्थ है--जो सार्थक है, उसे खोजो। संन्यास और योग एक ही प्रक्रिया के दो हिस्से है।

जैसे एक आदमी बीमार है और चिकित्सक उसे कहता है, यह औषधि लो और यह व्यायाम करो। तो औषधि संन्यास है और व्यायाम योग है। औषधि हमारी को काटेगी, स्वास्थ्य नहीं दे सकती। औषधि निषेधात्मक है। बीमारी को काटेगी, बीमारी को हटाएगी। व्यायाम विधायक है, स्वास्थ्य को जन्माएगा। और ये दोनों एक ही प्रक्रिया के हिस्से हैं। शायद अकेला व्यायाम कारगर न हो। अगर बीमारी बैठी हो, तो यह भी हो सकता है कि व्यायाम बीमारी का व्यायाम बन जाए और बीमारी और मजबूत हो जाए। या व्यायाम शरीर को और क्षीण करते, और बीमारी की शक्ती और बढ़ जाए। अकेली औषधि भी काफी न होगी क्योंकि औषधि केवल बीमारी को काट देगी, लेकिन विधायक स्वास्थ्य को नहीं जन्माएगी। विधायक स्वास्थ्य तो जीवंत श्रम से पैदा

होगा। स्वास्थ्य तो स्वयं पैदा करना पड़ेगा। औषधि केवल उस चीज को हटा देगी, जिससे स्वास्थ्य के पैदा करने में बाधा पड़ती थी।

औषधि जैसा है संन्यास। और व्यायाम जैसा है योग। जो गलत है, उस छोड़ो; और जो सही है, उसे करने में लगो। और तभी अंतःकरण शुद्ध होगा।

आमतौर से योग में लगे हुए लोग सोचते हैं--योग पर्याप्त है, संन्यास की कोई जरूरत नहीं। और ऐसी ही दुर्घटना तब दुबारा भी घटती है कि संन्यासी हो गए लोग सोचते हैं--संन्यास काफी है, योग की क्या जरूरत रही! छोड़ दिया सब जो गलत था, संसार छोड़ दिया, सब त्याग कर दिया, अब और क्या पाने को रहा! जैसे त्याग ही पर्याप्त है। त्याग तो केवल उस जगह को खाली करना है, जहां गलत बैठा था। उस सिंहासन से हमने गलत को हटा दिया, लेकिन अभी सही को निमंत्रण भी देना पड़ेगा। अभी उस राजा के बुलाना पड़ेगा, आमंत्रण भेजना पड़ेगा, जो उसका मालिक है और उस सिंहासन पर होना चाहिए। योग के बियायह न हो पाएगा।

बहुत बार हमारे इस मुल्क में भी, इस मुल्क के बाहर भी यह दुर्घटना घटी है। जिन-जिन धर्मों ने संन्यास परजोर दिया, उन-उन धर्मों ने योग धीरे-धीरे खो गया। जैसे जैन धर्म। महावीर महायोगी हैं, लेकिन जैन धर्म का अधिकतम जोर त्याग पर रहा, तो आज जैन साधु योग से बिल्कुल अपरिचित हैं। जैन साधु को योग से कोई संबंध ही नहीं रहा। योग से, ध्यान से, विधायक अभ्यास से उसके संबंध टूट गए, क्योंकि सोचा कि त्याग काफी है। गलत खाता नहीं, गलत सोता नहीं, गलत बोलता नहीं, कुछ गलत करता नहीं हूं; तो गलत बिल्कुल छोड़ गलत बिलकूल छोड दिया तो खयाल में भ्रांती आती हैं कि सही हो गया गलत छोड देने से सही नहीं हो जाता। गलत छोड देने से सही के होने की संभावना भर पैदा होती है। सही को भी जन्माना पड़ता है। सही को विधायक चेष्टा से जन्माना पड़ता है।

या जैसे हिंदू धर्म के साथ घटित हुआ। योग पर बहुत जोर हुआ तो, हिंदू--जिसे हम साधु कहें, वह योग तो साधता है, आसन साधता है, सब कुछ करता है, लेकिन त्याग उसका बिल्कुल क्षीण हो गया। इसलिए अगर हिंदू साधु को और जैन मुनि को सामने रकें तो जैन मुनि के त्याग की प्रखरता अलग दिखाई पड़ेगी--हिंदू साधु के त्याग में कुछ नहीं दिखाई पड़ेगा; कुछ नहीं दिखाई पड़ेगा, लेकिन हिंदू साधु के पास योग की व्यवस्था दिखाई पड़ेगी और जैन साधु के पास योग की कोई व्यवस्था नहीं दिखाई पड़ेगी। ये दोनों ही अपंग हैं फिर अगर ये दोनों साथ नहीं, तो अपंग हो जाएंगे।

निषेथ और विधेय की सम्यक प्रक्रिया से अनुभव का जन्म होता है। उस परम को पाने के लिए निषेध और विधेय दो पैर हैं। न तो दाएं पैर से चलेगा, न बाएं पैर से चलेगा, दोनों पैर से चलना होता है।

चलना एक बहुत सूक्ष्म क्रिया है और बहुत मजेदार। उसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। अगर आपसे पूछा जाए कि आप बाएं पैर से चलते हैं कि दाएं पैर से; तो न तो कोई दाएं पैर से चल सकता है, न कोई बाएं पैर से चल सकता है। और चलने की पूरी प्रक्रिया यह है कि जब मेरा बायां पैर पृथ्वी पर रखा होता है तब मेरा दायां पैर उठ पाता है। और जब दायां पैर जमीर पर रुम जाता है तब पायां पैर जमीन छोड़ पाया है। एक पैर रुका होता है, एक पैर चला होता है। रुका हुआ पैर चले हुए पैर का आधार है। चला हुआ पैर रुके हुए पैर के लिए आगे का निमंत्रण है। इन दोनों के बीच वह घटना घटती है जिसे हम गति कहते हैं, चलना कहते हैं। निषेथ और विधेय साधक के लिए दो पैर हैं। विधेय का पैर जमीन पर मजबूती से न रखा हो, तो निषेध का पैर हिलता रहे आकाश, में गति नहीं होगी। संन्यास कितना ही हो, योग के बिना गति नहीं होगी। और योग कितना ही हो, संन्यास के बिना गति नहीं होगी। संन्यास और योग के बीच एक सामंजस्य खोज लेना अनुभव बनता है।

"संन्यास व योगाभ्यास से अंतःकरण को परिशुद्ध करके ब्रह्मलोक में प्रवेश के अधिकारी होते हैं।"

अंतःकरण की परिशुद्धि, अंतःकरण का पूर्ण शुद्ध हो जाना ही ब्रह्मलोक में प्रवेश है। वह जो हमारे भीतर छिपा है, वह जिस दिन अपने पूरे परिशुद्ध रुप में आ जाता है, अपने पूरे स्वभाव में, अपने स्वधर्म में, वही हो जाता है जैसा वह है।

इस आखिरी शब्द को और समझ लें।

अशुद्ध का अर्थ क्या होता? हम कहते हैं, पानी और दूध को मिला दिया तो दूध अशुद्ध हो गया। यह बहुत मजे की बात है। अगर पानी भी बिल्कुल शुद्ध था और दूध भी बिल्कुल शुद्ध था, दोनों को मिला दिया तो हम कहते हैं अशुद्ध हो गया। कौन अशुद्ध हुआ? पानी अशुद्ध हुआ कि दूध अशुद्ध हुआ? और क्यों? क्योंकि दोनों शुद्ध थे तो दो मिलकर दो दोहरी शुद्धि हो जानी चाहिए। महाशुद्ध हो जाने चाहिए। लेकिन अशुद्ध हो गए।

तो अशुद्ध का मतलब क्या है? अशुद्ध का मतलब केवल इतना ही है कि जो पानी का स्वभाव नहीं है वह पानी में आ गया और जो दूध का स्वभाव नहीं है वह दूध में आ गया। दूध के शुद्ध होने का इतना ही मतलब है कि दूध में सिर्फ दूध का स्वभाव था, तो वह शुद्ध था। और पानी में सिर्फ पानी का स्वभाव था, तो वह शुद्ध था।

शुद्ध का एक ही अर्थ होता है--विजातीय मौजूद न हो। मेरा जो स्वभाव है, निपट वही रह जाए,। उसमें कोई विजातीय मौजूद न हो।

तो अंतःकरण के शुद्ध होने का क्या अर्थ है? अंतःकरण के शुद्ध होने का यह अर्थ नहीं कि एक आदमी चोरी नहीं करता, तो अंतःकरण शुद्ध हो गया; कि एक आदमी बेईमान नहीं है, तो अंतःकरण शुद्ध हो गया; कि एक आदमी पैसा नहीं छूता, तो अंतःकरण शुद्ध हो गया। नहीं। अंतःकरण का शुद्ध होने का अर्थ है, एक आदमी के भीतर अब उसकी स्वयं की अंतरात्मा के अतिरिक्त और कोई चीज प्रवेश नहीं करती। उसके भीतर वह अकेला ही रह गया। अब कोई उसके भीतर जाता नहीं। कोई चोरी नहीं, अचोरी भी नहीं जाती। हिंसा नहीं। अहिंसा भी भीतर नहीं जाती। अज्ञान नहीं, ज्ञान भी भीतर नहीं जाता। अमृत भी भीतर नहीं जाता, जहर तो भीतर जाता ही नहीं। नहीं, कुछ भीतर नहीं जाता। मैं भीतर वही रह गया जो मैं हूं। उससे अन्यथा मेरे भीतर कुछ न राहा तो मैं शुद्ध हो गया। यह शुद्धता ही ब्रह्मज्ञान बन जाती है। इस शुद्धता के लिए अब और कुछ करने की जरूरत नहीं रह जाती।

स्वभाव को उपलब्ध कर लेना की धर्म है। वैसे हो जाना जैसा कि होना मेरी आंतरिक नियति है, धर्म है।

इसलिए कृष्ण ने बहुत जोर देकर स्वधर्म की बात की है। लेकिन लोग समझते हैं शायद स्वधर्म से कि कोई हिंदू है, तो हिंदू बना रहे; कोई मुसलमान है, तो मुसलमान बना रहे। इन धर्मों से स्वधर्म को कोई लेना-देना नहीं है। स्वधर्म का मतलब ही इतना है कि जो भी भीतर है, जो स्वयं का धर्म है, जो "स्व" का धर्म है, जो स्वभाव है मेरा, मैं उससे विचलित न होऊं, उसी में ठहर जाऊं।

इसलिए कृष्ण ने कहा कि अपने धर्म में नष्ट हो जाना भी ठीक है। अपने धर्म में असफल हो जाना उचित है, बजाय दूसरे के धर्म में प्रवेश करने के। लेकिन यह दूसरे के धर्म का मतलब ऐसा नहीं कि मंदिरवाला मस्जिद में प्रवेश न करे; कि कुरानवाला गीता में प्रवेश न करे। दूसरे का धर्म का मतलब यह है कि मेरे अतिरिक्त सभी दूसरे हैं।

अगर कृष्ण ठीक से समझा पाएं--जो कि बहुत कठिन है, क्योंकि समझना सिर्फ समझानेवाले पर निर्भर नहीं है, समझने वाले पर आधा निर्भर है--अगर कृष्ण ठीक से समझा पाएं और अर्जुन ठीक से समझ ले, तो अर्जुन को कृष्ण से सब संबंध विच्छिन्न कर लेगे चाहिए, तो वह स्वधर्म को उपलब्ध होगा। कृष्ण को भूल ही

जाना चाहिए। अगर अर्जुन ठीक से समझ ले, तो गीता के अंत में उसे कृष्ण से कहना चाहिए कि तुम्हारी मैं बात बिल्कुल समझ गया, मेरे सब संशय नष्ट हो गए, अब तुम मुझे क्षमा करो, मैं तुम्हें भूलता हूं। अब तुमसे न पूछूंगा। अब मैं उसकी तलाश में लगता हूं, जो स्वधर्म है।

चीन में हुई हाई एक फकीर हुआ। वह जब अपने गुरु के पास गया, तो उसके गुरु ने गुरु बनने से इनकार कर दिया। हुई हाई ने जितना गुरु ने इनकार किया उतने ही हाथ-पैर जोड़े, उतना ही सिर पटका उसके द्वार पर, लेकिन उसके गुरु ने कहा कि नहीं, गुरु मै तेरा न बनुंगा, शिष्य चाहे तु मेरा बन सकता है। क्योंकी शिष्य बनना तेरे ऊपर निर्भर है, उसको मैं कैसे रोकुं? लेकिन गुरु बनना मुझ पर निर्भर है, मैं वह बनूंगा। क्योंकि मेरी सारी शिक्षा ही यही है कि स्वधर्म में प्रवेश करना ही एकमात्र उपाय है। तो मैं तेरा गुरु बनूं तो कही तुझे स्वधर्म से बाहर न खींच लूं। तू शिष्य बन, वह तेरा काम है, वह तू जान। और जिस दिन तेरा शिष्य भी विलिन हो जाएगा, उस दिन समझना कि तूने मेरी बात पूरी समझ ली।

नही राजी हुआ हाई शिष्य ही बन कर उसके पास रहा, बिना गुरु के। गुरु तो गुरु बनने को राजी नहीं हुआ। फिर वर्षों बाद--गुरु तो मर चुका है, बहुत समय हो गया--वर्षों बाद हुई हाई एक उत्सव मना रहा है। वह उत्सव चीन में गुरुपूर्णिमा उत्सव है। वह गुरु की स्मृति में मनाया जाता है। तो लोग हुई हाई से पूछतें हैं कि एक उत्सव मना रहे हो, लेकिन तुम्हारा गुरु कौन था? तुमने कभी बताया नहीं। नाम भी तो बताओ कि तुम किस गुरु की स्मृति में उत्सव मना रहे हो? तो हुई हाई कहता है कि वह ऐसा गुरु था, जिसने मुझे सब सिखाया लेकिन मेरा गुरु बनने को राजी नहीं हुआ। और आज मैं कह सकता हूं कि अगर वह मेरा गुरु बन जाता, तो जो वह मुझे सिखाना चाहता था वह मैं नहीं सीख सकता था। उसने गुरु न बनकर ही मेरे गुरु होने का काम पूरा किया है। इसलिए उसकी याद में यह उत्सव मना रहा हूं। उसने मुझे स्वयं में प्रतिष्ठित किया है। उसमे मुझे स्वयं के बाहर जाने से सब तरफ से रोका। और एक आकर्षण तो मुझमें भारी था कि अगर वह मुझे स्वीकार कर लेता, तो मैं उसके चरणों में पूरी तहर लग जाता। और मेरी सारी धारा बर्हिमुखी हो जाती। उसने उस धागे को भी तोड़ दिया। पत्नी से मैं छूट गया था, पिता से मैं छूट गया था, भाइयों से मैं छूट गया था, मित्रों से छूट गया था, संसार से छूट गया था, एक और मेरे लिए बहिर्गमन का मार्ग बचा था--वह गुरु--उसने उससे भी मुझे छुड़ा दिया। वह मेरे गुरु थे, क्योंकि उन्होंने मुझे मुझमें ही स्थापित कर दिया।

परिशुद्ध होने का अर्थ है--स्वयं की शुद्धता में जरा भी "पर" मौजूद न रह जाए वहां, "स्व" ही शेष रहे; "स्व" ही शेष रहे, एक ही स्वर रह जाए, मेरा ही, तो ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध होता है।

अब उस पूरे सूत्र को मैं पढ़ देता हूं अंत में--

"अंततः वे योगी ही परम तत्व को प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं, जो वेदांत में निहित विज्ञान का सुनिश्चित अर्थ जान पाते हैं, संन्यास और योगाभ्यास से अंतःकरण को परिशुद्ध कर लेते हैं और निरंतर ब्रह्म में जाने का प्रयत्न करते हैं।"

आज इतना ही।

अब हम ध्यान की तैयारी करें। दिस मच फॉर टुडेज मॉर्निंग टाक। नाव वी विल गो फॉर मेडिटेशन। यू हैव टु डू इट सो टोटली दैट नथिंग इज लेफ्ट बिहाइंड। तो एनर्जी अनटच्ड, एवरी एनर्जी मस्ट बी ब्राट टु इट टोटली। दूर-दूर फैल जाएं। आंख पर पट्टीयां बांध लेनी है। कोई भी व्यक्ति आंखे खोले हुए प्रयोग न करे। अगर आपके पास पट्टी न हो, तो भी आंख बंद रखनी है, एक।

दूसरा, अपनी जगह को छोड़ कर न भागें। अपनी जगह को छोड़ कर न भागें, अपनी जगह पर नाचें, कूदें, आनंदित हों--जो भी करना है।

तीसरी बात, आपको जो भी करना है आपको करना है, दूसरे के शरीर को जरा स्पर्श न करें। न दूसरे के शरीर को धक्का दें। अपनी जगह खुद ही अपना प्रयोग करें।

तैयार हो जाएं। थोड़े दूर-दूर फैल जाएं। भीड़ ज्यादा न करें एक जगह, अन्यथा फिर धक्के-मुक्के लगते हैं। थोड़े दूर-दूर फैल जाएं। क्रिएट ए स्पेस अराउंड यू... फील दैट यू कैन मूव इजिली... इफ समवन फील्स लाइक गोइंग नेकेड, वन कैन गो... किसी को भी नग्न होना हो, वस्त्र अलग कर देने हों, अलग कर सकते हैं। आपको लगे कि वस्त्र अगल करनेसे आप ज्यादा स्वतंत्रता से अपनी अभिव्यक्ति कर सकते हैं, वस्त्र अलग कर सकते हैं। जो मित्र देखने आ गए हों, वे कृपा करके चुपचाप खड़े रहेंगे, या चुपचाप बैठ जाएंगे। बीच में बातचीत नहीं करेंगे।

ठीक, आंख पर पट्टीयां बांध लें। नाव क्लोज योर आईज... क्लोज योर आईज एण्ड स्टार्ट दि फर्स्ट स्टेप--ड़ीप, फास्ट ब्रीदिंग... हेमरिंग बाई ब्रीदिंग, जौर से श्वास... श्वास ही श्वास रह जाए... जोर से... जोर से... जोरस से... पूरी शक्ति शस पर लगा देनी है।

सात मिनट... । जोर से... जोर से... तीन मिनट और बचे हैं... पूरी ताकत लगाएं। श्री मिनटस मोर ट फर्स्ट स्टेप... ब्रिंग योर टोटल एनर्जी टु इट... जस्ट ब्रीदिंग... फास्ट ब्रीदिंग... ब्रीदिंग... ब्रीदिंग... यूज ब्रीदिंग एज ए हेमरिंग इनसाइड... फास्ट... फास्ट...

दो मिनट... जोर से... एक मिनट के लिए पूरी ताकत लगाएं--फार वन मिनट जस्ट गो मैड एण्ड ब्रीदिंग... ब्रीदिंग... जोर से... फिर हम दूसरे चरण में प्रवेश करें...

नाव एंटर दि सेकेंड स्टेप... दूसरे चरण में प्रवेश करें...

नौ मिनट... । एक मिनट और... पूरे ताकत से, पागल हो जाएं... वन मिनट... गो मैड कंप्लीटली... तीसरे चरण में प्रवेश करें... नाचें... हू... हू... हू... हू... हू... हू... हू... हू... हू...

पांच मिनट... । जोर से... जोर से... हू-हू... हू-हू... हू-हू... जोर से... जोर से... । चार मिनट और हैं... पूरी ताकत लगाएं... चोट करें... चोट करें... हू-हू... तीन मिनट...

एक मिनट और... बिल्कुल पागल हो जाएं... हू-हू... जस्ट गो मैड... जोर से... जो से... जोर से पूरी ताकत लगा दें... जोर से... हू-हू... हू-हू-हू...

बस, अब चौ? थे चरण में प्रवेश करें... शांत हो जाएं... चौथे चरण में प्रवेश करें... शांत चरण में प्रवेश करें... शांत हो जाएं... चौथे चरण में प्रवेश करें... शांत हो जाएं... शांत हो जाएं... बैठ जाएं... लेट जाएं... मुर्दे की भांति पड़ जाएं... शंत हो जाएं... सब गति बंद कर दें... छोड़ दें... शंद... हो जाएं... सब मिट गया... शांत... कोई आवाज नहीं, कोई गति नहीं... शक्मी का कोई उपयोग न करें... से शक्ति जाग गई, उसे भीतर काम करने दें, उसका उपयोग न करें... शरीर में बिल्कुल उसका उपयोग न करें...

अपने दाएं हाथ को माथे पर रख कर अहिस्ता से रगड़ लें... तीसरे नेत्र की जगह, दोनों भवों के बीच में, आहिस्ता से... धीरे-धीरे रगड़ें... और भीतर उस केंद्र पर बहुत कुछ होगा... अचानक जैसे कोई द्वार खुल जाए और प्रकाश ही प्रकाश--फेल जाएं... नहीं आवाज नही... कुछ नहीं... भीतर काम करने दें... सिर्फ रगड़ें... प्रकाश ही प्रकाश...

बस रगड़ना बंद कर दें... चारों और प्रकाश ही प्रकाश है... इसके साथ एक हो जाएं... प्रकाश ही प्रकाश... प्रकाश के सागर में डूब जाए--डूब जाएं... खो दें अपने को... विसर्जित कर दें... प्रकाश... प्रकाश...

और प्रकाश की सघनता ही आनंद का प्रारंभ हा जाती है... प्रकाश के साथ एक होते ही आनंद के झरने फूटने शुरू हो जाते हैं... रोआं-रोआं, हृदय की धड़कन, श्वास-श्वास आनंद से भर जाएं... अनुभव करें आनंद को, अनुभव करें... चारों और आनंद है... बाहर-भीतर आनंद है... आनंद में डूब गए... चारों ओर आनंद है... बाहर भीतर आनंद है... आनंद में डूब गए... एक हो गए...

दो मिनट... । आनंद... आनंद... आनंद... रोआं-रोआं आनंद से भर गया है... आनंद... आनंद... आनंद... आनंद की सघनता ही परमात्मा की उपस्थित बन जाती है... आनंद में गहरे जाने से ही प्रभु का अनुभव शुरु हो जाता है... वह मौजूद है चारों ओर, अभी और यहीं... अनुभव करें... आनंद के साथ एक हो जाएं और उसकी उपस्थिति शुरु हो जाए... अनुभव करें परमात्मा मौजूद है... चारों ओर, अभी और यही... अनुभव करें परमात्मा मौजूद है... चारों ओर वही है... बाहर-भीतर वही है... अनुभव करें प्रभु मौजूद है, चरों ओर वही घेरे हुए है... उसके ही सागर में डूब गए हैं और एक हो गए हैं...

अब पुनः अपनी दाएं हाथ की हथेली को माथे पर रखकर आहिस्ता से रगड़ें... अचानक भीतर एक क्रांति घटित हो जाती, ऊर्जा ऊपर के लोक में प्रवेश करती है... अब दोनों हाथ आकाश की ओर उठा लें और आंख खोल कर आकाश में झांकें... आकाश में देखें. दोनों हाथ फैला लें... आकाश के आलिंगन के लिए... और आकाश को देखने दें भीतर, और ह्नदय में जो भी भाव हो, दो मिनट के लिए उसे प्रकट कर सकते हैं... संकोच न करें... छोड़ दें... जो भी भाव प्रकट हो उसे छोड़ दें दो मिनट...

अब दोनों हाथ जोड़ लें और परमात्मा के चरणों में सिर रख लें... और एक ही भाव ह्नदय में रह जाए-- प्रभु की अनुकंपा अपार है... प्रभु की अनुकंपा अपार है... प्रभु की अनुकंपा अपार है...

अब वापिस लौट आएं ध्यान से... वापस लौट आएं...

सुबह का ध्यान पूरा हो गया।

पांचवां प्रवचन

शरीर से अतादात्म्य ही शरीर का शुद्धिकरण

विविक्त देशे च सुखासनस्थः शुचिः समग्रीवशिरः शरीरः।
अत्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं, प्रणम्य।
हृनतपुण्डरीकं विरजं विशुद्धं चिविन्त्य मध्ये विशदं विशोकम्।। 5।।

ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा वाले संन्यास आश्रम में स्थित, स्नानादि से अपने शरीर को शुद्ध करके, एकांत स्थान में अपना आसन लगा कर, सिर, गले व शरीर को एक सीध में रख कर, समस्त इंद्रियों को एकाग्र करके, श्रद्धा व भक्ति से अपने गुरु को प्रणाम करके, अपने हृदय-कमल से दोषों को निकाल कर दुख व शोक से परे उस विशुद्ध भक्ति से भक्ति-तत्व का सम्यक चिंतन करते हैं।। 5।।

ध्यान के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएं इस सूत्र में हैं। एक-एक सूचना को पहले हम अलग-अलग समझ लें, फिर पूरे सूत्र को पढ़ेंगे तो समझ में आ जाएगा।

पहली सूचना है--एकांत स्थान। लगेगा कि हम जानते ही हैं। लेकिन जिसे हक एकांत स्थान कहते हैं, ध्यान का उससे कोई भी संबंध नहीं। एकांत स्थान कहते हैं हम उस जगह को जहां कोई दूसरा मौजूद न हो, निर्जन हो, अकेले हों। कोई पहाड़ पर चला जाए, कि हिमालय की किसी गुफा में बैठ जाए, तो एकांत स्थान मिल गया। लेकिन इस एकांत स्थान का ध्यान से कोई भी गहरा संबंध नहीं है। उस एकांत में बैठ कर भी व्यक्ति ध्यान में जा सकेगा, ऐसा नहीं है। बाहर के दूसरे छूट जाएं तो भी भीतर दूसरे बने रहते हैं।

भीड़ से हम हट जाएं, तो भी भीड़ हमारे भीतर छिपी है। ऐसा भी हो सकता है कि भीड़ में भी हम बैठे हों और एकांत में हों, और ऐसा भी हो सकता है कि एकांत में हों और भीड़ में बैठे हों। इस भीड़ में भी कोई अगर शांत होकर बैठ जाए और अपना स्मरण करे तो दूसरे भूल जाएंगे। इस भीड़ में भी बैठ कर कोई अगर अपने स्मरण से भर जाए, तो दूसरों का स्मरण खो जाएगा। क्योंकि मन की एक अनिवार्य क्षमता यह भी है कि मन के समक्ष एक ही मौजूद हो सकता है एक क्षण में। अगर मैं अपने मन को अपनी ही मौजूदगी से भर दूं, तो दूसरे गैर-मौजूद हो जाएंगे। चूंकि मैं अपने मन में मौजूद नहीं होता, इसलिए दूसरों की मौजूदगी बनी रहती है।

तो एकांत स्थान का जो अर्थ हम लेते हैंः वह बहुत गौन है। एकांत स्थान का अर्थ हैंः एक ऐसी जगह बैठ जाना-यह जगह बाहर की कम और भीतर की ज्यादा है--एक ऐसे स्थान में बैठ जाना--यह स्थान, जह स्पेस बाहर की कम, भीतर की ज्यादा है--जहां दूसरा मौजूद न हो। बाजार में भी कोई बैठा हो और उसके मन में दूसरा मौजूद न हो, तो वह एकांत में है। और ध्यान रखना भलीभांति कि अगर बाजार में बैठ कर एकांत नहीं हो सकता, तो एकांत में भी एकांत नहीं हो सकेगा। क्योंकि मन का एक दूसरा नियम आपसे कह दूं--

जो मौजूद नहीं होता, उसकी याद आती है। जहां हम नहीं होते हैं, वहां होने की आकांक्षा होती है। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि बाजार में बैठा हुआ आदमी सोचता है, एकांत में होते तो कितना अच्छा होता। और एकांत में बैठा हुआ आदमी अक्सर बाजार की वासना से भर जाता है। मन, जहां हम होते हैं वहां से ऊब जाता है और जहां हम नहीं होते वहां रस लेने लगता है।

मनस्विद पश्चिम में सलाह देते हैं कि पति-पत्नी को बहुत निकट नहीं रहना चाहिए, अन्यथा उनका प्रेम समाप्त हो जाएगा। उनकी सलाह एक अर्थ में सही है। और पूरब के लोग इस सलाह को बिना मनोविज्ञान से समझे बहुत दिन तक प्रयोग किए। पति-पत्नी का मिलना इतना मुश्किल था जितना अब प्रेमी और प्रेयसी का मिलना भी नहीं है--पूरब में। दिन भर तो मिल नहीं सकते थे; रात के अंधेरे में, वह भी चोरी-छिपे, तो प्रेम लंबा चलता था। उस लंबे चलने का कारण यह था कि जो चौबीस घंटे उपलब्ध नहीं है, उसके प्रति रस मन का बना रहता है। जो चौबीस घंटे उपलब्ध है, उसके प्रति रस क्षीण हो जाता है। इसीलिए जब हमें कोई चीज मिल जाती है, तो मिलते ही बेकार हो जाती है।

सोचते थे बहुत दिन से कि एक बड़ा मकान बन जाए, वह बन गया। फिर दो-चार-आठ दिन बाद पाएंगे कि वह व्यर्थ हो गया। उतनी भी सार्थकता न निकली उसकी जितनी कि सपनों में थी। सपनों में जितना रस दिया था उस बड़े मकान ने, वह बन कर भी नहीं दे पाता। महीने-दो महीने बाद तो वह भूल ही जाएगा कि है भी--उसी में रहेंगे, उसी में आएंगे और जाएंगे; दो-चार साल बाद दूसरों को तो दिखता रहेगा, आपको दिखना बंद हो जाएगा।

मन जिसको पा लेता है, वह बेकार हो जाता है। क्योंकि मन का सारा रस अनुपलब्ध में है; जो नहीं मिला है, उसमें है। मन की सारी वासना उसके लिए है, जो यहां नहीं है, दूर है। मन दूर में रस लेता है। हम कहते हैं कि दूर के ढोल सुहावने होते हैं। वह दूरी की वजह से नहीं होते हैं, मन की वजह से होते हैं। दूरी जितनी होती है और किसी चीज को पाना जितना मुश्किल होता है, जितना कठिन होता है, मन का रस उतना ही बढ़ जाता है।

यह मन का नियम ठीक से समझ लें। क्योंकि यह बाजार में होंगे तो एकांत चाहेगा और एकांत में होंगे, तो बाजार चाहेगा। मंदिर में बैठे होंगे तो वेश्यालय की याद आएगी। और वेश्यालय में बैठे हुए आदमी को भी मंदिर की याद आती है। यह जीवन इतना सीधा नहीं है जैसा हस समझते हैं, बहुत जटिल है। और इसकी जटिलता को कोई ठीक से न समझे, दो ध्यान में जाना मुश्किल हो जाता है।

एकांत स्थान का अर्थ--यही तो अच्छा ही है कि बाहर एकांत हो, लेकिन वह काफी नहीं है--भीतर एकांत हो। भीतर हमारे सदा भीड़ मौजूद है। ठीक होगा यह कहना कि हम आदमी कम हैं, भीड़ ही ज्यादा हैं। हमारे भीतर एक कम है, भीड़ इकट्ठी है। एक-एक आदमी एक बड़ी भीड़ है।

इसीलिए सुबह आदमी कुछ है, दोपहर कुछ है, सांझ कुछ है। बेचैनी होती है खुद को भी कि मैं सुबह तो बहुत प्रसन्न था, दोपहर क्यों उदास हो गया हूं? सांझ क्यों क्रोध से भर गया हूं? सुबह तो लगता था सारी दुनिया को आशीर्वाद दूं, सांझ लगात है कि सारी दुनिया की हत्या कर दूं। यह मेरे भीतर क्या हो रहा है? यह हमारी भीड़ है। हमारे भीतर बहुत चेहरे हैं। सुबह एक चेहरा था, दोपहर दूसरा चेहरा है, सांझ तीसरा चेहरा है। हमारे भीतर बहुत लोग हैं। सुबह एक आदमी बोला, दोपहर दूसरा आदमी बोला, रात तीसरा आदमी बोल रहा है। और इसलिए बड़ी कठिनाई है। सुबह जब हम दुनिया को आशीर्वाद होने को आतुर थे तब हमने जो बातें कही है, वह सांझ को हम पूरा न कर पाएंगे। क्योंकि सांझ को हम जो हैं, उसने सुबह वचन ही न दिया था, वह मौजूद ही न था।

अब मनस्विद कहते हैं कि आदमी के भीतर हम अब तक मानते थे एक मन है, वह गलत था। आदमी के भीतर बहुमन हैं। मल्टी-साइकिक है आदमी। और इसलिए आदमी सांझ को तय करता है कि सुबह पांच बजे उठना है, चाहे कुछ भी हो जाए कल तो उठना ही है, और सुबह पांच बजे वही आदमी कहता है, छोड़ो भी, इन बातों मे क्या रखा है, रात बहुत सर्द है! और एक दिन उठे तो हर्ज क्या? करवट बदल कर सो जाता है। सुबह

आठ बजे उठकर वही आदमी पछताता है। और कहता है, यह कैसे हुआ कि मैंने तो तय किया था कि सुबह उठूंगा। कठिनाई तब हमें मालूम पड़ती है। अगर हम मान लें कि आदमी के भीतर एक ही मन है, तो बड़ी मुश्किल है। लेकिन मनस्विद कहते हैं कि जिस मन ने तय किया था, वह और था। जिस मन ने सुबह सलाह दी कि सोए रहो, यह और है। और जिस मन ने सुबह पश्चाताप किया, यह और है। यह मन के अलग-अलग खंड हैं। इनकी एक-दूसरे से मुलाकात भी न हो, यह भी हो सकता है। इनको एक-दूसरे का पता ही न हो, यह भी हो सकता है।

महावीर ने भी आज से ढाई हजार साल पहले एक शब्द का प्रयोग किया है--मनस्विद चैकेंगे--वह हैः बहुचित्तवान। उसका ठीक वही मतलब है, जो मल्टी-साइकिक का है। महावीर ने कहा है--आदमी बहुचित्तवान है। उसके भीतर बहुत चित्त हैं, एक चित्त नहीं है।

और इन अनेक चित्तों के बीच एकांत असंभव है।

इसलिए एकांत का जो गहन अर्थ है, वह है--बहुचित्तता की जगह एकचित्तता हो। मेरे भीतर बहुत चित्त न रह जाएं, एक ही चित्त हो। यह एक अर्थ है एकांत का।

दूसरा और एक अर्थ समझ लेना जरूरी है। और वह यह है कि मेरे भीतर चौबीस घंटे जो भीड़ खड़ी है, वह मेरे चित्तों की तो है ही, मेरे परिचितों की, मेरे मित्रों की, मेरे संबंधियों की, मेरे शत्रुओं की, उन सब की भीड़ भी मेरे चारों तरफ घिरी हुई है। आदमी बाहर की दुनिया में बहुत कम जीता है, भीतर की दुनिया में बहुत ज्यादा जीता है।

आदमियों के मन के बाहर हम दोन तरह की दुनियाएं समझें। एक उसके मन की दुनिया है, जिसमें वह चौबीस घंटे जीता है। उस मन के बाहर एक जगत है। उस जगत में भी थोड़ा-बहुत जीता है। लेकिन, ज्यादा वह अपने मन के जगत में ही जीता है। आप अपने मित्र से जो बातें करते हैं, वह आप अपने मन में बहुत पहले कर चुके होते हैं।

मार्क ट्वेन से कोई पूछता था--मार्क ट्वेन एक जगह सभा में बोल कर लौट रहा था। मार्क ट्वेन का मित्र साथ में था, उसके मार्क ट्वेन से पूछा कि आज का तुम्हारा व्याख्यान बहुत अच्छा रहा। तो मार्क ट्वेन ने कहा, कौन सा व्याख्यान? एक ही व्याख्यान देकर आ रहा था। तो मार्क ट्वेन ने पूछा--कौन-सा व्याख्यान? तो उस मित्र ने कहा, कौन सा! जो तुम अभी देकर आ रहे हो। मार्क ट्वेन ने कहा कि मैं कम से कम तीन व्याख्यान दे चुका हूं। एक जो मैंने व्याख्यान देने के पहले भीतर दिया कि यह-यह बोलूंगा। और एक, जो मैंने वहां दिया। और एक जो मैं अभी दे रहा हूं कि यह-यह बोलना चाहिए था। तुम कौन से व्याख्यान की बात कर रहे हो?

आप बाहर के जगत में बहुत कम जीते हैं, उससे तदीन गुना भीतर के जगत में जीते हैं। एक शब्द बाहर निकलता है, तो हजार बार भीतर घूम चुका होता है, तब बाहर निकलता है। एक कृत्य बाहर होता है, तो हजार बार भीतर किया जा चुका होता है।

एक आदमी को अगर किसी की हत्या करनी हो तो आज तक दुनिया में एक भी ऐसा हत्यारा नहीं हुआ, जो यह कह सके कि भीतर उसने बहुत बार यह हत्या नहीं की थी। और इसीलिए अगर भीतर की हत्या का हिसाब रखें, तो आदमी मुश्किल खोजना होगा जो हत्यारा न हो। क्योंकि भीतर तो हम सभी हत्याएं करते रहते हैं। यह दूसरी बात है हम बाहर तक नहीं पहुंचते, कोई बाहर तक पहुंच जाता है।

मनस्विद कहते हैं कि हत्याएं तो दूर, ऐसा आदमी भी खोजना मुश्किल है जिसने मन में अपने भीतर आत्महत्या न कर ली हो। कई बार अपने को खत्म ही न कर लिया हो--कि खत्म कर ही दो। यह दूसरी बात है

कि अभी कृत्य नहीं बना, लेकिन कभी भी बन सकता है। क्योंकि विचार बीज है। और मजबूत होता जाए तो कभी भी कृत्य बन सकता है।

मन के भीतर हम एक जगत को बनाए हुए हैं। वहीं भीड़ है। वासनाएं पहले मन में निर्मित होती हैं, जड़ें फैलती हैं, अंकुरित होती हैं। बहुत बाद में कहीं उनके पत्ते और शाखाएं बाहर के जगत में पहुंचते हैं। और हजार वासनाएं भीतर निर्मित होती हैं, तो एक ही बाहर तक पहुंच पाती है। कितनी योजनाएं मन के भीतर निर्मित होती है, जिनमें से शायद सौ में से एक भी पूरी नहीं हो पाती।

अगर हम जीने का हिसाब समझें ठीक से, तो अगर एक आदमी सौ साल जीता हो, तो कम से कम अस्सी साल तो वह भीतर जीता है, बीस साल बाहर। यह जो भीतर जीने की प्रक्रिया है, यह हमारी भीड़ है। इसलिए हम कहीं भी चले जाएं, हम तो कम से कम वहां होंगे ही। सबको छोड़ कर चले जाएं जंगल में, तो भी मैं अपने को कहां छोड़ जाऊंगा? मैं तो वहां भी पहुंच ही जाऊंगा। मेरा वहां पहुंच जाना तो अनिवार्य है। मैं अपने को तो पीछे नहीं छोड़ पाऊंगा। और जब मैं अपने साथ पहुंच जाऊंगा तो अनिवार्य रूप से मेरे मन की सारी कल्पनाएं, मेरे मन की सारी वासनाएं, मेरी सारी योजनाएं, मेरे मन के सारे संबंध, सब मेरे साथ इकट्ठो हो जाएंगे। और वे सब मेरी भीड़ हैं।

इस आंतरिक भीड़ को मिटाने का नाम एकांत है।

तो एकांत स्थान तो है ही, स्थिति ज्यादा है। अच्छी है एकातं स्थान में बैठ जाएं, लेकिन यह मत समझना कि एकांत इतने से हो जाएगा। उपयोगी हो सकता है एकांत, पर्याप्त नहीं है। एकांत स्थिति भी चाहिए। और यह स्थिति बन जाए तो फिर स्थान का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता, आदमी कहीं भी एकांत में हो सकता है। कहीं भी! एक बार भीतर मन एक हो और यह जो मन का जगत है इसकी पकड़ ढीली हो जाए और हम इसके जाल के बाहर हो जाएं, तो आदमी एकांत स्थान को उपलब्ध हो जाता है। एकांत स्थिति को भी। स्थिति भीतरी बात है, स्थान बाहरी बात है। स्थान गौण है, स्थिति मूल्यवान है।

यह पहले शब्द को ठीक से समझ लें।

फिर दूसरा शब्द सूत्र में उपयुक्त प्रयुक्त हुआ है--सुख-आसन। सुखासन। एकांत हो स्थान और सुख-आसन में बैठ कर। इसके भी दो हिस्से हैं।

सुख-आसन से हम परिचित है। सुखासन योग में उस आसन को कहते है, जिसमें शरीर का सबसे कम से कम उपयोग हो। और शरीर का सबसे कम उपयोग तब होता है, जब आप... जैसे बुद्ध की प्रतिमा आपने देखी है, या महावीर की प्रतिमा आपने देखी है, वैसे पालथी मार कर, रीढ़ को बिल्कुल सीधा करके, दोनों हाथों को एक-दूसरे पर रख कर अपनी गोदी में, अचल होकर बैठ जाते हैं, हिलते नहीं। इस अवस्था में शरीर का, शरीर की ऊर्जा का कम-से-कम उपयोग होता है।

कम से कम उपयोग होने का कारण बहुत वैज्ञानिक है। अगर आपकी शरीर की रीढ़ बिल्कुल सीधी है, तो जमीन के ग्रेविटेशन का आप पर सबसे कम असर होता है। अगर आपकी रीढ़ जरा भी झुकी है, तो जमीन का ज्यादा हिस्सा आपकी रीढ़ को अपनी तरफ खींचता है। अगर रीढ़ आपकी बिल्कुल सीधी है तो रीढ़ का सिर्फ नीचे का जो बिंदु है, उसपर ही जमीन के गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव पड़ता है। अगर आपकी रीढ़ आड़ी है, आगे झुकी है, पीछे झुकी है, तो पूरी रीढ़ को अपनी तरफ खींचती है, उतना आपके शरीर पर श्रम पड़ता है। यह वैज्ञानिक है। इस श्रम को नापा जा सकता है।

आपके श्रम को जो सर्वाधिक पीड़ा होती है वह ग्रेवीटेशन से होती है। इसलिए वैज्ञानिक तो यह भी कहते हैं कि अगर आदमी चांद पर रहने लगा, तो उसकी उम्र चार गुना ज्यादा हो जाएगी। क्योंकि चांद पर वह गुरुत्वाकर्षण चार गुना कम है। तो अगर आदमी चांद पर रहने लगे, तो उसकी उम्र चार गुना ज्यादा हो जाएगी, क्योंकि यही शरीर कम थकेगा।

और वैज्ञानिक तो यह भी कहते हैं--आइंस्टीन की बहुत अद्‌भुत धारणा थी, अविश्वसनीय मालूम पड़ती है; लेकिन आइंस्टीन कहता है, तो ठीक ही कहता होगा। आइंस्टीन कहता है कि अगर हम किसी व्यक्ति को अंतिरिक्ष की यात्रा पर भेजें, एक ऐसे यान में जिसकी गति उतनी ही हो जितनी की प्रकाश की किरण की गति होती है--प्रकाश की किरण की गति होती है एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील--अगर इतनी ही गति के यान में हम किसी व्यक्ति को यात्रा पर भेजें, तो उसकी उम्र बढ़ेगी नहीं। वह कितने ही वर्षों बाद पृथ्वी पर वापस लौटे, उसकी उम्र उतनी ही होगी जितनी उम्र में उसके पृथ्वी छोड़ी। यहां उसके बेटे बूढ़े हो गए होंगे, वह जवान वापस पृथ्वी पर उतरेगा।

यह जब पहली दफा आइंस्टीन ने कहा था तो बहुत हैरानी का था, लेकिन जब कारण साफ समझ में आ जाएं तो हैरानी का नहीं है। क्योंकि इतनी तीव्र यान की गति में उस पर किसी तरह के गुरुत्वाकर्षण का कहीं भी कोई परिणाम नहीं होगा और अंतरिक्ष के शून्य में वह यात्रा करेगा। आपका शरीर बूढ़ा आपके शरीर की वजह से नहीं होता। आपका शरीर बूढ़ा होता है शरीर की जमीन के साथ जो कशिश का संबंध है, उससे।

जमीन खींच रही है शरीर को नीचे की तरफ। उसका जो खिंचाव है, वही अपना बोझ है। जिसको आप वजन कहते हैं तराजू पर खड़े होकर, वह वजन वस्तु का नहीं है, वह हजन जमीन की कशिश का है। जितना जोर से जमीन खींचती है--तराजू नीचे झुक जाता है। अगर हम गुरुत्वाकर्षण को काट दें, तो तराजू पर कितना ही हजन रखें वह नीचे नहीं झुकेगा। वह झुकता गुरुत्वाकर्षण के कारण है। शरीर का सर्वाधिक श्रम बिना श्रम किए भी हो रहा है। इसलिए आप कुछ भी करें, सत्तर-अस्सी साल में शरीर बूढ़ा हो जाएगा। चाहे आप बैठे रहे, चाहे आप बिल्कुल लेटे रहे, तो शरीर बूढ़ा हो जाएगा क्योंकि जमीन पूरे वक्त काम ले रही हैं। आप जब सो रहे हैं, तब भी शरीर बूढा हो रहा है,, क्योंकि जमीन उसे खींच रही है। यह हो सकता है, इसके पीछे बहुत कारण है।

वैज्ञानिकों की एक धारण है कि हर चीज अपनी पूर्व स्थिति में लौट जाना चाहती है। हर चीज अपनी पूर्व स्थिति में लौट जाना चाहती है, क्योंकि अपनी पूर्व स्थिति में विश्राम होता है। जैसे एक लहर सागर से उठी, बहुत जल्दी गिरेगी और वापिस लौट जाएगी। क्योंकि सागर से उठने में लहर के लिए भारी श्रम है, तनाव है, परेशानी है। वापिस गिर जाने में फिर विश्राम है। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारा शरीर तो मिट्टी से बनता है, पानी से बनता है, वस्तुओं से बनता है, वह पूरा का पूरा शरीर हमारा वापस लौट जाना चाहता है। और उसके वापस लौटने की जो व्यवस्था है, वह जमीन का गुरुत्वाकर्षण है। जमीन अपनी मिट्टी को वापिस बुला रही है। पूरे वक्त खींच रही है।

वैज्ञाननिकों को तो यह बात अभी-अभी खयाल में आनी शुरु हुई, लेकिन योग को यह बात बहुत पहले से खयाल में है। इसलिए अगर योगी अपनी रीढ़ को सीधा करके ज्यादा समय व्यतीत करे तोउसकी उम्र बढ़ जाएगी। वह सुख का आसन है, कोई भी ऐसा आसन जिसमें रीढ़ बिल्कुल सीधी हो--नब्बे का कोण बनाती हो जमीन से--शरीर के लिए सबसे कम कष्टपूर्ण है। एक।

दूसरे कारण से भी वह सुखासन है, क्योंकि शरीर को अब... अब शरीरविद मानते हैं कि शरीर के भीतर जो शक्ती काम कर रही है, वह भी बायोइलेक्ट्रिसिटी है। वह भी एक दैहिक-विद्युत है। और शरीर के भीतर विद्युत का तार, विद्युत का संचालन, उसकी गति पूरे समय हो रही है।

योग को यह खयाल सदा से रहा है कि शरीर के भीतर विद्युत काम कर रही है। इस विद्युत को योग ने प्राण कहा है। यह नाम का फर्क है। यह जो शरीर के भीतर प्राण काम कर रहा है, वह विद्युत के नियम से ही चलता है। जैसे विद्युत अगर वर्तुल में घूम रही हो तो उसका ह्नास नहीं होगा। अगर उसका वर्तुल टूट जाए तो विद्युत का ह्नास होगा। विद्युत अगर अपने वर्तुल में घूमती रहे तो वह अपने को संबंधित करती है।

शरीर के भीतर भी जो विद्युत का प्रवाह है, उसका भी वर्तुल निर्मित हो जाता है सुख-आसन में। दोनों पैर, दोनों पैरों के पंजे जांघों से जुड़ जाते हैं। दोनों हाथ एक-दूसरे के ऊपर रख लिए जाते हैं। रीढ़ सीधी हो जाती है। हाथों और पैरो की उंगलियों से शरीर की विद्युत का प्रवाह बाहर की तरफ होता है। अगर ये दोनों एक-दूसरे से हाथ जुड़ जाएं और दोनों पैर जांघों से जुड़ जाएं, तो जो शरीर की विद्युत बाहर जाती है, बाहर न जाकर शरीर में ही वर्तुलाकार घूमने लगती है।

अगर शरीर की विद्युत बिल्कुल बाहर न जाए--और इसके लिए और भी उपाय योगियों ने किए; लकड़ी के तख्त पर बैठते थे, वह नॉन-कंडक्टर है, उससे बिजली बाहर नहीं जाती। या सिंह के चर्म पर बैठते, या मृग-चर्म पर बैठते, वह सब नॉन-कंडक्टर है। या ऊन के कंबल को बिछा कर उस पर बैठते, वह भी नॉन-कंडक्टर है। योग ने जितनी चीजों पर बैठने की सलाह दी कि इन पर बैठकर ध्यान करना चाहिए, वे सब नॉन-कंडक्टर हैं। उनसे बिजली बाहर नहीं जाती। इसलिए शरीर की सारी बिजली शरीर में रहेगी। बाहर जाने के सब उपाय बंद हो जाते हैं। और शरीर के भीतर वर्तुल निर्मित होता है। सर्किट निर्मित होता हैं। इस सर्किट की स्थिति में शरीर का सबसे कम, कम से कम ह्नास होता है।

शरीर की शक्ति का सबसे ज्यादा ह्नास संभोग में हाता है। क्योंकि संभोग में आपके शरीर की बिजली को फेंकने वाला जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है, वह दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाता है। और दूसरे व्यक्ति की, विशेषकर स्त्री के व्यक्तित्व में बिजली को खींचने की जो क्षमता है, वहां पूरी तरह से बिजली खींच ली जाता है।

सुखासन में सबसे कम शरीर की विद्युत बाहर जाती है, संभोग में सर्वाधिक।

मनुष्य के जो जननेंद्रिय हैं, वे विद्युत के बड़े संग्रह के केंद्र हैं--रिजर्वायर--वहां से सर्वाधिक विद्युत फेंकी जा सकती है। इसलिए कामातुर मन--चाहे कामवासना में न भी उतरे--चौबीस घंटे अपने शरीर की विद्युत को बाहर फेंकता रहता है। इसलिए कामातुर व्यक्ति भीतर से क्षीणता को, दीनता को, ग्लानि को, और धीरे-धीरे भीतर एक आत्म-दुर्बलता को उपलब्ध होता है।

यह सारी की सारी व्यवस्था सुखासन की शरीर की विद्युत को भीतर एक वर्तुलाकार में घुमाने की है। एक और मजे की बाद है कि जब शरीर की विद्युत बाहर नहीं जाती और वर्तुलाकार घूमती है, तो शरीर को शुद्ध करती है। उसकी हम पीछे बात करेंगे।

सुखासन का पहला तो प्रयोजन है कि रीढ़ इतनी सीध में हो कि शरीर पर सबसे कम कष्ट पड़े।

दूसरा प्रयोजन है--शरीर की विद्युत वर्तुलाकार निर्मित हो जाए ताकि शरीर की शक्ति का कोई भी ह्नास बाहर न हो। इस अवस्था में शरीर सर्वाधिक सुख की अवस्था को अनुभव करता है, सर्वाधिक सुख में होता है।

ध्यान रहे, इस सुख से शायद आप समझ न पाएं, यह योगियों का शब्द है। जिस चीज को आप सुख समझते हैं, उसमें एक तरह की उत्तेजना और एक्साइटमेंट जरूरी है। जिसे हम सुख समझते हैं--हम कहते हैं एक आदमी को लाटरी मिल गई, बहुत सुख में है इस समय। सुख का मतलब यह है कि इतना उत्तेजित है कि रात सो नहीं सकता। हृदय की धड़कन बढ़ गई गई है, खून की चाल तेज हो गई है। रक्तचाप बढ़ गया है, हम कहते हैं बड़े सुख में है--रात नींद नहीं आती। चौबीस घंटे कंप रहा है भीतर कुछ। बड़े सुख में है। हम जिसे सुख कहते हैं वह भी उत्तेजना है और हम जिसे दूख कीते हैं वह भी उत्तेजना हैं। हम उत्तेजना को ही सुख कहते हैं, उत्तेजना को ही दुख कहते है।

फिर फर्क क्या है, जो उत्तेजना हमें प्रीतिकर लगती है, उसे हम सुख कहते हैं। जो उत्तेजना अप्रीतिकर लगती है, उसे दुख कहते हैं। और इसीलिए ऐसा भी हो जाता है कि आज जो सुख है, वह कल दुख हो जाता है। और आज जो दुख है, वह कल सुख हो सकता है। उत्तेजना वही रहेगी, सिर्फ प्रीति और अप्रीति की बदलने की जरूरत है।

कभी, आपको खयाल न हो, जिनको आप सुख कहते हैं वे भी आपको बुरी तरह थका जाते हैं। इसलिए कोई आदमी सतत सुख में नहीं रह सकता। उसका कारण यह नहीं है कि सतत सुख के रहने की कोई असंभावना है। उसका कारण कुल इतना है कि सतत सुख में आप बुरी तरह टूट जाएंगे जिसका हिसाब नहीं है। बीच में अनिवार्य गैप आने जरूरी है।

पश्चिम के एक बहुतअदभुत मिस्टिक--जैकब वोहमे ने कहा है कि मैंने प्रेम करके भी यह पाया कि प्रेम भी एक बीमारी है। और बीमारी इसलिए कहता हूं कि बीमारी में मैं जितना नहीं टूटा, उतना प्रेम में टूटा। और बीमारी में जितना नहीं थका, उतना प्रेम में थका। और बीमारी का तो इलाज भी है, प्रेम का कोई इलाज नहीं। और बीमारी में अगर रात नहीं सो पाता था, तो लोग कहते थे अनिद्रा हो गई। और प्रेम में भी नहीं सो पाता था रात, तब मैं सोचता था सुख है। अब मैं जानता हूं, वह भी अनिद्रा थी।

जिन्हें हम सुख कहते हैं, वह हम, हमारी मान्यता के अनुसार प्रीतिकर उत्तेजनाएं हैं। योग उनको सुख नहीं कहता। इस बात को ठीक से समझ लें। इसलिए कह रहा हूं कि सुख शब्द का उपयोग किया है, इसलिए कहीं आपको और कुछ भ्रांति न हो जाए। सुख हमारे लिए उत्तेजना का एक रुप है, योग उसे सुख कहता है जहां शरीर में कोई उत्तेजना नहीं। अनुत्तेजित, अनएक्साइटेड शरीर की अवस्था को यागे सुख कहता है। इसलिए जिसे हम दुख कहते हैं, उसे तो योग दुख कहता ही है, जिसे हम सुख कहते हैं उसे भी दुख कहता है। सुख उस आंतरिक समन्वय को कहता है जहां कोई उत्तेजना नहीं, कोई तनाव नहीं, कोई लहर नहीं। झील बिल्कुल शांत है। शरीर की ऊर्जा बिल्कुल शांत मौन अपने में घूम रही है। कहीं कोई बाहर जाने का ख्याल भी नहीं है। अपने में तृप्त, शांत ठहरी हुई है। सुखासन से ऐसा प्रयोजन है।

तीसरा शब्द है--"सिर, गले व शरीर को एक सीध में रख कर।" सिर, गला और रीढ़ एक सीध में रख कर। अगर आप शरीरशास्त्र से परिचित हैं, तो आप जानते होंगे कि शरीरशास्त्री कहते हैं कि आपकी रीढ़ का ही आखिरी हिस्सा विकसित होकर मस्तिष्क बना है। मस्तिष्क के भीतर जो भी ग्रंथियां है, मस्तिष्क का जो भी फैलाव और विस्तार है, वह रीढ़ का ही अंग है। हम कह सकते हैं कि मस्तिष्क रीढ़ का ही एक छोर है। या उलटा भी कह सकते हैं कि रीढ़ मास्तिष्क की ही फैली हुई एक जड़ है। लेकीन एक आत तय है रीढ और मस्तिष्क गहरे में संबंधित हैं। इतने गहरे में संबंधित हैं उसका हमे भी पता है, लेकिन सचेतन पता नहीं है।

रात आप सोते हैं, बिना तकिए के सोएं तो नींद नहीं आती। कभी आपने सोचा ही न होगा कि तकिए और नींद का क्या लेना-देना? सभी जानवर बिना तकिए के सोते हैं और उन्हें नींद आती है। बच्चे भी बिना तकिए के सो जाते हैं और उन्हें नींद आती है। लेकिन जैसे-जैसे उम्र बड़ी होती है, वैसे मुश्किल होता जाता है। और एक मजे की बात है कि जैसे-जैसे सभ्यता बड़ी होती है, शिक्षा बड़ी होती है, उतने ज्यादा तकियों की जरूरत पड़ती है।

क्यों?

उसका शारीरिक कारण है भीतर। जितना मस्तिष्क सक्रिय हो जाता है, उतना संवेदनशील हो जाता है। और इसलिए रात को अगर सोना है, तो मस्तिष्क में खून कम से कम जाए, इसका खयाल रखना जरूरी हैं। जरा सा खून मस्तिष्क में जाएगा, मस्तिष्क सक्रिय हो जाएगा, नींद मुश्किल हो जाएगी। इसलिए तकिए ऊंचे रख लेते है आप, मस्तिष्क ऊंचा हो जाता है, रीढ़ नीची हो जाती है, तो सारा मस्तिष्क का खून रीढ़ की तरफ बहने लगता है। अगर मस्तिष्क नीचा हो और रीढ़ ऊंची हो, या समना दोनों हो, तो खून मस्तिष्क की तरफ बहता रहेगा और नींद असंभव हो जाएगी। इसलिए शीर्षासन में नींद आना बिल्कुल असंभव है। और जो शीर्षासन करता है, उसकी नींद कम हो जाती है। कम हो जाएगी। शीर्षासन करने वाला पांच घंटे, चार घंटे में पर्याप्त नींद ले लेगा। इससे ज्यादा उसे जरूरत नहीं रह जाएगी।

लेकिन अगर शीर्षासन ज्यादा किया जाए तो बुद्धि को नुकसान पहुंचेगा। इसलिए शीर्षासन करने वाले बहुत बुद्धिमान देखे नहीं जाते। क्योंकि बहुत शीर्षासन करने का अर्थ होगा कि खून इतनी ज्यादा तीव्रता से मस्तिष्क में बहेगा कि मस्तिष्क के जो बहुत सूक्ष्म तंतु है, वे टूट जाएंगे। और जितने ज्यादा सूक्ष्म तंतु मस्तिष्क में हो, बुद्धि उतनी विकसित होती है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी के भीतर बुद्धि के विकास का कुल एक ही कारण है कि आदमी दो पैरों पर खड़ा हो गया है। और सब जनावर चार पर खड़े हैं। चार पर खड़े होने की वजह से उनके मस्तिष्क में खून बहुत बह रहा है, सूक्ष्म तंतू विकसित नहीं होते। आदमी दो पैर से खड़ा हो गया, उसके मस्तिष्क में खून सबसे कम जाने लगा--क्योंकि इतने ऊपर तक पंप करना मुश्किल है खून को, कम से कम खून पहूंच पाता है, इसलिए आदमी के मस्तिष्क ने सूक्ष्म तंतु विकसित कर लिए हैं। ठीक ऐसे ही जैसे कि अगर कोई धीमी सी धारा धारा बह रही हो, तो उसमे आप पौधे लगा सकते हैं। कोई बड़ी प्रगाढ़ धारा बहने लगे, पौधे उखड़ जाएंगे। और मस्तिष्क के तंतु बहुत सूक्ष्म हैं। छोटे से हमारे मस्तिष्क में सात करोड़ सेल हैं। एक बड़ी बस्ती है। सात करोड़ जीवंत सेल हैं। जरा सा झटका इनको तोड़ देता है। तो आदमी का सारा का सारा विकास रीढ़ के बल दो पैर से खड़े हो जाने पर हुआ।

अगर आप विकासवादियों से पूछें, तो वे कहेंगे कि मनुष्य के जीवन में जो सबसे बड़ी क्रांति हुई, वह उस बंदर ने की जो वृक्ष से नीचे उतर कर दो पैरों से खड़ा हो गया, और दो पैर मुक्त हो गए, रीढ़ सीधी हो गई और मस्तिष्क तक खून की धारा कम हो गई। जब यह कहा जाता है कि रीढ़ गला और सिर एक सीध में हो, तो वह एक दूसरी और बड़ी क्रांति के लिए सूचना है। अगर जानवरों से किसी ने कहा होता कि तुम अगर दो पैरों से खड़े हो जाओ, तो तुम्हारे भीतर बुद्ध और आइंस्टीन और सुकरात जैसे लोग पैदा हो सकते हैं, तो जानवरों ने भी हंसी उड़ाई होती कि क्या मजाक करते हो! सिर्फ दो पैर से खड़े होने से बुद्ध, आइंस्टीन और सुकरात पैदा हो सकते हैं! यह जानवरों को बात जंची न होगी। यह हमको भी नहीं जंचती कि रीढ़, गले और सिर को एक सीध में रखने से ध्यान कैसे पैदा होजा जाएगा, समाधि कैसे लग जाएगी?

यह और आगे का एक कदम है। अगर रीढ़, गला और मस्तिष्क बिल्कुल एक सीध में रख कर आप बैठे हों, तो उनके भीतर जो विद्युत-धारा प्रवाहित होती है, उस विद्युत धारा को प्रवाहित होने के लिए सब बाधाएं टूट जाती हैं। सीध की वजह से सीधी बह पाती हैं। लेकिन बैठे हों। अगर लेट कर किया हो, तो खून भी साथ में ऊपर बढ़गा। बैठे होना चाहिए। तो खून तो ऊपर नहीं जा, गा, सिर्फ शरीर की विद्युत ऊपर जाएगी। अगर खून कम जाए और विद्युत ज्यादा जाए तो मस्तिष्क के जो केंद्र अभी निष्क्रिय पड़े हैं, वे सक्रिया होना शुरू हो जाते हैं। मास्तिष्क के बहूत केंद्र निष्क्रिय हैं। अगर मनस्विद से पूछेंगे, तो वह कीता हे कि, मस्तिष्क का दस प्रतिशत से ज्यादा उपयोग नहीं किया है। उस नब्बे प्रतिशत की क्या संभावनाएं है, कहना कठिन है।

योग कहता है, सारी सिद्धियां--जिनकी योग ने चर्चा की है--उस नब्बे प्रतिशत से संबंधित हैं, अगर उनको भी हम प्राण दे सकें और प्राण-ऊर्जा उनमें भी प्रवाहित हो सके, तो वे केंद्र भी सक्रिय हो सकते हैं। और अभी तो वैज्ञानिकों का एक समूह जो साइकिक रिसर्च में लगा है, मन की गहन खोज में लगा है, वह चकित हुआ यह जान कर कि जिन लागों के भी पास किसी तरह कि सिद्धि होती है--किसी तह की; सिद्धि से मतलब है, एक ऐसी शक्ति जो सामान्य नहीं है। कोई चमत्कार नहीं है, कोई सोई हुई शक्ति जो सामान्य नहीं है।

जैसे टेड सीरियो अमेरिका में एक आदमी है, वह किसी भी चीज का विचार करे, तो विचार के साथ ही उसकी आंखों में उस का चित्र भी आ जाता है। और चित्र आखों में ही नहीं आ जाता, उस चित्र का कैमरे से फोटो भी लिया जा सकता है। उसकी आंखों में आए चित्र का। जैसे टेड सीरियो न्यूयार्क में बैठकर ताजमहल के संबंध में सोचे--उसने सोचा है ताजमहल के संबंध में--आंख बंद करके सोचता रहेगा, सोचता रहेगा, फिर वह कहेगा कैमरा तैयार कर लो, मैं आंख खोलता हूं, ताजमहल आगया है। फिर आंख खोलता है और आंख से तस्वीर ली जाती है, तो आंख में ताजमहल आ जाता है, तस्वीर में ताजमहल आ जाता है। और ऐसी चीजों के भी चित्र आ जाते हैं जो उसने देखी नहीं हैं। जो और कठिन बात है।

ताजमहल अगर देखा हो, तो आदमी कल्पना भी कर सकता है, फिर भी यह असंभव है। कल्पना आंख में प्रोजेक्ट नहीं होती। और कल्पना करने से आंख से चित्र नहीं लिए जा सकते हैं। लेकिन टेड सीरियो ने जिन चीजों को देखा ही नहीं, उन चीजों के बाबत कहने पर भी वह विचार करता है सिर्फ कि वह चीज आंख में आ जाए, और वह आंख में आ जाती है। और उसकी तस्वीरें आ जाती हैं।

टेड सीरियो के मास्तिष्क की जांच से पता चला कि सामान्य आदमी के मस्तिष्क के जो हिस्से बेकार पड़ रहते हैं, वे उसके बेकार नहीं हैं, वेकाम कर रहे हैं, उनमें विद्युत दौड़ रही है।

अब तो हमारी खोपड़ी पर इलेक्ट्राड लगा कर जांच की जा सकती है कि किस हिस्से में विद्युत दौड़ रही है और किसमें नहीं दौड़ रही है। इलेक्ट्राड लगाने से, जहां विद्युत दौड़ रही है, इलेक्ट्राड का जो बल्ब है वह जल जाता है। और जहां नहीं दौड़ रही है वहां बल्ब नहीं जलता है। जैसे कि इलेक्ट्रिसियन जांच करता है कि बिजली चल रही है या नहीं चल रही है। ठीक वैसे ही हमारी खोपड़ी में भी बिजली दौड़ रही है, अब जांच की जा सकती है। बहुत बारीक, बहुत सूक्ष्म और नाजुक बिजली दौड़ रही है। लेकिन फिर भी एक मस्तिक में जितनी बिजली दौड़ रही है, सामान्य हालत में उससे पांच कैंडिल का बल्ब जलाया जा सकता है, कभी भी। बहुत नाजुक है, लेकिन तफर भी पांच कैंडिल का बल्ब खोपड़ी में लटका कर जलाया जा सकता है। वह जल जाएगा। इस बिजली को जांचा जा सकता है। टेड सीरियो के जिन हिस्सों में बिजली दौड़ रही है, उन हिस्सों में सामान्य आदमी के नहीं दौड़ती।

योग कहता है कि यह जो तीनों को अगर सीधा रखा जाए तो जो ऊर्जा है वह ऊपर उठती है। और मास्तिष्क के दूसरे हिस्सों में दौड़ना शुरू हो जाती है। उस दौड़ने के ही परिणाम में सिद्धियां हो जाती हैं। अनेक नई घटनाएं मस्तिष्क में घटनी शुरू हो जाती हैं। इन तीनों को सीध में रखने का कारण वैज्ञानिक है--शरीर की ऊर्जा, शरीर की विद्युत मस्तिष्क के आखिरी छोर तक चली जाए।

दो बातें और समझ लें।

मैंने कहा कि मस्तिष्क जो है, वह रीढ़ का ही एक हिस्सा है। और आपकी जननेंद्रिय जो है, वह भी दूसरा हिस्सा है। आपके जनन का जो यंत्र है, वह रीढ़ के छोर पर है और आपके चिंतन का जो यंत्र है, वह रीढ़ के दूसरे हिस्से पर है। और इन दोनों के बीच एक ही ऊर्जा का प्रवाह है। जिसको हम काम-ऊर्जा कहें, सेक्स-एनर्जी कहें, वह वही एनर्जी है।

अगर वह रीढ़ के नीचे के हिस्से से जगत में प्रवेश करती है, तो हम उसे कामऊर्जा कहते हैं। यौन कहते हैं। और अगर वही मस्तिष्क के आखिरी हिस्से से जगत में प्रवेश करे, तो कुंडलिनी हो जाए। इस काम-ऊर्जा को ऊपर ले जाने के लिए इन तीनों का एकदम सीध में होना जरूरी है। यह बिल्कुल सीधी रेखा में, मस्तिष्क, गला और रीढ़ बिल्कुल एक सीधी रेखा में आ जाएं।

चौथा शब्द है--

एकांत स्थान हो; सुख-आसन हो; सिर, गले व शरीर को एक सीध में रखा हो;"सब भांति शरीर को शुद्ध करके"। शरीर की शुद्धि से हमारे मन में खयाल उठता है स्नान इत्यादि करके। वह ठीक है, लेकिन बहुत कम है। शरीर की शुद्धि बड़ी घटना है। स्नान ने शरीर पर जो बाहर से धूलकण या और कुछ आ गया हो, वह धुल जाता है। शरीर के रंध्र शुद्ध हो जाते हैं। शरीर के रंध्र-रंध्र से श्वास ली जाती है, वह श्वास की क्रिया शुरू हो जाती है। शायद आपको खयाल न हो कि आप नाक से ही श्वास नहीं लेते, पूरे शरीर से श्वास लेते हैं। इसलिए अगर आपकी नाक छोड़ दी जाए कि आप नाक से श्वास लें और सारे शरीर को ठीक से पेंट कर दिया जाए कि कोई भी आपका रोआं श्वास न ले सके, तो आप तीन घंटे से ज्यादा जिंदा नहीं रह सकते। नाक से आप शस लेते रहे, मुंह से ही श्वास ले रहे हैं। सब शरीर के रंध्र बंद कर दिया जाएं, तो आप तीन घंटे से ज्यादा जिंदा नहीं रह सकते। तो इस भ्रांति में आप मत रहना कि आप नाक से ही श्वास ले रहे हैं। आपका रोआं-रोआं स ले रहा है। शरीर के छिद्र-छिद्र से श्वास जा रही है। तो स्त्रान से इतनी शुद्धि हो जाती है कि सब छिद्रों के धूलकण हट जाते हैं। धूलकण हट जाने से आपका पूरा शरीर प्राणवायु को लेने लगता हैं। रोएं-रोएं में प्राणवायु के पहुंचने से एक ताजगी अनुभव होनी शुरू होती है। यह जो शुद्धि है--जरूरी है, काफी नहीं।

शरीर-शुद्धि बड़ा शब्द है। शरीर-शुद्धि के दो-तीन अंग समझ लेने चाहिए। एक, जो आपको कभी भी खयाल न आया होगा।

अभी-अभी अमेरिका में एक मनस्विद की मृत्यु हुई। विलहम रेक उसका नाम है। इस सदी में जिन लोगों ने बहुत महत्वपूर्ण काम किया है मनुष्य के ऊपर, उनमें एक आदमी था। जो भी महत्वपूर्ण काम करते हैं, वे मुसीबत में पड़ते हैं। विलहम रेक जेलखाने में मरा। क्योंकि आदमी कुछ ऐसा अजीब है कि उसके लिए अगर कोई भी महत्वपूर्ण काम किया जाए तो वह ठीक से बदला लेगा।

बदला लेने का कारण होता है। क्योंकि अगर ठीक से आदमी पर काम हो, तो उसकी जड़, मानी हुई मान्यताओं में से बहुत सी मान्यताएं गलत सिद्ध होती हैं। गलत सिद्ध होते ही आदमी को तकलीफ शुरू हो जाती है। आदमी मानने को तैयार नहीं कि उसकी कोई मान्यता गलत है। और मजा यह है कि अपनी ही

मान्यताओं के कारण वह सब तरह के दुख में पड़ा है। पूछने जाता है कि मेरा दुख कैसे मिटे? लेकिन अगर उससे कहो कि तुम्हारी मान्यताएं ही तुम्हें दुख दे रही हैं, तुम्हीं अपने दुख के निर्माता हो, तो मान्यताओं को बदलने को तैयार नहीं है।

आदमी ऐसा है कि खुद ही अपना कारागृह बनाकर, उसमें ताला लगा कर, चाबी को फेंक देता है बाहर। और फिर चिल्लाता है कि मैं बहुत दुख में हूं, बहुत बंधन में पड़ा हूं, मुझे छुड़ाओ। और अगर कोई आदमी यह कहे कि यह तेरी ही मूढ़ता का फल है, तो फिर क्रोध आता है।

विल्हम रेक ने बहुत सी बातें आदमी के संबंध में कीमती कहीं। उसने कहा कि आदमी के शरीर में आदमी की दबाई गई सभी वासनाएं संग्रहीत हो जाती हैं। शरीर में, मन में नहीं। दबाई गई सभी वासनाएं शरीर में संगृहीत हो जाती हैं, और ये वासनाएं शरीर में संगृहीत होकर शरीर को अशुद्ध कर देती हैं, रुग्ण कर देती हैं, विकृत कर देती है।

योग इस बात को बहुत पहले से जानता है। जैसे मेरा अपना अनुभव यह है कि अगर आप अपने क्रोध को दबा लें, तो आप बहुत हैरान हो जाएंगे कि आपके दांतों में आपका क्रोध संगृहीत हो जाएगा। उसके कारण हैं। इसलिए क्रोध जब होता है, तो आदमी दांत पीसने लगता है। क्रोध जब होता है, तो मुट्ठियां बांध लेता है। क्रोध में आदमी इतनी जोर से मुट्ठियां बांध सकता है कि अपने ही नाखून अपनी ही मांस में चुभ जाएं। अगर आपने क्रोध को दबा लिया, तो आपकी अंगुलियों में और आपके दांतों में क्रोध संगृहीत हो जाएगा।

विलहम रेक तो इस नतीजे पर पहुंचा कि क्रोध आदमियों के दांत जल्दी गिर जाते हैं। हजारों प्रयोगों से इस नतीजे पर पहुंचा। और विलहम रेक ने हजारों क्रोधियों के दांतों को दबा कर उनके क्रोध को जगाने का अनूठा प्रयोग किया। जब क्रोधी अगर उसके पास आएगा तो वह सारा अध्ययन करके उसको लिटा देगा। और कुछ नहीं करेगा, चारों तरफ से उसके मसूढ़ों को दबाएगा। और उसके मसूढ़ों को दबाने से वह आदमी इतने क्रोध में आ जाएगा--अभी क्रोध का कोई कारण नहीं था--कि अनेक बार विल्हम रेक को पुलिस को बुला कर अपने मरीजों से खुद को बचाना पड़ा। फिर तो बाद में उसे बॉडी गार्ड रखना पड़ता था, क्योंकि कभी भी कोई मरीज उस पर हमला कर देगा। उसके दबाए क्रोध को छूना, उसको उकसाना खतरनाक है।

जानवर और आदमी के बीच का फासला कितना ही हो, बहुत फासला नहीं है। तो जानवर अपना सारा क्रोध दांतों से प्रकट करते हैं। वही उनके पास-या नाखून, या दांत, ये दो चीजें उनकी हिंसा के साधन हैं। आदमी ने हिंसा के बहुत साधन विकसित कर लिए। और जो खोज करते हैं वे कहते हैं, इसलिए विकसित कर लिए कि आदमी के दांत और नाखून जानवरों से बहुत कमजोर हैं, इसलिए सबस्टिट्यूट की जरूरत पड़ना जरूरी हो गई। तो हमारे खंजर, हमारी तलवारें, हमारी छुरियां--ये हमारे दांतों का विस्तार हैं। हमारे नाखूनों का विस्तार हैं। दूसरे जानवर हमसे मजबूत थे। हमें कुछ खोजना पड़ा जिससे हम उनसे ज्यादा मजबूत दांत और नाखून बना लें। उससे हम जीते भी। लेकिन एक मजेदार घटना घट गई कि जब आप छुरी से किसी को मारते हैं तो आपके नाखूनों में जो हिंसा उठ गई थी, वह छुरी से नहीं निकलती। वह आपके नाखून में ही रह जाती है। नाखून से छुरी दक हिंसा को जाने के लिए कोई"पैसेज" नहीं है। अगर आप किसी आदमी को गाली देते हैं और बड़बड़ाते हैं और दांत पीसते हैं तो भी बिना काटे आपके दांतों में ऊर्जा आ जाती है, वह नहीं निकलती। और दांतों की ऊर्जा आ जाने की जो व्यवस्था है, वह करोड़ों वर्ष के अनुभव से आई है।

तो दांत में हिंसा इकट्ठि हो जाती है। हिंसक आदमी सिगरेट पीने में रस पाएगा। दांतों का उपयोग होता है। हिंसक आदमी कुछ ज्यादा बातचीत करने में रस पाएगा। दांतों का उपयोग होता है। हिंसक आदमी कुछ नहीं

मिलेगा तो गाद को मुंह में डालकर चबाता रहेगा, पान को मुहं में डाल कर चबाता रहेगा, यह सब हिंसक आदमी के लक्षण हैं। दांत चलना चाहिए। तो दांतों से थोड़ी ऊर्जा निकलती है। थोडी राहत मिलती है, थोड़ी हलकापन आता है। वह किस तरह चले। एक लिहाज से अच्छा भी है कि आप दूसरे को नहीं काटते, कम से कम पान चबाते हैं। अहिंसक उपाय है हिंसा को निकालने का।

लेकिन, यह मैंने उदाहरण के लिए कहा। हमारे शरीर की सारी वासनाएं जिनको हम दबा लेते हैं--और आदमी दबा रहा है, बुरी तरह दबा रहा है--आदमी कुछ भी नहीं निकालता; हमारी सारी सभ्यताएं और सारी संस्कृतियां और तथाकथित सारे धर्म दमन पर खड़े हैं। दबाओ सब। उसको दबा कर रोक लो। लेकिन वह दबेगा तो भीतर भर जाएगा और शरीर अशुद्ध हो जाएगा। शरीर की शुद्धि का स्नान से ज्यादा गहरा परिणाम आपके शरीर के भीतर जो दबा है, उसे निकालने से होगा।

हम जो प्रयोग कर रहे हैं ध्यान का, वह इसे जुड़ा हुआ है। उसमें आपके भीतर जो भी दबा है--क्रोध है, हिंसा है, दुख, सुख है, रोना है, हंसना है, पागलपन है, सब दब है--उसे फेंक देना है, उसे निकाल देना है। और ध्यान रहे, जब आप किसी पर निकालते हैं, तो आप एक चक्कर में पड़ रहे हैं जिससे छुटकारा नहीं होगा। उसे शुन्य में निकाल देना है। जो आदमी अपने क्रोध को शून्य में निकालने में समर्थ हो गया--किसी पर नहीं--क्योंकि जब आप किसी पर निकालेंगे, तो फिर क्रोध कीशृंखला का कोई अंत नहीं है। मैंने आपको गाली दी, फिर आपने मुझे गाली दी, फिर मैं आपको गाली दूंगा। और इसका कोई अंत नहीं है। और हर बार, हर बार क्रोध का यह प्रयोग करना अभ्यास भी बनेगा। तो क्रोध तो निकलेगा, लेकिन अभ्यास भी निर्मित होगा। और तब एक, दुष्ट-चक्र है, जिसमें आदमी फंस जाता है।

अगर मैं प्रकट करता रहूं, हर किसी को गाली दूं, हर किसी पर क्रोध करूं, वक्त-बेवक्त हंसता रहूं, वक्त-बेवक्त रोने लगूं, जो भी मेरे भीतर है वह प्रकट करता रहूं, तो भी जीना असंभव हो जाएगा। जहां दूसरों के साथ जीना है, वहां बहुत बार बहुत सी बातें दबा ही लेनी पड़ेंगी। इसलिए दमन समाज के साथ अनिवार्य है। और शायद ही हम कभी कोई ऐसा समाज बना पाएं, जो पूरे दमन से छुटकारा करवा दे। अच्छा समाज कम से कम दबाएगा, बुरा समाज ज्यादा से ज्यादा दबाएगा, लेकिन अच्छे से अच्छे समाज में जीने में भी दमन अनिवार्य है।

फ्रायड ने जिंदगी भर दमन का अध्ययन करने के बाद, बड़े निराशा में उसने कहा है कि मुझे मनुष्य का कोई भविष्य नहीं मालूम पड़ता। कभी भी आदमी कैसा भी हो, जब तक समाज में रहेगा, दुखी रहेगा। और समाज के बिना रह नहीं सकता। समाज के बिना रहेगा ही कैसे? उसने लिखा है--आदमी वैज्ञानिक था, इसलिए जो सीधा उसे लगा उसने लिखा है--उसने लिखा है कि मुझे कोई हल नहीं सूझता कि आदमी सुखी कैसे हो सकता है? समाज में रहेगा तो दमन करेगा। अगर दमन नहीं करेगा, तो समाज में जी नहीं सकेगा, जीना असंभव हो जाएगा। और इन दोनों के अतिरिक्त मार्ग नहीं सूझता है।

फ्रायड को नहीं सूझता है, लेकिन योग के पास मार्ग है; योग कहता है, दूसरे पर प्रकट करने की कोई भी जरूरत नहीं है, शून्य में प्रकट करो। खाली आकाश में क्रोध को प्रकट करो। और आकाश की छाती बहुत बड़ी है, लौटाएगा नहीं क्रोध को। अगर हम अपने सब दमित वेगों को प्रकट कर सकें, तो निर्जरा हो जाती है, तो कैथार्सिस हो जाती है। तो शरीर शुद्ध हो जाता है।

और जब शरीर शुद्ध होता है, तो ध्यान में पंख लग जाते हैं। आदमी उड़ने लगता है ध्यान में, चलना नहीं पड़ता, उड़ान शुरू हो जाती है। वे सारे पत्थर की तरह जो हमारे भीतर दबे हुए वेग थे, वही हमें नीचे खीचे रहे हैं। वही हमें नीचे खींच रहे हैं। यह जो आपने सुना होगा बहुत बार कि अनेक लोगों को ध्यान में अनुभव होता है

कि वे जमीन से ऊपर उठ गए, सौ में निन्यानबे मौके पर जमीन से वे उठते नहीं हैं, लेकिन शरीर के भीतर के वेग विसर्जित हो जाने से इतना हलकापन लगता है कि ऐसी प्रतीति होती है कि शरीर जमीन से ऊपर उठ गया। आंख खोल कर देखते हैं तो जमीन पर पाते हैं। आंख बंद करते हैं, तो लगता है कि शरीर जमीन से ऊपर है। यह लगना इतना स्पष्ट होता है कि वे यह मान भी नहीं सकते कि नहीं उठ गए हैं। यह प्रतीति इतनी साफ होती है।

इस प्रतीति का कुल कारण इतना है कि अगर शरीर के सब दमित वेग हट जाएं, शरीर बिल्कुल शुद्ध हो जाए, तो तत्काल ऊपर उठने का बाधे होता है। और यह शुद्धि अगर और भी कुछ आयामों में प्रयोग की जाए, तो गुरुत्वाकर्षण छोड़ कर सौ में एक आदमी तो ऊपर उठ ही सकता है। वस्तुतः ऊपर उठ सकता है। लेकिन उसके प्रयोग अलग हैं। ध्यान से उसका कोई सीधा संबंध नहीं है। पर ध्यान में यह घटना तो घटती है कि आदमी को अनुभव होता है कि मैं उठ गया, दूर हट गया, जमीन से पार हो गया, शरीर मेरा ऊपर हवा में दैर रहा है। यह प्रतीति बहुत आंतरिक है। यह शरीर की शुद्धि की प्रतीति है।

तो शरीर की शुद्धि का लक्षण आपको बताए देता हूं। जब तक आपको ऐसा प्रतीत न होने लगे ध्यान में कि आप जमीन से ऊपर उठ गए, तब तक आप समझना कि शरीर में वेग अभी तक दबाए हुए हैं। अभी तक वेग पूरे आप निकाल नहीं रहे हैं। वेग निकालने में भी हम कंजूसी करते हैं। अगर मैं आपसे कहूं कि दिल खोल कर रो लो, तो दिल खोल कर रो भी नहीं सकते हैं। रो भी नहीं सकते हैं दिल खोल कर। दबा हुआ है। लेकिन भरा हुआ है भीतर। और इसलिए अक्सर होता है कि कभी आप रो लेते हैं, तो आपको हलकापन लगात है। वह रोने की वजह से नहीं लगता। वह लगता ही इसलिए है कि रोने में जो वेग आपके भीतर दबा था, वह निकल जाता है।

कभी आपने खयाल किया, जब आपके आंसू बह जाते हैं तो भीतर एक हलकापन छोड़ जाते हैं। लेकिन आंसुओं का दुख से कोई भी संबंध नहीं हैं। आसूं खुशी में भी आ जाते हैं। आंसू हर्ष का अतिरेक हो जाए तो भी आ जाते हैं। आंसू प्रेम घना हो जाए तो भी आ जाते हैं। दुख घना हो जाए तो भी आ जाते हैं। आंसू आंखों का अपने दमन को हटाने का उपाय है। आंखों के भीतर जो भी दब जाता है, उसे फेंकने का उपाय है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि आंसू आंख का स्नान है। तो आंख में जो धूलकण इकट्ठे हो जाते हैं हैं, आंसू उन्हें साफ कर देता है। लेकिन सालों लगते हैं आंसू आने में। तो कभी कोई आदमी साल भर नहीं रोया, तो साल भर तक आंखों का कोई फिर स्नान नहीं होता। नहीं, आंसू बहते हैं तो आंख की धूल तो साफ कर ही जात हैं, लेकिन यह गौण है बात। वह आंख की आत्मा को भी भीतर शुद्ध कर जाते हैं। वह आंख के आंतरिक हिस्सों को भी शुद्ध कर जाते हैं। आंख पर जो भी तनाव है--और सुख हो या दुख हो, आंख पर भारी तनाव पड़ते हैं; क्रोध हो, प्रेम हो, आंख पर भारी तनाव पड़ते हैं--वह तनाव हलका हो जाता है। आंख रिलैक्स हो जाती है। आंसू के बहाने उसका वेग बह जाता है। हमारे शरीर में जितने दबे हुए वेग हैं, उनको निकालना ही शरीर की शुद्धि है। स्नान ठीक, और गहना स्नान भी चाहिए।

और एक दूसरी बात जो इससे भी गहरी है शरीर-शुद्धि के लिए, वह भी समझ लेना चाहिए। जब भी हम अपने को शरीर के भीतर अनुभव करते हैं, तो जिस भांति हम शरीर के भीतर अपने को अनुभव करते हैं, उसका परिणाम शरीर की पूरी संरचना पर होता है। एक आदमी समझता है, मैं शरीर हूं। इस आदमी के के पास सर्वाधिक अशुद्ध शरीर हो जाएगा। एक आदमी समझता है, मैं शरीर नहीं हूं, शरीर के भीतर हूं, इस आदमी के पास पहले आदमी से शुद्धतम शरीर हो जाएगा। एक आदमी सोचता है कि मैं शरीर नहीं हूं, न ही शरीर के भीतर हूं बल्कि शरीर के पार हूं; इस आदमी के पास शुद्धतम शरीर हो जाएगा। इसका अर्थ यह हुआ कि शरीर

के साथ हम जितना तादात्म्य कर लेते हैं, उतना शरीर बोझिल हो जाता है। और शरीर और हमारे बीच जितना अवकाश होता है, जितनी जगह होती है, शरीर उतना हल्का हो जाता है। हमारी चेतना और हमारे शरीर के बीच जितना फासला होता है, उस फासले में ही शरीर शुद्ध होता है। और जितना फासला कम होता है, उतना ही अशुद्ध हो जाता है। शरीर और चेतना के बीच फासला हो, यह शरीर की शुद्धि के लिए बहुत अनिवार्य बात है।

लेकिन हम सब इस भांति जीते हैं कि अपने को शरीर ही मान कर जीते हैं। जैसे शरीर ही हैं। अगर मेरा हाथ टूट जाए, तो मुझे ऐसा नहीं लगेगा मेरा हाथ टूट गया ऐसे लगेगा कि मैं टूट गया। मेरे पैर टूट जाएं तो मुझे नहीं लगेगा कि मेरे पैर टूट गए, मुझे लगेगा, मैं लंगड़ा हो गया। अगर मेरा शरीर बूढ़ा हो जाए, तो मुझे ऐसा नहीं लगेगा कि मेरा शरीर बूढ़ा हो गया। यह जो तादात्म्य है शरीर के साथ, यह शरीर को अशुद्ध करता है।

क्यों करता है लेकिन अशुद्ध?

जितना ज्यादा मैं अपने को शरीर से जोड़ लेता हूं, उतना ही शरीर को विश्राम नहीं मिलता। जितना ही ज्यादा मैं शरीर से जोड़ लेता हूं, शरीर को विश्राम नहीं मिलता। शरीर को विश्राम तभी मिल सकता है जब शरीर सिर्फ मेरा एक उपकरण है, उपयोग करता हूं, शांत छोड़ देता हूं। रात आप सो गए, शरीर आपका उपकरण नहीं है, आप शरीर ही हैं, तो आप सो नहीं सकते। शरीर सो नहीं सकता। आपका भीतरी गोरख धंधा जारी है। वह गोरखधंधा शरीर को प्रभावित कर रहा है।

अगर आप कभी किसी सोते हुए आदमी के पास रात भर बैठ कर देखें, तो बहुत हैरान होंगे। कभी किसी ने देखा नहीं था, अभी लेकिन अमेरिका में उन्होंने दस प्रयोगशालाएं बनायीं। सोते हुए आदमी के अध्ययन के लिए निद्रा के अध्ययन के लिए। स्लीप लैब बनाए। बहुत हैरानी की बात मालूम हुई। कभी किसी ने सोचा नहीं था कि आदमी नींद में यह-यह करता है। आदमी नींद में सोता कम है, ऐसा लगता है जैसे रातभर व्यायाम करता है। कभी करवट बदलता है, कभी हाथ फेंकता है, कभी मुंह बिचकाता है, कभी माथे की नसें खींचता है, कभी जीभ बाहर निकालता है, कभी बड़बड़ाता है, कभी दांत पीसता है--कितने काम आदमी रात भर करता है! ये जब स्लीप-लैप बने, तब उनको पता चला कि हद हो गई, क्योंकि कभी आदमी की नींद का ठीक से अध्ययन नहीं किया गया। कौन किसका अध्ययन करे! सभी लोग सो जाते हैं। फिर आदमी क्या करता रहता है रात भर और रात छोटी घटना नहीं है। आदमी अगर साठ साल जिए तो बीस साल सोता है। बीस साल इस उपद्रव में उसको गुजारने पड़ते हैं। और जो वह रात में कर रहा है, वह उसके दिन की सब खबर है। वह दिन में भी यह करता रहा होगा। या करना चाहता रहा होगा, दबा लिया होगा। रात में सब छूट कर हो रहा है। यह जो आदमी का आंतरिक लगाव है कि मैं शरीर हूं, उसका परिणाम है।

बुद्ध के लिए आनंद ने कहा है... आनंद जब दीक्षित हुआ बुद्ध से, तो आनंद बुद्ध का बड़ा भाई था, चचेरा भाई था। बड़ा था, दीक्षा के पहले उसने बुद्धे से कहा कि मैं बड़ा भाई हूं, दीक्षा के बाद तो तुम्हारा शिष्य हो जाऊंगा, इसलिए कुछ बातें मैं पहले ही तय कर लेना चाहता हूं। अभी मैं बड़ा भाई हूं। फिर पीछे तो तुम जो कहोगे वह मुझे मनना ही पड़ेगा। अभी पहले मना लेता हूं, छोटे भाई हो अभी तुम, तो तीन बातों की मुझे अभी तुम स्वीकृति दे दो।

एक, कि चाहे तुम कहीं भी जाओ, मैं तुम्हारे साथ ही रहूंगा; तुम मुझसे कह न सकोगे कि जाओ, फलां जगह विहार पर चले जाओ। मैं साथ ही रहूंगा। तुम कहीं भी सोओ, कौई प्रवेश न कर सके, लेकिन मैं उसी कमरे में सोऊंगा। मुझे कह न सकोगे कि बाहर सो जाओ। और आधी रात को भी मैं किसी को मिलाना चाहूं, तो सब

नियम छोड़कर मैं मिलाने का हकदार रहूंगा। यह जब तक मैं बड़ा भाई हूं तब तक ये तीन की आज्ञा दे दो! तुम छोटे भाई हो, तुम्हें मैं आज्ञा देता हूं। फिर दीक्षा ले ली उसने, फिर तो शिष्य हो गया। लेकिन ये तीन आज्ञाएं बुद्ध ने उसकी मानी, जीवन के अंत तक।

तो वह उनके पास ही सोता था। बीस वर्ष बुद्ध के पास सोने के बाद उसने एक दिन कहा कि मैं बड़ा हैरान हूं, तुम जिस करवट सोते हो, जहां हाथ रखते हो, जहां पैर रखते हो, रात भर वहीं रके रहते हो। क्या रातभर इसका भी संयम रखना चाहिए? क्या करते हो? हाथ जहां रखते हो, रात भर वहीं रखे रहते हो। पैर जहां रखते हो, जिस पैर पर पैर रखते हो, वहीं सुबह पाता हूं कि रखे उठे हो। फिर तो मैंने कई रात जाग कर भी बार-बार देखा, लेकिन पाया कि तुम ठीक वैसे ही पड़े हो। जरा हिलते-डुलते नहीं।

बुद्ध ने कहाः एक बार, एक बार रात में मैंने करवट बदली थी, इसके बाद नहीं बदली। लेकिन उस करवट बदलने का कारण भी यही था कि तब तक शरीर से मेरा थोड़ा लगाव रह गया था। अब शरीर वैसा ही पड़ा रहता है। मुझे करवट बदलनी है, तो भीतर बदल लेता हूं। शरीर को क्या बार-बार हिलाना-डुलाना?

यह जानकर बहुत हैरानी होगी कि यह बिल्कुल आसान है। कठिन मालूम पड़ेगा, क्योंकि हमारी तो कोई भिन्नता ही नहीं शरीर से। तो यह हमे बहुत अजीब लगेगा कि हम करवट बदल ले, शरीर वैसे ही पड़ा रहे। लेकिन जैसे-जैसे हमारी चेतना शरीर से अलग मालूम होने लगती है, कोई भी अड़चन नहीं है। कोई भी तो अड़चन नहीं है। चेतना बदल सकती है, चेतना शरीर के बाहर आ सकती है, शरीर वहीं पड़ा रहे। चेतना शरीर के बाहर यात्रा भी कर सकती है, शरीर वहीं पड़ा रहे। तो करवट क्यों बदल नहीं सकती? कोई अड़चन नहीं है।

अड़चन एक ही कि है शरीर से बुरी तरह जुड़े हैं कि हम यह सोच ही नहीं सकते कि शरीर के बिना करवट बदलें। हम कैसे करवट बदलेंगे? शरीर को कोई कठिनाई नहीं है, कठिनाई हमको है। जब तक शरीर करवट न ले हम कैसे करवट लेंगे? हम हैं ही शरीर की छाया की भांति। शरीर जो करे वही हम करते हैं।

यह तीसरी बात खयाल में ले लें। शरीर हूं। शरीर के भीतर हूं। शरीर के पार हूं। अगर शरीर को पूरा शुद्ध करना है, तो यह स्मरण निरंतर रखना पड़ेगा कि मैं शरीर के पार हूं। भीतर भी नहीं, पार। अलग ही, दूर। तो शरीर भीतरी रूप से शुद्ध हो जाता है।

"समस्त इंद्रियों को एकाग्र करके।" इंद्रियां हैं हमारे पास। प्रत्येक इंद्रिय का अलग-अलग काम है और अलग-अलग आयाम है। आंख देखती है, कान सुनते हैं। न कान देख सकते, न आंख सुन सकती। हाथ छूते हैं, नाक गंध देती है। नाक छू नहीं सकती, हाथ गंध नहीं ले सकते। हर इंद्रिय स्पेशलाइज्ड है, उसका एक विशेष काम है। ध्यान में जिसे गहरे जाना है, उसे इन सभी इंद्रियों को एकाग्र करना सीखना पड़ता है।

एकाग्र का अर्थ क्या है?

एकाग्र का अर्थ है कि भीतर अगर मैं--समझ लें--कि भीतर अगर मैं अपने ह्नदय के केंद्र को खोज रहा हूं, मैं सारी इंद्रियों का उपयोग उसमें एकसाथ करूं। आंख बंद करके उस केंद्र को देखने की कोशिश करूं, और कान बंद करके उस केंद्र को सुनने की कोशिश करूं। नाक को अंतर्मुखी करके उस केंद्र की गंध लेने की भी कोशिश करूं। यह हमें मुश्किल मालूम पड़ेगा, क्योंकि आदमी जैसा अभी है जमीन पर, वह आंख-केंद्रित है।

तो अगर मैं आपसे कहूं कि--परमात्मा का दर्शन, तो आपको कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी इस शब्द के प्रयोग में। क्योंकि दर्शन आंख से जुड़ा है। अगर मैं कहूं परमात्मा की गंध, तो आपको थोड़ी अड़चन मालूम पड़ेगी, क्योंकि गंध की तरफ से हमने परमात्मा को कभी नहीं सोचा। हम परमात्मा की तरफ आंखों से ही सोचते हैं। इसलिए सारी दुनिया की भाषाओं में उस अनुभूति के लिए जिन शब्दों का हम प्रयोग करते हैं, वह आंख से बने

हैं। हिंदी में हम उसे कहते हैं।--द्रष्टा। वह आंख से बना है। जब कोई आदमी उसका दर्शन करता है, तो "दर्शन" कहते हैं। जब कोई दर्शन कर लेता है, तो उसको "द्रष्टा" कहते हैं। अंग्रेजी में, जब कोई उइका दर्शन कर लेता है तो उसको "सीअर" कहते हैं। जब किसी को उसका दर्शन उपलब्ध होता है, तो उसको "विजन" कहते हैं। लेकिन ये सब आंख से बंधे हुए शब्द हैं।

पूरी मनुष्य-जाति आई-ओरिएंटेड है। आंख से बंधी हुई है। लेकिन आंख तो सिर्फ इंद्रिय है। जैसी और इंद्रियां हैं। इसलिए अंधे आदमी को कभी-कभी दिक्कत होती होगी कि मुझे कैसा दर्शन होगा उसका? कि मेरे पास तो आंख ही नहीं है! कोई बाधा नहीं। "सभी इंद्रियों को एकाग्र करके।" इसका अर्थ यह है कि एक-एक इंद्रिय की तरफ से कोशिश मत करो। एक इंद्रिय की कोशिश से हो सकता है बहुत देर लगे, और यह भी हो सकता है कि आपकी वह इंद्रिय इतनी सक्रिय न हो--सभी की आंखें एक बराबर सक्रिय नहीं है।

एक चित्रकार जब देखता है तो उसकी आंख बहुत सक्रिय होती है। और हम करीब-करीब अंधे की तरह देखते हैं उन चीजों को, जिनको चित्रकार आंखवाले क तरह देखता है। एक फूल के पास से हम रोज गुजर सकते हैं। और हमको कुछ भी दिखाई न पड़े, और एक चित्रकार पागल होकर नाचने लगे। सूरज हमारे सामने भी ऊगता है...

वानगॉन, एक डच पेंटर अपने मित्र के साथ सूर्यास्त देख रहा है। वानगॉग उससे कहता है कि देख सूर्यास्त। तो उसका मित्र कहता है कि हां, ठीक है, फिर अपनी चर्चा शुरू कर देता है। मित्र उसे हिलाता है, वानगॉग को कहता है कि तुम मेरी बाते नहीं सुन रहे हो मालूम पड़ता है। वानगॉन बोला कि जब सूर्यास्त हो रहा हो तब मेरी सभी इंद्रियां उसकी तरफ चली जाती हैं। अभी मैं सुन भी नहीं सकता, अभी मैं सूर्यास्त को सुन रहा हूं। अभी मैं देख भ नहीं सकता कुछ, अभी मैं सूर्यास्त को देख रहा हूं। अभी तुम इत्र भी छिड़क दो यहां तो मुझे गंध न आएगी। अभी मैं सूर्यास्त क गंध ले रहा हूं। अभी मेरे सारे प्राण सब तरफ से सूर्य की तरफ चले गए हैं।

सब, समस्त इंद्रियों को एकाग्र करने का अर्थ है कि यह जो ध्यान का अंतर्प्रयोग हो रहा है, उसको किसी एक इंद्रिय की तरफ से कोशिश मत करें, सभी इंद्रियों की तरफ से कोशिश करें। सभी इंद्रियो का अंतरभाग उसकी तरफ झुका दें।

इंद्रियों के दो भाग हैं। एक बहिर्भाग है। आंख का एक हिस्सा, जिससे हम बाहर देखते हैं। आंख का एक दूसरा हिस्सा, जिससे हम भीतर देख सकते हैं। कान का एक हिस्सा, जिससे हम बाहर सुनते हैं, कान का दूसरा हिस्सा, जिससे हम भीतर सुन सकते हैं।

योग ने इंद्रियों को दो हिस्सों में बांटा है। एक को बहिर-इंद्रिय कहा है और एक को अंतर-इंद्रिय कहा है। जितनी बहिर-इंद्रियों हैं, उतनी ही अंतर-इंद्रियां है। वह जो अंतर-इंद्रियों का भाग है, समस्त इंद्रियों का एक साथ उसी केंद्र की तरफ प्रवाह कर देने का नाम इंद्रियों को एकाग्र करना है। और जब इंद्रियां एकाग्र होती हैं, तो परिणाम बड़े अद्भुत होते हैं।

दो परिणामों का फर्क पड़ता है। एक तो आपको पता भी नहीं होगा कि आपकी कौन सी इंद्रिय सर्वाधिक शक्तीशाली है। जब आप सबको जोड़ देते हैं, तो जो सर्वाधिक शक्तीशाली है, उसकी तरफ से आपको अनुभव होना तत्काल शुरू हो जाता है। अब यह हो सकता है कि जिसकी आंख कमजोर हो, अंतर-इंद्रिय भी कमजोर हो आंख की, वह बैठकर भीतर कोशिश करता रहे कि प्रकाश दिखाई पड़े, वह दिखाई न पड़ेगा।

मेरे पास लोग आकर कहते हैं, वे कहते हैं कि हमें प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता, अंधेरा ही दिखाई पड़ता है। उसका कारण कुल इतना है कि उनका अंतर-चक्षु ठीक से काम नहीं कर रहा। छोड़ें देखने से क्या लेना-देना है, सुनना शुरू करें।

इसलिए जिन लोगों के कान का अंतर-हिस्सा महत्वपूर्ण होता है, उनके लिए मंत्र बड़े सहयोगी होते हैं। जिनका आंख का अंतर-हिस्सा महत्वपूर्ण होता है उश्नके लिए मंत्र बिल्कुल बेकार होते हैं। क्योंकि अंतर-हिस्सा आंख का जिसका मजबूत है, वह कितना ही मंत्र रटता रहे, उससे कुछ भी न होगा। क्योंकि मंत्र से आंख का कोई संबंध नहीं जुड़ता। लेकिन अगर कान का हिस्सा भीतर का मजबूत है, तो फिर मंत्र से तत्काल संबंध जुड़ जाता है। और इसीलिए जो मंत्र से अनुभव को उपलब्ध होते हैं, वे खबर देते हैं कि उनका कान...

सुगंध से भी हो सकता है। मोहम्मद को सुगंध से बड़ा रस था। इसलिए मुसलमान अभी भी नकल में बिचारे इत्र वगैरह लगाते रहते हैं। इत्र वगैरह लगाने से कुछ भी न होगा! लेकिन मोहम्मद को परमात्मा की जो प्रतीति हुई, वह गंध के मार्ग से हुई। और मोहम्मद का कान निश्चित ही कमजोर रहा। इसलिए संगीत से उन्हें कोई अर्थ कभी मालूम नहीं हुआ। मस्जिद के सामने अब भी संगीत बजाना बंद है। मोहम्मद को संगीत से कुछ भी रस नहीं आया कभी। कोई हर्ज की बात नहीं है। इसलिए संगीत को तो वर्जित ही कर दिया। लेकिन, तब खतरा हो सकता है। तब खतरा हो जाता है, क्योंकि हम व्यक्तियों के आधार पर अगर सबके लिए नियम बनाते हैं तो खतरे हो जाते हैं। किसी को सुगंध से हो सकता है, किसी को संगीत से हो सकता है, किसी को दृश्य से हो सकता है, किसी को रंग से हो सकता है। कहा नहीं जा सकता! एक-एक आदमी एक अनूठा विश्व है। एक-एक आदमी! तब सभी इंद्रियों को जोड़ दो।

इसलिए योग कहता है, किसी एक इंद्रिया का जोर क्यों देना! पता नहीं कौन सी इंद्रिय तुम्हारी सक्रिय हो सके, तीव्र हो सके। पता नहीं जन्मों-जन्मों में तुमने किसी इंद्रिय का सर्वाधिक प्रयोग किया हो! पता नहीं किन कारणों से, अनंत-अनंत कारणों के कारण तुम्हारा कौन सा अंतर-इंद्रिय का भाग बिल्कुल तैयार हो छलांग लगाने को। इसलिए तुम चिंता मत करो, चुनाव मत करो, सभी इंद्रियों को इकट्ठा संगृहीत कर दो।

"सब इंद्रियों को एकाग्र करके, श्रद्धा और भक्ति से अपने गुरु को प्राणम करके।"

श्रद्धा और भक्ति के संबंध में बहुत बातें मैंने की हैं, उसे हम अभी बात न करें। "अपने गुरु को प्रणाम करके।" इस संबंध में जरूर कुछ बात समझ लेनी चाहिए। पश्चिम में गुरु को समझना बहुत मुश्किल पड़ा है। पश्चिम के पास गुरु जैसा कोई शब्द नहीं है। पश्चिम की किसी भाषा में गुरु जैसा शब्द नहीं है। क्योंकि गुरु की धारणा ही नहीं है। टीचर है, मास्टर है, पर उनका गुरु से कोई लेना-देना नहीं है।

गुरु का ठीक अर्थ होता है, परमात्मा का तो हमें कोई भी पता नहीं है, लेकिन अगर किसी भी दिशा से, किसी भी व्यक्ति से, कहीं से भी हमे परमात्मा की झलक भी मिलती हो, तो वह गुरु हो गया। गुरु का मतलब है, जिससे हमें परमात्मा की पहली झलक मिली हो। जिससे। इससे कोई संबंध नहीं वह कौन है! हो सकता है उसे भी पता न हो। उसे भी पता न हो! लेकिन जिससे भी हमें परमात्मा की पहली झलक मिली हो, वह गरु। गुरु का मतलब ही इतना है कि जिसके माध्यम से हम पहली दफे होश से भरे कि जगत में परमात्मा भी हो सकता है।

तो गुरु का अर्थ शिक्षक नहीं है। गुरु का अर्थ उदबोधक है। गुरु का अर्थ समझाने वाला नहीं है, बताने वाला नहीं है, गुरु का अर्थ है, जिसके द्वारा बता दिया गया। उसे भी पता न हो, उसके होने मात्र से हमें कुछ एहसास हुआ। उसके होने मात्र से हमें कोई गंध मिली। हमें कोई झलक आई, हमें कोई स्पर्श हुआ। और हमारा सारा जीवन का कोण, जीवन को देखने का ढंग बदल गया उस दिन के बाद।

बुद्ध के पास सारिपुत्र गया है। सारीपुत्त परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया। सारीपुत्त को धर्म के प्रचार के लिए यात्राओं पर भेज दिया गया। सारीपुत्त स्वयं बुद्ध हो गया है, लेकिन रोज वह डायरी रखता है कि बुद्ध इस समय किस गांव में होंगे। नक्शा रखता है। बुद्ध किस दिशा में होंगे। रोज सुबह-सांझ उस दिशा में वह लोट जाता है, बुद्ध के चरणों में सिर रखता है। हजारों मील दूर से सैकड़ों मील दूर से। उसके शिष्य उसस से पूछते हैं कि यह आप क्या करते हो? यह आप किसको नमस्कार करते हो? कोई हमें दिखाई नहीं पड़ता।

तो सारिपुत्र ने कहा कि मुझे भी कुछ दिखाई नहीं पड़ता था, तब जिस आदमी में मुझे पहली दफा दिखाई पड़ा, उसको नमस्कार किए जाता हूं। पर शिष्यों ने कहा, अब तो आप भी परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए! सारिपुत्र ने कहा कि जिस अवस्था को मैं आज उपलब्ध हुआ हूं, इसकी पहली झलक उस आदमी में मुझे मिली थी। और मैं जानता हूं कि अगर वह झलक मुझे न मिली होती तो जो मैं आज हूं, वह नहीं हो सकता था। मैं तब बीज था और बुद्ध में मैंने वृक्ष को देखा। और तब पहली दफे मेरे प्राणों में, आकंठ मेरे प्राणों में भर गई वह अभीप्सा कि मैं भी यह वृक्ष हो जाऊं।

यह सूत्र कहता हैः "अपने गुरु को प्रणाम करके।" वह जिस व्यक्ति में, भी जिस शक्ति में भी, जहां भी परमात्मा के होने की पहली झलक मिली हो, परमात्मा पहली दफा अर्थपूर्ण मालूम पड़ा हो, परमात्मा के अस्तित्व की तरफ पहली दफा दृष्टि गई हो, उसको स्मरण करके। ह्नदय के अंतर्प्रवेश के लिए यह स्मरण महत्त्वपूर्ण है। महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि वह गुरु आपके भविष्य की घोषणा है। जो आप हो सकेंगे, वह उसकी घोषणा है। वह अभी है। जो कल आपको होगा, वह उसके लिए आज है। जो आपका भविष्य है, वह उसका वर्तमान है। आपको अपने भविष्य की भी रूपरेखा कुछ पता नहीं, लेकिन उस गुरु का स्मरण आपके भविष्य को दिशा देगा। आपकी जीवन-ऊर्जा को बहने का मार्ग बनाएगा। उसके स्मरण का कुल मतलब ही इतना है कि मेरी सारी जीवन-ऊर्जा अब एक दिशा में बहेगी।

अगर बुद्ध को सारिपुत्र ने स्मरण किया है, तो स्मरण का मतलब यह है, स्मरण ध्यान के पहले--यह ध्यान में उतरने के पूरे प्रयोग की बात हो रही है--ध्यान में उतरने के पहले यह स्मरण, क्योंकि ध्यान में उतर जाने के बाद जो शक्ति जाग्रत होगी, वह इस स्मरण की रेखा को पकड़ कर बहना शुरू होगी। वह जो बीज टूटेगा और अंकुर बनेगा, वह इसी वृक्ष की धारणा को लेकर बड़ा होगा।

"गुरु को स्मरण करके अपने हृदय-कमल से सब दोषों को निकाल कर, दुख शोक से पुरे हुए उस विशुध्द भक्ति तत्व का सम्यक चिंतन करना ही ध्यान है।"

शरीर के दोष हमने निकाल दिए, हृदय के दोष भी निकाल देने चाहिए। हृदय भी शुद्ध कर लेना चाहिए। हृदय के क्या दोष हैं? बुद्ध के चार ब्रह्म-विहार कहे हैं। वे हृदय के दोष निकालने के उपाय हैं। और अलग-अलग धर्मों में अलग-अलग शब्दों का प्रयोग किया है। लेकिन बातें मैलिक हैं और वे करीब-करीब एक हैं। हृदय के दोष क्या हैं?

तो बुद्ध ने कहा है, करुणा के भाव से हृदय को भर लेना; तो हिंसा, क्रोध, दूसरे को दुख पहुंचाने की वृत्ति, ईर्ष्या, वे सब दोष हैं, वे बाहर निकल जाएंगे। तो बुद्ध अपने भिक्षु से कहते थे कि पहले ध्यान में जाने से पहले करुणा का भाव कर लेना, समस्त जगत के प्रति बेशर्त। एक मजेदार घटना घटी।

बुद्ध एक गांव में रुके हैं और एक आदमी को उन्होंने ध्यान की दीक्षा दी है। उससे कहा कि करूणा का पहला सूत्र कि ध्यान के लिए बैठे तो समस्त जगत के प्रति मेरे मन में करुणा का भाव भर जाए, इससे शुरु करना। उसने कहा और सब तो ठीक है, सिर्फ मेरे पड़ोसी को छुड़वा दें, उसके प्रति करुणा करना बुहत मुश्किल

है। बहुत दुष्ट है। और बहुत सता रखा है उसने। और मुकदमा भी चल रहा है। और झगड़ा-झांसा भी है। और गुंडे भी उसने इकट्ठे लगा रके हैं, मुझे भी लगाने पड़े हैं। सारे जगत के प्रति करुणा में मुझे जरा भी दिक्कत आएगी ध्यान में? सिर्फ एक पड़ोसी!

बुद्ध ने कहाः सारे जगत को छोड़, सिर्फ एक पड़ोसी पर ही करुणा करना काफी होगा। क्योंकि दोष जो भरा है वह उस पड़ोसी के लिए है, सारे जगत से कोई लेना-देना नहीं है। करुणा, वह दोष का परिहार करेगी जो हमारे चित्त में इकट्ठे होते हैं।

दूसरा बुद्ध ने कहाः मैत्री। समस्त जगत के प्रति मैत्री का भाव। समस्त जगत में आमी ही नहीं, सब कुछ।

तीसरा बुद्ध ने कहा है, मुदिता। प्रफुल्लता का भाव, प्रसन्नता का भाव। ध्यान रखना कि जब हम प्रफुल्लित होते हैं तब जगत के प्रति हमारे भीतर के कोई भी दोष नहीं बहता। और जब हम दुखी होते हैं, हम सारे जगत को दुखी करने का आयोजन सोचने लगते हैं। दुखी आदमी सारे जगत को दुखी देखना चाहता है। उससे ही उसको सुख मिलता है। और कोई सुख नहीं है उनका। जब तक आप उनसे ज्यादा दुखी न हों, तब तक वह सुखी नहीं हो पाते।

दुखी आदमी को जब चारों तरफ दुख दिखाई पड़ता है, तब वह बड़ी निश्चिंतता से बैठ जाता है। बुद्ध ने कहा है तीसरा, मुदिता। प्रफुल्लता से बैठना। हृदय को प्रफुल्लता से भरना।

और चौथा बुद्धे ने कहा है, उपेक्षा। कुछ भी हो जाए--अच्छा हो कि बुरा, फल मिले कि न मिले, ध्यान लगे कि न लगे, ईश्वर से मिलन हो कि न हो; असफलता आए सफलता आए; श्रेय, अश्रेय, कुछ भी हो, उपेक्षा रखाना। दानों में समतुल रहना। दोनों में चुनाव मत करना। ये चार को बुद्ध ने कहा है।

करीब-करीब सभी धर्मों में इनसे आस-पास कुछ बातें कही हैं। लेकिन बुद्ध ने इन चार में समस्त धर्मों के सार को इकट्ठा कर दिया। इनसे हृदय के दोष अलग हो जाएंगे। ध्यान इनके बाद सुगम बाते होगी, सहज बात होगी।

"दुख व शोक से परे उस विशुद्ध भक्ती-तत्त्व का चिंतन-मनन ध्यान।"

भक्ति-तत्त्व के संबंध में मैंने बात की है। इस हृदय में, इस... शरीर हो शुद्ध, आसन हो, एकांत हो, हृदय के सारे विकार यड गए हो, तब इस हृदय में समस्त अस्तित्व के प्रति जो आत्मीयता, एकता, एकत्व का भाव है, वही भक्ति है। इस क्षण में मैं इस जगत के साथ एक हूं, अस्तित्व के साथ एक हूं, इसका ध्यान ही ध्यान है।

अब इस पूरे सूत्र को मैं पढ़ देता हूं--

"ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा से भरे, संन्यास के भाव में ठहरे हुए स्नान आदि से अपने शरीर को शुद्ध करके सुखासन लगा कर, सिर, गले व शरीर को एक सीध में रख कर, समस्त इंद्रियों को एकाग्र करके, श्रद्धा व भक्ति से अपने गुरु को प्रणाम करके, हृदय-कमल से सब दोषों को निकालकर दुख व शोक से परे उस विशुद्ध भक्ति-तत्त्व का चिंतन करना ही ध्यान है।" उसकी चिंतना में डूब जाना ही ध्यान है।

इतना ही।

अब हम ध्यान में प्रवेश करें। दो-तीन बातें। जो लोग तेजी से करें, वे मेरे करीब तीनों ओर आ जाएं। और जो लोग धीरे करने को हों, वे पीछे हट जाएं।

छठवां प्रवचन

व्यक्त माध्यम है अव्यक्त के प्रकाशन का

अचिन्त्यं अव्यक्तं अनंतरूपं शिवं प्रशान्तं अमृतं ब्रह्मयोनिम्।
तदा। .दिमध्यान्त विहीनमेकं विभुं चिदानन्दं अरूपं अद्‌भुतम्।। 6।।

इस प्रकार मुनि लोग ध्यान के द्वारा उस चिंतन की सीमा में न आनेवाले, व्यक्त न होने वाले, जिसके अनंत रूप हैं, जो कल्याण करने वाला है, अद्वैत है, जो ब्रह्म का मूल कारण है, जिसका कोई आदि, मध्य और अंत ही नहीं है, जो अद्वितीय, सर्वव्यापक और चैतन्य तथा आनंदमय है, जिसका कोई रूप नहीं है और जो विलक्षण है--उसको प्राप्त करते हैं।। 6।।

ध्यान के द्वार। ध्यान के द्वार उस आयाम में, जहां विचार का कोई प्रवेश नहीं; जहां सोचने का कोई उपाय नहीं, जहां समझने की, तर्क की, तर्कणा की कोई स्थिति नहीं; जहां मात्र अनुभूति ही शेष रह जाती है। इस ध्यान में जो उपलब्ध होता है, उस उपलब्ध होने वाले के संबंध में इस सूत्र में संकेत किए गए हैं। इस सूत्र के एक-एक शब्द को बहुत-बहुत गहराई से समझ लेना जरूरी है।

पहला शब्द है--"अचिंत्य।" जिसके संबंध में चिंतन न हो सके। जिसके संबंध में विचार न हो सके। जिसके संबंध में बुध्दि असमर्थ हो जाए। ऐसे अनुभव का द्वार है--ध्यान।

विचार हम कर सकते है, किसके संबंध में? जो ज्ञात है उसके संबंध में विचार होता है। शायद सोचा न होगा। आप जो भी विचार करते हैं, वह आपको पहले से ही ज्ञात है। आप अज्ञात के संबंध में विचार नहीं कर सकते। करेंगे भी कैसे? जो आपको ज्ञात ही नहीं है, उसके संबंध में विचार कैसे करिएगा? तो विचार तो जुगाली की तरह है। बहुत से जानवर जुगाली करते हैं। खाए हुए को चबाते हैं।

विचार जुगाली है। विचार पले आपको मिल जाता है, फिर आप उसी को जुगाली करते हैं। लेकिन ज्ञात होना चाहिए तो ही आप विचार कर सकते हैं। अज्ञात का कोई विचार नहीं हो सकता। अज्ञात को सोचिएगा ही कैसे? जिसे जाना ही नहीं है, उसके संबंध में विचार की कोई गति नहीं है। और जीवन का जो पर सत्य है, वह अज्ञात है, वह"अननोन" है। जीवन का जो परम रहस्य है, वह ज्ञात नहीं है। उसे सोचना संभव नहीं है। लेकिन जो अज्ञात है, वह भ ज्ञात बन सकता है। फिर सोच सकते हैं।

यहां एक बात और समझ लेनी जरूरी है। जीवन का परम रहस्य ज्ञात तो है ही नहीं, उसे अज्ञात कहना भी ठीक नहीं है, वह अज्ञेय है। अननोन ही नहीं, अननोएबल है। क्योंकि अगर अज्ञात कहे... इस पहाड़ के पीछे क्या है, वह अज्ञात है। कोई व्यक्ति पहाड़ के पीछे जाकर, आकर आपको खबर दे दे तो ज्ञात हो जाएगा। लेकिन ब्रह्म में जाकर भी कोई आपको खबर दे तो भी ज्ञात नहीं होगा। क्योंकि खबर इतनी फीकी है, इतनी सीमित है कि उस--उस रहस्य के संबंध में कुछ भी नहीं कह पाती। आज तक उस रहस्य के संबंध में जो भी कहा गया है, वह सभी आदमी की असमर्थता का सूचक है।

इसलिए बुद्ध जैसा व्यक्ति तो उस संबंध में बात ही करना बंद कर दिया था। बुद्ध से कोई पूछता था ब्रह्म के संबंध में, तो वह चुप रह जाते थे। इसे बड़ी भ्रांति हुई। अनेकों ने समझा कि वह ब्रह्म को मानते ही नहीं।

लेकिन वह इतने चुप थे उस संबंध में कि वह यह भी नहीं कहते थे कि मैं उस संबंथ में कुछ न कह सकूंगा। क्योंकि बुद्ध का कहना था कि यह भी उस संबंध में कुछ कहना हो गया। मैं कुछ न कह सकूंगा--यह भी उस संबंध में कुछ कहना हो गया। कुछ तो मैंने कह ही दिया। इतना भी कहने को वह राजी नहीं थे।

जीवन का परम रहस्य अज्ञात ही होता तो फिर हम जीवन के परम रहस्य को भी विश्वविद्यालय में पढ़ सकते थे। क्योंकि वह ज्ञात बनाया जा सकता था।

यहां एक खयाल ले लें।

वैज्ञानिक एक खोज करता है। जब तक वह खोज नहीं होती तब तक उसकी विषय-वस्तु अज्ञात होती है। फिर एक वैज्ञानिक खोज लेता है। एक एडीसन, एक आइंस्टीन, एक न्यूटन खोज लेता है, पिर वह ज्ञात हो गई। फिर सारी दुनिया के स्कूल के बच्चे भी उसको पढ़ लेते हैं और जान लेते हैं। फिर हर एक को उसे खोजना नहीं पड़ता। विज्ञान एक व्यक्ति खोज लेता है, फिर सभी जान जाते हैं। फिर प्रत्येक को उसे खोजने की जरूरत नहीं रह जाती। जो अज्ञात था, वह ज्ञात हो गया।

परमात्मा ऐसा नहीं है। अनेकों ने उसे खोज लिया फिर भी वह अब तक ज्ञात नहीं हो सका। तो हमे उसे अज्ञात की कोटि में नहीं रखना चाहिए। वह अज्ञेय की कोटि है। अज्ञेय का मतलब है, जो जान-जान कर भी अजाना रह जाता है। जान भी लेते हैं लोग, कह भी देते हैं उसके संबंध में, फिर भी वह हमारा विचार नहीं बन पाता। हमारी धारणा नहीं बन पाती। उसकी शिक्षा नहीं दी जा सकती। उसके लिए कोई शिक्षाशास्त्र काम नहीं करेगा।

इससे दूसरी बात भी खयाल ले लें कि जीवन के सभी अनुभव सामूहिक हैं--एक जान लेता है, सारा समूह जान लेता है--परमात्मा वैयक्तिक अनुभव है। एक जानता है तो गूंगे का गुड़ हो जाता है, दूसरे से कह नहीं पाता है। जबान रूक जाती है। ओंठ बंद हो जाते हैं। यह भी मजे की बात है कि ईश्वर के संबंध में जो नहीं जानता, वह कुछ बोल भी सकता है, जो जानता है, उसे बोलना बहुत कठिन हो जाता है। यह विचित्र मालूम होगा कि जो नहीं जानते, वे बोल सकते है उसके संबंध में। वे इसीलिए बोल सकते हैं कि उन्हें पता ही नहीं है। उन्हें यह पता ही नहीं है कि जिसे वे शब्दों में रख रहे है, वह शब्दों में रखा नहीं जा सकता। शब्द उन्होंने सुने हैं, उन्हीं शब्दों को वे दोहरा देते हैं।

इसलिए पंडित को कभी ऐसी असमर्थता मालूम नहीं पड़ती ईश्वर के संबंध में कहा नहीं जा सकता। पंडित कहता रहता है। संतों को निरंतर असमर्थता होती है। और संत बार-बार कहता है तो भी कहता है साथ में कि मैं उसे कह नहीं पाया हूं। वह अनकहा रह गया। मैंने चेष्टा की, मैं असफल हो गया। पंडित कभी असफल नहीं होता। वह सदा सफल मालूम पड़ता है। और ज्ञानी सदा ही असफल मालूम पड़ता है। कहता है, चेष्टा करता है और फिर पाता है कि नहीं, वह बात पीछे छूट गई, वह मैं कह नहीं पाया। कुछ ऐसा है जैसे हम हवा को मुट्ठी में बांधने का प्रयास करें। जब तक नहीं बांधते तब तक मुट्ठी में हवा होती है। और जब बांधते हैं तब बाहर निकल जाती है। अनुभव में तो परमात्मा होता है और जैसे ही हम शब्द में बांधते हैं, निकल जाता है। शब्द मुट्ठी की तरह काम करते हैं। न कहें, होता है; कहें, खो जाता है। जिन्होंने कहा, उन्होंने सिर्फ असमर्थता बताई। जिन्होंने नहीं कहा, उन्होंने अपने मौन से इतना ही कहा कि नहीं कहा जा सकता। वैयक्तिक है अनुभव, सामूहिक नहीं है। और अचिंत्य कहने का यही प्रयोजन है कि आप उसके संबंध में चिंतन न कर पाएंगे।

इसलिए कोई अगर कहता हो कि मैं ईश्वर के संबंध में चिंतन कर रहा हूं, तो एकदम ही गलत कहता है। चिंतन कर रहा होगा, लेकिन जिसके संबंध में कर रहा है वह ईश्वर नहीं हो सकता। वह कुछ और होगा। इसका

मतलब हुआ कि जिस संबंध में आप चिंतन कर सकते हैं, समझ लेना कि वह ईश्वर नहीं है। आप राम के संबंध में चिंतन कर सकते हैं, लेकिन राम के उस हिस्से के संबंध में जो ज्ञान है। उनका आकार, उनकी आंखें, उनका शरीर, उनके शब्द, उनका आचरण, यह सब ज्ञात है, इस संबंथ में आप चिंतन कर सकते हैं। लेकिन जो ज्ञात है, वह परम सत्ता नहीं है। इस सब के भीतर जो अज्ञात रह गया है, वही परम सत्ता है। इस सब के भीतर जो छिपा रह गया है। राम का आचरण ईश्वर नहीं है। आचरण तो ज्ञात हो गया है। राम के आचरण के भीतर जो अंतस था, वही ईश्वर है। राम के शब्द ईश्वर नहीं है, वे तो ज्ञात हो गए। शब्दों के पीछे जो निःशब्द था, वही ईश्वर है, लेकिन वह अज्ञान रह गया।

बुद्ध की मृत्यु का दिन और आनंद रो रहा है, सिर पीट रहा है। और बुद्ध उसे समझाते हैं कि तू क्यों व्यर्थ रो रहा है। तो आनंद कहता है, व्यर्थ मैं नहीं रो रहा। बुद्ध अब नहीं होंगे, अब खो जाएंगे, अब विसर्जित हो जाएंगे, मैं न रोऊं तो क्या करूं? तो बुद्ध हंसते और उसे कहते हैं, जिसे तू सोचता है कि विसर्जित हो जाएगा, वह तो मैं था ही नहीं। जिसे तू सोचता है कि मर जाएगा, वह मैं कब था? वह मैं कभी था ही नहीं। तो जिसके संबंध में तू रो रहा है, वह मैं नहीं हूं। और अगर तू मेरे संबंध में रो रहा है, तो व्यर्थ रो रहा है। मैं जैसा था वैसा ही रहूंगा। उसमें कोई अंतर पड़ने वाला नहीं।

लेकिन यह जो बुद्ध हैं, जिसके संबंध में बुद्ध कह रहे हैं, यह वही बुद्ध नहीं है जिसके संबंध में आनंद रो रहा है। इन दोनों का कहीं मेल नहीं है। अगर आनंद चिंतन करे बुद्ध का, तो वह बुद्ध को छोड़ कर चिंतन करेगा। उसका उसे पता ही नहीं है। वह चिंतन करेगा उनकी मुद्राओं का, उनके उठने-बैठने का, उनकी वाणी का, उनकी आंखों का, वह तो बुद्ध नहीं हैं। यह तो ऐसे हुआ कि जिस मकान में बुद्ध रहते हैं, जब हम बुद्ध का चिंतन करें तो हम मकान की तस्वीर सोचने लगें। उस मकान से क्या लेना-देना है!

हम जब भी चिंतन करते हैं परमात्मा का, तो हम किसी रूप का चिंतन करते है, जिससे परमात्मा प्रकट हुआ होगा, लेकिन परमात्मा का चिंतन नहीं कर सकते। वह अचिंत्य है। तो फिर हम उस तक कैसे पहुंचें? हम सारा चिंतन छोड़ दें तो उस तक पहुंच सकते है।

परमात्मा का चिंतन नहीं हो सकता। चिंतन न हो, तो परमात्मा हो सकता है। सारा विचार रुक जाए विचार की प्रकिया ठहर जाए सम समाप्त हो जाएं, भाषा खो जाए मन मौजूद न रहे; सिर्फ चैतन्य रह जाए सिर्फ भीतर जानना मात्र रह जाए और जानने में कोई विषय न हो--जैसे दर्पण है। दर्पण की दो अवस्थाएं हैं। जब दर्पण में किसी की तस्वीर बनती हैं, यह एक अवस्था है। जब दर्पण खाली होता है, किसी की तस्वीर नहीं बनती, यह दूसरी अवस्था है। जब दर्पण में किसी की तस्वीर बनती है, तो दर्पण तस्वीर से आच्छादित हो जाता है। दर्पण में विषय होता है। जब कोई तस्वीर नहीं बनती तो दर्पण शुद्ध होता है, अनाच्छादित होता है, निर्मल होता है। और उसमें कोई विषय नहीं होता है।

हमारी चेतना दर्पण की तरह है। जब चेतना में विचार चलते हैं तो चेतना आच्छादित हो जाती है। और जब चेतना निर्विचार होती है, कोई विचार नहीं चलता, तब चेताना निर्मल शांत हो जाती है। उस शांत स्थिति में जानने को कुछ भी नहीं होता, मात्र जानने की क्षमता रह जाती है। जस्ट नोइंग। इस अवस्था को ही ध्यान कहते हैं। और इस ध्यान में ही उस अचिंत्य का पता चलता है। पता इस ध्यान में ही वह अचिंत्य अनुभव में आता है। विचार में नहीं।

तो विचार और अनुभव का एक फर्क और समझ लें। विचार सिर्फ बुध्दि में उठती हुई तरंगों का नाम है, अनुभव समस्त अस्तित्व में। जब परमात्मा अनुभव होता है, तो रोएं-रोएं को अनुभव होता है। खून की बूंद-बूंद

को, हड्डी के टुकड़े-टुकड़े को, चेतना के कण-कण को। आपका समस्त अस्तित्व उसे अनुभव करता है। जब आप विचार करते हैं तो सिर्फ आपकी बुद्धि का एक कोना उसके संबंध में सुने हुए जाने हुए शब्दों को दोहराए चला जाता है। बुद्धि आपका एक बहुत छोटा सा अंग है और वह भी एकदम उधार। वह आपका अस्तित्व नहीं है। वह आपका वास्तविक अस्तित्व नहीं है। वह आप प्रामाणिक रूप से आप नहीं है।

हम इसे ऐसा अगर समझें तो अच्छा होगा।

बुध्दि आपके भीतर समाज का घुस गया कोना है। आपका अस्तित्व है, उसमें समाज ने जो-जो आपको सिखाया है, वह आपकी बुध्दि है। उसको आप दोहराए चले जा सकते हैं। इसलिए जब एक हिंदू सोचता है ईश्वर के संबंध में तो राम का खयाल आता है। जब एक मुलसमान सोचता है, तो राम का खयाल नहीं आता। जब एक ईसाई सोचता है, तो सीसस का खयाल आता है। जब एक जैन सोचता है तो न जीसस का खयाल आता है, न राम का खयाल आता है। तो खयाल तो आपको जो दिए गए हैं वही आ जाते हैं।

उदार खयाल हैं। विचार आपकी संपदा नहीं, केवल आपका संग्रह है। बाहर से। उसको आप जुगाली कर सकते हैं। इस जुगाली से वह नहीं मिलेगा। यह जुगाली पूरी रुक जानी चाहिए और चेतना का दर्पण ऐसा हो जाना चाहिए कि उसमें कोई प्रतिबिंब ही न बचे। जिस दिन कोई प्रतिबिंब नहीं बचता उस दिन अचिंत्य झलकता है।

पहला शब्द "अचिंत्य" है।

दूसरा शब्द है--"अव्यक्त।" उसे अगर जानना है तो व्यक्त में मत खोजना, मेनीफेस्ट में मत खोजना। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह व्यक्त में नहीं है। वह व्यक्त में है, लेकिन व्यक्त ही नहीं है। व्यक्त उसकी परिधि है, अव्यक्त उसका अंतस है।

सुना है मैंने, मोझर्ट के संबंध में। मोझर्ट बड़ा संगीतज्ञ था। एक दिन उसके एक अनूठे संगीत की व्यवस्था को जन्म दिया। संगीत बंद हो गया है। केवल एक मात्र उसका मित्र सुनने आया है। संगीत बंद हो गया है, मोझर्ट शांत हो गया, वाद्य शून्य हो गए, लेकिन जो मित्र आया है, वह अभी भी डोले चला रहा है। बहुत देर हो गई तो मोझर्ट ने मित्र को हिलाया और कहा कि अब तो सब बंद ही हो गया, अब तुम क्यों हिले चले जा रहे हो? तो उस मित्र ने कहा कि जब तक तुम बजा रहे थे, तब तक तो जो था, वह व्यक्त था। व्यक्त तो खो गया, अब अव्यक्त मे मैं आनंदित हो रहा हूं। तो वह तो संगीत की परिधि थी सिर्फ, अब मैं संगीत के केंद्र पर डूब रहा हूं। बाधा मत डालो।

व्यक्त में ही अगर हम उसे खोजने जाएंगे, वही तो चेष्टा विज्ञान की है कि हम सत्य को व्यक्त में ही खोजेंगे। तो अगर आदमी में परमात्मा है तो विज्ञान कहता है हम चीर-फाड़ करेंगे, विश्लेषण करेंगे और जो व्यक्त है उसमे जांच कर लेंगे--है या नहीं। व्यक्त ही जांच हो जाती है, भीतर कोई आत्मा मिलती नहीं। क्योंकि आत्मा अव्यक्त है। और जो व्यक्त है, वह केवल शरीर की परिधि है। तो व्यक्त को अगर काटेंगे पीटेंगे, तो अव्यक्त खो जाएगा। ऐसे ही जैसे एक सुंदर फूल खिला है, गुलाब का फूल खिला है और अगर मैं कहूं सुंदर है, तो आप पूछें कि सौंदर्य कहां है? तो हम फूल को काट कर, पीट कर देखेंगे, विश्लेषण करेंगे, प्रयोगशाला में जांच करेंगे कि सौंदर्य कहां है? फूल कट जाएगा, जो हाथ में आएगा वह सौंदर्य नहीं होगा, कुछ और होगा। रासायनिक तत्व होंगे, कुछ खनिज होंगे, वह हमारे हाथ में लग जाएंगे। रंग निचुड़ आएगा, वह हमारे हाथ में लग जाएगा। फूल में जो-जो वस्तु है, वह हमारे हाथ लग जाएगी। हम बोतलों में बद करके एक-एक चीज को अलग लेबल लगा कर रख देंगे, लेकिन एक बात पक्की है, उन बोतलों में वह बोतल नहीं होगी जिस पर लिखा हो--सौंदर्य।

और तब हम कह सकते हैं बिल्कुल तर्क व्यवस्था से कि सौंदर्य था ही नहीं। क्योंकि सब हमने जांच कर देख लिया, एक भी चीज छोड़ी नहीं, सब इन बोतलों में बंद है--पूरा का पूरा फूल इन बोतलों में बंद है। नाप लो वचन, जितना वजन फूल का था उतने वजन की चीजें बंद है, सब पूरा मौजूद है, सौंदर्य कहीं है नहीं।

सौंदर्य अव्यक्त था। फूल व्यक्त था। पूल से प्रकट हो रहा था वह अव्यक्त। ऐसा हम समझें कि फूल की व्यक्त भूमि को अव्यक्त ने अपना आवास बनाया था। आपने भूमि हटा ली, अव्यक्त तिरोहित हो गया। वीणा को कोई बजा रहा है तो हम सोचते हैं कि वीणा के तार में ही संगीत है, तो हम गलती में पड़ जाएंगे। तार सिर्फ तार है। और कितनी ही जांच-पड़ताल करो, तार में संगीत नहीं मिलेगा। या सोचते हों कि वीणा के वाद्य के लकड़ी को तोड़-फोड़ कर संगीत का पता चलेगा, तो भी पता नहीं चलेगा। वीणा तो केवल माध्यम बनती है अव्यक्त के प्रकट होने का। अगर वीणा में ही खोज की तो संगीत का कोई पता नहीं चलेगा।

और अगर वीणा टूट गई, और वीणा को तोड़ कर, टुकड़े तोड़ कर के जांच कर ली, तब तो फिर कोई उपाय भी नहीं रहेगा अव्यक्त को प्रकट होने का। वीणा तो केवल माध्यम बनती है अव्यक्त को प्रकट होने का। और जब संगीतज्ञ वीणा को कसता है, संवारता है, तब वह क्या कर रहा है? तब वह इतना ही कर रहा है, ताकि वीणा उपयुक्त माध्यम बन सके अव्यक्त के उतरने का। तब वह वीणा के माध्यम को सम्हाल रहा है, ताकि अव्यक्त अपने पैर रख सके वीणा के तारों पर, प्रकट हो सके। योग्य हो जाए अव्यक्त के। वीणा बजा लेना उतना कठिन नहीं, जितना वीणा को अव्यक्त के प्रकट होने योग्य बनाना।

इसलिए जो असली कलाविद है, वह सिर्फ बजाना जानता हो तो कलावदि नहीं है। वीणा को बजने की हालत में लाना जानता हो तो ही कलाविद है। क्योंकि बजाना तो बहुत आसान है, लेकिन अव्यक्त और व्यक्त के बीच में एक तारतम्य निर्मित करना बहुत कठिन है।

अव्यक्त है जीवन का जो परम रहस्य है। उसे व्यक्त में खोजना मत, व्यक्त को सीमा मत बनाना। और भीतर हमेशा व्यक्त के भी जाओ तो अव्यक्त पर ध्यान रखना। वृक्ष को देखना, तो वृक्ष की रूप-रेखा पर मत रुक जाना। वृक्ष की रूपरेखा में जो छिपा हुआ जीवन-प्रवाह है, उसको स्मरण करना। उस पर ध्यान रखना। व्यक्ति को देखना तो उसकी आंखें, उसके चेहरे, उसके शरीर में मत अटक जाना। उनकी आंखों में, उसके शरीर में जो आभा प्रकट हो रही है, जो आभामंडल निर्मित हो रहा है, उस पर ध्यान रखना, तो व्यक्त की प्रतीति होगी। अव्यक्त उसका अनिवार्य स्वभाव है और इसलिए वह व्यक्त होते-होते भी अव्यक्त रह जाता है। उसकी मौलिक जो गहनतम अवस्था है, केंद्र जो है, वह सदा अव्यक्त रह जाता है। परिधि पर अभिव्यक्ति होती है।

जैसे कोई जाए सागर के तट पर और लहरों को ही सागर समझ ले। हालांकि हमने की कभी खयाल नहीं किया होगा। सागर को देख कर आप आते हैं, तो आप कहते हैं, सागर को देख कर आ गए। आप आते हैं केवल लहरों को देख कर। क्योंकि सागर की छाती पर तो लहरें ही हैं। सागर तो बहुत गहरे में है। लेकिन लहरौं को देख कर हम लौट आते हैं और कहते हैं--सागर को देख आए। अगर ठीक कोई शिक्षक आपको भेजे, तो वह कहेगा--लहरों को सागर मत समझ लेना। लहरों में भी सागर है, माना, लेकिन सागर लहरों से बहुत ज्यादा है। लहरों के भीतर झांकना। तो सागर तो सिर्फ वही जान पाएगा जो तट से न देख कर लौटे डुकबी लगाए। क्येंकि डुबकी लगे तो ही लहरों से छुटकारा होता है। तट पर खड़े होकर तो लहरों में झांकिएगा भी कैसे? तट छोड़ना पड़ेगा।

कबीर ने कहा हैः "मैं बौरी खोजन गई रही किनारे बैठ।" बड़ा पागल था मैं कि मैं खोजने गया उसको और किनारे बैठ रहा। और सोचता था किनारे बैठे-बैठे उसे खोज लूंगा। किनारे से तो जो दिखाई पड़ेगा, वह

लहरें हैं, कूदना ही पड़ेगा। डूबने का मतलब ही इतना है कि लहरों से नीचे उतर जाना, तो सागर का अनुभव होगा। जितनी बढ़ेगी गहराई, उतना ही सागर का अनुभव होगा।

अव्यक्त का अर्थ है--सोचता मत, डूबना। सोचना तट पर खड़ा रह जाना है। विचार से लहरें पकड़ में आ जाएंगी, जो लहरों का प्राण है गहन, वह अछूता रह जाएगा।

तीसरा शब्द है--"अनंत रूप।" अव्यक्त हअ अर्थात अरूप है। अव्यक्त का अर्थ हुआ कि अरूप है। अचित्य का अर्थ हुआ कि अरूप है। और फिर ऋषि कहता है, अनंत रूप भी है।

इसे थोड़ा समझें।

सिर्फ अरूप ही अनंत रूप हो सकता है। जिसका खुद को कोई रूप हो, वह अनंत रूप नहीं हो सकता। अगर मेरा एक रूप है, तो मैं उस रूप से बंधा हुआ हो गया। लेकिन, अगर मेरा कोई रूप नहीं है, तो फिर मेरे भीतर एक तरलता है, मैं किसी भी रूप में हो सकता हूं। इसलिए परमात्मा वृक्ष हो सकता है, पत्थर हो सकता है, आकाश हो सकता है, पूल हो सकता है, पशु हो सकता है, मनुष्य हो सकता है, कुछ भी हो सकता है। उसका अपना कोई रूप नहीं, इसीलिए अनंत रूप हो सकता है। अगर उसका अपना कोई रूप है, तो फिर अनंत रूप नहीं हो सकता।

जगत में जितनी चीजें हमें दिखाई पड़ती है, उन सब के रूप हैं। उन सबके रूपों के भीतर जो जीवन की धारा बह रही है, वह अरूप है। इसलिए कोई भी रूप लिया जा सकता है। सागर किसी भी तरह की लहर बन सकता है। छोटी, बड़ी, भयानक, कुछ भी। सागर कोई भी लहर बन सकता है, क्योंकि सागर लहर नहीं है। और सागर किसी भी तरह की लहर से अभिव्यक्त हो सकता है, क्योंकि कोई खास लहर से अभिव्यक्त होने का बंधन नंहीं है।

अरूप का अर्थ होता है--तरल। इसे हम ऐसा समझें कि अगर मैं पानी को एक गिलास में डाल दूं, तो पानी गिलास का रूप हो जाता है। एक घड़े में भर दूं, तो घड़े का रूप हो जाता है। और जैसी जगह डाल दूं, पानी वैसा रूप ले लेता है। पानी का अपना कोई रूप नहीं है। तरल है। लेकिन, पत्थर को मैं एक गिलास में डाल दूं, तो कोई अंतर नहीं पड़ता। पत्थर अपना रूप थिर रखता है। घड़े में डाल दूं, तो भी अपना रूप थिर रखता है। पत्थर तरल नहीं है, ठोस है। लेकिन फिर भी पानी का भी एक रूप तो है, तरल हो भला। रूप बदल जाते हों, लेकिन पानी आग नहीं हो सकता। पानी पत्थर नहीं हो सकता। तो पानी की तरलता का भी एक रूप है।

पानी बहुरूप हो सकता है, लेकिन पानी रहकर ही। पानी के बाहर रूप नहीं बदल सकता। तरल है, तो बहुत रुप ले सकता है, लेकिन पानी की सीमा में। परमात्मा तरल है, किसी भी सीमा में नहीं। असीम है। उसकी तरलता असीम है। इसलिए वृक्ष भी हो सकता है, पत्थर भी हो सकता है, पानी भी हो सकता है। और अब तो वैज्ञानिक भी कहते हैं कि हम जैसे-जैसे पदार्थों को तोड़कर नीचे पहुंच रहे हैं, वैसेवैसे अनुभव होता है कि सभी पदार्थ एक ही ऊर्जा से निकले हैं, एक ही"एनर्जी" से निकले हैं।

पहले अल्केमिट, और दुनिया भर में न मालूम कितने-कितने लोग इस कोशिश में रहे हैं कि किसी तरह लोहा सोना हो जाए। कभी वे सफल तो नहीं हुए लेकिन उनकी आशा अब पूरी हो गई है। अब विज्ञान कहता है, कोई अड़चन नहीं है। कोई अड़चन नहीं, लोहा सोना हो सकता है, क्योंकि लोहे और सोने के भीतर जो ऊर्जा है, वह एक है। कुछ इलेक्ट्रांस घटाने और बढाने की बात हैं। सिर्फ संश्या का फर्क हैं। कही इलेक्ट्रांस दस है, कही पंद्रह है, कही बीस हैं--कोई भी संख्या हो, लेकीन फर्क इलेक्ट्रांस की संख्या का है, इलेक्ट्रांस का कोई फर्क नहीं है। तो जहां अगर किसी तत्व में बीस इलेक्ट्रांस की संख्या का है, इलेक्ट्रांस का कोई फर्क नहीं है। तो जहां अगर

किसी तत्व में बीस इलेक्ट्रांस हैं, और किसी तत्व में पच्चीस इलेक्ट्रांस हैं, तो पांच इलेक्ट्रांस जोड़ने की जरूरत है, वह तत्त्व दूसरा तत्त्व हो जाएगा।

लोहा सोना हो सकता है। प्रयोग हो गए हैं, उसमें कोई अड़चन नहीं रही। बाजार में नहीं आता उस तरह का सोना, क्योंकि उसे सोना बनाने में साधारण सोने से वह बहुत महंगा पड़ता है। उसका कोई मतलब नहीं है। इलेक्ट्रांस को जोड़ना और घटाना बहुत महंगी प्रक्रिया है, इसलिए बनाया नहीं जाता। अन्यथा बनाने में अब कोई बाधा नहीं है। मिट्टी सोना हो सकती है, सोना मिट्टी हो सकता है। अब कोई अड़चन नहीं रही है। क्योंकि अब हम अणु के विस्फोट को उपलब्ध हो गए हैं। अणु के विस्फोट का अर्थ है कि अब हम इलेक्ट्रांस घटा और बढ़ा सकते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि एक ही तरल वस्तु नीचे छिपी है। पदार्थगत खोज से भी यह अनुभव में आया, लेकिन अभी विज्ञान को यह खयाल में नहीं आया है--इलेक्ट्रांस घटा और बढ़ा कर हम लोहे को सोना बना सकते हैं, लेकिन अभी तक कोई समझ में बात नहीं आ सकी कि किस चीज को घटाएं-बढ़ांए कि पदार्थ चेतना बन जाए। किस चीज को घटाएं-बढ़ाएं की चेतना पदार्थ बन जाए।

योग का सारा का सारा संबंध उस सूत्र से है कि किस चीज को बढ़ाएं कि पदार्थ चेतना बन जाए। किस चीज को घटाएं कि चेतना पदार्थ बन जाए। ध्यान उस प्रक्रिया का नाम है। ध्यान बढ़े, तो पदार्थ चैतन्य होने लगता है। ध्यान घटे तो चेतना पदार्थ होने लगती है। ध्यान की मात्रा का बढ़ जाना ही पदार्थ का रूपांतरण है आत्मा में। अगर ध्यान परिपूर्ण हो जाए तो सारा जगत परमात्मा हो जाता है। क्योंकि तब हमें दिखाई पड़ने लगता है--हर जगह वही। हर लहर में सागर। लहर भूल ही जाती है। और यह भी मजे की बात है कि अगर आपको लहर खयाल में रहे, तो सागर भूल जाएगा। अगर सागर खयाल में रहे, तो लहर भूल जाएगी। दोनों एक-साथ खयाल में नहीं रह सकते। जाकर कभी कोशिश करें।

जाकर कभी कोशिश करें। ठीक ऐसी ही कोशिश है जैसे कि एक आदमी एक-एक वृक्ष को खयाल में रखे, तो जंगल खो जाएगा। और जंगल को खयाल में रखे, तो एक-एक वृक्ष खो जाएगा। यह दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि आप एक-एक वृक्ष को भी व्यक्तिशः खयाल में रखें और साथ ही, युगपत, जंगल भी खयाल में रखें। यह नहीं हो सकता। क्योंकि जंगल का मतलब ही यह है कि व्यक्तिगत वृक्ष खो गया, एक भीड़ रह गई। निराकार भीड़। और वृक्ष का मतलब ही यह है कि वह जो भीड़ थी, खो गई, एक-एक व्यक्ति हो गया। ठीक ऐसे ही लहर का खयाल हो, सागर खो जाएगा, सागर का खयाल हो, लहर खो जाएगी।

यही तो कारण है कि शंकर जैसे मनीषी को जगत माया अनुभव में आई। वह कोई सैध्दांतिक बात नहीं है। सैध्दांतिक रूप से भी लोगों को याद आई। जैसे पश्चिम में बर्कले को याद आई। बर्कले ने भी कहा है कि जगत माया है। लेकिन वह सैध्दांतिक है। बर्कले का कोई अनुभव नहीं है। विचार से तर्क, सोचकर उसने अनुभव किया कि जगत की वास्तविकता सिद्ध नहीं की जा सकती, इसलिए अवास्तविक है।

शंकर और बर्कले को अनेक लोगों ने तुलना की है। लेनि वह तुलना बिल्कुल गलत है। अनेक लोगों ने शंकर और बर्कले पर बड़े अन्वेषण किए हैं, वे सब अन्वेषण गलत हैं। गलत इसलिए हैं कि बर्कले को कोई भी ध्यान का अनुभव नहीं है। उसका सारा अनुभव विचार का है। शंकर की कोई भी निष्पत्ति विचार की नहीं है, सारी निष्पतियां ध्यान की हैं। इसलिए उनके बीच तुलना नहीं हो सकती। भला उन्होंने एक की वक्तव्य दिया हो।

बर्कले भी कहता है कि जगत स्वप्नवत है और शंकर भी कहते हैं कि जगत स्वप्नवत है। यह दोनों वक्तव्यों में तुलना हो सकती है। लेकिन वह वक्तव्यों की तुलना ठीक नहीं है। क्योंकि दोनों वक्तव्य दो अलग तरह की चेतनाओं से निकलते हैं। बर्कले कहता है, क्योंकि वास्तविकता सिद्ध नहीं की जा सकती है, इसलिए। और शंकर

कहते हैं कि मैंने एक दूसरी वास्तविकता को जाना, जिसके सामने यह वास्तविकता खो जाती है, इसलिए। मैंने जिस दिन ब्रह्म को जाना, उस दिन से जगत रहा ही नहीं, क्योंकि दोंनों एक-साथ नहीं रह सकते। जब तक जगत दिखाई पड़ता है तब तक ब्रह्म दिखाई नहीं पड़ता। जब ब्रह्म दिखाई पड़ता है, तो जगत दिखाई नहीं पड़ता। यह दोनों एक-साथ नहीं रह सकते है। क्योंकि जगत का मतलब ही यह है--लहर की तरफ से देखना। और ब्रह्म का मतलब ही यह है कि सागर की तरफ से देखना।

अव्यक्त, अचिंत्य, अरूप है, इसलिए रूपों में प्रकट होता है। सभी रूप उसके हैं और फिर भी कोई रूप उसका नहीं है, यह अनेक रूप का अर्थ है।

"कल्याण करने वाला है।" मंगलदायी है। परमात्मा मंगलदायी है। वह परम तत्व मंगलदायी है, ऐसा हम सुनते हैं। लेकिन हमारे मन में जो खयाल आता है, जब भी हम कहते हैं परमात्मा कृपालु है, मंगलदायी है, उससे मंगल बरसता है, तो हमसे भूल होती है। हमसे भूल होगी, क्योंकि हमारे मन में मंगल का जो अर्थ होता है वह स्पष्ट नहीं है। परमात्मा मंगलदायी है, तो उससे हमें ऐसा ही खयाल आता है जैसे हम किसी दयावान व्यक्ति के पास जाएं और कहें कि फलां व्यक्ति बहुत दयावान है, बहुत शुभाकांक्षी है, कल्याण करनेवाला है। लेकिन जिस व्यक्ति के संबंध में हम ऐसा सोचते हैं, वह अकल्याण भी कर सकता है। अदयालु भी हो सकता है, क्रूर भी हो सकता है, कठोर भी हो सकता है। दया के विपरीत जो है, वह भी उसके भीतर मौजूद है। इसलिए दया उसे करनी पड़ती है और अ-दया उसे रोकनी पड़ती है।

अच्छे से अच्छे आदभी भी, अच्छे को करना पड़ता है उसे और बुरे को रोकना पड़ता है। क्योंकि बुरा मौजूद है। इसलिए अच्छा आदमी एक गहरें संघर्ष में चलता है। वह हमेशा बुरे को रोकना पड़ता है, अच्छे को करना पड़ता है। इसलिए अच्छा आदमी भी, चूंकि अच्छा उसे करना पड़ता, धीरे-धीरे अच्छा करने के अहंकार से भर जाता है। अक्सर ऐसा होता है कि बुरे आदमी उतने अहंकारी नहीं होते हैं, जितने अच्छे आदमी अहंकारी होते हैं। बुरे आदमी एक लिहाज से सरल होते हैं। जो करना है, कर लेते हैं। बुरा भीर कर लेते हैं। और बुरा करने की वजह से कभी उन्हें, ऐसा नहीं लगात कि हम... हम कुछ हैं, अच्छे हैं, तो अहंकार निर्मित नहीं होता। कारागृह में जाएं तो जो लोग वहां बंद हैं, वे आपके तथाकथित साधु-महात्माओं से ज्यादा सरल हैं। उन्हे खयाल ही नहीं कि हम भी कुछ हैं। क्योंकि बुरा करते हैं, कैसे कुछ हो सकते हैं। लेकिन अच्छा करने वाला आदमी तो गहरे अहंकार से पीड़ित हो जाता है। सूक्ष्म अस्मिता घनी हो जाती है। अपराधी दूसरों के प्रति अपराध करता है, अच्छा आदमी अपने प्रति अपराध कर देता है। क्योंकि वह अहंकार खुद के ही ऊपर साफ हो जाता है।

परमात्मा को कल्याणकर रहने का अर्थ बिल्कुल दूसरा है। उसका अर्थ यह है कि उसका स्वभाव, इस अस्तित्व का मौलिक स्वभाव मंगलदायी है। मंगल करता नहीं है वह, आप उसके निकट जाएं, मंगल होना शुरू हो जाता है। यह उसका कृत्य नहीं है, यह उसका स्वभाव है।

जैसे मैं बगीचे की तरफ जाऊं, तो जैसे-जैसे पास पहुंचता हूं, ठंडी हवांए आनी शुरू हो जाती हैं। बगीचा कोई ठंडी हवाएं भेजता नहीं है। और ऐसा भी नहीं है कि जब कोई नहीं निकलता बगीचे के पास, तो बगीचा अपनी ठंडी हवाओं को रोक लेता हो। या कभी दुश्मन निकल आता हो, या ऐसा आदमी निकल आता हो जो बगीचे को प्रेम न करता हो, तो बगीचा अपनी ठंडी हवाएं रोक लेता हो। न, बगीचे को इससे प्रयोजन ही नहीं है। यह बगीचे का स्वभाव है कि उसके आस-पास ठंडी हवाएं रोक लेता हो। न, बगीचे को इससे प्रयोजन ही नहीं है। यह बगीचे का स्वभाव है कि उसके आस-पास ठंडी हवा होगी ही। जब आप पास पहुंचते है, हवाओं की ठंडक बढ़ने लगती है। और पास पहुंचते हैं तो फूलों की सुगंध आने लगती है। यह भेजा नहीं जा रहा है। यह

बगीचे के होने में ही निहित है। इसका मतलब हुआ कि बगीचा चाहे भी तो इसे अन्यथा नहीं कर सकता है। गरम हवा भेजना भी चाहे तो बगीचे के पास कोई उपाय नहीं है। और दुर्गंध मेजना भी चाहे तो बगीचे में ऐसे कोई फूल नहीं खिलते हैं।

परमात्मा मंगलदायी है। इसका अर्थ है कि जैसे-जैसे हम उसके निकट जाते हैं, हमें मंगल का अनुभव होता है। खयाल रखना, यह हमारा अनुभव है। यह हमारा अनुभव है कि परमात्मा मंगलदायी है। परमात्मा को इसका कोई भी पता नहीं है। अगर पता भी हो, तो पता तभी होता है जब विपरीत माजैदू हो। अगर आपको पता चलता है कि फलां व्यक्ति को मैं प्रेम करता हूं तो उसका मतलब ही यह है कि आपके भीतर घृणा मौजूद है। नहीं तो पतदा नहीं चलेगा। पता कैसे चलेगा? अगर आप कहते हैं, फलां व्यक्ति को मैंने क्षमा कर दिया, उसका मतलब ही यह है कि क्रोध मौजूद है। नहीं तो क्षमा का पता कैसे चलेगा? विपरीत के कारण ही पता चलता है।

परमात्मा को पता नहीं चलता कि वह मंगलदायी है। अगर उसे पता चल जाए तो वह गैर-मंगल भी कर सकता है। इसलिए परमात्मा को हम व्यक्ति की भाषा में सोचें ही न। क्योंकि जिसको कुछ भी पता नहीं चलता वह व्यक्ति नहीं है, सिर्फ शक्ति है। पता चलने के जोर से ही व्यक्ति निर्मित होता है। मुझे पता चलता हैकि मैंने प्रेम किया, पता चलता है कि मैंने क्रोध किया, पता चलता है कि मैंने क्षमा की, यह पता जिस केंद्र को चलता है वही व्यक्ति बनता है। जब कोई पता नहीं चलता--परमात्मा को कुछ भी पता नहीं चलता, इसका यह मतलब नहीं है कि वह अज्ञानी है। इसका कुल मतलब इतना है कि विपरी उसके भीतर नहीं है। इसलिए सब होता है, लेकिन पता नहीं चलता। वह एक चैतन्य का विस्तार है। व्यक्ति नहीं, एक चैतन्य। चैतन्य का, शक्ति का अरूप विस्तार है।

यह हमारा अनुभव है कि उसके पास जाते हैं तो मंगल होने लगता है, उससे दूर जाते हैं तो अमंगल होने लगता है। यह जो अमंगल होता है, वह उसके कारण नहीं होता है, हमारे दूर जाने के कारण होता है। यह जो मंगल होता है, यह भी उसके कारण नहीं होता है, हमारे पास जाने के कारण होता है। तो हम इसे ऐसा अच्छा होगा कहना कि परमात्मा के पास जाने की जो प्रतीति है, उसका नाम मंगल है और परमात्मा से दूर जाने की जो प्रतीति है, उसका नाम अमंगल है। यह हमारी प्रतीति है। अगर हम परमात्मा में पूरी छलांग लगा लें तो हमें भी मंगल का पता नहीं चलेगा।

तो जिस दिन मंगल का भी पता न चले, उस दिन जानना कि उससे एकता सध गई। जब तक मंगल का पता चलता रहे, तब तक जानना कि पास जा रहे हैं। मंगल बढ़ता जा रहा है, आनंद बढ़ता रहा है, शांति बढ़ती जा रही है, लेकिन पास जा रहे हैं। जिस दिन इनका भी पता न चले, उस दिन समझना कि छलांग लग गई। उसमें ही हो गए।

इसलिए बुद्ध जैसे आदमी को हम कहते हैं, परम शांत। कहना नहीं चाहिए। अशांत भी वह नहीं हैं, अब शांत भी न रहे। क्योंकि शांति का अनुभव अशांत व्यक्ति को ही चलता है। बीच-बीच में अशांति आती रहे तो उन दोनों के बीच में जो वक्त मिलता है, उसको हम शांति कहते हैं। दो अशांतियों के बीच में शांति का अनुभव होता है। अगर एक अशांति के बाद फिर अशांति आए ही नहीं, तो थोड़े ही दिनों में शांति का अनुभव भी खो जाता है। शांत होता है व्यक्ति, लेकिन अनुभव नहीं रह जाता, अनुभोक्ता नहीं रह जाता।

फिर कहा है--"अद्वैत" है। वह दो नहीं है। सारे जगत में जिन्होंने भी उसे खोजा है, उन्होंने कहा है, वह एक है। सिर्फ भारत में "एक" शब्द का प्रयोग जानकर पसंद नहीं किया। भारत ने सदा कहा--वह दो-नहीं है। सारे जगत में जिन्होंने भी खोजा है, उन्होंने कहा है, वह एक है। वन। लेकिन भारत को कभी भी उसे एक कहना

नहीं रुचा। जानते हुए कि वह एक है, भारत को कभी भी उसे एक कहना पसंद नहीं पड़ा--और कारण हैं उसके। क्योंकि भारत ने उसे कहने के लिए सब तरह से, अधिकतम ठीक से प्रकट करने के लिए जितने उपाय किए हैं, उतने मनुष्य-जाति की किसी कौम ने कभी नहीं किए हैं। उसके संबंध में जरा सी भ भूल न हो, इसकी जितनी चेष्टा हमने की है, किसी ने भी कभी नहीं की है। और ऐसा भी नहीं लगता है कि इस चेष्टा में और आगे भी कुछ जोड़ा जा सकता है। कठिन मालूम पड़ता है। करीब-करीब ऐसा लगता है कि इस आयाम को हमने उसकी पूर्णता तक स्पर्श किया है।

इसलिए एक कहने में भी हमें कठिनाई पड़ी है। क्योंकि एक कहने से तत्काल दो का खयाल आता है। जब भी हम कहते हैं परमात्मा एक है, तो आपके मन में तत्काल दो पैदा हो जाता है। दो पैदा होने का कारण है। क्योंकि एक अपने आप में मूल्यहीन है जब तक कि और बड़ी संख्याओं के विस्तार का हिस्सा न हो। एक का मतलब ही तब होता है जब दो भी हो, तीन भी हो, जार भी हो, पांच भी हो, तभी एक का मतलब होता है। पूरा गणित का विस्तार एक में छिपा हुआ है। इसलिए जब हम कहते हैं, एक, तो चित्त के भीतर जो ध्वनि उत्पन्न होती है वह दो की है। और कहने से भारत को कम प्रयोजन है, आपके भीतर क्या सुना जाता है उससे ज्यादा प्रयोजन है।

इस बात को समझें, यह बहुत मूल्यवान है। हमारी यह फिकर कम है कि क्या कहा जाए, हमारी यह फिकर ज्यादा है कि क्या समझा जाए। क्योंकि अंततः समझ काम करेगी, कहा हुआ काम नहीं करेगा। इसलिए बड़ा उलटा शब्द हमने कहा। हमने कहा, वह दो-नहीं है, अद्वैत। जब कहा जाता है वह दो-नहीं है, तो आपके भीतर एक का रूप निर्मित होता है। जब कहा जाता है कि दो-नहीं है, तो आपके भीतर गहन अंतस में जो प्रतीति आती है, वह एक की है। और जब कहा जाता है, एक है, तो अंतस में जो शृंखला शुरू हो जाती है, वह संख्याओं की है। आपके चित्त पर जो चित्र निर्मित होता है, वह "दो-नहीं" कहने से एक का निर्मित होता है, और वह एक भिन्न है--कहे गए एक से।

कहे एक, तो और बात है। कहें दो-नहीं, तब भी आपके भीतर जो एक का धीमा सा आभास होता है, वह अभास परोक्ष है, इनडाइरेक्ट है। वह सिर्फ आभास है। मुट्ठी में पकड़ नहीं आती है। सिर्फ गहन में कहीं कोई स्वर गूंजं जाता है एक का, जिस पर आप भी सचेत नहीं होते। उस चेतन में एक के भाव को उतारने के लिए भारत ने उसको निरंतर कहा है--दो-नहीं। यह मनुष्य और मनुष्य के बीच संवाद करने के बहुत गहरे निष्कर्षों का परिणाम है। बहुत बार आदमी से कह-कहकर जाना गया है कि उसके भीतर क्या निर्मित होता है, उसकी चेतना में क्या घटित होता है।

और चेतना में अक्सर उल्टा घटित होता है। जैसे आप दर्पण के सामने खड़े होते है, आपको खयाल नहीं आता कि आपका उजटा प्रतिबिंब दर्पण में बनता है। खयाल में नहीं आता, रोज आप दर्पण के सामने खड़े होते हैं, खयाल में नहीं आता। लेकिन किताब का पन्ना दर्पण के सामने करें, तब आपको तत्काल खयाल में आ जाएगा। यह तो अक्षर उलटे हो गए! असल में सभी प्रतिबिंब उलटे बनते हैं। कोई प्रतिबिंब सीधा नहीं बन सकता। जब आप नदी के तट पर खड़ होते हैं और आपका प्रतिबिंब बनता है, तो वह उलटा होगा। प्रतिबिंब बनने की प्रक्रिया में चीजें उलटी हो जाती हैं। हो ही जाएंगी। आपकी दाईं आंख बाईं तरफ बनेगी, बाईं आंख दाईं तरफ बनेगी। इसलिए जब आप मुझे देखते हैं तो आपकी आंख में जो प्रतिबिंब बनेगा, वह उलटा बनेगा। मैं जब आपको देखता हूं तो मेरी आंख तो दर्पण का काम करेगी, जो प्रतिबिंब बनेगा, वह उलटा बनेगा।

सब प्रतिबिंब उलटे बनते हैं। सब प्रतिध्वनियां उलटी होती हैं। इस गहरे अनुभव के कारण भारत ने कभी भी ब्रह्म को एक नहीं कहा। क्योंकि एक कहने से भीतर जो प्रतिबिंब बनता है, वह उलटा है। इसलिए हमने पसंद किया कहना, अद्वैत। दो नहीं है। तो जो प्रतिबिंब बनता है, वह परोक्ष में, सूक्ष्म में एक का है। वही प्रतीति को जोर देने के लिए नकारात्मक शब्द का प्रयोग किया।

"जिसका कोई आदि नहीं, मध्य नहीं, अंत नहीं।" जो न कभी प्रारंग होता, न कभी समाप्त होता, ये दो बातें हमारी समझ में आ जाएंगी, लेकिन तीसरी बात थोड़ी कठिन है। वह आपके खयाल में कभी आई भी नहीं होगी। यह तो आपने बहुत बार सुना होगा कि परमात्मा का न कोई आदि है न कोई अंत है। लेकिन यह ऋषि कहता है--उसका कोई मध्य भी नहीं है। जब हम कहते हैं कि न आदि है, न अंत है, तो हमारा मतलब होता है, उसका मध्य ही मध्य है। होगा ही मतलब। अगर किसी चीज का न कोई प्रारंभ है और न कोई अंत है और फिर भी है, तो उसका मतलब ही हुआ कि उसमें मध्य ही मध्य है। जहां भी पाओ, वहीं मध्य है। अगर वह चीज है और अगर आप कहते हैं, न उसका आदि, न अंत, और न उसका मध्य, तो फिर वह रही ही नहीं। फिर रहेगी कहां? उसका होन कहां होगा?

लेकिन यह ऋषि ज्यादा वैज्ञानिक है। क्योंकि जिसका न आदि है, न अंत है, उसमें कोई मध्य हो कैसे सकता है? क्योंकि मध्य का मतलब ही होता है आदि और अंत के बीच में। मध्य का मतलब ही क्या होता है? दोनों छोरों के बीच में जो है। और जब दोनों छोर ही नहीं है तो बीच कैसे होगा? फिर भी वह है। तब उसके होने को हमें किसी और ढंग से सोचना पड़ेगा। फिर यह आदि, अंत और मध्य की भाषा बिल्कुल छोड़ देनी पड़ेगी। वह है।

इसे हम एक और तरह से खयाल में ले लें तो शायद खयाल में आ जाए। समय को हम तीन हिस्सों में बांटते हैं। अतीत, वर्तमान, और भविष्य। अगर परमात्मा है, तो उसके लिए कुछ भी अतीत नहीं हो सकता और उसके लिए कुछ भी भविष्य नहीं हो सकता। अगर परमात्मा है और उसके लिए भी भविष्य है--तो भविष्य का मतलब ही यह होता है कि जो ज्ञात नहीं है। अगर परमात्मा है और उसके लिए भी भविष्य है, तो उसका मतलब हुआ, उसके लिए भी कुछ अज्ञात। तो उसके लिए कोई भविष्य नहीं हो सकता है, उसके लिए कोई अतीत नहीं हो सकता है।

ऐसा समझें कि अतीत और भविष्य और वर्तमान हमारी सीमित दृष्टि के परिणाम हैं। हमें थोड़ा सा हिस्सा दिखाई पड़ता है अस्तित्व का, उतने हिस्से को हम वर्तमान कहते हैं। जब वह नहीं दिखाई पड़ता तो अतीत हो जाता है। और जब तक नहीं दिखाई पड़ता था, तब तक भविष्य होता है। समझो एक आदमी एक वृक्ष के नीचे बैठा है, रास्ते के किनारे दोनों तरफ रास्ता साफ है, कुछ दिखाई नही पड़ता। एक आदमी वृक्ष के ऊपर बैठा है, उसे एक बैलगाड़ी दिखाई पड़ती है रास्ते पर आती हुई। वह आदमी नीचे चिल्ला कर कहता है कि एक बैलगाड़ी रास्ते पर आ रही है। नीचे वाला आदमी कहता है, कोई बैलगाड़ी रास्ते पर नहीं है। भविष्य में हो सकती है, कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ती। फिर बैलगाड़ी दिखाई पड़ती है। तो वृक्ष पर बैठ आदमी को जो बैलगाड़ी वर्तमान में थक्ष, वह अब उसके लिए वर्तमान होगी--नीचे बैठे आदमी को।

फिर बैलगाड़ी रास्ते से गुजरती है और खो जाती है। नीचेवाला आदमी कहता है, बैलगाड़ी अतीत में चली गई। अब नहीं दिखाई पड़ती। लेकिन ऊपरवाला आदमी कहता है कि अभी भी दिखाई पड़ती है। तो नीचेवाले आदमी को जो भविष्य था, वर्तमान था, अतीत था, वह वृक्ष पर बैठे आदमी को वर्तमान है--तीनों। लेकिन उससे भी ऊंचे वृक्ष की ऊंचाई पर कोई बैठा हो तो जब इसके लिए भी वर्तमान-अतीत के भेद आ जाएंगे

तब भी उसे भेद न आएगा। उसके ऊपर कोई बैठा हो, तो जब इसके लिए भी भेद आ जाएंगे तब भी उसे अभेद बना रहेगा।

परमात्मा से मतलब है कि जिसके पार और कुछ भी नहीं। तो उसका अर्थ हुआ, कि उसके लिए कोई अतीत अतीत नहीं होगा, कोई भविष्य भविष्य नहीं होगा। तो हमें खयाल आता है कि फिर उसके लिए सभी कुछ वर्तमान होगा। मतलब मध्य होगा। लेकिन यह ऋषि कहता है, कि उसके लिए मध्य भी नहीं होगा। क्योंकि जिसने भविष्य नहीं जाना, जिसने अतीत नहीं जाना, वह किस चीज को वर्तमान कहेगा। वर्तमान तो हम कह ही तब सकते हैं जब अतीत और भविष्य के बीच में हमें कोई अनुभव हो। अतीत और भविष्य का ही अनुभव नहीं होता तो वर्तमान का क्या अनुभव होगा! परमात्मा के लिए वर्तमान भी नहीं हो सकता। नअतीत, न भविष्य, न वर्तमान।

इसलिए रहस्यवादियों ने कहा है कि परमात्मा के सामने समय नहीं है। कोई समय नहीं है। कालातीत। कोई काल नहीं है। ठीक ऐसे ही, चूंकि उसके पास कोई समय नहीं है, समय की कोई धारणा नहीं है, कोई स्थिति नहीं है, वह कभी प्रारंभ नहीं हुआ, सदा से है। कभी अंत नहीं होगा, सदर रहेगा। इसलिए उसका बीच का भाग हम किसको कहें? तो ऋषि कहता है--न उसका कोई आदि, न उसका कोई अंत, न उसका कोई मध्य। वह बस है। और यह विभाजन उस पर लागू नहीं होता। उस पर कोई विभाजन लागू नहीं हौता। वह अविभाज्य है। और हम सब जो भी सोच सकते हैं वह बिना विभाजन के नहीं सोच सकते हैं। इसीलिए अचिंत्य है।

हम जो भी सोचेंगे, उसमें विभाजन होगा ही। हमारे पास कोई उपाय नहीं है। विभाजन हम करेंगे ही। बच्चा होगा, जवान होगा, बूढ़ा होगा; जन्म होगा, मृत्यु होगी; सुख होगा, दुख होगा, अंधेरा होगा, प्रकाश होगा; हम विभाजन करेंगे ही। आप कोई ऐसी चीज जानते हैं जो अविभाज्य हो? मनुष्य के अनुभव में ऐसी कोई चीज नहीं जो अविभाज्य हो। उसमें विभाजन होगा ही। असल में मनुष्य का मन बिना विभाजन के कुछ समझ ही नहीं सकता और अस्तित्व अविभाज्य हैं। वह कहीं, कही विभाजित नही होता। कहीं विभाजित नहीं होता। यह तो अविभाज्य अस्तित्व है, इसकी सूचान दी है ऋषि ने--न मध्य, न अंत, न आदि।

अद्वितीय है वह। अद्वैत कहने के बाद अद्वितीय--हमें लगेगा, कहने की कोई जरूरत नहीं है। जरूरत है। अद्वैत ने कहा कि वह दो नहीं है, अद्वितीय ने कहा कि उस जैसा केई दूसरा नहीं। बेजोड़ है, अतुलनीय है, इनकंपेरेबल है। इसीलिए तो हम उसके संबंध में कूछ भी नहीं कह पाते हैं। क्योंकि जब तक दूसरा नहो, कहना बहुत मुश्किल है। हम एक आदमी को कह पाते हैं सुंदर है, क्योंकि किसी कुरूप से उसकी तुलना की जा सकती है; नहीं तो सुंदर कैसे कहिएगा? अगर एक ही आदमी पृथ्वी पर हो, तो वह सुंदर होगा या कुरूप? वह बुध्दिमान होगा या बुद्धू? अगर एक ही आदमी है तो वह बिल्कुल बेजोड़ होगा। उसके बाबत कुछ भी कहना मुश्किल होगा। उसको बुद्धू कहिए तो किसकी तुलना में? उसको बुद्धिमान कहिए तो किसकी तुलना में?

यह तो हमारी समझ में आ जाएंगे, लेकिन और थोड़ा उतरेंगे तो उसके संबंध में कुछ भी कहना मुश्किल है। वह बीमार होगा कि स्वस्थ? तुलना न होने से कुछ भी कहने का उपाय नहीं रह जाएगा। वह अतुलनीय हो जाएगा। वह जैसा है वैसा है। उसके बाबत कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसलिए कहा, अद्वितीय। उस जैसा कोई दूसरा नहीं।

इनमें से किसी एक भी गुण पर बहुत जोर देने से धर्मों की पृथकताएं पैदा हो जाती है। जैसे हिंदू धर्म ने अद्वैत पर जोर दिया। इस्लाम ने अद्वितीय पर। इस्लाम का केंद्र है, अद्वितीय, इनकंपेरेबल। इसलिए कुरान कहती है : मेरे सिवाय और कोई अल्लाह नहीं। मैं ही हूं, मेरे सिवाय और कोई दूसरा नहीं।

लेकिन मुसलमानों ने इसे बड़ा गलत समझा। वे इसको अद्वितीय का अर्थ नहीं दे पाए। उन्होंने समझा कि इसका मतलब यह है कि मुसलमानों के ईश्वर के सिवाय जितने सब ईश्वर है, तोड़-फोड़ डालो। क्योंकि वह एक ही। एक-दूसरे को बचने ही मत दो, क्योंकि वह एक ही। लेकिन अगर वे ठीक से समझ लेते, तो दूसरे को तोड़ने में भी दूसरे को स्वीकार कर लिया। जिसको तोड़ने की जरूरत पड़ी, वह था। जिसको तोड़ने के लिए श्रम करना पड़ा, उसको मान लिया।

अगर परमात्मा अद्वितीय है, तो उसका मतलब ही यह है कि कुछ भी हो वह उसी परमात्मा के अद्वितीय रूप का हिस्सा होगा, और कोई उपाय नहीं है। अगर वह निराकार है, तो आकार को तोड़ने से उसका निराकार होना सिद्ध नहीं होगा। आकार में भी उस निराकार को देखने से ही सिद्ध होगा। क्योंकि अगर आकार को तोड़ना पड़ता है, तो इतना तो मान ही लिया कि आकार भी होता है, जो तोड़ा जा सकता है। बनाया जा सकता है, तोड़ा जा सकता है। आकार है। तब तो उसका अर्थ यह हुआ कि निराकार परमात्मा है और आकार भी हो सकता है। तो फिर परमात्मा के आलावा भी इस जगत में कुछ होता है। तो फिर वह अद्वितीय न राहा। फिर दूसरे को हमने स्वीकार कर लिया।

इस लिहाज से भारतीय मनीषा की पैठ बहुत गहरी है। भारतीय मनीषा कहती है कि आकार में भी वही निराकार है। और उसी निराकार से सब आकार जनमते हैं और उसी में लीन होते हैं। अद्वितीय है वह, लेकिन उसका मतलब यह नहीं कि उसे बहुत-बहुत रूपों में नहीं देखा जा सकता। हर रूप में देखा जा सकता है। फिर भी वह अद्वितीय है, क्योंकि वह एक ही है। दूसरा नहीं। इसलिए इनकंपेरेबल है, अतुलनीय है।

"सर्वव्यापक है।" क्योंकि सभी कुछ वही है। "चैतन्य है, आनंदघन है"। चैतन्य पर बड़ा जोर है। ऐसा भारतीय रहस्य का अनुभव है कि श्रेष्ठतम में निकृष्ट समा जाता है, लेकिन निकृष्ट में श्रेष्ठ नहीं समाता। यही विवाद है। बड़ा विवाद है।

नास्तिक और आस्तिक के बीच, पदार्थवादी और अध्यात्मवादी के बीच जो विवाद है, यही है। वह विदा यह है कि पदार्थवादी कहता है कि सभी चीजें रिड्यूस की जानी चाहिए, सभी चीजें घटाई जानी चाहिए उस मौलिक तत्त्व पर जिससे शक्ति यह निर्मित हुई। जैसे अगर आदमी है, तो आदमी क्या है? पदार्थवादी कहेगा कि हम इसके भीतर की सारी चीजों की जांच-पड़ताल कर लेते हैं, इन्हीं का जोड़ है। अगर इसमें चेतना भी दिखाई पड़ती है, तो वह भी इसी जोड़ का परिणाम है। वह इस जोड़ से ज्यादा नहीं है। पदार्थवादी चीजों को उनके मूल में ले जाना चाहता है।

अध्यात्मवादी का सोचने का ढंग बिल्कुल भिन्न है। वह प्रत्येक चीज को उसके आत्यंतिक शिखर पर ले जाना चाहता है। वह कहता है कि जो आत्यंतिक शिखर है, तो वह यह नहीं कहेगा कि मनुष्य सिर्फ पदार्थ का जोड़ है, बल्कि वह यह कहेगा कि चूंकि मनुष्य में चेतना प्रकट हो गई इसलिए चेतना के भीतर ही यह पदार्थ का सारा जोड़ घटित हुआ है। चेताना के कारण ही घटित हुआ है। श्रेष्ठतम जब प्रगय हो जाता है, तो अध्यात्मवादी का कहना है कि श्रेष्ठतम बड़ा है। अपने मौलिक आधारों से बड़ा है। जिन चीजों से मिल कर बना है, उनसे बृहत्तर है।

पदार्थवादी और अध्यात्मवादी की भाषा को अगर हम समझें तो वे बहुत भिन्न भाषा नहीं बोलते। उनकी भाषा एक अर्थ में एक सी है, सिर्फ उनकी दिशाएं भिन्न होती हैं। पदार्थवादी कहता है, पदार्थ ही सब कुछ है। अगर चेतना भी पैदा होगी तो उसी की बाई-प्रॉडक्ट है, उसी की उप-उत्पत्ति, अगल उसको सोचने की कोई जरूरत नहीं। अध्यात्मवादी कहता है, आत्मा ही सब कुछ है; और अगर पदार्थ भी प्रकट होता है तो वह उसीकी

बाई-प्रॉडक्ट है, उप-उत्पत्ति है। पदार्थवादी कहता है, पदार्थ से चेतना निर्मित होती है। अध्यात्मवादी कहता है, चेतना की मूर्च्छा से ही पदार्थ निर्मित होता है।

इन दोनों के कहने के ढंग में बहुत फर्क नहीं है। दिशाओं में जमीन-आसमान का फर्क है। और उसके परिणाम बहुत महत्त्वपूर्ण होंगे। अगर हम यह मान लें कि आदमी पदार्थ का ही जोड़ है, तो विकास की सारी संभावना खो जाएगी। इसलिए पदार्थवाद के साथ विकास असंभव है। उत्क्रांति असंभव है, रूपांतरण असंभव है। लेकिन अध्यात्मवाद के साथ संभावना खुलती है। क्योंकि श्रेष्ठ को हम स्वीकार करते हैं तो श्रेष्ठ के होने की आकांक्षा पैदा होती है।

अगर परमात्मा है तो... नीत्शे ने बहुत अदभुत बात कही है। नीत्से ने कहा है कि यदि परमात्मा है, तो फिर मेरी आत्मा बिना परमात्मा हुए कभी राजी नहीं हो सकती। अगर है, तो फिर कोई उपाय नहीं है मेरे लिए, फिर मुझे परमात्मा होना ही पड़ेगा। क्योंकि उससे कम में फिर कोई तृप्ति नहीं हो सकती। तो श्रेष्ठ को स्वीकार करने के साथ ही व्यक्ती की चेतना में नई अभीप्सा का जन्म हो जाता है। इस अभीप्सा के लिए दोनो शब्द महत्वपूर्ण हैं--चैतन्य, परमात्मा चेतना है; और आनंदमय, और परमात्मा आनंद है।

"जिसका कोई रूप नहीं, जो विलक्षण है, ध्यान के द्वारा मन्युष्य उसे उपलब्ध करते हैं।"

अब यह मैं पूरा सूत्र आपको कहं दूं--

"इस प्रकार मुनि लोग ध्यान के द्वारा उस चिंतन की सीमा में न आने वाले, व्यक्त न होने वाले; जिसके अनंत रूप हैं, जो कल्याण करने वाला, जो अद्वैत है, जो ब्रह्म का मूल कारण है, जिसका कोई आदि, मध्य और अंत नहीं; जो अद्वितीय, सर्वव्यापक, चैतन्य, आनंदमय है; जिसका कोई रूप नहीं, जो विलक्षण है, उसको प्राप्त करते हैं।"

ध्यान द्वार है इस अचिंत्य, अद्वितीय, अद्वैत, अरूप, अनंतरूप, चैतन्य, आनंदघन का। ध्यान विधि है इस परम रूपांतरण के लिए। ध्यान से जो बचेगा, वह परमात्मा से बच जाएगा। ध्यान से जो नहीं गुजरेगा, वह उस विराट में नहीं पहुंच सकता। जैसे नदियों को किनारों के बीच से गुजरना पड़ता है, सागर तक पहुंचने के लिए, ऐसे चेतना को ध्यान के किनारों से गुजरना पड़ता है उस अनंत सागर तक पहुंचने के लिए।

अब हम ध्यान के लिए तैयार हो जाएं। कोई मित्र देखने को आ गए हां तो यहां ग्राउंड में न रहें।

सातवां प्रवचन

मिलन तक मिलन अनिश्चत में

उमासहायं परमेश्वंर प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।

ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्त साक्षिं तमसः परस्तात्।। 7।।

जिसे उमासहाय, परमेश्वर, नीलकंठ और त्रिलोचन के नामों से पुकारा जाता है, जो समस्त चराचर का स्वामी है और शांतिस्वरूप है, जो समस्त भूतों का मूल कारण और साक्षी है, जो अविद्या(तमस) से दूर है-- उसको मुनिजन ध्यान से प्राप्त करते हैं।। 7।

जानना हो, तो ध्यान की वैसी अवस्था चाहिए, जब ध्येय कुछ भी न रह जाए। ऐसी चेतना चाहिए, जब चैतन्य ही बचे, विषय कोई भी न हो। दर्पण ही हो, प्रतिफलन बिल्कुल न रहे। लेकिन बड़ी दूर की है ऐसी स्थिती। बहुत मुश्किल मालूम पड़ेगी। उस तक पहुंचना असंभव-जैसा दिखेगा। क्योंकि एक क्षण को तो हमारा मन ठहर नहीं पाता और एक क्षण को तो विचार से छुटकारा नहीं है। एक छोटे से विचार को भी अलग करना हो तो पराजय हाथ लगती है। तो कैसे होगा यह कि सारे विचार समाप्त हो जाएं! एक जरा-सी तरंग तो हटा नहीं पाते हैं, कैसे होगा कि चित्त बिल्कुल ही निस्तरंग हो जाए! विचार से छुटकारा मुश्किल मालूम पड़ता है, निर्विचार कैसे घटित होगा! और अगर यही हो शर्त कि बिना निर्विचार हुए परमतत्व को नहीं जाना जा सकता, तो हमारे हृदय में निश्चित ही निराशा पैदा होगी। गहन निराशा पैदा होगी। और लगेगा कि शायद यह बात पाने की हमारे बस की तो नहीं है। हमसे यह नहीं हो सकेगा।

इसलिए समस्त ज्ञानियों ने जिन्होंने जाना है उसे, उन्होंने निरंतर यह कहते हुए कि वह नहीं पाया जा सकता किसी पर ध्यान करने से, फिर भी ध्यान के लिए विषय बताए हैं। यह कहते हुए कि किसी विचार से उस तक नहीं पहुंचा जा सकता, फिर भी विचार के माध्यम सुझाए हैं कि इन विचारों का उपयोग करने से निर्विचार तक जाने की सीढ़ी बन सकेगी। इसलिए समस्त धर्म अपनी गहनता में, गहराई में भलीभांति जानते हैं कि उस तक पहुंचना तो केवल शून्यचित्त व्यक्ति के लिए संभव होगा। लेकिन शून्यचित्तता बड़ी कठिन है। तो शून्यचित्तता और हमारी स्थिति के बीच में कुछ सीढ़ियां बनानी जरूरी मालूम पड़ती हैं।

ध्यान के संबंध में कैवल्य उपनिषद में आत्यंतिक बात कहने के बाद इस सूत्र को लिया है। यह सूत्र बीच की सीढ़ी बनाता है। इसमें हम परमात्मा के किसी आकार को मानकर यात्रा शुरू करते हैं। यह आकार अंतिम नहीं है। इस आकार पर रुकना भी नहीं है, इस आकार पर पूर्णता भी नहीं है। पूर्णता तो वहीं होगी जहां सब आकार खो जाएंगे। लेकिन हम इतने आकारों के घिरे हैं कि इतने आकारों में घिरे मन को समझ में ही आना मुश्किल है कि निराकार में कैसे हो सकेंगे। इसलिए यह सूत्र बीच की एक कड़ी को निर्मित करता है।

वही कड़ी यह है कि बहुत आकारों को छोड़ें, एक आकार को पकड़ें, ताकि एक आकार भी छोड़ा जा सके और निराकार में प्रवेश हो। इस एक आकार की ही इसमें चिंतना है। इस आकार के संबंध में कुछ शब्द हम समझ लेंगे, तो फिर यह सूत्र खयाल में आ जाएगा।

"जिसे उमासहाय, परमेश्वर, नीलकंठ और त्रिलोचन के नामों से पुकारा जाता है, जो समस्त चराचर का स्वामी और शांतिस्वरूप है, जो समस्त भूतों का कारण और साक्षी है, जो अविद्या (तमस) से दूर है--उसी को मुनिजन ध्यान से प्राप्त करते हैं।" कैसे बनाएं उसका आकार जिसका कोई आकार नहीं है? यह आकार बहुत तरह से बनाया जा सकता है। इस आकार को बनाते वक्त हमारे चित्त में, जो निराकार को समझने में समर्थ नहीं हो पाता है, कुछ ऐसी आकार की भूमिका दी जाए कि भूमिका इस चित्त के समझ में भी आ सके, और फिर ऐसी न हो जाए कि पकड़ जाए तो छूट न सके। एक आदमी सीढ़ियों से चढ़ता है। सीढ़ी की खूबी यह है कि उस पर हम चढ़ें भी और उससे हम हट भी जाएं। सीढ़ी पर पैर रखते हैं छोड़ देने के लिए ही। आदमी एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर चढ़ता है तो हर सीढ़ी को पकड़ता है और हर सीढ़ी का छोड़ता है। और अंत में सारी सीढ़ियों को छोड़ कर दूसरी मंजिल में प्रवेश करता है।

सीढ़ी पकड़नी पड़ती है, छोड़ने के लिए ही। अगर कोई ऐसा समझे कि सीढ़ी को ही पकड़ लेना है, तो पहली मंजिल भी खो जाएगी और दूसरी भी नहीं मिलेगी। बहुत बार ऐसा होता है, तथाकथित बहुत-से धार्मिक व्यक्तियों से, संसार से भी उनका पैर छूट जाता है और परमात्मा तक भी पैर नहीं पहूंच पाता है। और उनकी स्थिति त्रिशंकु की हो जाती है। न वे यहां के होते हैं, न वे वहां के होते हैं। न घर के होते हैं न घाट के होते हैं। और उसका एकमात्र कारण यही है कि सीढ़ी पकड़ जाती है। और सीढ़ी पर होना बहुत खतरनाक है। क्योंकि सीढ़ी कोई निवास नहीं है। सीढ़ी कोई मुकाम नहीं है। इससे तो बेहतर था पहली मंजिल पर ही रहते। वहां भी निवास हो सकता था। क्षणभंगुर ही सही, लेकिन फिर भी निवास था।

क्षणभंगुर को छोड़ दिया, शाश्त में प्रवेश न हुआ और सिर्फ सीढ़ी को पकड़ कर बैठ गए; तो जीवन बड़ी ही दुविधा का हो जाता है। और तथाकथित धार्मिक आदमियों का जीवन बड़ी दुविधा का हो जाता है। उससे तो कभी-कभी सांसारिक आदमी भी ज्यादा प्रसन्न और स्वस्थ मालूम पड़ता है। कम-से-कम कहीं उसका घर है।

निश्चित ही जो परमात्मा के घर में प्रवेश कर जाते हैं उनके आनंद का हिसाब लगाना मुश्किल है। सांसारिक के पास वैसा कुछ भी नहीं है। उसकी खुशी, उसका सुख आनंद के सामने ऐसे फीके पड़ जाते हैं जैसे सूरज के सामने छोटा-सा दीया फीका पड़ जाए। लेकिन जो बीच में अटक जाता है, दोनों सीढ़िया के, दोनों मंजिलों के बीच की सीढ़ी को पकड़ कर अटक जाता है, उसकी दशा सांसारिक से भी बुरी हो जाती है।

इसलिए मैं देखता हूं, मेरे पास न-मालूम कितने धार्मिक लोग आत हैं, उनकी पीड़ा देख कर मैं हैरान हौ जाता हूं। धार्मिक आदमी को पीड़ा तो होनी ही नहीं चाहिए। उनकी पीड़ा भी समझने जैसी है। उनकी पीड़ा यही होती है कि बुरे लोग दुनिया में मजा कर रहे हैं। और भले लोग दुनिया में बड़ी मुसीबत में हैं। भला आदमी कभी मुसीबत में होता नहीं। और हो, तो जानना चाहिए भला नहीं होगा। क्योंकि भले आदमी का अर्थ ही यह होता है कि जिसने मुसीबतों के भी सुखद पहलू को देखना शुरू कर दिया।

भला आदमी और शिकायत में कोई मले नहीं है। लेकिन अगर भला आदमी भी शिकायत करता है तो उसका कुल कारण इतना है, वह वही सब चाहता है जो बुरे आदमी को मिल रहा है, लेकिन बुरा करने की हिम्मत भी उसकी नहीं है। एक चोर ने बड़ा मकान बना लिया है, वह भी मकान बनाना चाहता है और चोरी भी नहीं करना चाहता। तो वह चाहता यह है कि मैंने चोरी नहीं की, तो इससे बड़ा मकान मुझे मिलना चाहिए। क्योंकि मैंने चोरी नहीं की, इसलिए मकान मुझे मिलना चाहिए। और चोरी न करने का कारण यह नहीं है कि धन पर उसका मोह नहीं है। क्योंकि धन पर और मोह न होता तो इस बड़े मकान को देख कर ईर्ष्या भी नहीं जनमती। धन पर उसका मोह पूरा है। लेकिन सौ में से निन्यानबे भले आदमी सिर्फ भय के कारण भले

होते हैं। चोरी की हिम्मत नहीं है। चोरी का साहस नहीं है। और नपुंसकता से कहीं कोई दुनिया में भलापन पैदा नहीं होता।

तो यह आदमी भीतर से चोर की सारी आकांक्षाओं से भरा है, सिर्फ इसमें चोर की हिम्मत की कमी है। इसलिए जब चोर मकान बना लेता है तब इसे भारी पीड़ा और ईर्ष्या होती है। और तब यह कहता है कि भले आदमी बड़ा दुख उठा रहे हैं और बुरे आदमी बड़ा मजा ले रहे हैं और बुरे आदमी बड़ा मजा ले रहे हैं। यह जो आदमी है, यह त्रिशंकु है। यह सीढ़ी पर अटका हुआ है। यह छलांग भी नहीं लगा पाया परम रहस्य में और वह वहां से भी हट गया है जहां से इसका मन अभी हटा नहीं था।

इससे दूसरी बात भी आपको कह दूं कि सीढ़ी को पकड़ते ही वे हैं जिनसे नीचे की मंजिल वस्तुतः नहीं छूटी होती है। अगर वस्तुतः नीचे की मंजिल छूट जाए तो जो नीचे की मंजिल छोड़ सकता है, वह सीढ़ी पकड़ेगा? जो आदमी नीचे की मंजिल छोड़ सकता है, वह सीढ़ी को पकड़ने का कारण उसे नहीं रह जाता। नीचे की मंजिल छोड़ तो देता है आदमी, उस छोड़ने के पीछे भी, जैसा मैंने कहा तथाकथित भले आदमी के पीछे भय कारण होता है, ऐसे ही तथाकथित त्यागियों के पीछे लोभ कारण होता है। वे संसार छोड़ देते है, किसी लोभ के वश में।

यह हमें थोड़ा जानकार हैरानी होगी कि संगार को त्याग करनेवाले सौ में से निन्यानबे लोग लोभ के कारण ही त्याग करते हैं। शास्त्रों में पढ़ लेते हैं, गुरुओं से सुन लेते हैं और उनके लोभ की घनी मात्रा जग जाती है। और उन्हें लगता है कि संसार में क्या रखा है, इसको छोड़ दो। तो जहां, जहां मिल सकता हो असली सुख, उसको ही पाने के लिए इसको छोड़ दो। इस संसार का छोड़ना उनके लिए एक सौदा है। तो मन से तो नहीं छूट पाता, सीढ़ी पर तो पहुंच जाते हैं, फिर सीढ़ी को नहीं छोड़ पाते हैंः क्योंकि भय लगने लगता है। भय यह लगने लगता है कि कहीं सीढ़ी भी छूट गई--संसार भी छूट गया, कहीं सीढ़ी भी छूट गई और वह जो परम रहस्य है वह मिला, न मिला!

और ध्यान रहे, वह परम रहस्य जब तक मिल न जाए तब तक उसके संबंध में कुछ भी पता नहीं होता कि वह मिलेगा भी कि नहीं मिलेगा। यह भी पता नहीं होता। यह भी पक्का नहीं होता। उसका मिल जाना सुनिश्चित है, यह मिलकर ही पता चलता है। इसीलिए तो श्रद्धा पर इतना जोर है। श्रद्धा का मतलब यह है कि जो अनिश्चय में कूदने को तैयार है।"इनसिक्योरिटी" में, असुरक्षा में कूदने को तैयार है। जो कहते हैं, ठीक है, मिलेगा, नहीं मिलेगा, यह कूदकर ही देख लेंगे। अभी से यह भी पक्का वचन लेकर नहीं चलते हैं, कि मिलेगा तो ही कूदेंगे। जिस आदमी ने ऐसा कहा कि मिलेगा तो कूदेंगे, वह कभी कूदेगा ही नहीं। क्योंकि मिलने का कोई पता मिलने के पहले कैसे चल सकता है?

आज ही मुझे एक पत्र मिला है एक मित्र का। उन्होंने मुझे लिखा है--शांति नहीं है, आनंद नहीं है, जीवन में कोई अर्थ नहीं है। कहीं कोई परमात्मा है, ऐसी श्रद्धा भी नहीं आती। कहीं कोई शांति हो सकती है, कहीं कोई आनंद हो सकता है, ऐसी आस्था भी नहीं बनती। फिर भी आपसे चाहता हूं कि मुझे मार्ग दिखाएं। इस तरह के बहुत व्यक्तियों से मैं परिचित हूं। क्योंकि इनको अगर मार्ग भी दिखाया जाए तो उस पर भी आस्था नहीं आती, उस पर भी श्रद्धा नहीं आती, उसमें भी कोई अर्थ दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि सवाल मार्ग का नहीं है। मार्ग तो बहुत हैं और साफ हैं। लेकिन सवाल तो उस आंख का है, उस भरोसे का है। क्योंकि नार्ग दिखाई नहीं पड़ता है। मंजिल तो कभी दिखाई नहीं पड़ती है। मंजिल तो उसे दिखाई पड़ेगी जो मार्ग पर चलेगा। इन सबको, इन

सबको आकांक्षा यह है कि मार्ग पर चलने के पहले मंजिल दिखाई पड़ जाए भरोसा आ जाए कि है। यह असंभव है। और इसी असंभावना के कारण श्रद्धा का इतना मूल्य है।

श्रद्धा का अर्थ है कि रास्ता दिखाई पड़ता है, मंजिल दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन मैं चलता हूं। मैं चलता हूं। और ध्यान रहे, चलने से ही मंजिल निर्मित होती है और दिखाई पड़ती है। अगर श्रद्धा सघन हो तो शायद चलने की भी जरूरत नहीं है। श्रद्धा सघन हो तो मंजिल सामने ही प्रकट हो जाती है। श्रद्धा की सघनता पर निर्भर है। श्रद्धा विरल हो तो रास्ता बहुत लंबा हो जाता है। श्रद्धा बिल्कुल न हो तो रास्ता अंतहीन हो जाता है। अश्रद्धा हो, रास्ता सर्कुलर हो जाता है, गोल घूमने लगता है। फिर उसमें घूमते रहो, घूमते रहो और कहीं भी पहुंचाता हुआ मालूम नहीं पड़ता।

श्रद्धा से मंजिल क्यों सामने आ जाती होगी, इसे थोड़ा समझ लेना उचित है। तो ही सीढ़ी छूट सकती है और तब यह सूत्र आसान हो जाएगा। नहीं तो, कठिन पड़ेगा। असल में मंजिल अगर बाहर होती तो चलकर मिल जाती।

यहां एक खयाल ले लें।

कोई आदमी माउंट आबू रोड से माउंट आबू की तरफ चले, उसे श्रद्धा बिल्कुल न हो, तो भी माउंट आबू पहुंच जाएगा। श्रद्धा बिल्कुल न हो, बल्कि विधायक रूप से अश्रद्धा हो--वह यह भी कहे कि मैं किसी माउंट आबू को नहीं मानता, फिर भी अगर वह रास्ते पर चले तो माउंट आबू पहुंच जाएगा।

होश में न आया हो, बेहोशी में उठा कर लागा गया हो, तो भी पहुंच जाएगा। क्योंकि माउंट आबू पहुंचने वाले पर निर्भर नहीं है। लेकिन जिस यात्रा की हम चर्चा कर रहे हैं, वह सारी की सारी मंजिल पहुंचने वाले पर निर्भर है। वह बाहर अगर मंजिल होती तो श्रद्धा की कोई जरूरत न थी। वह मंजिल भीतर है।

अगर हम ठीक समझें तो ऐसा है कि जिस दिन हम मंजिल पर पहुंचेंगे तो हम स्वयं पर ही पहुंचेंगे, और कहीं पहुंचने वाले नहीं हैं। और अगर श्रद्धा न हो तो उसका अर्थ है कि हमें स्वयं पर ही भरोसा नहीं है। हम बाहर के कितने ही रास्तो पर चलते रहें। मंजिल आंतरिक घटना और वह मंजिल हमारे भाव से निर्मित होती है। जितना सघन होता है भाव, उतनी निर्मित होती है। उतनी निखरती है, उतनी प्रकट होती है।

वह जो प्रकट होता है, उसे हम ऐसा समझें कि वह एक कली है। कली अभी फूल नहीं है, लेकिन फूल हो सकती है। लेकिन जरूरी नहीं कि फूल हो ही। लकी भी रह सकती है। यह भी हो सकता है कि फूल हो जाए, यह भी हो सकता है कली रह कर ही गिर जाए। किस बात पर निर्भर करेगा कली का पूल होना? कली का फूल होना उस कली के नीचे अंतर में बहती हुई रसधारा पर निर्भर करेगा। कितने बलपूर्वक उस पौधे में रस की धार बह रही है, इस पर निर्भर करेगा। वह रसधारा अगर बल में बह रही है, तो कली खिल जाएगी और फूल बन जाएगी। और अगर वह रसधार क्षीण है, मुर्दा है, गतिमान नहीं है तो कली कली रह जाएगी और फूल नहीं बन पाएगी।

कली के भीतर फूल छिपा है, संभावना ही तरह। वास्तविकता की तरह नहीं, संभावना की तरह। एक स्वप्न है अभी तो, लेकिन साकार हो सकता है। लेकिन कली की अपनी सरधार पर निर्भर करेगा।

परमात्मा एक स्वप्न है मनुष्य की आत्मा में छिपा। अगर मनुष्य की आत्मा को हम कली समझें, तो परमात्मा फूल है। लेकिन आदमी की अपनी जीवन-रसधार पर ही निर्भर करेगा। उसी रसधार का नाम श्रद्धा है। कितने बलपूर्वक, कितने आग्रहपूर्वक, कितनी शक्ति से, कितनी त्वरा से अभीप्सा है भीतर? कितने जोर से पुकारा है हमने जीवन को? कितने जोर से हमने खींची है जीवन की प्राणवत्ता अपनी तरफ? कितने जोर से हम

संलग्न हुए हैं, कितने जोर से हम समर्पित हुए हैं? कितना एकाग्र भाव से हमने चेष्टा की है? इस सब पर निर्भर करेगा कि कली फूल बने कि न बने।

तो जो आदमी कहता है श्रद्धा तो नहीं है, रास्ता बता दें, वह ऐसी कली है जो कह रही है--रसधार तो नहीं है लेकिन रास्ता बताएं कि फूल कैसे हो जाऊं? रास्ता बताया जा सकता है, लेकिन व्यर्थ होगा। क्योंकि रास्ते का सवाल उतना नहीं है, जितना चलने वाले की आंतरिक शक्ति का है।

श्रद्धा का अर्थ इतना ही है कि मैंने इकट्ठी की अपने प्राणों की सारी शक्ति, दांव पर लगा दी। दांव कठिन है, क्योंकि कली को फूल का कुछ भी पता नहीं है। कली यह भी सोच सकती है कि यह दांव कहीं चूक न जाए। कहीं ऐसा न हो कि फूल भी न बन पाऊं और पास की संपदा थी, जो रसधार थी, वह भी चूक जाए। यह डर है, यह भय है। यह भय है। कली को सोचना पड़ेगा कि मैं दांव लगाऊं, कहीं ऐसा न हो कि जिस रसधार से मैं महीनों तक कली रह सकती थी वह रसधार भी चूक जाएं दांव में, फूल भी न बन पाएं और मेरी जिंदगी भी नष्ट हो जाए। यही भय आदमी को धार्मिक नहीं होने देता। डर लगा ही रहता है कि जो है, कहीं वह न छूट जाए। और जो नहीं है, वह मिले न मिले, क्या पता!

इस अज्ञात में छलांग लगाने की हिम्मत ही श्रद्धा है!

कली छलांग लगा होती है। फूल बन जाती है और फूल बन कर मिटने का मजा ही और है। और कली रह कर गिर जाना बड़ा दुखदायी है। फूल बन कर मिटने का मजा और है। क्योंकि पूरा फूल अगर खिल गया हो, तो मिटना एक सुख है। मिटना एक आनंद है। क्योंकि पूरा फूल बन जाने के बाद विश्राम है। स्वाभाविक है। लेकिन कली अगर गिर कर नष्ट हो जाए तो बड़ा पीड़ादायी है। क्योंकि अभी कुछ पूर्णता भी न हुई थी। अभी जो प्रकट होना था, वह प्रकट भी न हुआ था। अभी जो गीत उस कली को गाना था, वह गाया नहीं गया। अभी जो नृत्य उस कली को करना था, वह हो नहीं पाया। अभी चांद-तारों से बातें करनी थीं और हवाओं के साथ खेलना था। और भी जीवन का जो सब कुछ छिपा था, वह पि छिपा ही रह गया।

भारतीय पुनर्जन्म की कल्पना में यह कली का ही पुनरावर्तन है। जो अधूरा मरेगा, वह बार बार पैदा होगा। अधूरा मरने का मतलब है कि वह जो आकांक्षा रह गई पूरे होने की, वह पुनः जन्म लेगी। जब तक कि फूल न बन जाए कली, तब तक पुनर्जन्म होता रहेगा।

आवागमन से मुक्ति का एक ही अर्थ है। वह अर्थ वैसा नहीं है जैसा कि मंदिरों में बैठे हुए लोग सोचते रहते हैं कि हे परमात्मा, आवागमन से छुटकारा दिलाओ। यह परमात्मा के हाथ का काम नहीं है। कली की प्रार्थना नहीं सुनी जा सकती। क्योंकि कली ने अभी पात्रता ही पैदा नहीं की कि वह प्रार्थना कर सके। यह तो फूल की प्रार्थना है कि अब मैं पूरा हुआ हूं, अब मैं मिटना चाहता हूं। मिटना चाहना आखिरी आकांक्षा है और पूर्णता पर, परिपक्वता पर उपलब्ध होती है। कोई बुद्ध कह सकता है कि ठीक, अब बात समाप्त हुई! अब मैं समाप्त होना चाहता हूं।

हमारा मन तो कहता है, किसी तरह बचे रहे, किसी तरह बचे रहें, मिट न जाएं। यह कली का डर है। यह फूल की गरिमा है कि फूल कहे कि ठीक, अब मैं मिटना चाहता हूं। यह मिटना चाहने का मतलब यह है कि जीवन का सारा अर्थ पूरा हुआ। अभिप्राय निष्पन्न हुआ। जिसके लिए जीवन था, वह घटना घट गई। जान लिया, जी लिया, हो लिया। अब, अब मिटना एक विश्राम है। अब उस परम में लीन हो जाना एक गहन विराम है। आनंदपूर्ण है।

लेकिन कली का तो पुनर्जन्म होगा। क्योंकि कली अधूरी है। अधूरी है, अधूरी है, यही भाव आपने अनेक लोगों को मरते हुए देखा होगा। कभी कोई एकाध आदमी को मरते देखा है जिसके मरते वक्त श्वास-श्वास न कह रही हो--अधूरा हूं, अधूरा हूं, कुछ भी पूरा नहीं हुआ, कुछ भी पूरा नहीं हुआ, कुछ भी पूरा नहीं हुआ। हर आदमी यही कहता हुआ मरता दिखाई पड़ेगा--कुछ भी पूरा नहीं हुआ, सब अधूरा है। और मुझे उठाए ले रहे हो। तो सारे प्राण वापिस लौटने के लिए आतुर हैं। पूर्ण हुए बिना आवागमन से कोई छुटकारा नहीं।

यह जो पूर्ण होना है, यह कली की छलांग लगाने के साहस पर निर्भर है। दुस्साहस कहना चाहिए। क्योंकि कली को फूल होने का कोई भी पता नहीं है। लेकिन सिर्फ एक गहरे में आकांक्षा पूरे होने की जरूर है। इस भाव को अगर साधक संभाल पाए और तैयार हो जाए कूदने को। मतलब यह हुआ कि तैयारी है उसकी कि जो मैं हूं, मिट जाऊं, लेकिन जो मुझे होना चाहिए वह होने के लिए मैं सब कुछ दावं पर लगाने को तैयार हूं, तो वह इसी क्षमा भी पूर्ण हो सकता है। कली इस क्षण भी खिल सकती है। खिलने में कितनी देर लगेगी, यह उसकी रसधार पर ही निर्भर रेगा। रसधार अगर अभी पूर्ण शक्ति से बह जाए तो पंखुड़ियां अभी खिल जाएंगी। इसी क्षण! पंखुड़ियां फिर यह न कहेंगी कि अभी जो जल्दी थी। कभी भी जल्दी नहीं है। काफी देर पहले ही हो चुकी है। बहुत-बहुत बार हम कली होकर मिल चुके और मिट चुके हैं। तो देर तो पहले ही काफी हो चुकी है। जल्दी बिल्कुल नहीं है। कभी भी हो जाए तो यह काफी है। काफी समय के बाद हुई घटना है। लेकिन यह रसधार उपलब्ध होनी चाहिए। श्रद्धा आध्यात्मिक जीवन के खिलने में रसधार है।

इस श्रद्धा के आत्यंतिक छलांग में सीढ़ी पकड़ जाएगी, अगर श्रद्धा की कमी होगी। तो किसी तरह हम संसार छोड़ देंगे, फिर सीढ़ी पर डरते हुए खड़े हो जाएंगे। फिर सीढ़ी के पार तो अज्ञात है। उसमें उतरने में भय लगेगा। सीढ़ी ज्ञात मालूम पड़ेगी। सीढ़ी बनाई जाती ही इसलिए कि एक ज्ञात और अज्ञात के बीच में एक मध्यबिंदू बन जाए, जिससे यात्रा सुगम हो जाए। लेकिन वही मध्यबिंदु जकड़न भी बन सकता है। यह हम पर निर्भर करेगा कि हम उसका क्या उपयोग करते हैं। वह"जंपिंग बोर्ड" भी हो सकता है। हम पर निर्भर करेगा। और हम वहीं अपना बिस्तर-बोरिया रखकर निवास भी बना सकते हैं। वह हम पर निर्भर करेगा।

यह जो सूत्र है, बीच के जंपिंग बोर्ड के लिए है। छलांग लगाने के लिए स्थलमात्र है।

सूत्र में कहा है... प्रतीक शब्द है; जिसने इस उपनिषद को लिखा है वह शिव का भक्त है। शिव उसके लिए अनंत के प्रतीक हैं। ऐसे भी शिव बहुत अद्‌भुत प्रतीक हैं। मनुष्य ने बहुत प्रतीक खोजे हैं, लेकिन शिव जैसा अनूठा प्रतीक बहुत मुश्किल है। सारे जगत में परमात्मा के लिए जितने शब्द हमने खोजे हैं, उनमें शिव का कोई भी मुकाबला नहीं है।

उसके कारण हैं।

शिव का अर्थ--शुभ। अच्छा। लेकिन शिव के व्यक्तित्व में, जिसे हम बुरा कहें वह सब भी मौजूद है। जिसे हम बुरा कहें, वह सब मौजूद है। शिव का अर्थ ही है शुभ, लेकिन शिव को हमने विध्वंस का देवता माना है। विनाश का। उसी से अंत होगा जगत का। हैरानी की बात मालूम पड़ती है कि जो शुभ है, शिव है, वह विध्वंस का देवता होगा। लेकिन बड़ी कीमती बात है।

हम कभी यह मान ही न पाए कि इस जगत का अंत अशुभ से हो। इस जगत का अंत उस पूर्णता में हो जहां शुभ का सारा फूल खिल जाए। अंत जो हो, वह अंत ही न हो, पूर्णता भी हो। अंत जो हो, वह सिर्फ मृत्यु ही न हो बल्कि महाजीवन का अंतिम शिखर भी हो।

और हमारी शुभ क जो धारणा है, वह भी बड़ी अद्‌भुत है। दुनिया में जहां भी शुभ की धारणा की गई है, वह अशुभ के विपरीत है। इसलिए भारत को छोड़ कर सारे जगत में सभी धर्मों ने, जो भारत के बाहर पैदा हुए दो ईश्वर मानने की मजबूरी प्रकट की है। दो ईश्वर से मेरा मतलब है, एक को वे ईश्वर कहते हैं, एक को वे शैतान कहते हैं। बुराई का भी एक ईश्वर है। उसको अगल करना पड़ा है। भलाई का एक ईश्वर है, उसको अलग करना पड़ा है। और जब मैं कहता हूं कि दो ईश्वर, तो कई कारणों से कहता हूं।

अंग्रेजी में शब्द है, डेविल। वह संस्कृत के देव शब्द से ही बना है। वह भी देवता है। बुराई का देवता है। बुराई का देवता अलग निर्मित करना पड़ा है। क्योंकि भारत के बाहर कोई भी मनीषा इतनी हिम्मत की नहीं हो सकी कि बुराई और भलाई को एक ही व्यक्तित्व में निहित कर दें। यह बड़ा साहस का काम है। सोच ही नहीं पाते हैं। हम भी नहीं सोच पाते हैं। जब हम कहते हैं फलां आदमी महात्मा है, तो फिर हम सोच ही नहीं पाते हैं कि उसमें कुछ भी... जैसे क्रोध महात्मा कर सके, यह हम सोच ही नहीं सकते। लेकिन शिव क्रोध कर सकते हैं। और साधारण क्रोध नहीं, कि भस्म कर दें! और हिंदू-मन कहता है कि शिव से दयालु कोई भी नहीं है, बहुत भोले हैं। जरा भी कोई मना ले, तो किसी भी बात के लिए राजी हो जात हैं। ऐसा वरदान भी आदमी मांग सकता है कि खुद ही झंझट में पड़ें। तो यह आदमी अनूठा मालूम होता है। यह प्रतीक अनूठा मालूम होता है।

बुराई और भलाई को हमने कभी भी दो विपरीत चीजें नहीं माना है। क्योंकि विपरीत मानकर ही जगत दो खंड में बंट जाता है और द्वैत शुरू हो जाता है। और फिर अगर विपरीत है भलाई और बुराई, तो पिर भलाई क जीत सुनिश्चित नहीं है। बुराई भी जीत सकती है। अगर बुराई और भलाई के बीच संघर्ष है, तो फिर भलाई की जीत सुनिश्चित नहीं है। फिर कौन तय करेगा कि अंत में ईश्वर ही जीतेगा और शैतान नहीं जीत जाएगा? जहां तक रोज का सवाल है, शेतान जीतता हुआ दिखाई पड़ता है। क्या पक्का है कि अंततः भी शैतान नहीं जीतेगा? अगर दो शक्तियां हैं इस जगत में, तो आज तक का जो अनंत इतिहास है आदमी का, उसमें कोई भी ऐसा क्षण नहीं मालूम पड़ता जब बुराई न रही हो। बुराई और भलाई सदा ही संघर्षरत रही हैं।

तो अनंत इतिहास कहता है कि वे दोनों सदा ही लड़ती रही हैं। या तो ऐसा मालूम पड़ता है कि वे समान शक्तिशाली हैं। इसलिए कोई अंतिम जीत तय नहीं हो पाती है। कभी कोई जीतता लगता है, कभी कोई जीतता लगात है। फिर भी अगर गौर से हम देखें तो निन्यानबे मौके पर बुराई जीतती लगती है। एक मौके पर भलाई जीतती लगती है। तो ऐसा डर लगात है कि कहीं बुराई ज्यादा मजबूत तो नहीं है। जैसे ही हम बुराई और भलाई को बांट दें, खतरा शुरू हो जाता है। और इसमें फिर कोई अंत नहीं हो सकता। कोई अंत नहीं हो सकता कि कौन जीतेगा? और अगर यह निश्चित ही न हो कि अंततः शुभ जीतता है, तो शुभ की सारी चेष्टा व्यर्थ हो जाती है।

लेकिन भारत और ढंग से सोचता है। भारत बुराई को भलाई के विपरीत नहीं मानता। भारत बुराई को भलाई में आत्मसात कर लेता है। इसे हम ऐसा समझें, भारत क्रोध को अनिवार्य रूप से बुरा नहीं कहता। भारत कहता है कि क्रोध अगर शुभ के लिए हो तो शुभ हो जाता है। क्रोध अगर शुभ के लिए हो तो शुभ हो जाता है।

भारत कहता है कि शक्तियां सब तटस्थ हैं। विज्ञान अभी इस बात को अनुभव करता है कि शक्तियां सब तटस्थ हैं। शक्ति न शुभ होती है, न बुरा होती है। भारत कहता है क्रोध भी शक्ति है। एक ऊर्जा है, एक"एनर्जी" है। तो क्रोध भी शुभ हो सकता है, अगर शुभ की सेवा में हो। अशुभ हो सकता है, अगर अशुभ की सेवा में हो। लेकिन क्रोध अपने आप में न शुभ है, न अशुभ है। मेरे हाथ में एक तलवार है, वह न शुभ है और न अशुभ है। मैं किसी की गर्दन काट कर लूट भी सकता हूं; और लुटते की, गर्दन कटते आदमी की रक्षा भी कर सकता हूं।

तलवार अपने में तटस्थ है। भारत मानता है, सभी शक्तियां तटस्थ हैं। किसलिए उनका उपयोग होता है, इसपर सब कुछ निर्भर करेगा।

हम अशुभ को एक अलग देवता नहीं बनाते हैं, केवल शक्तियों का एक दुरुपयोग बताते हैं। शक्ति का दुरुपयोग किया जा सकता है। शक्ति का सदुपयोग किया जा सकता है। और सदुपयोग अंत में जीतेगा। क्योंकि दुरुपयोग करनेवाले को ही दुख लाता है। इसलिए अंततः दुरुपयोग जीत नहीं सकता। क्योंकि जिस चीज से मुझे ही दुख मिलता जाता हो, मैं कब तक उसे कर सकता हूं? कितना ही करता रहूं, अंततः मैं छूट ही जाऊंगा, क्योंकि दुख के साथ संबंध तय रखना असंभव है। जिस दिन मुझे पता चलेगा कि यह दख मैं ही निर्मित कर रहा हूं, उसी दिन मैं सदुपयोग में बदल दूंगा अपनी शक्ति को। अशुभ शुभ के विपरीत कोई शक्ति नहीं हैं। अशुभ और शुभ एक ही शक्ति के सदुपयोग और दुरुपयोग हैं। और वह शक्ति परमात्मा की है।

तो शिव के व्यक्तित्व में हमने समस्त शक्तियों को स्थापित किया है। अमृत है उनका जीवन। मृत्यूंजय हैं वह, लेकिन जहर उनके कंठ में है। इसलिए नीलकंठ हम उनको कहते हैं। उनके कंठ में जहर भरा हुआ है। जहर पी गए हैं। मृत्युंजय हैं, अमृत उनकी अवस्था है, मर वह सकते नहीं है, शाश्वत हैं और जहर पी गए हैं। शाश्वत जो है, वही जहर पी सकता है। जो मरणधर्मा है, वह जहर कैसे पिएगा?

और यह जहर तो सिर्फ प्रतीक है। शिव के व्यक्तित्व में जिस-जिस चीज को हम जहरीली कहें, वे सब उनके कंठ में हैं। कोई स्त्री उससे विवाह करने को राजी नहीं थी। कोई पिता राजी नहीं होता था। उमा का पिता भी बहुत परेशान हुआ था। पागल थी लड़की, ऐसे वर को खोज लाई, जो बेबूझ था! जिसके बाबत तय करना मुश्किल था कि वह क्या है? परिभाषा होनी कठिन थी। क्योंकि वह दोनों ही था। बुरे से बुरे उसके भीतर था। भले से भला उसके भीतर था। और जब बुरा भीतर होता है तो हमारी आंखें बुरे को देखती हैं, भले को नहीं देख पातीं। क्योंकि बुरे को हम खोजते रहते हैं। बुरे को हम खोजते रहते हैं। कहीं भी बुरा दिखाई पड़े तो हम तत्काल देखते हैं, भले को तो हम बामुश्किल देखते हैं। भला बहुत ही हम पर हमला न करे, माने ही न, किए ही चला जाए तब कहीं मजबूरी में हम कहते हैं--होगा, शायद होगा। लेकिन बुरे की हमारी तलाश होती है।

तो अगर लड़की के पिता को शिव में बुरा ही बुरा दिखाई पड़ा हो, तो कोई हैरानी की बात नहीं है। लेकिन भीतर जो श्रेष्ठतम, शुद्धतम शुभत्व है, वह भी था। और दोनों साथ थे, और दोनों इतने संतुलित थे कि वह जो व्यक्ति था, दोनों के पार हो गया था।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

जब बुराई और भलाई पूर्ण संतुलन में होती है तो संत पैदा होता है। संत भले आदमी का नाम नहीं है। भले आदमी का नाम सज्जन है। बुरे आदमी का नाम दुर्जन है। भलाई और बुराई को, दोनों को जो इस ढंग से आत्मसात कर ले कि वे दोनों संतुलित हो जाएं और एक-दूसरे को काट दें; बराबर मात्रा में हो जाएं और एक-दूसरे को काट दें, तो दोनों के पार जो व्यक्तित्व पैदा होता है, वह संत है। संत एक गहन संतुलन है।

इसलिए आप यह मत समझना कि संत में बुराई नहीं होती है। संत में बुराई और भलाई सम मात्रा में होती है। वह इतनी सम होती हैं कि दोनों एक-दूसरे से कट जाती हैं। ऋण और धन बराबर हो गए होते हैं। और संत उनके पार हो गया होता है। लेकिन संत उनमें से किसी का उपयोग कभी भी कर सकता है।

यह शिव जो है, संतत्व की आखिरी धारणा है। इस उपनिषद का ऋषि शिव का भक्त है। उसने शिव को प्रतीक माना है ध्यान का। उसने कहा है कि जिसे उमा का सहायक, जिसे उमा का प्रेमी, जिसे उमा का रक्षक, परमेश्वर कहा है; जिसे हमने नीलकंठ कहा है, जिसे हमने त्रिलोचन कहा है, इन सब नामों से जिसे हमने पुकारा

है। इसमें तीन नाम उपयोग किए हैं। एक तो उमा का सहायक या उमा का प्रेमी, या उपा मा पति, या उमा का आधार।

यह भी थोड़ा सोच लेने जैसा है। जैसे मैंने कहा, शुभ और अशुभ, वैसे ही शिव अकेले ही व्यक्ति हैं जिसमें स्त्री और पुरुष सम हो गए हैं। इसलिए हमने अर्धनारीश्वर की मूर्ति बनाई। वह बेजोड़ है सारे जगत में। कहीं भी ऐसी कोई मूति नहीं है किसी परमात्मा की कल्पना की, जहां स्त्री और पुरुष को हमने आधा-आधा अंग रखा हो। दुनिया के अधिकतम ईश्वर पुरुष हैं। कुछ आदिम जातियों के ईश्वर स्त्रैण हैं--काली माता है, या और। लेकिन आमतौर से अधिक ईश्वर पुरष हैं। यह दोनों ही बातें अधूरी हैं। क्योंकि अगर ईश्वर पुरुष है, तो स्त्री का व्यक्तित्व कभी भी पुरुष के समान नहीं हो सकता। वह हमेशा नंबर दो का व्यक्तित्व होगा।

इसलिए ईसाइयत ईश्वर को पुरुष मानती है तो स्त्री को सिर्फ आदमी की हड्डी से, पसली से बना हुआ मानती है। एक"सेकेंडरी" घटना है। एक द्वितीय कोटि की घटना है। जरूरत पड़ी अदम को, अकेले में उसका मन नहीं लगता था, तो एक खिलौने की तरह स्त्री उसकी हड्डी से निकाल कर बना दी गई। पर इससे ज्यादा इसका कोई मूल्य नहीं है। ईसाइयत के पास ईश्वर की स्त्रैण... स्त्रैण तत्त्व को भी ईश्वर में प्रवेश करने का कोई उपाय नहीं है। कोई उपाय नहीं है। ईश्वर के तीन रूप ईसाइयत ने माने हैं--गॉड दि फायर, गॉड दि सन एण्ड दि होली घोस्ट। ईश्वरः पिता, ईश्वरः पुत्र, और ईश्वरः पवित्र आत्मा। लेकिन तीनों में से कोई भी स्त्रैण नहीं हैं। सभी पुरुष हैं।

फिर ईश्वर को माननेवाले आदिम समाज भी हैं। लेकिन उनके पास पुरुष की कोई धारणा नहीं है। जिन समाजों में स्त्री की सत्ता थी उन्होंने ईश्वर को स्त्रैण बना लिया। और जिन समाजों मे पुरुष की सत्ता थी, उन्होंने ईश्वर को पुरुष बना लिया। ये सामाजिक दुर्घटनाएं हैं, इनसे ईश्वर का कोई संबंध नहीं है।

लेकिन शिव अकेला ही एक प्रतीक है, जिसमें हमने स्त्री और पुरुष को बराबर मात्रा दी है। आधा अंग पुरुष का आधा अंग स्त्री का। और मजे की बात है कि आधा अंग पुरष का, आधा अंग स्त्री का हो, तो फिर दोनों का संतुलन काट देता है और व्यक्तित्व दोनों के पार हो जाता है। यह वैज्ञानिक गणित है कि जहां भी दो विरोधी चीजें सम हो जाती हैं, तो व्यक्तित्व तत्काल तीसरा हो जाता है। वह पार हो जाता है, दोनों के। वह फिर वही नहीं रह जाता है।

तो पहली बात कही है कि उमासहायक। यह बहुत मजेदार बात है--उमा के सहायक। या उमा के प्रेमी, या उमा के मित्र, या उमा के पति। लेकिन दोनों को बराबर, दोनों को बराबर रखने की दृष्टि है। और दोनों बराबर हों, तो ही हम लैंगिक-भेद से ईश्वर को पार ले जाते हैं।

"नीलकंठ"। तो मैंने कहा कि जहर पी गए हैं। जहर पी गए हैं, तो जहर पी ही वह सकता है जिसे अमृत का आश्वासन इतना गहन हो कि जहर कुछ कर सकेगा यह प्रश्न और संदेह ही न उठे। मरने को सहज वही तैयार हो सकता है जिसे पता ही हो कि मरना होता ही नहीं।

आज एक मित्र संन्यास लेने आए थे। विचाराशील हैं। पढ़े-लिखे हैं। तो उन्होंने कहा कि इसीलिए संन्यास नहीं ले रहा हूं कि अगर संन्यास लूं और आपको स्वीकार कर लूं तो फिर मेरा व्यक्तित्व खो जाएगा। तो मैंने उनसे कहा कि अगर तुम्हें व्यक्तित्व में इतना शक है अपने, तो वह होगा ही नहीं। इतना शक है कि संन्यास लेने से व्यक्तित्व खो जाएगा, तो वह होगा ही नहीं। अगर तुममें व्यक्तित्व हो, तो तुम निर्भय होकर संन्यास ले सकते हो। सच तो यही है कि जब भी कोई व्यक्ति किसी के चरणों में जाता है, तो वही जा सकता है चरणों में जिसे

इतना भरोसा हो कि चरणों में छोड़कर भी कुछ भी तो खोया नहीं। यह अपने भरोसे से! व्यक्तित्व का इतना भरोसा हो तो समर्पण भी हो सकता है।

शिव जहर पी गए हैं, क्योंकि अमृत का ऐसा सघन भरोसा है। वह जहर कंठ में ही अटक कर रह गया है। इसके बड़े प्रतीकात्मक अर्थ हैं। इसे थोड़ा खयाल में लेना चाहिए।

वह जहर कंठ में अटक कर रह गया। कंठ हमारे व्यक्तित्व की पहली परिधि है। समझें कि कंठ हमारे व्यक्तित्व का द्वार है। उसके बाद ही हमारे व्यक्तित्व का महल है। वह द्वार से भीतर नहीं जा सका है जहर। लेकिन अगर हम जहर पी लें, तो हम फौरन मर जाएंगे।

मर जाने का कारण यह है कि कंठ के पार हमारा कोई व्यक्तित्व ही नहीं है। कंठ ही हमारा व्यक्तित्व है। हम अगर ठीक से समझें तो हम जो बोलते हैं, सोचते हैं, कहते हैं, चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, मानते हैं, वह सब हमारे कंठ तक है। कंठ से नीचे कुछ भी नहीं है।

एक आदमी कह रहा है, मैं आस्तिक हूं। यह कंठ के नीचे की आवाज नहीं है। एक आदमी कह रहा है, मैं भगवान को मानता हूं, यह कंठ से नीचे की आवाज नहीं है। यह कंठ के बिल्कुल ऊपर है। कंठ को काटकर कर दो अलग, नीचे इस आवाज का कोई पता नहीं चलेगा। यह सिर्फ कंठ से उठ रहा है। हमारा व्यक्तित्व कंठ-केंद्रित है।

आदमी ने कंठ का बहुत विकास किया। वाणी का, भाषा का, विचार का। सारा विचार कंठ पर निर्भर है। और इसलिए आदमी की जिंदगी कंठ के बाहर ही और कंठ के ऊपर ही चलती है। उसके नीचे का सब लोक अंधकार हो गया। कंठ के नीचे के सब अंधेरे में छुप गए।

शिव ने जहर पीआ तो कंठ पर रुक गया, क्योंकि कंठ तक जो भी है वह मरणधर्मा है।

इसे ठीक से समझ लें।

कंठ तक जो भी है वह मरणधर्मा है। शब्द और भाषा और वाणी और इस सबका कोई मूल्य नहीं है। ये सब मृत्यु की सीमा के भीतर हैं। यहां तक तो जहर काम कर जाएगा। अगर कंठ के पार भी आपके पास कुछ हो तो ही आप अमृतधर्मा हो सकते हैं। शिव का जहर रुक गया कंठ में, क्येंकि वहां तक तो मृत्यु का वास है। वहां तक जा सकता है जहर, उसके पार अमृत है। उसके पार जहर नहीं जा सकता है।

शिव का कंठ नीला पड़ गया है जहर के कारण। इसका एक और अर्थ भी है। वह भी हम खयाल में ले लें। शिव के कंठ में जहर जाने के बाद, शिव के कंठ के नीले पड़ जीने के बाद वे परम मौनी ही हो गए। वे बोलते ही नहीं। वे चुप ही हो गए। उनकी चुप्पी बहुत अदभुत है और कई आयामों में फैली हुई है।

पार्वती की मृत्यु हो गई। शिव मान न पाए कि पार्वती भी मर सकती है। न मानने का कारण था। जिस पार्वती को वह जानते थे उसके मरने का कोई सवाल नहीं था। लेकिन जिस देह में पार्वती थी, वह तो मर ही गई। तो बड़ी मीठी कथा है। ऐसी मीठी कथा दुनिया के इतिहास में दूसरी नहीं है। शिव पार्वती की लाश को कंधे पर रखकर पागल की तरह पृथ्वी पर घूमते हैं। लाश को कंधे पर रखकर घूमते हैं। ये जितने तीर्थ हैं भारत में, कथा यह है कि जहां-जहां पार्वती का एक-एक अंग गिर गया, वहां-वहां एक तीर्थ बन गया। उस लाश के टुकड़े गिरते जाते हैं, वह लाश सड़ती जाती है, और जगह-जगह जहां-जहां- एक-एक अंग गिरता जाता है। वहां-वहां एक-एक तीर्थ निर्मित होता जाता है।

और शिव घूमते हैं। बोलते नहीं कुछ, कहते नहीं कुछ, सिर्फ रोते हैं, उनकी आंख से आंसू टपकते जाते हैं। कंठ तो अवरुद्ध है। बोलने का कोई उपाय नहीं रहा। अब हृदय ही बोल सकता है। तो सिर्फ उनकी आंख से आंसू टपकते हैं। और कंधे पर लाश लिए वह घूम रहे हैं। और जगह-जगह खबर हो गई कि शिव पागल हो गए हैं। यह

भी कोई बात है! ईश्वर ऐसा करें कि अपने... अपने प्रिय की लाश कोलेकर ऐसा घूमें। तो बड़ी कठिनाई होगी हमें। क्योंकि ईश्वर से हमारा अर्थ यह होता है--जो बिल्कुल वीतराग है। जिसमें कोई राग नहीं है। उसे क्या प्रयोजन है। प्रेयसी उसकी मर जाए तो मर जाए, न मरे तो न मरे। जिए तो ठीक, न जिए तो ठीक। उसे क्या प्रयोजन। यह शिव का लेकर घूमना विचित्र मालूम पड़ता है। लेकिन शिव को समझना हो तो हमें कुछ और तरह से सोचना पड़े।

शिव पार्वती के बीच इतना भी भेद नहीं हैं कि पार्वती को दूसरा कहा जा सके। तो विराग भी क्या हो और वीतराग भी क्या हो! राग का भी कोई सवाल नहीं है। यह पार्वती और शिव के बीच ऐसा तादात्म्य है, ऐसी एकता है, यह शिव स्त्री और पुरुष का ऐसा जोड़ है कि हमको लगता है कि पार्वती का शरीर लेकर घूम रहे हैं। उनका घूमना करीब-करीब वैसा ही है जैसा मेरा एक हाथ बीमार हो जाए, गल जाए और इसको लेकर मैं घूमूं। क्या करूंगा और? इसमें कोई फासला ही नहीं है। इसमें कोई फासला ही नहीं है।

और इसलिए तो यह कथा मीठी है कि पार्वती के अंग जहां-जहां गिरे, इस शिव के प्रेम और शिव की आत्मीयता की इतनी गहन छाया उनमें है कि उसके सड़े हुए अंगों के स्थानों पर धर्मतीर्थ निर्मित हुए। ये धर्मतीर्थ निर्मित होने का अर्थ ही केवल इतना है। इन्हें हमें प्रेमतीर्थ कहना चाहिए। इतने गहन प्रेम में और ईश्वर की स्थिति का व्यक्ति, बड़े दूर के छोर हैं। क्योंकि ईश्वर से हमारा मतलब ही यह होता है कि जो सब राग इत्यादि से बिल्कुल दूर खड़े होकर बैठा है।

इसलिए जैन हैं, या और कोई जो वैराग्य को बहुत मूल्य देते हैं, वे सोच नहीं सकते कि शिव को ईश्वरत्व की धारणा मानना कैसे ठीक है; वे यह भी नहीं सोच पाते कि राम को कैसे ईश्वर माना जाए, जब सीता उनके बगल में खड़ी है! क्योंकि यह सीता का बगल में खड़ा होना सब गड़बड़ कर देता है। यह फिर जैन की समझ के बाहर हो जाएगा।

उसका कारण है।

क्योंकि उसने जो प्रतीक चुना है ईश्वर के लिए वह परम वैराग्य का है। लेकिन वह अधूरा है। क्योंकि तब संसार और ईश्वर विपरीत हो जाते हैं। संसार हो जाता है राग और ईश्वर हार जाता है वैराग्य। शिव राग और वैराग्य दोनों का संयुक्त जोड़ है। और तब एक अर्थों में जीवन के समस्त द्वैत को संग्रहीत कर लेते हैं।

तीसरे शब्द का प्रयोग किया है--"त्रिलोचन।" तीन आंख वाले। दो आंखें हम सबको हैं। तीसरी भी हम सब को है, उसका हमें कुछ पता नहीं है। और जब तक तीसरी भी हमारी सक्रिय न हो जाए और तीसरी आंख भी हमारी देखने न लगे, तब तक हम, तब तक हम परमात्म-सत्ता का कोई भी अनुभव नहीं कर सकते हैं। इसलिए उस तीसरी आंख का एक नाम शिवनेत्र भी है।

यह भी थोड़ा समझ लें।

क्योंकि सब द्वैत के भीतर ही तीसरे को खोजने की तलाश है। आपकी दो आंखें द्वैत की सूचक हैं। इन दोनों आंखों के बीच में, ठीक संतुलित मध्य में तीसरी आंख की धारणा है। इन दोनों आंखों के पार है। वह फिर दोनों आंखें उस आंख के मुकाबले संतुलित हो जाती हैं। दायां-बायां दोनों खो जाता है। अंधेरा, प्रकाश दोनों खो जाता है। दो आंखें समस्त द्वैत की प्रतीक हैं। ये दोनों खो जाती है। और फिर एक आंख ही देखनेवाली रह जाती है। उस एक आंख से जो देखा जाता है, वह अद्वैत है; और दो आंख से जो देखा जाता है, वह द्वैत है।

दो आंख से जो हम देखेंगे वह संसार है। और वहां विभाजन होगा। और उस एक आंख से जो हम देखेंगे वही सत्य है, और अविभाज्य है। इसलिए शिव का तीसरा नाम है--त्रिलोचन। उनकी तीसरी आंख पूर्ण सक्रिय है। और तीसरी आंख पूर्ण सक्रिय होते ही कोई भी व्यक्ति परमात्म-सत्ता से सीधा संबंधित हो जाता है।

"इन तीन नामों से"... और-और अनेक नामों से जिसे पुकारा गया है... "जो इस समस्त चराचर का स्वामी और शांतिस्वरूप है।" यह सब विपरीत भी है। क्योंकि स्वामी किसी भी चीज का हो, शांतिस्वरूप नहीं हो सकता है। जैसे ही आप किसी चीज के स्वामी बने कि अशांति शुरू हुई। स्वामी बनना ही मत, नहीं तो शांति शुरू होगी। क्योंकि स्वामी का मतलब यही है कि कोई दास बना लिया गया। और जो दास बन गया, वह आपसे बदला लेगा। स्वतंत्रता उसकी कुंठा में पड़ गई। वह आपसे बदला लेगा।

पतियों ने स्वामी बनकर जैसे कष्ट उठाए हैं, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है! क्योंकि जिसके वे स्वामी बने हैं, वह चौबीस घंटे उसको बताता ही रहेगा कि स्वामी असली कौन है, ठीक से समझ लो! तो पत्नी को चौबीस घंटे सिद्ध करने में लगा रहना पड़ता है कि स्वामी कौन है। पत्र वगैरह में वह लिखती है कि स्वामी, आपकी दासी, लेकिन चौबीस घंटे बताती है कि स्वामी कौन है! एक संघर्ष अनिवार्य है। जहां भी स्वामित्व है, वहां अशांति होगी ही। स्वामित्व अशांति की शुरुआत है। जब तक पति स्वामी के पद से नीचे नहीं उतरता, तब तक उसके और पत्नी के बीच कोई मैत्री संभी नहीं है।

लेकिन इसमें, सूत्र में कहा है कि स्वामी सारे जगत का, सबका और शांतिस्वरूप। तो इसका अर्थ ही हुआ कि यह स्वामित्व किसी और गुणधर्म का होगा। यह स्वामित्व दावेदार नहीं है। परमात्मा ने कभी आकर आपसे नहीं कहा है कि मैं स्वामी हूं सबका। हां, अनेक-अनेक लोगों ने जरूर उसके चरणों में जाकर कहा है कि मैं दास हूं, तुम स्वामी हो। यह वक्तव्य दूसरे की तरफ से आया है। यह वक्तव्य परमात्मा की तरफ से नहीं आया है। परमात्मा की तरफ से स्वामित्व का कोई दावा नहीं है। इसलिए परमात्मा शांत है। अन्यथा परमात्मा की गति वैसी हो जैसी कभी किसी पोलिटिशियन की भी नहीं हुई है। अगर वह दावा करे कि मैं स्वामी हूं, इस सारे चराचर का, तो यह सारा चराचर जगत उसको इसका मजा चखा दे! स्वामी तुम कैसे हो?

परमात्मा के स्वामित्व की उदघोषणा नहीं है। इसलिए कोई चिल्ला कर भी कहता रहे कि तुम हो ही नहीं, तो भी उसकी तरफ से कोई उत्तर नहीं आता। क्योंकि उतना उत्तर भी स्वामित्व का दावा हो जाएगा। उतना उत्तर भी स्वामित्व का दावा हो जाएगा। निरुत्तर, परमात्मा मौन है।

उसके स्वामित्व का अनुभव उन्हें होता है जो उसके दास बन जाते हैं। यह दास बन जाना बहुत अलग है! दास बनाए जाते है, दास बनते नहीं हैं। दुनिया में कोई किसी का दास बनता नहीं है। दास बनाए जाते हैं। और जब दास बनाए जाते हैं, तो कोई मालिक की घोषणा करता है। और तब अशांति स्वाभाविक हो जाती है। लेकिन परमात्मा की खोज में जानेवाला व्यक्ति अपने हाथों दास बन जाता है--उसका, जो कभी मालिक बनने की बात ही नहीं उठाता।

यह जो दासता है स्वेच्छा से वरण की गई, यह बहुत मजेदार है। यह मजेदार दो कारणों से है। एक तो जब कोई स्वेच्छा से, अपने ही संकल्प से परमात्मा के चरणों का दास हो जाता है, तो वह परमात्मा को ही मालिक नहीं बनाता, वह अपना भी मालिक हो जाता है। क्योंकि अपने ही हाथ से किसी का दास बन जाना बड़ी से बड़ी मालकियत है। बड़ी से बड़ी शक्ति का सबूत है। क्योंकि चित्त राजी नहीं होता दास बनने को। बिल्कुल राजी नहीं होता। प्राण गवाही नहीं देते हैं। सब रग-रग, रोआं-रोआं इनकार करेगा। लेकिन कोई आदमी, और ऐसी अवस्था में जब कि परमात्मा आता नहीं कहने कि दास बनो, मिलता नहीं, मालकियत की

घोषणा नहीं करता, कोई आदमी अपने ही हाथ जाता है, उसके अज्ञात चरणों में रख देता है सिर और कहता है कि मैं दास हुआ, तुम मेरे स्वामी हो। यह आदमी उसको तो मालिक बना ही रहा है, आदमी यह भी कह रहा है कि मैं अपना मालिक हूं। अपने मन का, अपने संकल्प का, अपनी वासना का, अपनी आकंक्षा का, अपनी कामना का, अपनी आत्मा का मालिक हूं। चाहूं तो यह मालकियत मेरी इतनी बड़ी है कि मैं दास भी बन सकता हूं। बिना बनाए।

जो बनाए जाने से बनता है, उसकी आत्मा कमजोर होती है। जो बिना बनाए बन जाता है, उसकी आत्मा सबल हो जाती है। अगर मैं आपको किसी तरह गुलाम बना लूं तो मैं आपकी आत्मा को कमजोर करूंगा। अगर आप बनने को राजी हौ गए जबरदस्ती में, तो आपकी आत्मा टूट जाएगी। नष्ट हो जाएगी। ठीक इसके विपरीत अगर आप गुलाम अपने को राजी हो जाएं, बिना किसी बनाने वाले के, तो आपकी आत्मा बलशाली हो जाएगी।

मुझे खयाल आता है--निरंतर मैं कहता रहता हूं--डायोजनीज घूमता था एक जंगल में। कुछ लोगों ने उसे पकड़ लिया। यह बहुत अदभुत आदमी था। यूनान में महावीर के मुकाबले यह अकेला आदमी हुआ, नग्न ही रहता था। बड़ा सुंदर व्यक्तित्व था उसका। बड़ा बलशाली, गरिमावान। कुछ लोग गुलामों के बाजार की तरफ गुलाम बेचने जा रहे थे। इसको जंगल में अकेला देख कर उन्होंने सोचा कि अगर फंदे में फंस जाए तो अच्छे दाम मिल सकते हैं। यह बेचा जा सकता है बाजार में। लेकिन हिम्मत, उसको आठ आदमी भी पकड़ पाएं तो मुश्किल मालूम पड़ता है। बहुत बलशाली है, बहुत गरिमावान है, आत्म-प्रतिष्ठा!

उनकों चिंता, मसगुले में पड़े देखकर डायोजनीज ने कहा कि मालूम होता है तुम किसी चिंता में पड़े हो। अक्सर लोग, मुझसे पूछने आते हैं। किन्हीं की कोई समस्या होती है तो मैं हल कर देता हूं। अगर तुम्हारी कोई समस्या हो तो मुझे बताओ। उन्होंने कहा बड़ी मुश्किल हुई! समस्या कुछ ऐसी है कि कैसे बताएं? डायोजनीज ने कहा तुम बेफिक्री से बताओ। तो उन्होंने कहा मामला यह है, हम सोच रहे हैं कि तुम्हें गुलाम कैसे बना लें? और जंजीरों में बांधकर तुम्हें हम बजार में ले जाकर बेचना चाहते हैं। अच्छे दाम मिल जाएंगे।

डायोजनीज ने कहा कि नेक इरादा है, और इसमें अड़चन कुछ भी नहीं है। डाजोजनीज उठकर खड़ा हो गया। यह लोग घबड़ाए। यह आदमी खतरनाक मालूम पड़ता है। डायोजनीज ने उनका झोला निकाला, उसमें से जंजीरे निकालीं, हाथ में जंजीरें बांधीं, जंजीरों की लगाम उनके हाथ में दे दी और कहा कि रास्ता कौन सा है, चलो। पर उन्होंने कहा, तुम यह क्या कर रहे हो? डायोजनीज ने कहा हम अपने मालिक हैं। हम गुलाम भी हो सकते हैं। हम अपने मालिक हैं। कोई हमें इस दुनिया में गुलाम नहीं बना सकता। लेकिन हम चाहें तो बन सकते हैं, कोई हमें रोक नहीं सकता। अब तुम हमें रोक न पाओगे। अब तुम्हें हमें ले चलना ही पड़ेगा। अब हम बाजार में बिकेंगे ही।

बड़े डरते हुए, पहली दफा ऐसा हुआ कि मालिक पीछे चलने लगा और गुलाम आगे चलने लगा। और वह इतनी तेजी से चलता था--बहुत स्वस्थ आदमी था--कि पसीने-पसीने लथपथ हो गए, उसके साथ भागना पड़ा करीब-करीब उन्हें। और कई बार उन्होंने कहा कि डायोजनीज, जरा धीरे भी चलो। डायोजनीज ने कहा, हम अपने मालिक हैं, और हम किसी की सुनते नहीं है।

बाजार में पहुंच गए, भीड़ इकट्ठी हो गई। उन लोगों की इतनी हिम्मत न पड़े किसी से कहने की कि हम एक गुलाम को पकड़ लाए हैं। बल्कि वह ऐसा मालूम पड़ा कि ये उसके कुछ सेवक वगैरह हैं। यह क्या मामला है! डायोजनीज ने कहा, पागलो, घोषणा करो! बाजार उठने के करीब है। सांझ हो गई है, डायोजनीज तख्ते पर

उठकर खड़ा हो गया चढ़कर, जिसपर गुलाम नीलाम किए जा रहे थे, और डायोजनीज ने चिल्ला कर जो बात कही, वही कहने को मैंने यह कहानी कही है।

उसने चिल्लाकर कहा कि गुलामो, सुनो! एक मालिक आज बाजार में बिकने आया है।

यह जो मालकियत है, यह कुछ, कुछ और ही आयाम है चेतना का। परमात्मा के चरणों में जो अपने हाथ से गुलाम बन जाता है, उसकी मालकियत का हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन परमात्मा सबका स्वामी और शांतिस्वरूप है। उसके स्वामित्व में कोई अशांति नहीं है, क्योंकि कोई दावा नहीं है।

"समस्त भूतों का मूल कारण और साक्ष है।" सभी भूत उससे निष्पन्न होते है, प्रकट होते हैं, उसमें लीन होते हैं। और इन सबके जीवन में जो भी घटित होता है, वह उसका देखनेवाला भी है। वह उसका साक्षी भी है, इसे थोड़ा खयाल में लेना उचित होगा, क्योंकि एक मौलिक धारणा है।

पश्चिम के धर्म कहते हैं कि परमात्मा नियंता है। कंट्रोलर है। पूरब का धर्म कहता है, परमात्मा साक्षी है, विटनेस है। क्योंकि परमात्मा अगर नियंता है तो उसे प्रतिपल अपनी मालकियत की घोषणा करनी पड़ेगी। अगर वह नियंता है तो उसे घड़ी-घड़ी हिसाब रखना पड़ेगा कि तुम क्या कर रहे हो? यह मत करो। इसलिए हम यहूदी ईश्वर की भाषा सुनें, हमें बहुत कठोर मालूम पड़ेगी--कि मैं जला दूंगा, मैं आग लगा दूंगा, मैं मिटा डालूंगा। अगर तुमने ऐसा किया तो नर्कों में सड़ाऊंगा। इस तरह की भाषा यहूदी ईश्वर के मुंह में डाली गई है। क्योंकि वह नियंता है। कहता है, तुमने अगर ऐसा किया है, तो मैं उसका बदला तुम्हें यह चुकाऊंगा।

लेकिन ऐसी भाषा भारतीयों ने कभी ईश्वर के मुंह में डालने की कल्पना भी नहीं की है। क्योंकि बेहूदी है। और अगर नियंता मानते हैं, तो फिर इस तरह की भाषा उसके मुंह में रखनी पड़ेगी। अगर नियंता मानते हैं, तो फिर चाहे कितने भद्र शब्दों में रखें, यह भाषा उसके मुंह में रखनी पड़ेगी। फिर वह घड़ी-घड़ी हर चीज में कहेगा--यह करो और यह मत करो। और जो ऐसा करेगा, उसे यह मिलेगा, और जो ऐसा नहीं करेगा, वह दंड पाएगा। वह चौबीस घंटे, ईश्वर जो है, वह एक पोलिस फौज हो जाएगा। एक नियंत्रक शक्ति हो जाएगी।

जो केवल साक्षी है, वह केवल देखता है तुम क्या कर रहे हो। वह इतना भी नहीं कहता कि यह मत करो। वह सिर्फ देखता है। और उसका सिर्फ देखना काफी नहीं है तो कहना क्या है? कहना भी क्या करेगा? पर साक्षी उसे कहने का बहुत गहरा कारण है। और वह गहरा कारण साधना से जुड़ा है। अगर आप भी अपने जीवन के नियंता न रहकर साक्षी हो जाएं, तो आप ईश्वरत्त्व को उपलब्ध होने शुरू हो जाएंगे।

हम सब अपने जीवन के नियंता हैं। यह बुरा विचार नहीं आना चाहिए, यह अच्छा विचार आना चाहिए; यह करना चाहिए, यह नहीं करना चाहिए; हम नियंता हैं। हम अपनी छोटी-छोटी दुनिया के ईश्वर हैं। नियंता, ईश्वर। कंट्रोलर। सो बड़ा दुख हम पाते हैं। कुछ नियंत्रण तो कर नहीं पाते हैं, सिर्फ पीड़ा पाते हैं। यह नहीं होना चाहिए, यह होना चाहिए--और जो नहीं होना चाहिए वह होकर रहता है। और जो नहीं होना चाहिए वह होता है। रोज-रोज टूटते हैं। और जो नियंता, जो अहंकार है भीतर, यह सिर्फ पीड़ा की एक लंबी कथा हो जाती है।

नहीं, अपनी-अपनी छोटी दुनिया में एक-एक आदमी भी अगर साक्षी हो जाए वह सिर्फ जाने कि ऐसा हो रहा है, रोके न, बाधा न डाले, अच्छे-बुरे का हिसाब न करे, सिर्फ देखता रहे, अगर बिल्कुल निष्पक्ष हो यह दर्शन, तो बुरा भी गिर जाता है और भला भी गिर जाता है। इस निरीक्षण के समक्ष न बुरा दिखता है, न भला दिखता है। दोनों गिर जाते हैं। इस निरीक्षण की साक्षी की क्षमता व्यक्ति में पैदा हो जाए तो ही उसे पता चलता है कि इस विराट विश्व के भीतर परमात्मा किस अवस्था में होगा। वह साक्षी की अवस्था में होगा।

छोटा-छोटा परमात्मा हमारे भीतर है। छोटी-छोटी दुनिया हमारे चारों तरफ है। उसमें हम दो तरह का व्यवहार कर सकते हैं। नियंता का या साक्षी का। ईश्वर को साक्षी कहने से प्रयोजन है कि हम भी अपनी-अपनी छोटी दुनिया में साक्षी हो जाएं तो हम ईश्वर हो जात हैं। और एक बार हमें साक्षी का पता चल जाए तो हमें पता चलता है कि ईश्वर की शक्ति उसके साक्षी होने की शक्ति है।

"अविद्या से दूर जो है, मुनिजन उसका ध्यान करते है।" ऐसी ईश्वर की धारणा का जो साक्षी है, नियंता नहीं, जो शुभ-अशुभ दोनों का संतुलन होकर दोनों के अतीत हो गया; जो न अच्छा है, न बुरा, दोनों के पार है; जो द्वैत में नहीं देखता, दो आंखों से नहीं देखता, एक तीसरी आंख से जीता और देखता है, एक अद्वैत की दृष्टि जहां एकमात्र अनुभव रह गई है, ऐसे ईश्वर की धारणा, ऐसे ईश्वर का ध्यान, ऐसे ईश्वर में समाधि मुनिजन करते हैं।

तो अगर ईश्वर की धारणा की बनानी हो--बिना धारणा बनाए चल जाए तो बहुत शुभ--अगर धारणा ही बनानी हो तो फिर बहुत सोचकर, बहुत वैज्ञानिक धारणा बनानी चाहिए। और यह, यह जो कहा गया है, बहुत सोचकर, बहुत वैज्ञानिक है। और इससे छलांग लगाने में कठिनाई नहीं पड़ेगी। क्योंकि साक्षी में छलांग का सूत्र छिपा हुआ है। जिस चीज के भी हम साक्षी हो जाएं उससे हमारा तादात्म्य निर्मित नहीं हो पाता। उसके साथ हम एक नहीं हो पाते। उससे हम दूर बने रहते हैं।

अगर यह ईश्वर की धारणा का भी सहारा लें और इसके भी साक्षी बने रहें, तो शीघ्र ही इस धारणा के भी पार उठ जाने में अड़चन न आएगी। सीढ़ी छूट जाएगी और संसार से हम उस दूसरे संसार में छलांग लगा लेंगे, जिसे ब्रह्म कहें, ईश्र कहें, मोक्ष कहें, निर्वाण कहें--या जो भी कहना चाहें।

आज के लिए इतना ही।

अब हम ध्यान की तैयारी करें।

आठवां प्रवचन

सभी नाम इशारे अनाम की ओर

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्र सोऽक्षर परमः विराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽ.ग्नि स चन्द्रमाः।। 8।।
स एव यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये।। 9।।
सर्व भूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
सम्पश्यन ब्रह्म परमं यानि नान्येन हेतुना।। 10।।

उसी को ब्रह्मा, शिव, इंद्र, अक्षर ब्रह्म, परम विराट, विष्णु, प्राण, काल-अग्नि व चंद्रमा कहते हैं।। 8।।

वह व्यक्ति जन्म-मृत्यु के चक्कर से छूट जाता है, जो इस तत्व को समझ लेता है कि जो पहले हो चुका है, अथवा आगे होगा, वह सब वही है। इसको छोड़कर मोक्ष का अन्य कोई रास्ता नहीं है।। 9।।

वह मनुष्य परमात्मा को पा लेता है, जो आत्मा को समस्त भूतों में और समस्त भूतों को आत्मा में व्याप्त देखता है। इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय नहीं है।। 10।।

उस परम रहस्य के नाम हैं अनेक; क्योंकि मूलतः, वस्तुतः उसका कोई नाम नहीं है। नाम के संबंध में सबसे पहले थोड़ी बातें समझ लें।

प्यास है मनुष्य के मन में गहरी, प्रार्थना भी उठती है, लेकिन उस अनाम को पुकारे कैसे? रोना भी हो उसके चरणों में तो कहां उसके चरण खोंजें? प्राणों में गूंज उठती भी हो उसके लिए, किस दिशा में जाए वह गूंज? पैर दौड़ना भी चाहते हों उसकी और, कहां है उसका मंदिर? कोई उसका पता-ठिकाना नहीं, कोई उसकी राह नहीं, कोई उसकी दिशा नहीं। क्योंकि सभी दिशाएं उसकी हैं, सभी राहें उसकी हैं। और इंच-इंच उसका मंदिर है।

आदमी की बड़ी कठिनाई है। क्योंकि आदमी दिशा में ही चल सकता है, अदिशा में आदमी चलेगा कैसे? और आदमी राह पर ही चल सकता है। सभी राह जिसकी हो, या कोई राहें जिसकी न हों, वहां चलना उसे असंभव हो जाता है। और आदमी जब भी पुकारेगा तो उसे नाम चाहिए। स्मरण के लिए ही सही, उसे नाम चाहिए।

लेकिन परमात्मा का कोई नाम नहीं है। परमात्मा की तो बात दूर, इस जगत में किसी चीज का भी कोई नाम नहीं है। हम कहते हैं, हम उपयोग करते हैं, वह उपयोग भी जरूरी है। लेकिन उपयोग में खतरा भी है। क्योंकि नाम का इतना उपयोग होता है कि धीरे-धीरे वस्तु जो अनाम थी, वह गौण हो जाती है और नाम महत्वपूर्ण हो जाता है।

एक बच्चा पैदा होता है, कोई नाम लेकर आता नहीं। कोरा कागज होता है। लेकिन इस विराट जगत में उसके ऊपर कोई नाम चिपकाना ही पड़ेगा, नहीं तो उसे बुलाना भी मुश्किल हो जाए। उससे बात करनी असंभव हो जाएगी। एक झूठा नाम उस पर लगा देंगे तो सब आसान हो जाएगा। उसे बुला सकेंगे, बात कर

सकेंगे, इंगित इशारा कर सकेंगे। उससे कुछ कह सकेंगे। संवाद संभव हो जाएगा, संबंध निर्मित होगा। यह बड़े मजे की बात है कि वास्तविक बच्चे से संबंध निर्मित होना मुश्किल है, लेकिन एक नाम जो कि वास्तविक नहीं है, सब संबंधों का आधार बन जाएगा।

सब नाम आदमी के दिए हुए है, वस्तुएं अनाम हैं। अस्तित्व अनाम है। खतरा शुरू हो गया उपयोगिता के साथ ही। बिना नाम के बच्चे का जीना मुश्किल होगा। और नाम के साथ जीते-जीते धीरे-धीरे यह भूल ही जाएगा वह कि मैं बिना नाम के पैदा हुआ था और बिना नाम के ही मरूंगा। और चाहे कितना ही नाम मेरे ऊपर लिख दिया गया हो, मेरे भीतर नाम का कोई प्रवेश नहीं हो सकता। अनाम ही मैं जीऊंगा। दूसरे भला मुझे नाम से पुकारें, कहीं मैं भी इस भ्रांति में न पड़ जाऊं कि यह नाम ही मैं हूं। लेकिन सभी इस भ्रांति में पड़ जाते हैं।

फिर आदमी नाम के लिए जीने लगता है, मरने लगता है। लोग कहते हैं, नाम को बचाने के लिए जान दे देंगे। नाम की इज्जत, गैर-इज्जत, प्रतिष्ठा बड़ी महत्वपूर्ण हो जाती है। अगर आपका नाम किसी ने ठीक से न लिया, तो भी पीड़ा पहुंचती है। अगर नाम में आपके किसी ने थोड़ी भूल-चूक कर दी, तो भी कष्ट होता है। नाम काफी गहरे उतर गया मालूम पड़ता है। उपयोगिता तक ठीक था, लेकिन यह तो प्राण बन गया। और जो प्राण था--जो अनाम है वह भूल जाएगा।

जैसे व्यक्ति के लिए नाम की जरूरत पड़ जाती है, उसके बिना जीवन को चलाना कठिन है, वह एक उपयोगिता है, अनिवार्य उपयोगिता है, वैसे ही जब भी, जब भी उस परम सत्य की कोज में कोई लगता है तो उसे लगता है कि कोई नाम हो। इन नामों के भी फायदे हैं, इन नामों के भी खतरे हैं।

इसलिए पहले सूत्र में कैवल्य उपनिषद के ऋषि ने शिव की चर्चा की है, वह उसका प्यारा नाम है। लेकिन तत्काल दूसरे सूत्र में वह कहता है--और सब नाम भी उसी के हैं। यह भ्रांति न हो जाए कि वही एक नाम महत्वपूर्ण है। इसलिए ऋषि कहता है उसी को--जिसकी उसने चर्चा की है पहले सूत्र में--ब्रह्मा भी कहा है, शिव भी कहा है, इंद्र भी कहा है, अक्षर ब्रह्म भी कहा, परम विराट भी कहा है, विष्णु भी कहा है, प्राण भी कहा है, काल-अग्नि भी कहा है, चंद्रमा भी कहा है। यह सभी नाम उसके हैं। और भी हजार नाम हैं। लेकिन इन नामों में जो मौलिक कोटियां हो सकती हैं, वह सब सम्मिलित कर ली गई हैं। जैसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यह तीन हिंदू-चिंतना की कोटियां हैं। फिर हिंदू जितने भी नाम हैं वह उन तीन में से किसी एक से संबंधित होंगे।

तो यह तीन मूल कोटियां हैं। और इन तीन मूल कोटियों का कारण है। हिंदू-चिंतन कई अर्थों में बहुत वैज्ञानिक है। मनोवैज्ञानिक है। और उसने जो कुछ भी निर्धारित किया है, वह किसी गहरी जरूरत को सोचकर निर्धारित किया है। मन्युष्य के भीतर भी तीन प्रकार के मन हैं। और मनुष्य भी तीन तरह के मनुष्य हैं। और अगर हम मनुष्यों को बांटें, तो उसमें तीन तरह के मनुष्य हमें मिलेंगे।

तीन की संख्या हिंदू-चिंतन में बड़ी महत्वपूर्ण है। और पहले तो ऐसा सोचा जाता था कि यह सिर्फ सांकेतिक है, लेकिन विज्ञान जितने गहरे गया वस्तुओं में, उतना ही विज्ञान को भी लगा कि तीन की इकाई महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है। क्योंकि जब अणु का विस्फोट किया तो पता चला कि अणु के जो घटक-अंग हैं, वे तीन हैं। इलेक्ट्रान, न्यूटान, पाजीट्रान। वह अणु के घटक-अंग हैं। तीन से मिल कर ही इस जगत की मौलिक इकाई निर्मित हुई है। और फिर उसी मौलिक इकाई पर सारा जगत निर्मित है। अगर इस जगत को हम तोड़ते जाएं नीचे, तो तीन की संख्या उपलब्ध होती है और तीन के बाद तोड़े तो कुछ भी उपलब्ध नहीं होता, शून्य हो जाता है। उस शून्य को हमने परम सत्य कहा है। अनाम। उस शून्य से जो पहली इकाई निर्मित होती है तीन की, उसको हमने ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहा है।

और ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहना और भी अर्थों में गहरा है। यह तीन की संख्या ही की बात नहीं है। इलेक्ट्रान, पाजीट्रान, और न्यूट्रान जिन चीजों की सूचना देते हैं, ये तीन शब्द भी उन्हें की सूचना देते हैं। इन तीन विद्युतकरण में जिनसे जगत का मौलिक आधार बना हुआ है, विज्ञान की दृष्टि में एक तत्व विधायक है, एक निषेधक है और एक तटस्थ। एक पाजिटिव है, एक निगेटिव है, एक न्यूट्रल है। और इन तीन--ब्रह्मा विष्णु, महेश में भी एक पाजिटिव है, एक निगेटिव है और एक न्यूट्रल है। इसमें ब्रह्मा पजिटिव है, विधायक है। ब्रह्मा को हिंदू-चिंतन मानता है वह सृष्टि का आधार है। उससे ही सृष्टि निर्मित होती है। वह निर्माता है। वह विधान करता है, वह विधायक है। शिव विध्वंसक है। निषेधक है। वह तत्त्व इस सृष्टि को लीन करता है, विलीप करता है, समाप्त करता है--निगेटिव है। विष्णु इन दोनों के मध्य में तटस्थ है, वह सम्हालता है। न वह निर्माण करता है, न वह विध्वंस करता है। वह केवल बीच का सहारा है। जितनी देर सृष्टि होती है, वह तयस्थ-भाव से उसे सम्हालता है।

न तो न्यूट्रान, पाजीट्रान शब्दों को कोई मूल्य है। क्योंकि वे भी दिए गए नाम हैं। न ब्रह्मा, विष्णु, महेश का कोई मूल्य है। वे भी दिए गए नाम हैं। लेकिन धर्म जब नाम देता है और विज्ञान जब नाम देता है, तो एक फर्क होता है। वह फर्क यह होता है कि विज्ञान जब नाम देता है, तो वह नाम जो होते हैं, अवैयक्तिक होते हैं। और धर्म जब कोई नाम देता है तो वे नाम वैयक्तिक होते हैं, पर्सनल होते हैं। क्योंकि धर्म का प्रयोजन इसे कम होता है कि नाम जिसके संबंध में इशारा कर रहा है उसको बताएं, इससे ज्यादा होता है कि इस इशारे पर जो चलेगा, उसका उससे संबंध हो जाए जिसके प्रति इशारा किया गयाहै। संबंध बनाने के लिए व्यक्ति निर्मित करना होता है।

जैसे न्यूट्रान से कोई संबध निर्मित नहीं हो सकता। आप प्रयोगशाला में उसका उपयोग कर सकते हैं, हिला-डुला सकते हैं, काट-पीट सकते हैं, गतिमान कर सकते हैं, आप उपयोग कर सकते हैं उसका, लेकिन न्यूट्रान से आपका कोई संबंध निर्मित नहीं होता। क्योंकि न्यूट्रान कोई व्यक्ति नहीं है। लेकिन शिव से आपका संबंध निर्मित हो सकता है, क्योंकि वह व्यक्ति है। धर्म और विज्ञान जो शब्दावली का प्रयोग करते हैं, उसमें यह बुनियादी फर्क है।

विज्ञान के शब्द इमपर्सनल होंगे। अवैयक्तिक होंगे। धर्म के शब्द पर्सनल होंगे, वैयक्तिक होंगे। एक व्यक्ति निर्मित होना चाहिए शब्द से। लेकिन कहीं यह भ्रांति न हो जाए कि यह तीन तीन हैं, इसलिए हमने त्रिमूर्ति निर्मित की। ब्रह्मा, विष्णु, महेश के तीन चेहरे एक ही मूर्ति में बनाए। यह तीन तीन तरह के फंक्शन हैं। लेकिन जिससे यह, जिसका यह काम कर रहे हैं, वह इन तीनों के भीतर एक है। उसका कोईचेहरा नहीं है। यह तीन चेहरे तीन प्रक्रियाओं के हैं। स्वयं अस्तित्व का कोई चेहरा नहीं है। वह फेसलेस है।

इसलिए अगर ब्रह्मा, विष्णु, महेश की त्रिमूर्ति आपको मिले, तीनों चेहरे अलग कर दें, फिर जो बच जाए वह अस्तित्व का सूचक है। और ये तीनों चेहरे अस्तित्व की तीन अभिव्यक्तियां हैं। और विज्ञान स्वीकार करता है कि अस्तित्व निर्मित नहीं हो सकता इन तीन शक्तिंयों के बिना। विधायक न हो तो अस्तित्व जन्म नहीं होता। विध्वंसक न हो तो जो चीज जन्म हो जाए वह फिर कभी रूपांतरित नहीं हो सकती। और अगर स्थापक न हो, तो जन्म भी तो जाए तो कोई चीज स्थिति को उपलब्ध नहीं हो सकती। ये तीन तो अनिवार्य हैं किसी भी वस्तु के होने के लिए।

तो धर्म के विज्ञान के ये तीन मौलिक अणु हैं--ब्रह्मा, विष्णु, महेश। ये तीन उसके नाम हैं। फिर जगत में जितने भी देवी-देवता निर्मित हुए हैं, नाम निर्मित हुए हैं, उन तीन में से किसी एक से संबंधित होंगे। इसलिए हिंदू कहते हैं कि फलां अवतार विष्णु का अवतार है। उसका मतलब यह है, वह विष्णु की कोटि में आता है।

फलां शिव का अवतार है; तो वह शिव की कोटि में आता है। फलां अवतार ब्रह्मा का अवतार है, तो वह ब्रह्मा की कोटि में आता है। लेकिन आप देखें--सभी अवतार विष्णु के हैं। क्योंकि ब्रह्मा का काम निर्माण के साथ समाप्त हो जाता है। अवतरण की कोई जरूरत नहीं है। शिव का काम विध्वंस में पड़ेगा। अवतरण की कोई जरूरत नहीं है। विष्णु ही अवतरित होता चला जाता है जब तक सृष्टि है।

तो चाहे राम हों, चाहे कृष्ण हों, चाहे कोई भी हो, विष्णु ही अवतरित होता चला जाता है। यह विष्णु के अवतार की जो शृंखला है, कहती है कि स्थापक जो है उसको ही आना पड़ेगा बार-बार। निर्माता एक बार इशारा करेगा, निर्माण हो जाएगा। विध्वंसक एक बार विध्वंस करेगा, समाप्त हो जाएगा। लेकिन जो सम्हालेगा पूरे समय, उसे ही बार-बार आना पड़ेगा। इसलिए अवतरण सिर्फ विष्णु का है।

ये तीन हिंदू-दृष्टि से ऋषि ने विचार में ले लिये हैं। लेकिन औरों की भी गणना की है। इंद्र को भी गिना है। इंद्र परम शक्ति का नाम नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश की कोटि का नाम नहीं है। लेकिन व्यक्तियों पर अगर हम ध्यान दें, तो इन परम कोटि तक पहुंचने वाले व्यक्तियों की दृष्टि... ऐसे व्यक्ति खोजना जिनकी इतनी गहराई तक दृष्टि पहुंचती हो कि वह ब्रह्मा, विष्णु महेश के प्रति प्रेम से भर जाएं कठिन है। क्योंकि इन तीनों का जो उपयोग है, वह अत्यंत वैज्ञानिक है। ब्रह्मा से आप क्या मांग सकते हैं। इनका जो उपयोग है वह अस्तित्व के मूल आधार में है। लेकिन आदमी कमजोर है। बहुत कमजोर है। उसकी कमजोरी इतनी गहन है कि वह इतने मौलिक आधारों तक तो उसका कोई संबंध निर्मित नहीं हो पाएगा।

इसलिए सारे जगत के धर्मों ने ईश्वर की भी धारणा की और देवताओं की भी धारणा की। देवता की धारणा उनके लिए है जो ईश्वर की धारणा तक न जा सकें।

तो तीन हम बातें समझ लें।

एक तो परम अस्तित्व है निराकार। बुद्ध जैसे लोग उससे संबंधित होते हैं। इसलिए वह ईश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश सबको कह देते हैं बेकार। यह जानकर मजा होगा कि जब बुद्ध को निर्वाण, समाधि उपलब्ध हुई, जब पहली बार वह ज्ञान को उपलब्ध हुए तो बौद्ध-कथाएं बड़ी मधुर हैं। हिंदुओं को उससे चोट भी बहुत पहुंची। उन सबको चोट पहुंची जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश को परम मानते थे। जब बुद्ध को ज्ञान हुआ तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सभी हाथ जोड़कर बुद्ध के चरणों में सिर रखकर उपस्थित हुए। यह कथा बड़ी मधुर है। यह कथा यह कहती है कि परम अस्तित्व ब्रह्मा, विष्णु महेश से भी पार है। और जब किसी व्यक्ति को परम अस्तित्व में प्रवेश मिले तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उसे नमस्कार करेंगे ही।

बुद्ध को ज्ञान हो गया, लेकिन बुद्ध चुप रह गए। क्योंकि बुद्ध को लगा, जो मैं कहना चाहता हूं उसे कहना मुश्किल है और अगर कह भी दूं तो उसे समझेगा कौन? सात दिन तक बुद्ध चुप बैठे रहे। कथा कहती है कि देवताओं में बड़ी हलचल मच गई। देवताओं में! आदमियों को तो खबर ही नहीं थी। देवताओं में बहुत हलचल मच गई। वह बड़े उदास होने लगे, क्योंकि बुद्ध जैसी घटना कभी-कभी कल्पों में घटती है। और अगर बुद्ध चुप रह गए तो उनका होना, न होना इस विराट चेतन जगत के लिए किसी संबंध का न रह जाएगा। पर सात दिन उन्होंने प्रतीक्षा की। क्योंकि बुद्ध उस परम अवस्था में थे जहां देवता भी मौजूद हो तो बाधा पड़े। इसलिए वे दूर खड़े हुए सात दिन तक प्रतीक्षा किए कि बुद्ध बोलें, कि बुद्ध बोलें। वे भी आतुर थे कि जानें उस परम अस्तित्व के संबंध में।

यह बहुत मजे की बात है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी आतुर थे कि जानें उस परम घटना के संबंध में, जिसको बुद्ध उपलब्ध हुए। क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उसके बाहरी चेहरा हैं। वह जो तीनों चेहरों के भीतर छिपा है,

बुद्ध वहां प्रवेश कर गए। उनसे पूछें कि क्या है वहां? सात दिन बुद्ध चुप रहे, तब फिर उन्हें बाधा डालनी पड़ी। तब उन्होंने चरणों में जाकर बुद्ध से निवेदन किया कि आप बोलें। बुद्ध ने कहा जो मैं बोलूंगा, जो मैंने जाना, उसे कहा नहीं जा सकता। अगर कहूं भी तो उसे समझेगा कौन? ब्रह्मा, विष्णु, महेश यह भी न कह सके कि कम-से-कम हम समझ लेंगे। क्योंकि वे भी बाहरी चेहरे हैं अस्तित्व के। अंतरात्मा नहीं, द्वारपाल हैं।

उदास हो गए, रोने लगे, प्रार्थना करने लगे, फिर उन तीनों ने मिल कर विचार किया और बुद्ध को कहा कि हम आपकी बात समझते हैं कि जो आप कहना चाहते हैं, वह नहीं कहा जा सकता। कभी नहीं कहा गया। सदा से हमने सुना है कि वह कहा नहीं जा सकता। और यह भी हम मानते हैं कि आप कहेंगे भी तो कोई समझ न पाएगा। कोई समझ भी लेगा तो आचरण कठिन है। लेकिन फिर भी हम प्रार्थना करते हैं कि कुछ ऐसे लोग भी हैं जो बिल्कुल सीमांत पर खड़े हैं। सीमांत पर खड़े हैं। सीमांत पर खड़े हैं। संसार में ही हैं, लेकिन आखिरी सीमा पर खड़े हैं। और आपका बोलना मात्र कि बुद्ध बोलें--यह नहीं कि क्या बोलें--आपका बोलना मात्र, आपका होना मात्र उनके लिए धक्का हो जाएगा और वह छलांग लगा लेंगे। और अगर आप सौ लोगों से बोलें और एक भी छलांग लगा गया तो भी बड़ी अनुकंपा है। इसलिए बुद्ध राजी हुए।

इससे हिंदू मन को चोट पहुंची। जिस हिंदू मन को चोट पहुंची, वह समझ नहीं पाया। उसे चोट पहुंची कि बुद्ध के सामने और देवताओं को, ब्रह्मा, विष्णु, महेश को खड़ा करना, यह करना, यह कथा अच्छी नहीं है। लेकिन यह कथा बड़ी मूल्यवान है और हिंदू विचार के अत्यंत अनुकूल है। क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महेश को हमने केवल एक संसार का निर्माता, सम्हालनेवाला, मिटानेवाला माना है। वे इस संसार के ही हिस्से हैं।"फक्शनरीज" हैं। जिस दिन संसार विलीन हो जाता है, वे भी विलीन हो जाते हैं। उनका फिर कोई मूल्य नहीं रह जाता है। तब जो शेष रह जाता है, उसमें ही प्रवेश है समाधि में। लेकिन उस परम तक जाना तो बहुत मुश्किल ब्रह्मा, विष्णू, महेश तक भी जाना बहुत मुश्किल है। आदमी को और भी नीचे की हैसियत के देवता चाहिए, जिनसे उनका संबंध निर्मित हो सके। तो आदमी ने ऐसे देवता निर्मित किए। इंद्र उनका प्रतीक है।

इस सूत्र में इंद्र उन सब देवताओं का प्रतीक है, जो मनुष्य की कामनाओं से निर्मित हुए है, मनुष्य की वासनाओं से निर्मित हुए हैं। आदमी मांगता है जिनसे कुछ। इसलिए अगर हम वेद को पढ़ें, तो वेद में सौ में से निन्यानबे सूत्र इंद्र आदि देवताओं के लिए प्रयुक्त हुए हैं। और जितने सूत्रों में इंद्र आदि देवताओं की प्रार्थना की गई है, वे सब प्रार्थनाएं मनुष्य के मन की अत्यंत साधारण वासनाएं है। किसीकी गाय ने दूध देना बंद कर दिया है तो वह प्रार्थना करता है--हे इंद्र, मेरी गाय का दूध वापिस लौट आए। किसी के खेत में वर्षा नहीं हुई है, वह प्रार्थना करता है--हे इंद्र, मेरे खेत में वर्षा हो जाए।

इस संबंध में दो-तीन बातें खयाल लेनी जरूरी हैं--कि हिंदू चिंतन सब तरह के मनुष्यों को मार्ग मिल सके, इसकी चेष्टा है। अब जिसकी गाय का दूध खो गया है, जिसके खेत में वर्षा नहीं हुई है, जिसकी पत्नी बीमार हो गई है, जिसका बच्चा अपंग हो गया है, यह परम विराट से क्या प्रार्थना करे? उस परम विराट के समक्ष तो वाणी चुप हो जाएगी, और प्रार्थनदा नहीं की जा सकती। यह ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी क्या कहे। क्योंकि इतने छोटे काम उनके काम नहीं हैं। यह पूरे जगत को बनाना, मिटाना, यह उनकी व्यवस्था है। यह कमजोर आदमी कहां जाए? इसके मन को कहां संतोष होगा? यह कहां अपने बोझ को रख सकेगा? यह विराट इतना बड़ा है कि उस पर बोझ रखने का उपाय नहीं। ब्रह्मा, विष्णू, महेश इतने दूर की क्रियाओं में संलग्न हैं जिससे इन व्यक्ति का कोई लेना-देना नहीं--कि जगत बने, कि जगत मिटे, कि जगत संभले। यह इसकी कल्पना के भी बाहर है।

इसका अपना एक छोटा-सा जगत है, जहां इसका बच्चा बीमार है, जहां घर का छप्पर गिर गया है, जहां गाय को दूध नहीं आया है, यह इसका छोटा-जगत है। इस छोटे-से जगत में ब्रह्मा, विष्णु का उपयोग करना ऐसे ही है--जहां सुई जरूरत हो वहां तलवार का उपयोग करना। उससे और कपड़ा फट जाएगा। तो इसके लिए और एक कोटि हिंदू चिंतन ने निर्मित की, जो इंद्रादि देवताओं की है। इसीलिए बुद्ध का या महावीर का वेद के प्रति कोई अच्छा भाव नहीं है। उससे भी हिंदू मन को बहुत चोट लगी है। उपनिषदों का भी वेद के प्रति बहुत अच्छा भाव नहीं है। कृष्ण का भी वेद के प्रति बहुत अच्छा भाव नहीं है। हो नहीं सकता। वह कारण यह नहीं है कि वेद के प्रति बुरा भाव है, यह कारण कुल इतना है कि वेद निन्यानबे मौकों पर अति साधारण आदमी के जगत की चिंता में संलग्न हैं।

एक दृष्टि से देखा जाए तो वेद परम ग्रंथ नहीं रह जाते हैं। पर एक दृष्टि से देखा जाए तो परम मानवीय ग्रंथ हो जाते हैं। टू ह्यूमेन। और आदमी के निकट परमात्मा को लाना पड़ेगा, तो ही आदमी परमात्मा के निकट जा सकता है। एक तो उपाय है कि आदमी उठे, उठे, उठे और परमात्मा के निकट जाए। ऐसे बहुत कम आदमी हैं जो इतना उठे, इतना उठें और परमात्मा के निकट जाएं। एक उपाय यह है कि परमात्मा को हम उतारें, उतारें, उतारें और आदमी के निकट लाएं। तो इंद्र उस उतारने की प्रक्रिया की आखिरी कड़ी है। इसलिए इस सूत्र में इंद्र आदि देवताओं की भी गणना की है।

फिर कुछ और शब्दों का भी प्रयोग किया है।"अक्षरब्रह्म।" कुछ लोग हैं, विशेषकर दार्शनिक चिंतना के लोग, उनके लिए व्यक्तिवाची सभी शब्द अर्थहीन हैं। जैसा मैंने कहा कि सामान्यतया अगर व्यक्ति न हो परमात्मा, तो हमारा संबंध नहीं बन पता। ऐसे ही जो दार्शनिक चिंतन के लोग हैं, अगर व्यक्ति हो परमात्मा तो उनका संबंध नहीं बन पाता। व्यक्ति होते ही से उन्हें बेचैनी शुरु हो जाती है। उन्हे निराकार, निर्व्यक्ति चाहिए।

जैसे शंकर हैं। तो ब्रह्म से नीचे की कोई भी बात शंकर के लिए खटकेगी। इसका कारण नीचे की बात नहीं है। इसका कारण शंकर की अपनी ऊंचाई है। शंकर को ब्रह्मा, विष्णु, महेश अपने से भी नीचे मालूम पड़ेंगे। तो शंकर के लिए, या शंकर के जैसे व्यक्तित्व के लिए अक्षर ब्रह्मा--यह एक प्रतीक है। इसके भीतर वे सब नाम आ जाते हैं, चाहे हीगल ने दिए हों, चाहे कांट ने दिए हों, चाहे दुनिया के और किसी कोने के अलग चिंताकों ने दिए हों, एब्सोल्यूट कहा हो, कोई और नाम दिया हो, वे सब नाम अक्षरब्रह्म में समा जाते हैं।

अक्षरब्रह्म का अर्थ है, वह आत्यंतिक ऊर्जा जो कभी क्षय को उपलब्ध नहीं होती। जो सदा बनी रहती है। सब परिवर्तनों के बीच। विनाश, सृजन, सबके बीच जो ऊर्जा बनी ही रहती है--वह अक्षरब्रह्म है। परम विराट है। अक्षरब्रह्म में उस ऊर्जा का तो संकते है जो सदा बनी रहती है, लेकिन विस्तार का कोई संकेत नहीं है। उसकी विराटता का कोई संकेत नहीं है। कुछ लोग हैं, जिनके लिए परमात्मा विराट की तरह अवतरित होता है। कुछ लोग हैं, जहां भी विराट होता है उन्हें परमात्मा की झलक मिलती है। विराट सागर को देखकर, विराट आकाश को देखकर। जहां भी फैलाव है अंतहीन। शाश्वत ऊर्जा में एक तरह का फैलाव है। विराट आकाश में दूसरे तरह का फैलाव है।

दोनों को समझ लें।

शाश्वत ऊर्जा में जो फैलाव है वह समय की धारा का है। जो पहले भी थी, अभी भी है, आगे भी होगी। टाइम डाइमेन्सन, काल में फैला हुआ है। आकाश, अभी फैला हुआ है, इसी वक्त फैला हुआ है, सब दिशाओं में। तो आकाश का फैलाव स्पेस डाइमेन्स है। तो कुछ लोग हैं जो काल-फैलाव को अनुभव कर पाते हैं। कुछ लोग हैं जो इसी क्षण जो आकाश का, स्थान का, स्पेस का फैलाव है, उसको अनुभव कर पाते हैं। व्यक्तियों पर निर्भर

करेगा। जैसे विचारक आदमी होगा तो काल-फैलाव को अनुभव कर सकेगा। ध्यानी होगा तो अभी, इसी क्षण आकाश के फैलाव को अनुभव कर सकेगा।

तो अक्षरब्रह्म कहा है विचारकों के लिए। वन उनकी कोटि है। फिर जितने विचारकों ने नाम दिए हों, वह उस कोटि के भीतर आते हैं। और परम विराट कहा है ध्यानियों के लिए। क्योंकि ध्यानी के लिए समय मिट जाता है, ध्यानी के लिए समय बचता ही नहीं। टाइमलेसनेस में, कालातीत में प्रवेश हो जाता है। तो इसी क्षण वह विराट की तरह अनुभव होता है।

खयाल ले लें।

आकाश का विराट अभी मौजूद है। एक नदी का विराट पीछे फैला हुआ है, आगे फैला हुआ है। कितनी ही लंबी नदी हो, आगे और पीछे की तरफ फैली हुई है। आकाश अभी, यहीं, सब तरफ फैला हुआ है। ध्यान में विराट, परम विराट का अनुभव होता है। तो ध्यानियों ने जो शब्द चुने हैं, वह परम विराट जैसे हैं। विचारकों ने जो शब्द चुने हैं, वह अक्षरब्रह्म जैसे हैं।

लेकिन इतने से ही बात समाप्त नहीं होती। कुछ और धाराएं भी मनुष्य की चेतना में उतरती हैं। जैसे प्राण। योगियों ने उसे प्राण की तरह जाना है। योग की जो परमात्मा के लिए शब्दावली है, उसमें महाप्राण, विराट प्राण, प्राण, इस शब्द का प्रयोग है। क्योंकि योगी का जो मार्ग है, वह अपने शरीर के भीतर छिपे हुए प्राण के अनुभव का है। वह अनुभव जब गहन होने लगता है, तो वही प्राण अपने बाहर भी सब तरफ अनुभव होने लगता है। एक घड़ी आती है कि सारा जगत प्राण-ऊर्जा से भर जाता है।

बर्गसों ने अभी-अभी इसी सदी में जो शब्द उपयोग किया है, वह है इलान वाइटल। उसका मतलब है, प्राण। परमात्मा के लिए। योगी प्राण पर ही सारा काम कर रहा है। इसलिए योग की मौलिक प्रक्रिया प्राणायाम है। प्राणायाम का अर्थ है, प्राण का विस्तार। प्राण का फैलाव, प्राण का अंतहीन फैलाव। ऐसी अवस्था ले आनी है जब मेरा प्राण सारे जगत के प्राण में फैल जाए। तब जिसका अनुभव होगा, उसे महाप्राण कहो, प्राण कहो, कोई भी नाम दो। योग को ईश्वर के दूसरे नाम कभी प्रीतिकर नहीं रहे हैं, क्योंकि योग तो एक बड़ी वैज्ञानिक प्रक्रिया है प्राण के संशोधन की।

यह प्राण शब्द एक अर्थ में वैज्ञानिक है। जैसे मैं कहूं कि हमेशा ऐसा होता है, जिस दिशा से आदमी खोजता है उसी दिशा का शब्द अंततः... जैसे कि विज्ञान ने खोज की, खोज की तो विद्युत-कण, या विद्युत-ऊर्जा आखिरी शक्ति मिली। क्योंकि सारी खोज ही विद्युत की थी। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे वही शब्द मौलिक हो गया और जो अंत में पाया गया उसका नाम विद्युत-ऊर्जा हो गया। ठीक इसी तरह योग ने भी शरीर के भीतर छिपी हुई विद्युत की खोज शुरू की। उसका नाम प्राण है। और खोजते-खोजते जितनी गहराई बढ़ी, उतना ही योग को अनुभव हुआ कि सभी कुछ प्राण का ही रूपांतरण है। यह वृक्ष भी प्राण का एक रूप है, पत्थर भी प्राण का एक रूप है, मनुष्य भी प्राण का एक रूप है। इस जगत में जो भी घटित हो रहा है, उसकी मौलिक इकाई प्राण है। एक कोटि यह है, इसलिए "प्राण" को ऋषि ने जगह दी।

दो शब्द और रह जाते हैं। "काल-अग्नि" और"चंद्रमा।" "काल-अग्नि।" यह जान कर आप चकित होंगे कि सिर्फ महावीर ने आत्मा को जो नाम दिया है, वह हैरान करने वाला है। महावीर ने आत्मा को समय कहा, "टाइम"--सिर्फ एक ही आदमी ने। सिर्फ एक ही आदमी ने, सिर्फ एक जैनों की परंपरा ने विराट को जो नाम दिया है, जीवन के आत्यंतिक को जो नाम दिया है वह है--समय। इसलिए जैन ध्यान को सामायिक कहते हैं। समय में प्रवेश कर जाना। उनका शब्द बड़ा कीमती है। धयान से भी ज्यादा कीमती है। क्योंकि ध्यान में फिर भी

कहीं भ्रांति बनी रहती है कि किसी का ध्यान। सामायिक में वह भी बात समाप्त हो गई, सिर्फ समय में प्रवेश कर जाना ही ध्यान है। स्वयं में प्रवेश कर जाना ही ध्यान है। और स्वयं का नाम समय है।

काल-अग्नि, टाइम-फायर। समय को जिन्होंने आत्मा का नाम माना, उसके मानने के बड़े कारण हैं। इसे हम जरा पीछे लौट कर देखें, तो खयाल में आ जाए। एक पत्थर पड़ा है। पत्थर का विस्तार स्थान में होता है, समय में नहीं होता। पत्थर का जो विस्तार है वह स्थान में है, समय में नहीं है। पत्थर का समय का कोई भी पता नहीं है।

इसलिए जैन कहते हैं पत्थर के पास सबसे स्थूल आत्मा है। उसे समय का कोई पता नहीं है। पौधा है। उसका भी विस्तार, फैलाव स्थान में है, लेकिन कहीं न कहीं प्राथमिक रूप में उसे समय का भी बोध है। बहुत स्थूल में, लेकिन समय का बोध है। पौधा बढ़ता है समय में, बड़ा होता है। सिर्फ जैनों ने यह स्वीकार किया था अतीत में कि पौधे को समय का थोड़ा अनुभव है। हालांकि सिद्ध करना बहुत मुश्किल था। लेकिन अब विज्ञान ने सिद्ध किया है कि पौधे को समय का अनुभव है। पौधे को उम्र का अपना थोड़ा सा बोध है। उसे अनुभव है थोड़ा सा कि वह कितनी देर से इस जगत में है। लेकिन अतीत का ही, भविष्य का उसे कोई अनुभव नहीं है।

फिर पशु है। तो पौधे को जैन मानते हैं कि उनके पास थोड़ी विकसित आत्मा है। इसलिए पौधे को भी चोट मारना हिंसा जैनों की दृष्टि में है, और ठीक है। उसको भी दुख पहुंचाना... तो महावीर ने तो कहा है कि सूख कर फल गिर जाए, तभी उसे खाना शाकाहार है। कच्चे को तोड़ लेना तो मांसाहार है। क्योंकि पौधे को चोट तो पहुंचने ही वाली है। महावीर सिद्ध नहीं कर पाते थे, लेकिन मैंने पीछे आपको कहा कि अब विज्ञान सिद्ध करता है कि पौधे को चोट का अनुभव होता है। हिंसा होती है और बहुत निरीह पर हिंसा है। क्योंकि वह कोई उत्तर नहीं दे सकता, कोई प्रतिकार नहीं कर सकता। बोल भी नहीं सकता कि मैं दुखी हो रहा हूं।

इसलिए महावीर ने वर्जित कर दिया अपने भिक्षुओं को वर्षा में चलना। उसका कारण यह नहीं था कि वर्षा में भिक्षु को तकलीफ होगी। वर्षा में रास्तों पर पौधे ऊग आते हैं, घास ऊग आती है, उनको पीड़ा होगी। इसलिए सूखी जगह पर ही चलना। वर्षा में सूखी जगह उन दिनों खोजनी मुश्किल थी चलने के लिए--तो चलना ही मत। मल-विसर्जन के लिए महावीर ने अपने साधुओं को कहा है कि सूखी जगह में ही मल-विसर्जन करना। घास-पात हो तो मल-विसर्जन मत करतान। क्योंकि वहां जीवन है। एक बहुत प्राथमिक आत्मा वहां है। वहां समय का बोध पैदा हो चुका है। इसलिए वहां नुकसान मत पहुंचाना, किसी को चोट मत पहुंचाना।

अब यह हैरानी की बात है कि अब जाकर इस सदी में विज्ञान को थोड़ा सा खयाल आना शुरू हुआ है कि पौधे को भी प्रतीतियां होती हैं। महावीर की संवेदनशीलता बड़ी अदभुत है। कहते हैं मल-विसर्जन भी पौधा हो, घास-पात हो तो मत करना। इतना भी चोट उसे मत पहुंचाना। इतना भी दुख उसे मत देना। स्मरण रखना कि वहां भी व्यक्तित्व है।

फिर पशु हैं, महावीर कहते हैं उनके पास और भी विकसित समय है। उनको समय का और भी बोध होता है। वह थोड़ा सा भविष्य का भी स्मरण रख लेते हैं। थोड़ा सा! जैसे पशु कल का भोजन भी इकट्ठा कर लेता है। पौधा नहीं करता। पौधा नहीं कर सकता। कल का उसे कोई पता नहीं है। पक्षी हैं, वर्षा का इंतजाम कर लेते हैं। उसका मतलब है कि उन्हें आनवाले समय का कहीं न कहीं कोई स्थूल बोध है कि कल मुसीबत हो सकती है। चीटियां भोजन इकट्ठा करती है, वर्षा के लिए। बड़ी मेहनत उठाती हैं। अपनी-अपनी... जो-जो ला सकती हैं, लाकर इकट्ठा कर लेती है, क्योंकि वर्षा में जाना बाहर मुश्किल होगा। उसका मतलब है कि फ्यूचर ओरिएंटेशन,

भविष्य का थोड़ा सा खयाल है। तो महावीर कहते हैं, पशुओं में और भी बड़ा समय है। महावीर कहते हैं यह समय ही उनके भीतर आत्मा के विकास की खबर दे रहा है।

और आदमी के भीतर समय का बड़ा विस्तार है। कोई पशु अपनी मौत के बाबत नहीं सोच पाता। वह बहुत लंबा भविष्य है। कोई पशु! इसलिए पशु मौत से बिल्कुल निश्चिंत है। उसको मौत का कोई अनुभव नहीं है। खयाल भी नहीं है। वह पहले से मौत के संबंध में कोई चिंतन-मनन नहीं कर सकते। इस लिहाज से एक तरह से सुखी हैं। क्योंकि मौत उन्हें पीड़ा नहीं देती है, जब आती है तब आ जाती है। लेकिन मौत के पहले उनके मन में कोई मौत का चिंतन नहीं चलता। इसलिए पशु धर्म को पैदा नहीं कर पाते हैं, क्योंकि धर्म पैदा ही तब होता है जब मौत भी आपके समय के चिंतन का अंग बन जाती है।

तो महावीर कहते हैं मनुष्य श्रेष्ठतम है आत्माओं में, क्योंकि उसे मौत का बोध है। लेकिन मनुष्यों में भी वे श्रेष्ठतम हैं जिन्हें मौत के बाद के भी जन्मों का बोध है। क्योंकि उनका समय और भी विस्तीर्ण हो गया। और उनमें भी वे और श्रेष्ठतम हैं जिन्हें समस्त जन्मों और मौनों के पार परम अस्तित्व का बोध है। क्योंकि उनका समय आत्यंतिक रूप से विकसित हो गया है। जिन्हें आवागमन के पार जाने का भी बोध है, वह भी उनकी चिंता है, वह फिर श्रेष्ठतम आत्माएं हो गयीं।

तो महावीर ने समय के आधार पर ही सारी आत्माओं का विभाजन किया है। और तब उन्होंने आत्मा को नाम ही समय का दे दिया, कि आत्मा को कोई अलग नाम देने की जरूरत नहीं है। आत्मा अर्थात समय-बोध, टाइम कांशसनेस।

तो ऋषि ने काल-अग्नि--वह जो समय की अग्नि है, वह जो जीवंत आग है समय की, किन्ही-किन्हीं ने परम शक्ति का वह भी नाम दिया है--उसकी भी गणना कर ली है।

और अंतिम, "चंद्रमा।" चंद्रमा और भी हैरान करना है। क्योंकि जिस चंद्रमा को हम जानते हैं, उस चंद्रमा से इस चंद्रमा का कोई भी संबंध नहीं है। इसलिए लोग मुझसे आकार पूछते

हैं कि अब तो वैज्ञानिक चंद्रमा पर उतर गए, तो हमारे शास्त्रों मे कहे हुए चंद्रमा का क्या होगा? उससे कोई संबंध ही नहीं है। उससे संबंथ हो तो आप मुसीबत में पड़ें। उससे संबंध है ही नहीं। चंद्रमा एक अन्य साधकों की कोटि का प्रतीक है।

तांत्रिकों ने मनुष्य की नाड़ियों का गहन शोधन किया है। जैसे योग ने मनुष्य के प्राण-ऊर्जा का शोधन किया है, वैसे तांत्रिकों ने मनुष्य की अंतर्नाड़ियों का गहन शोधन किया है। और उन नाड़ियों को उन्होंने दो हिस्सो में बांटा है। एक, जो सूर्य कहते हैं वह, और एक को चंद्र। सूर्य उन नीड़ियों को कहते हैं जो उत्तेजक हैं, आग्नेय हैं, गर्म हैं। इसलिए सूर्य कहते हैं। चंद्र उन नाड़ियों को कहते हैं जो शांत हैं, शीतल हैं, मौन हैं। और तंत्र की दृष्टि है कि चंद्र और सूर्य नाड़ियों के ही मेल से व्यक्तित्व निर्मित है। और चंद्र और सूर्य के ही मेल से अस्तित्व निर्मित है। और इन दोनों का संतुलन ही साधना है।

इसे हम यूं समझें। सूर्‌य जीवन का आधार है। जीवेषणा का। ऊर्जा, दौड़, वासना, सब सूर्य हैं। इसलिए सूर्य के उगते ही जगत वासनाग्रस्त हो जाता है। सूर्य के उगते ही सारे जगत में जीवन की लहर दौड़ जाती है। पक्षी जाग जाते हैं, पौधे सजग हो जाते हैं, मनुष्य उठ आता है, जीवन की खोज शुरू हो जाती है। सूर्य के ढ़लते ही जीवन ढल जाता है। अंधेरा हो जाता है, रात हो जाती है। लोग वापिस गिर जाते हैं तंद्रा में।

लेकिन रातें दो तरह की होती हैं। एक अंधेरी रातें है, एस उजाली रातें है। अंधेरी रात का नाम है मूर्छा, उजाली रात का नाम समाधि। रात में तो सभी गिरते हैं। वे भी जो दिन भर के थके गए, जीवन भर में थक गए,

थक कर गिर गए, तो वे एक गहरी निद्रा में गिर जाते हैं। फिर सुबह होगी, फिर सूरज निकलेगा। लेकिन एक वे भी हैं जो सूरज की इस दौड़ से सिर्फ थक ही नहीं गए और मूर्च्छा में ही नहीं गिर गए, बल्कि सूरज की दौड़ की व्यर्थता को भी जान गए और शांत होने की, शीतल होने की, चंद्र के साथ एक होनी की दिशा में संलग्न हो गए।

तो स्वयं के भीतर जो नाडिया चंद्र की तरफ ले जाती हैं। शांति की तरफ ले जाती हैं, उन सब समूह, उस अनुभव-समूह का नाम चंद्रमा है। तो इस चंद्रमा को जो उपलब्ध हो जाता है, तंत्र की भाषा में वह परम विराट को उपलब्ध हो जाता है। ऐसी अवस्था पानी है जहां तो हो, लेकिन इतना शांत जैसे मृत्यू। जीवन हो, लेकिन इतना शांत जैसे मृत्यू। जिस दिन जीवन और मृत्यू का यह मेल हो जाता है, उस घडी नाम चंद्रमा है। यह सब प्रतीक शब्द हैं।

"उसी को ब्रह्मा, शिव, इंद्र अक्षर ब्रह्म, परट विराट, विष्णु, प्राण, काल-अग्नि और चंद्रमा कहते हैं।"

"वह व्यक्ति जन्म-मृत्यु के चक्कर से छूट जाता है, जो इस तत्त्व को समझ लेता है।" इस तत्व को, यह अनेक नामों वाले तत्त्व को समझ लेता है। यह विराट अनाम है, ऐसा समझ लेता है। ऐसा समझ लेता है कि सभी नाम उसके हैं। नामों से भी नहीं बंधता है जो, वही छूट पाता है। अगर नामों से भी बंध जाता है, तो नया संसार निर्मित हो जाता है।

"जो ऐसा समझ लेता है कि जो पहले हो चुका है, अथवा आगे होगा, वह सब वही है।" जो पहले हुआ है, जो हो रहा है, जो होगा, सब नाम उसके हैं। सब रूप जो हुए, हो रहे हैं, होंगे, वे भी उसके हैं। सब घटनाएं जो घटी हैं, घट रही है, घटेंगी, वे भी उसकी हैं। जो समस्त अनुभवों से उसी को ही स्मरण करने लगता है, जो समस्त दिशाओं से उसी को देखने लगता है, जो सब इशारों को उसी की तरफ झुका देती है, कोई इशारा कहीं और नहीं जाता।"इसको छोड़कर मोक्ष का और कोई रास्ता नहीं है"। ऐसा अनुभव होने लगे कि सभी रास्ते उसकी तरफ जाते हैं, सभी दिशाएं उसकी हैं, सभी नाम उसके हैं, सभी स्वर उसके हैं, सभी कुछ उसका। ऐसी प्रतीति की सघनता के अतिरिक्त मोक्ष का और कोई उपाय नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लें।

इसका मतलब यह हुआ कि आपका मोक्ष नहीं हो सकता। जब तक आप हैं तब तक मोक्ष नहीं हो सकता। जब आप बिल्कुल शून्य हो जाते हैं, तब मोक्ष होता है। जब सभी कुछ उसका हो जाता है और आपका कुछ भी नहीं रह जाता, तभी मोक्ष होता है। इसलिए आमतौर से जब हम भाषा में कहते हैं तो हमारे मन में होता है--मेरा मोक्ष। मेरा मोक्ष कैसे हो जाए मेरी मुक्ति कैसे जाए? मेरा निर्वाण कैसे हो जाए?

गलत है बिल्कुल! क्योंकि मेरे से ही तो मुक्त होना है। यह मुझ का ही तो निर्वाण होना है। यह मुझ को ही तो मिटना है। इस मुझ को ही तो खोना है। इसका कोई मोक्ष नहीं हो सकता। यह वैसे ही भ्रांत है जैसे किसी आदमी को बीमारी हो और वह कहे कि मेरी बीमारी स्वस्थ कैसे हो जाए। बीमारी को कहीं स्वस्थ होना है! बीमारी को नहीं होना है, ताकि स्वास्थ्य हो जाए। मुझे नहीं होना है, ताकि मोक्ष हो जाए। मेरा मोक्ष--ऐसी कोई चीज नहीं होती। मोक्ष होता है, वहां मैं नहीं होता है। मैं होता हूं, वहां मोक्ष नहीं होता है। मोक्ष का मतलब है, परम स्वतंत्रता। सब चीजों से स्वतंत्रता हो जाए लेकिन मेरा भी बना रहे, तो यह भी बंधन है।

तो ऋषि कहता है, इसको छोड़ कर मोक्ष का और कोई उपाय नहीं है कि सभी कुछ उसका हो जाए। सभी कुछ! सुख भी उसका, दुख भी उसका। सफलता उसकी, असफलता उसकी। हार उसकी, जीत उसकी। जन्म उसका, मृत्यु उसकी। सभी कुछ उसका हो जाए अशेष भाव से, कुछ भी शेष न बचे मेरे पास जिसे मैं कह सकूं

मेरा। जब तक मैं कह सकता हूं कुछ भी मेरा, तब तक मैं बंधन में जीऊंगा। क्योंकि आत्यंतिक अर्थों में "मेरा" ही मेरा बंधन है।

"वह मनुष्य परमात्मा को पा लेता है जो आत्मा को समस्त भूतों में और समस्त भूतों को आत्मा में व्याप्त पाता है-व्याप्त देखता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं हैं।"

"वह मनुष्य परमात्मा को पा लेता है, जो आत्मा को समस्त भूतों में, समस्त भूतों को आत्मा में व्याप्त देखता है।" इसका अर्थ हुआ जो सीमाएं तोड़ देता है। इसका अर्थ हुआ, जो सीमांत हटा लेता है। यह वृक्ष उसे ऐसा नहीं दिखाई पड़ता कि--"तू।" यह शरीर उसे ऐसा नहीं दिखाई पड़ता कि--"मैं।" उसका "मैं" वृक्ष में प्रवेश कर जाता है, वृक्ष का "तूं" उसमें प्रवेश कर जाता है। इस जगत में "मैं।" उसका "मैं" वृक्ष में प्रवेश कर जाता है, वृक्ष का "तूं" उसमें प्रवेश कर जाता है। इस जगत में "मैं"-"तू" की कोई सीमारेखा नहीं रह जाती। "में"-"तू" की सीमारेखा का अर्थ है कि मैं अपने को पृथक माने चला जा रहा हूं।

एक बहुत बड़े जिविश विचारक मार्टिन बूबर ने एक किताब लिखी है--आई एण्ड दाउ। मैं और तुम। मार्टिन बूबर यहूदी चिंतक हैं। कीमती चिंतक हैं इस सदी के। दो-चार बड़े चिंतकों में इस सदी में वह एक आदमी थे। लेकिन यहूदी चिंतन मैं और तू के पार नहीं जा पाता। बड़ी गहन खोज की है उन्होंन मैं और तू के संबधों की। कहते हैं कि जीवन का जो भी श्रेष्ठतम अनुभव है, वह मैं और तू की आत्यंतिक संबंध-स्थिति में निर्मित होता है।

यहूदी चिंतन की धारणा ऐसी है कि कोई व्यक्ति अकेला विकसित नहीं हो सकता। यह सही है एक अर्थ में। अकेला व्यक्ति हो ही नहीं सकता और होगा तो बहुत दीन-दरिद्र होगा। यह थोड़ा समझने जैसा है। क्योंकि पूरब में हम सबने इससे विपरीत सोचा है। हम सबने ऐसा सोचा है कि आदमी जितना एकांत में चला जाए अकेले में चला जाए बिल्कुल अकेला हो जाए उतना विकसित होगा। यहूदी चिंतन दूसरी तरफ से सोचता है। वह कहता कि जितना अकेले में चला जाएगा उतना दीनहीन हो जाएगा। क्योंकि संबंधों के बिना "ग्रोथ" कहां है? संबंधों के बिना विकास कहां है?

तो जितने गहन संबंध होंगे, व्यक्ति उतना विकसित होगा। और संबंधों की जो आत्यंतिक गहनता है, वह मैं और तू की निकटता है। किसी को जब हम तू कह पाते हैं, तो उसके माध्यम से हम भी एक ऊंचाई पर पहुंच जाते हैं। किसी को जब हम प्यार से पुकार पाते हैं, तो उस पुकार में ही हम बदल भी जाते हैं। तो ठीक है, यह आयाम कीमती है। और खासकर दो तरह के जगत में लोग हैं। और इसीलिए पूरब और पश्चिम दो तरह के लोगों के प्रतीक बन गए।

जुंग ने दो तरह के व्यक्तित्व माने हैं और ठीक माने हैं। एक है इंट्रोवर्ट, और एक है एक्स्ट्रोवर्ट, बहिर्मुखी। जो इंट्रोवर्ट है, अंतर्मुखी है, वह एकांत में ही विकसित होता है। उसको जितना अकेलापन मिल जाए उतना ही वह विकसित होता है। दूसरे की मौजूदगी उसे नुकसान पहुंचाती है। जब भी वह भीड़ से वापस लौटता है, तो उसे लगता है कुछ खोकर लौटा। जब भी किसी से मिलता है तो उसे लगता है, कुछ नीचे उतरना पड़ा। जब भी किसी से बात करता है तो उसे लगता है, कि कुछ विघ्न हुआ। जब वह मौन में होता है, एकांत में होता है, कोई नहीं होता, अकेला होता है, तब उसे लगता है की आत्मा आकाश की तरफ उड़ रही है। यह अंतर्मुखी है। पूरब इस अंतर्मुखता का प्रतीक है।

इसलिए पूरब में जो भी धर्म पैदा हुए, उन सबने जोर दिया है--एकांत, अकेलापन, संन्यास, संबंध से छुटकारा, मुक्ति। पश्चिम में जितने धर्मों ने फैलाव किया--और वह सभी धर्म यहूदी धर्म से पैदा हुए हैं, भारत के

बाहर। भारत के भीतर जितने धर्म पैदा हुए हैं, उनका मूल आधार हिंदू है; भारत के बाहर जितने धर्म पैदा हुए, उनका मूल आधार यहूदी है।

दुनिया में हिंदू और यहूदी ही मौलिक धर्म हैं। बाकी सब धर्म शाखाएं हैं। हिंदू अंतर्मुखी है। और यहूदी बहिर्मुखी है। इसलिए हिंदू यहूदी को बिल्कुल नहीं समझ सकता। यहूदी हिंद को बिल्कुल नहीं समझ सकता। इन दोनों के बीच मेल बड़ा मुश्किल है। बड़ा मुश्किल इसलिए है कि "टाइप" अलग है। यहूदी कहता है कि अकेला! अकेले में तो आदमी मर जाएगा। क्षीण हो जाएगा। सब विकास संबंध का है। जितनी समृद्धि होगी संबंधों की, आदमी की चेतना उतनी विकसित होगी। इसलिए यहूदी फकीर बिना पत्नी के नहीं होगा। यहूदी फकीर बिना बच्चों के नहीं होगा। यहूदी फकीर समाज का हिस्सा और अंग होगा। भागेगा नहीं। वह सोच ही नहीं सकता। बल्कि यहूदी फकीर के संबंध दूसरों के संबंधों से ज्यादा होंगे। क्योंकि उसका मतलब ही यह है कि वह ज्याद संबंधों में ज्यादा बढ़ेगा। ज्यादा विकसित होगा। इंटररिलेशनशिप, रिलेटेडनेस, जुड़ना दूसरे से बढ़ने का उपाय है।

इसको आत्यंतिक रूप से यहूदी चिंतन कहता है कि आखिर में व्यक्ति "मैं" रह जाएगा और विराट "तू" हो जाएगा। सारा जगत "तू" हो जाएगा और व्यक्ति"मैं" रह जाएगा। तब जो मिलन होगा, उसमें व्यक्ति की आत्मा पूर्ण विकास को उपलब्ध होगी। लेकिन यहूदी चिंतन इसके पार नहीं जाता।

यह सूत्र इसके पार जाता है।

यह सूत्र कहता है कि जब तक तू तू जैसा स्पष्ट है और मैं मैं जैसा स्पष्ट हूं, तब तक कितना ही गहन संबंध हो जाए, अंतिम नहीं है। दूरी बनी ही है। फासला कायम है। तो मैं किसी को कितना ही प्रेम करूं और जब तक वह मुझे "तू" मालूम पड़ रहा, और मैं "मैं" मालूम पड़ रहा हूं, हम कितने ही निकट आ जाएं, दूरी कायम रहेगी। यह "तू" और"मैं" के बीच जरा सी दूरी है, पर दूरी है। और एक मजा है दूरी का कि जितनी कम हो, उतनी ज्यादा अखरती है। जितनी कम हो उतनी ज्यादा अखरती है। उतनी चुभती है। जितनी ज्यादा हो, पता ही नहीं चलता है। पता चलता ही है दूरी का तब, जब बहुत कम बचती है। और तब बहुत पीड़ा देती है।

इसलिए प्रेमी जिस पीड़ा में पड़ते हैं उसका आत्यंतिक कारण है, दूरी का इतना कम हो जाना और मिटना नहीं। मिटती है नहीं और इतनी कम हो जाती है कि आशा भी बंधती है कि मिट जाएगी। और मिटती है नहीं। और हर बार इतने करीब होने से टकराहट शुरू हो जाती है, और दूरी मिटती नहीं। और दूरी का, दूरी का बोध भी साफ होने लगता है। जितनी दूरी कम होती है, एक अर्थ में उतनी ज्यादा हो जाती है। क्योंकि उतनी अखरती है, चुभती है, और मन होता है कि अब तो टूट सकती थी, अब तो बिल्कुल किनारा करीब था, अब तो हम हाथ बढ़ाते और टूट जाता। और हाथ बढ़ाते हैं और हाथ मिल नहीं पाते हैं। दूरी कायम ही रह जाती है। तो अगर परमात्मा के हम इतने भी निकटल पहुंच जाएं, कि ठीक प्रेमी की तरह "मैं" और "तू" की भाषा हो सके, तो भी दूरी रह जाती है।

यह उपनिषद का ऋषि कहता है, जब तक आत्मा सर्वभूतों में, सबमें न दिखाई पड़ने लगे और जब तक सर्वभूत स्वयं में न दिखाई पड़ने लगें; और जब तक "तू" मैं-जैसा" न हो जाए और जब तक "मैं" "तू-जैसा" न हो जाए तब तक, तब तक दूरी काय रहेगी। यह आखिरी छलांग है। जिसमें प्रेमी प्रेयसी हो जाता है, प्रेयसी प्रेमी हो जाती है। यह आखिरी छलांग है, जिसमें भक्त भगवान हो जाता है, भगवान भक्त हो जाता है। यह आखिरी छलांग है, जब पता नहीं चलता कि कौन कौन है। कौन कौन है, यह पता नहीं चलता।

ऋषि कहता है, वह मनुष्य परमात्मा को पा लेता है जो आत्मा को समस्त भूतों में और समस्त भूतों को आत्मा में व्याप्त देखता है। इसके अतिरिक्त दूसरा और कोई उपाय नहीं है। यह आखिरी बात है जहां तक समझ सोच सकती है, विचार सकती है। जहां तक हम थोड़ी अपनी चेतना को दौड़ा सकते हैं, खयाल में ले सकते हैं। इसके बाद खयाल का जगत समाप्त हो जाता है, और विचार कोई उपाय नहीं रह जाता।

इतना ही।

अब हम ध्यान की तैयारी करें।

नौवां प्रवचन

धर्म अंतःकरण की तलाश है

आत्मानं अरणि कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणीम्।
ज्ञान निर्मथनास्यासात पाशं दहति पण्डितः।। 11।।

ज्ञान लोग अंतःकरण को नीचे की अरणि बनाते हैं और प्रणव को ऊपर की और इन दोनों से ज्ञान के मंथन का अभ्यास करते हैं। इससे जो ज्ञानाग्नि उत्पन्न जाती है, उसमें अपने समस्त दोषों को जला कर संसार-बंधन से छूट जाते हैं।। 11।।

सूत्र में प्रवेश के पहले सूत्र के कुछ आधारभूत शब्दों के समझ लें। पहला आधारभूत शब्द इस सूत्र में है।। अंतःकरण। अंतःकरण के साथ थोड़ी कठिनाई है। क्योंकि जिसे हम अंतःकरण कहते हैं, वह अंतःकरण नहीं है। और जो अंतःकरण है, उसका साधारणतः हमें कभी पता ही नहीं चलता।

हम किसे अंतःकरण कहते है?

एक आदमी चोरी को जाता है। कदम उठाता है चोरी के लिए, भीतर कोई कहता है चोरी मत करो, चोरी पाप है। एक आदमी मांस खाने जाता है, भीतर कोई कहता है मांस मत खाओ, मांस खाना बुरा है। कोई शराबघर में जाता है, भीतर कोई कहता है शराब मत पीओ। इस आवाज को हम अंतःकरण कहते हैं, कांशियंस कहते हैं। पर यह अंतःकरण नहीं है। यह तो समजा की आवाज है हमारे भीतर, हमारी अपनी आवाज नहीं। यह हमारी आत्मा की आवाज नहीं है। यह तो समाज की सिखावन है। यह तो समाज की शिक्षा है। तो यदि गैर-मांसाहारी घर में आप पैदा हुए है, शाकाहरी घर में पैदा हुए हैं, और बचपन से ही सुना है कि मांसाहार पाप है, मांसाहार बुरा है, तो ही मांसाहार करते समय आपका अंतःकरण कहेगा।। बुरा है, पाप है, मत करो। यह आपकी आवाज नहीं है, क्योंकि मांसाहारी के घर में जो बड़ा होता है, उसमें यह आवाज सुनाई नहीं पड़ती।

अगर इसे हम अंतःकरण कहें तो हमें मानना पड़ेगा कि दुनिया में कई तरह के अंतःकरण हैं। तब तो हमें मानना पड़ेगा कि परमात्मा की जो आंतरिक आवाज है, वह भी बहुत तरह से बोलती है। किसी को कहती है कि मांसाहार करो, किसी को कहती है, मांसाहार मत करो।

समाज के नियम की भिन्नता के कारण यह भिन्नता है, यह अंतःकरण की आवाज नहीं। जिस दिन अंतःकरण की आवाज सुनाई पड़ती है और अंतःकरण उपलब्ध हो जाता है, उस दिन जगत के कोने-कोने में वह आवाज एक ही है। वह दो आवाजें नहीं होतीं। हिंदू का अंतःकरण और मुसलमान का अंतःकरण और ईसाई और जैन का अंतःकरण, ऐसे कोई अंतःकरण नहीं होते। लेकिन जिसे हम अंतःकरण कहते हैं, वह हिंदू का अलग होता है, जैन का अलग होता है, बौद्ध का अलग होता है। हिंदू में भी ब्राह्मण का अलग होता है, क्षत्रिय का अलग होता है, शूद्र का अलग होता है।

समाज ने बड़ी होशियारी की है। इसके पहले कि हमें पता चले कि हमारी भीतर की आवाज क्या है, समाज एक आवाज को भीतर बिठा देता है, और हमें समझा देता है कि यही हमारे भीतर की आवाज है। समाज की मजबूरी है। समाज को करने का कारण है। तो समाज को दोष देना व्यर्थ है, क्योंकि समजा की अपनी

मुसीबत है। वह जो भीतर का अंतःकरण है, वह सभी लोग खोज ही नहीं पाते और अगर समजा कोई भी अंतःकरण पैदा न करे, तो आदमी पशु जैसा हो जाएगा। तो समाज आप पर छोड़ नहीं सकता कि जब आप खोजेंगे अंतःकरण, तब तक आपको छोड़ा नहीं जा सकता। क्योंकि भय है इस बात का कि आप बिल्कुल पशु जैसे न हो जाएं। खोजना तो दूर रहा, कहीं ऐसा न हो कि समय बीत जाए तो फिर समाज भी आपको अंतःकरण देने में असमर्थ हो जाए।

इसलिए जिन-जिन समाजों में धर्म का प्रभाव शिथिल हुआ है, जिन-जिन समाजों में पारिवारिक शिक्षण कम हुआ है, जिन-जिन समाजों में शिक्षा का काम निरपेक्ष सरकारों ने ले लिया है, वहां असली अंतःकरण की आवाज तो पैदा ही नहीं होती, नकली अंतःकरण की आवाज भी समाप्त हो जाती है। और आदमी करीब-करीब मनुष्य से नीचे के तल की स्वच्छंदता में जीना शुरू कर देता है। समाज की मजबूरी है। आप पर भरोसा नहीं किया जा सकता। इसलिए समाज इसके पहले कि आप अपने अंतःकरण को खोजें, एक सब्स्टीट्यूट कांशियंस, एक परिपूरक अंतःकरण आपके भीतर निर्मित करता है।

तो हर समाज अलग करेगा, क्योंकि हर समाज की समझ, मान्यता, परंपरा, संस्कृति भिन्न है। एक समाज सोच भी नहीं सकता कि चचेरी बहन से शादी हो सकती है। सोच ही नहीं सकता। लेकिन दूसरा समाज सुविधापूर्ण रूप से कर सकता है। न केवल सुविधापूर्ण रूप से, बल्कि जब तक चचेरी बहन मिले तक तक किसी और से शादी करना व्यर्थ ही माने। अड़चन जरा भी नहीं है। समाज की मान्यता के ऊपर निर्भर है। और समाज की मान्यता हजारों साल केविशेष भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक परंपरा का हिस्सा है।

ऐसे लोग हैं।। हिंदुस्तान में ऐसे लोग हैं, राजस्थान में ऐसे लोग हैं।। जिनमें यह परंपरा रही है कि जब तक लड़का चोरी करने में कुशल न हो, उसका विवाह न हो सके। लड़की वाला पूछेगा कि लड़के ने कितनी चोरियां कीं, कितने डाके डाले? कभी जेल गया है या नहीं? अगर लड़के ने चोरी ही नहीं की, डाका ही नहीं डाला, जेल भी नहीं गया, तो ऐसे निकम्मे लड़के के साथ शादी कौन करेगा!

चोरों के समाज हैं। तो वहां चोरी नियम है। वहां चोरी में कुशलता योग्यता है। पख्तून हैं, पाकिस्तान की सीमा पर... मेरे मित्र पख्तूनिस्तान की यात्रा पर थे। उन्होंने लौटकर मुझे कहा कि जब हम यात्रा पर भीतर प्रवेश किए पख्तूनों के इलाकों में, तो हमें कहा गया कि सांझ के बाद कभी भी जीप में मत चलना, क्यों पख्तून लड़के अक्सर ही ड्राइवरों को निशाना बना लेते हैं। उन्होंने कहा, लेकिन हमारा किसी से झगड़ा नहीं है, कोई निशाना क्यों बनाएगा? उन्होंने कहा, झगड़े का सवाल नहीं है, निशाना सीखने के लिए; जवान लड़के हैं, निशाना सीख रहे हैं, तो एक ड्राइवर जा रहा है, गाडी जा रही है, वे गोली मार देंगे। अगर आप चिड़िया को निशाना बनाकर सीखने के लिए मार सकते हैं, तो हर्ज क्या है; आदमी को भी निशाना बनाया जा सकता है, सीखने के लिए। और फिर जब अंत में आदमियों को ही मारना है, तो चिड़ियों को बीच में क्यों फंसाना; निशाना ठीक ही जगह लगाना सीखना चाहिए। मगर पख्तून लड़के को कोई अंतःकरण में ऐसा भाव पैदा नहीं होगा कि मैं यह क्या कर रहा हूं! क्योंकि उसके समाज में यह कोई सवाल नहीं है।

जापान में आत्महत्या बड़ा गौरवपूर्ण कृत्य है। अगर कोई भी व्यक्ति अपने किसी कर्तव्य से च्युत हो जाता है, तो यह शालीनता की बात है कि वह तत्काल आत्महत्या कर ले। यह इज्जत की बात है। नैतिक बात है। और जापानी आदमी का अंतःकरण कहता है कि इसी वक्त आत्महत्या कर लो। अगर नहीं करोगे तो यह अपराध है। इसलिए जापान में"हाराकिरी" बड़ा सम्मान्य कृत्य है। दुनिया में कहीं नहीं है। हमको कठिन लगेगा। लेकिन यहां हमारे मुल्क में भी जैनों ने"संथारा" को सम्मान्य कृत्य माना है। अगर कोई व्यक्ति उपवास करके नियमपूर्वक,

धर्मपूर्वक, ध्यान करता हुआ अपने शरीर को विसर्जित कर दे, तो इसे आत्महत्या जैन नहीं कहते। यह"संथारा" है। और इसका बड़ा सम्मान होगा। क्योंकि इस व्यक्ति ने शरीर का ठीक से त्याग किया है। लेकिन किसी भी दूसरे मुल्क में यह आत्महत्या समझी जाएगी। और यह आदमी कानून के सामने अपराधी हो जाएगा।

अगर हम दुनिया के रीति-नियमों का खयाल करें, तो हमें पता चलेगा कि करोड़ें अंतःकरण हैं। यह अंतःकरण नहीं है। अंतःकरण तो हर आदमी के भीतर एक सा है। वह आवाज तो बिल्कुल एक सी है। वह स्वर तो बिल्कुल एक सा है। यह समाज के स्वर हैं। लेकिन बच्चों को पता भी नहीं होता तब से उसे हम समाज के स्वर उसके भीतर डालना शुरू कर देते हैं। हम उसे जो सिखा देते हैं, वह सीख जाता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि सात वर्ष के पहले आदमी अपना पचहत्तर प्रतिशन ज्ञान सीख जाता है। पचहत्तर प्रतिशत जिससे जीवन चलेगा। तो अंतःकरण तो करीब-करीब सात साल के भीतर निर्मित हो जाता है। और यह अंतःकरण फिर बदलना बहुत कठिन है। क्योंकि यह आधार बन जाता है। इसके ऊपर ही व्यक्ति खड़ा होता है। और इसीके आधार पर उसके जीवन का सारा-का-सारा भवन निर्मित होता है और जब भी वह कोई काम करने जाता है तो इसी अंतःकरण से आवाज आती है। अगर इस अंतःकरण से विपरीत है, तो आवाज आती है कि यह मत करो। समाज इस अंतःकरण को दोहरा इंतजाम करने के लिए बनाता है।

समाज बाहर कानून बनाता है, ताकि कोई आदमी गलत न कर सके। लेकिन बाहर का कानून कितना ही कुशलता से बनाया जाए उससे भी ज्यादा कुशल अपराधी सदा उपलब्ध हो जाते हैं। क्योंकि आखिर आदमी ही कानून बनाता है, तो आदमी ही उससे ज्यादा कुशलता से कानून से बच कर अपराध करने की क्षमता भी खोज लेता है। फिर कितना ही सख्त इंतजाम हो बाहर, बाहर का इंतजाम अपराधों से मुक्ति दिला नहीं सकता। तो समाज एक दूसरी व्यवस्था करता है, भीतर अंतःकरण निर्मित करता है। ताकि बाहर अपराध का भय रोके और भीतर खुद की अंतरात्मा रोके कि मत करो, यह पाप है।

और कानून से तो कोई बच भी सकता है, लेकिन अपने अंतःकरण के सामने निंदा से बचना बहुत मुश्किल है। इसलिए जो आदमी अंतःकरण की मानकर चलता है, समाज उसको आद देता है। जो नहीं मानकर चलता, उसको अनादर देता है। जो आदमी मानकर चलता है, उसे पुण्य की संपदा मिलती है। जो नहीं मानकर चलता है, उसे पाप मिलता है। जो मानकर चलता है, उसे स्वर्ग का प्रलोभन समाज देता है। जो नहीं मानकर चलता, उसको नरक में डालने का दंड देता है। यह सारी भीतरी व्यवस्था है।

तो एक तो अदालत बाहर है, जो बाहर से रोकती रहेगी। और एक अदांलत भीतर है समाज की, जो भीतर से रोकती रहेगी। इन दोनों के बीच में व्यक्ति कसा जाता है, ताकि वह गलत न हो जाए। यह हो सकता है कि वह गलत होने से बच सके, लेकिन गलत होने से बच जाना अच्छा होना नहीं है। यह हो सकता है कि वह अनैतिक न हो पाए इन दोनों व्यवस्थाओं के बीच में, लेकिन अनैतिक न होना नैतिक होना नहीं है। यह हो सकता है वह अपराधी न हो, असामाजिक न हो, लेकिन असामाजिक और अपराधी न होना धार्मिक होना नहीं है। यह सिर्फ निषेध की व्यवस्था है।

जो आदमी बुरा नहीं करता है, ऐसा समझने का कोई कारण नहीं है कि वह अच्छा करता है। और सच्चाई तो यह है कि जो आदमी बुरा करना चाहता है और इस व्यवस्था के कारण।। बाहर की और भीतर की, दोनों सामजिक व्यवस्थाएं हैं।। इस व्यवस्था के कारण नहीं कर पाता है, तो एक तरफ से नहीं कर पाता तो दूसरी तरफ से करने के उपाय खोजता है। एक दरवाजे से चूकता है तो दूसरा दरवाजा खोलता है। घूम-फिर कर मार्ग

खोजता है और बुराई कर लेता है। हां, बुराई की शकल बदल जा सकती है। बुराई का ढंग बदल जा सकता है। बुराई का नाम बदल जा सकता है।

लेकिन जिस बुराई को व्यक्ति ने जबरदस्ती दबाया है, वह कहीं न कहीं से विस्फोट होने का मार्ग खोजती रहती है। वह विष की तरह भीतर हो जाती है। और कहीं से भी फोड़ा बन कर निकलती है। इस कारण से सारी की सारी मनुष्य-जाति बहुत गहरे में रुग्ण हो गई है। अनैतिक दुख पाता है। समाज इसको दंड देता है। अगर समाज दंड नहीं दे पाता तो उसका खुद का समाज द्वारा निर्मित अंतःकरण आत्मनिंदा, आत्मग्लानि, आत्म-अपराध, हीनता से भर जाता है। वह भी दंड हो जाता है। लेकिन जिसको हम नैतिक कहते हैं, जो अपराध से भी बच जाता, अदालत से बच जाता, आत्मनिंदा से बच जाता, वह भीतर न मालूम कितने मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

इसी सदी के और समस्त मनुष्य-जाति के इतिहास के सबसे बड़े मनस्विद और मनसरोगों के ज्ञाता सिग्मंड फ्रायड ने कहा कि जब तक आदमी को नैतिक बनाने की कोशिश चलेगी तब तक मानसिक रोगों से छुटकारा नहीं हो सकता। खतरनाक वक्तव्य है। लेकिन एक जानकार का वक्तव्य है, जिसने लाखों मानसिक मरीजों को देख कर, अध्ययन करके, विश्लेषण करके, मनोचिकित्सा करके यह नतीजा दिया है कि जब तक आदमी को नैतिक बनाने की चेष्टा चलती है, तब तक मानसिक रोगों से छुटकारे का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। क्योंकि हम एक तरफ से बुराई को दबा देते हैं, वह बुराई दूसरी तरफ से निकलना शुरू होती है। और ध्यान रहे, जब वह दूसरी तरफ से निकलती है तो ज्यादा विकृत होकर निकलती है, परवर्टेड होकर निकलती है। उसका स्वाभाविक मार्ग छिन जाता है। और कई बार ऐसा होता है कि एक बीमारी रोकते हैं, तो वह दस होकर निकलती है। जैसे एक झरने को रोक दें तो दस धाराओं में फूटकर बह जाए।

फ्रायड से भी लोग पूछते थे कि फिर उपाय क्या है? क्या आदमी को नैतिक बनाना बंद कर दें? तो फ्रायड कहता है, नैतिक बनाना बंद किया कि सारी सभ्यता और संस्कृति खो जाएगी। और अगर संस्कृति और सभ्यता बनाए रखनी है तो नैतिक बनाना पड़ेगा, लेकिन परिणाम में आदमी मानसिक रूप से ग्रस्त होता रहेगा, बीमार होता रहेगा। इसलिए जितना सभ्य समाज हो, उतनी ज्यादा मानसिक बीमारी हो जाती है। मात्रा सभ्यता के साथ बढ़ती है। तो फ्रायड ने कहा है कि सभ्यता को अगर रखना है, तो उसका यह अनिवार्य फल है, भोगना ही पड़ेगा।

मगर यह बड़ी दुखय बात है और अवसाद से भरती है मन को। ये दोनों ही बातें चुनने योग्य नहीं मालूम पड़तीं कि आदमी असभ्य हो जाए, असंस्कृत हो जाए पशुओं जैसा हो जाए। यह भी मन मानने को नहीं करता। और यह भी मानने को नहीं करता कि पूरी जमीन एक पागलखाना होती चली जाए। और धीरे-धीरे लोग इतने मानसिक रोगों से भर जाएं, जैसा कि आज हो गया है। आज जो बहुत सभ्य मुल्क है, वहां आज सामान्य चिकित्सक की बजाय मानसिक चिकित्सक की मांग बढ़ती चली जाती है। और सामान्य बीमारियां सामान्य हो गई हैं। उनके इलाज की कोई दिक्कत नहीं रही है, उनका इलाज हो जाता है, चिकित्सा खोज ली गई है, मन की बीमारियां असामान्य रूप से भारी होती जा रही हैं। उनका इलाज मुश्किल मालूम होता जा रहा है। और इलाज करने, खोजने जाते हैं तो जितनी जटिलताएं दिखाई पड़ती हैं वे घबड़ाने वाली हैं।

पिछले पच्चीस वर्षों के मनस्विदों की खोज का यह परिणाम है कि अगर एक पागल आदमी को ठीक करना हो, तो पहले वे उसी आदमी को ठीक करते थे; अब वे कहते हैं कि इस पागल आदमी को हम तब ही ठीक कर सकते हैं जब इसके पूरे परिवार को ठीक करें, क्योंकि यह परिवार के ही कारण पागल है। और अब

मनोवैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि परिवार को ठीक करने से क्या होगा, इसका परिवार भी एक समूह का हिस्सा है। और वह समूह पूरा-का-पूरा कुछ पागलपन से भरा है, इसलिए यह परिवार पागल हो जाता है, इसलिए इस परिवार का एक आदमी पागल हो जाता है। और मजे की जो बात है वह यह है कि वे कहते हैं, अगर बीस परिवारों का एक समूह हो तो जो परिवार सबसे ज्यादा संवेदनशील होगा, ईमानदार होगा, वह सबसे पहले पागल हो जाएगा। उस परिवार में जो आदमी सबसे ज्यादा संवेदनशील होगा और ईमानदार होगा, वह सबसे पहले पागल हो जाएगा। क्योंकि बेईमान आदमी पागल होने से बचने का रास्ता निकाल लेता है। वह कहता कुछ है, करता कुछ है, पागल नहीं होता वह। लेकिन अगर बहुत ईमानदारी से, वह जो कहता है वह करे, तो मुसीबत में पड़ जाता है। यह बड़ी मुश्किल बात है।

सारी नीति कहती है कि आचार और विचार एक सा होना चाहिए। लेकिन हमें आदमी मिलते नहीं जिनके आचार और विचार एक से हों। जिनको हम कहते हैं कि इनके आचार और विचार एक से हैं उनका भी परीक्षण वैज्ञानिक हमें पता नहीं है करना, नहीं तो पता चले कि एक से नहीं हैं। अगर बिल्कुल एक-से हों, तो वह आदमी पागल हो जाएगा, अगर समाज के अंतःकरण को मान कर चला है तो। अगर वह पागल नहीं है, तो वह कहीं न कहीं इंतजाम कर रहा है। उसके जीवन के पीछे के दरवाजे भी हैं। जिनसे निकल कर वह अपने पागलपन का निकास कर लेता है।

यह अंतःकरण इस सूत्र का अंतःकरण नहीं है, यह पहली बात खयाल में ले लें। इस सूत्र में जिस अंतःकरण की बात है, वह वह अंतःकरण है जब व्यक्ति इस अंतःकरण को बिल्कुल ही हटाकर अपने भीतर झांकता है। समाज की समस्त पर्तों को हटाकर, समाज को सब तरह से अलग करके; समाज ने जो-जो डाला है भीतर, समाज ने जो-जो अरोपित किया है, समाज ने जो-जो संस्कार निर्मित किए हैं, उनकी परछाईं भी न पड़े, उन सबको दूर हटाकर, एक तरफ रख कर जब कोई अपने भीतर झांकता है, तब उसे पहली बार उस अंतःकरण का पता चलता है जो हमारे शरीर में हमें वैसे ही मिला है जैसे आंखें मिली हैं, हृदय मिला है, बुद्धि मिली है। वह हमारे जीवन का अनिवार्य अंग है। उस अंतःकरण की जब शुद्धि हमारे खयाल में आ जाए और उसकी आवाज सुनने की कला हमें आ जाए तब फिर इस जीवन में विचार और आचरण में कोई फर्क नहीं होता। तब इस जीवन में आदमी कभी भी ऐसा नहीं कहेगा कि मुझे ठीक तो कुछ और लगता है, लेकिन करता मैं कुछ और हूं। तब जो ठीक लगता है, वही होता है।

सुकरात ने कहा है, ज्ञान ही आचरण है। वह उसी ज्ञान की बात कर रहा है, जो अंतःकरण से होता है। ज्ञान और आचरण में फिर कोई फर्क नहीं है। अगर फर्क है तो समझना कि आप जिस अंतःकरण की बात कर रहे हैं, वह आपका अंतःकरण नहीं है। उस आंतरिक अंतःकरण का अनुभव ठीक वैसा ही होता जाता है, जैसा कोई आग में जानते हुए कि हाथ जल जाता है और हाथ नहीं डालता। क्योंकि जानता है कि हाथ जल जाता है। और कभी ऐसा नहीं कहता कि मैं जानता तो हूं कि हाथ जल जाता है, फिर भी क्या करूं, डालता हूं। उस अंतःकरण की आवाज पर आदमी वैसे ही चलता है जैसे आदमी को मकान के बाहर निकलना हो तो दरवाजे से निकलता है। और वह यह नहीं कहता कि मुझे मालूम तो है कि दरवाजा कहां है, लेकिन क्या करूं, कमजोरी कि दीवाल से निकल जाता हूं, सिर फूट जाता है। मालूम तो है कि दरवाजा कहां है!

नहीं, वैसा आदमी कभी नहीं कहता कि मुझे मालूम है कि ठीक क्या है, फिर भी मैं गलत करता हूं। क्योंकि वैसी अंतःकरण कि स्थिति में जानना और होना, जानना और करना सम-अर्थी हो जाता है। फिर आदमी वैसा नहीं कहता कि मुझे पता तो है कि क्रोध बुरा है, लेकिन क्या करूं, हो जाता है। मुझे पता तो है कि गाली

नहीं देनी थी, बुरी है, पीछे पछताना भी हूं, लेकिन क्या करूं, हो जाता है। ध्यान रहे, यह जो हमारे चित्त की दशा है, यह बता रही है कि हमारा करना कहीं और से आ रहा है और हमारी समझ उतनी गहरी नहीं जहां से करना आ रहा है।

तो मेरा ऊपर का अंतःकरण।। समाज ने मुझे सिखाया है, कि क्रोध बुरा है तो मैं जानता हूं क्रोध बुरा है, लेकिन गहरे में मेरा जो व्यक्तित्व है, वह इससे ज्यादा गहरा है। वह क्रोध करता है और मैं अवश हो जाता हूं, मेरा कोई वश नहीं चलता। हां, एक ही काम मैं कर सकता हूं।। जो कि थोथे अंतःकरण वाले लोगों को निरंतर करना पड़ता है।। वह है; पश्चात्ताप। कर लूंगा, फिर पछता लूंगा। और मजे की बात यह है कि कितना ही पश्चात्ताप करो, इससे जो किया है उसमें बदलाहट नहीं आती। आज क्रोध करूंगा, सांझ पछताऊंगा, कल सुबह फिर क्रोध करूंग, कल सांझ फिर पछताऊंगा। और तब पछतावा क्रोध का एक अनिवार्य हिस्सा मात्र हो जाएगा।

और यह भी आप जानकर हैरान होंगे, आमतौर से हम सोचते हैं कि पछताने वाला आदमी अच्छा है, कम के कम बेचारा क्रोध करता है तो प्रायश्चित तो करता है। कोई बात नहीं, आज क्रोध होता है, प्रायश्चित्त होना है, धीरे-धीरे प्रायश्चित्त की समझ बढ़ेगी तो क्रोध बंद हो जाएगा। बात बिल्कुल उलटी है। आदमी प्रायश्चित्त इसलिए नहीं करता कि वह क्रोध को बंद करने वाला है, प्रायश्चित्त इसलिए, करता है कि क्रोध से उसके भीतर स्वयं के अहंकार को चोट लगती है; प्रायश्चित्त से उसको वह पोंछ डालता है। पिर पुरानी जगह खड़ा हो जाता है, जहां क्रोध करने के पहले खड़ा था। अब वह फिर क्रोध करने में समर्थ है।

अगर मैं सोचता हूं कि मैं अच्छा आदमी हूं।। और सभी लोग सोचते हैं कि हम अच्छे आदमी हैं।। मैं सोचता हूं कि मैं अच्छा आदमी हूं, मैं सोचता हूं कि मैं कभी क्रोध नहीं करता, और कभी करता भी हूं तो वह दूसरे लोग ऐसी स्थिति बन देते हैं, इसलिए करता हूं। या दूसरों में सुधार करने के लिए करता हूं। ऐसे हम न मालूम कितने रेशनलाइजेशन अपने आप को समझाने के लिए करते हैं। फिर मैं क्रोध करता हूं, तो फिर मुझे चोट लगती है। मेरे ही सामने मेरा अहंकार दीन हो जाता है। मुझे लगात है, कहां गया वह अच्छा आदमी! तो क्या मैं अच्छा आदमी नहीं हूं? क्रोध तो मैंने किया। तो अब मेरे अच्छे आदमी की जो प्रतिमा खंडित हो गई, उसे पूरा करने का उपाय पश्चात्ताप है। अब मैं पछताता हूं। बुरा किया, बहुत बुरा किया, ऐसा नहीं करना चाहिए था। हो गया। अघट था, घट गया। नियति थी, भाग्य था, मूर्छा आ गई, खयाल न रहा, स्थिति ऐसी हो गई, हजार बहाने खोज कर मैं पछता लेता हूं। मान लेता हूं कि बुरा किया।

इसका मतलब आप जानते हैं?

इसका मतलब यह है कि आदमी तो मैं अच्छा ही हूं। मुरा हो गया, आदमी बुरा नहीं हूं। आदमी का बुरा होना और बुरे कर्म के हो जाने में बड़ा फर्क है। एक वृक्ष है, उसमें एक पत्ता सूखा हुआ है, इससे कोई वृक्ष सूखा हुआ नहीं होता। आदमी तो मैं अच्छा ही हूं। करोड़ कृत्य में एक कृत्य बुरा हो जाता है, तो उससे आदमी तो बुरा नहीं हो जाऊंगा। पश्चात्ताप करके सूखे पतते को काट कर गिरा देता हूं, वृक्ष फिर हरा हो जाता है। फिर मैं मान लेता हूं कि आदमी तो अच्छा ही हूं, एक बात बुरी हो गई, इससे कोई मैं बुरा नहीं हो जाता हूं। किससे बुरा नहीं हो जाता! फिर पश्चात्ताप भी मैंने कर लिया। बुरे आदमी कहीं पश्चात्ताप करते हैं! माफी भी मांग सकता हूं, क्षमा भी मांग सकता हूं। लेकिन, यह मैं सिर्फ पुनः स्थिति वही की वही पाने की कोशिश कर रहा हूं, जो क्रोध के पहले मेरी थी। उसे जिस क्षण मैं पा लूंगा, मैं फिर उसी जगह आ गया जब मैं पुनः क्रोध कर सकता हूं। मैं पुनः

क्रोध करूंगा। जिस अंतःकरण को हम अंतःकरण समझते हैं, वह हमे सिर्फ इसी दमन, पश्चात्ताप, विकृति में ले जाता है। लेकिन समाज को उपादेयता है। समाज थोड़ा नियंत्रण करने में समर्थ हो जाता है।

इस सूत्र में जिस अंतःकरण की बात है वह वह अंतःकरण है, जिसे हम कहें समाज से अस्पर्शित, मेरी ही भीतर की मेरी ही चेतना की जो आवाज है, सहस स्फूर्त मेरा ही जो स्वर है, उसकी तलाश। धर्म अंतःकरण की तलाश है।

क्या है मेरा अंतःकरण?

जीसस एक गांव के बाहर ठहरे हुए हैं। गांव के लोग एक स्त्री को पकड़ कर लाते हैं और कहते हैं कि व्यभिचारिणी है। और हमारे शास्त्र में लिखा है कि व्यभिचारिणी को पत्थरों से मार कर मार डालना चाहिए, आप क्या कहते हैं? उस शास्त्र का जीसस को भी पता था। जीसस ने भी बचपन से उसी शास्त्र को पढ़ा-सुना था। जीसस भी उसी समूह के अंग थे। और वे गांव के लोग जानकर ही यह मामला लाए थे। क्योंकि वे जानना चाहते थे कि अगर जीसस कहें कि नहीं, वह शास्त्र गलत है, तो हम जीसस को ही पतथरों से मार डालें; और अगर जीसस कहें कि शास्त्र सही है, तो हम जीसस के सामने ही इस स्त्री की हत्या करें और फिर जीसस से पूछें कि तुम्हारी शिक्षाओं का क्या हुआ! जिनमें तुम कहते हो कि अगर कोई एक गाल पर चांटा मारे तो दूसरा उसके सामने कर देता। और जिनमें तुम कहते हो कि शत्रु को भी प्रेम करना। और जिनमें तुम कहते हो कि बुराई भी प्रतिरोध न करना।। रेसिस्ट नॉट इविल, ऐसा तुम कहते हो, उसका क्या हुआ? तो उन्होंने एक पहेली में जीसस को फंसाना चाहा।

जीसस ने आंख बंद कर ली, फिर जीसस ने आंख खोली।। यह क्षणभर का आंख बंद करना और खोलना जीसस का अपने अंतःकरण में उतरना था।। और जीसस ने कहा कि शास्त्र बिल्कुल ठीक कहता है कि जो व्यभिचार करे, उसे पत्थरों से मार डालो। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि शास्त्र में एक बात छूट गई है। और वह यह है कि पत्थर मारने का अधिकारी वही है जिसने कभी व्यभिचार न किया हो, या व्यभिचार का विचार न किया हो। तो अब तुम पत्थर उठा लो। तब तो भीड़ में जो समाज के नेता थे, आगे खड़े थे, वे धीरे-धीरे पीछे सरकने लगे। जीसस ने कहा कोई भाग न पाए, क्योंकि आज इस स्त्री की हत्या करनी ही है, और सामने आए वह आदमी पत्थर उठा कर जो कह सकता हो कि मैंने व्यभिचार का विचार नहीं किया, व्यभिचार नहीं किया। भीड़ छंट गई।

थोड़ी ही देर में उस निर्जन जगह में जीसस और उस स्त्री के सिवाय कोई भी न बचा। उस स्त्री ने जीसस के चरणों पर सिर रख दिया और कहा कि मुझे दंड दो। क्योंकि उनसे तो मैं कह सकती थी कि मैं व्यभिचारिणी नहीं हूं, लेनि तुमसे कैसे कहूं! उनसे मैं लड़ सकती थी कि वे मेरे ऊपर अन्याय कर रहे हैं, लेकिन तुमसे मैं कैसे कहूं! मुझे दंडा दो। जीसस ने कहा, मैं तुझे दंड देने वाला कौन? जीसस ने क्षण भर को आंख बंद की, आंख खोली, उस स्त्री को कहा कि तू जा। क्योंकि उस परम शक्ति के सामने ही तेरा निर्णय हो सकता है। मैं निर्णय करने वाला कौन?

यह अंतःकरण की आवाज है।

यह जीसस का बार-बार भीतर झांकना, निश्चित ही जीसस के अंतःकरण ने कुछ बात कहीं जो दुनिया में जिसके पास भी अंतःकरण होगा, यही बात कहेगा। क्या हक है उसे, जो खुद व्यभिचारी रहा हो, किसी को व्यभिचारी कहने का भी क्या हक है? लेकिन जीसस तो व्यभिचारी भी नहीं थे, उन्हें तो हक था पत्थर मार देने का। लेकिन जीसस ने फिर अपने अंतःकरण में झांका और कहा कि मैं कौन हूं तेरा निर्णय करने वाला? न मैंने

तुझे बनाया, न मैंने तुझे जीवन दिया, न मैं तेरे जीवन का नियंता हूं, तो मैं निर्णायक कैसे हो सकता हूं? तो मैं इतना ही कहता हूं तुझसे कि दूसरों के निर्णायक मत बनना। तू जा सकती है।

यह किसी समाज की आवाज नहीं है। ऐसा किसी शास्त्र में लिखा नहीं है। ऐसा किसी समाज ने किसी को सिखाया नहीं। यह अनसीखी,"अनलर्न्ड" सहज-स्फुरणा है। अगर बुद्ध से पूछेंगे, तो यही आवाज निकलेगी। अगर महावीर से पूछेंगे, तो यही आवाज निकलेगी। यह आवाज व्यक्तियों की आवाज नहीं है, व्यक्तियों के भीतर जो छिपा है सर्वात्मा, निर्व्यक्ति; व्यक्तियों के भीतर जो छिपी है चैतन्य की ऊर्जा, उसकी आवाज है। इसका नाम है अंतःकरण। उसकी तलाश करनी पड़े। हमारे पास है तो, लेकिन छिप है। प्रकट बिल्कुल नहीं है। है तो, क्योंकि हम हैं; चेतना है, तो चेतना की अपनी वाणी है, अपनी आवाज है। लेकिन छिपी है। और जो आवाजें हमसे निकलती रहती हैं, वे दूसरों की आवाजें है, जो हममें डाली गई हैं। वे आवाजें ग्रामोफोन रिकॉर्ड की आवाजें है, वे हमारे अंतःकरण की आवाजें नहीं हैं। ग्रामोफोन रिकॉर्ड की तरह हमारे भीतर ग्रूव्ज बनाए है समाज ने, उस पर सुई घूमती है बुद्धि की, आवाज आ जाती है, लगता है यह बुरा, वह भला।

यह भला और बुरा एक तरफ जो करने की क्षमता रखता हो और भीतर उतरने का साहस जुटाता हो कि मैं देखूं उस जगह को, जिस दिन मैं पैदा नहीं हुआ था उस दिन भी जो जगह मेरी थी; जब मैं गहन अंधेरी रात में सो जाता हूं, सुषुप्त हो जाता हूं, सपने भी खो जाते हैं, तब भी जो जगह मेरी है; जब मैं मरूंगा, शरीर गलेगा, टूटेगा, नष्ट हो जाएगा, तब भी जो जगह मेरी होगी, उस जगह को खोजूं, वही है अंतःकरण।

खोजने की एक प्रक्रिया आपको कहूं। जब भी आपके भीतर लगे कि यह भला, वह बुरा; यह ठीक, वह गैर-ठीक; तब जरा निरीक्षण करें, यह जिस समाज में आप पैदा हुए हैं उसका प्रतिफलन है कि आपका विवेक?

शंकर ने छोटी उम्र में संन्यास लिया। बूढ़ी मां मां थी।। बड़ी उम्र में शंकर पैदा हुए थे। पिता चल बसे थे। तो बूढ़ी मां हिम्मत न जुटा पाती थी कि शंकर संन्यास ले लें। नदी में तैरते थे तो मगर ने शंकर का पैर पकड़ लिया, तो सारा गांव बचाने को इकट्ठा हो गया, मां भी भागी हुई आई। तो शंकर ने चिल्लाकर पूछा कि मैं मगर से प्रार्थना कर सकता हूं और आशा है मुझे कि पैर छूट जाए, लेकिन संन्यास के बाबत क्या? अगर संन्यास के लिए तू राजी हो, तो मुझे लगता है कि मगर पैर छोड़ देगा। मां ने यह देख कर कि मरने से तो संन्यास ही बेहतर।। और इससे कम में कोई राजी नहीं होता।। कह दिया कि मैं वायदा करती हूं, तू संन्यास ले लेना, मगर बच। पता नहीं मैत्री रही होगी गहरी शंकर और उस मगर में, किन्हीं जन्मों के संबंध रहे होंगे, मगर ने पैर छोड़ दिया। शंकर बच गए, संन्यास लिया।

लेकिन मां ने जाते वक्त कहा कि एक वायदा कि मेरा अंतिम दाह-संस्कार तू ही करना। यह उलझन की बात थी उन दिनों। शंकर कहां होंगे, कहां भटकते होंगे।। पैदल थी यात्रा, सारे मुल्क में भटकना था! भिखारी होंगे। फिर भी वायदा उन्होंने किया। फिर मां बीमार पड़ी, खबर मिली, शंकर भागने लगे। शिष्यों नें, साथियों ने समझाया कि कौन मां, कौन पिता! संन्यासी का कोई माता-पिता है! और दिए थे वायदे अज्ञान मैं। माया है सारा संसार, तुम्हीं कहते हो। कैसा वायदा, कैसा वचन! कौन पूरा करने वाला है! सब सपना है। तुम ही कहते हो। शंकर आंख बंद करके बैठ गए और फिर उठ कर उन्होंने कहा कि नहीं, जाना ही पड़ेगा। होगा संसार माया, होंगे सब संबंध झूठे, लेकिन मेरे भीतर जो छिपा है वह कहता है जाना ही पड़ेगा।

लेकिन शक हो सकता है, शक हो सकता है हमें कि यह असली अंतःकरण हो, न हो। क्योंकि आखिर मां, दिया वचन, यह संस्कार की ही छाप हो सकती है। समाज की ही छाप हो सकती है कि दिया हुआ वचन है, मां

को दिया है, मां मरती होगी, आखिरी क्षण है, यह समाज की छाप हो सकती है। लेकिन शीघ्र ही पता चल गया साथियों को, शिष्यों को कि वह समाज की आवाज नहीं है।

शंकर गांव में पहुंचे, नंबूद्रीपाह ब्राह्मण का परिवार था। श्रेष्ठतम दक्षिण के ब्राह्मण। गांव ने इनकार कर दिया कि संन्यासी बेटा कैसे दाह संस्कार कर सकता है? ब्राह्मणों का गांव था।। संन्यासी जो हो गया उसका कौन मां और कौन पिता, कैसे संन्यासी बेटा दाह संस्कार कर सकता है! यह नहीं हो सकता। यह तो संन्यास भ्रष्ट हो जाएगा।

शंकर ने कहा कि दाह-संस्कार तो मैं करूंगा ही। कोई गांव में अर्थी में सम्मिलित होने न आया। मां वजनी थी, शरीर भारी था, शंकर दुबले-पतले। बड़ी मुश्किल पड़ गई, इसको मरघट तक ले जाना मुश्किहो गया। तो शंकर ने आंख बंद की, उठाई तलवार, तीन टुकड़े मां के शरीर के किए, एक-एक टुकड़े को एक-एक बार ले जाकर मरघट पहुंचे। इस आदमी केपास समाजवाला अंतःकरण नहीं हो सकता! यह जो मां के शरीर को तीन टुकड़े कर सके। मित्र भी घबड़ाए, शिष्य भी घबड़ाए, उन्होंने कहा हद्द कर दी! वचन क्या पूरा करना है, कोई सीमा भी होती है! तुम क्या कर रहे? तो शंकर ने कहा, जगत माया है। और शरीर तो मर ही गया। और शरीर को काटने में क्या दिक्कत है! मैंने पूछ लिया अपने भीतर से।

समाज जो संस्कार देते हैं।। समाज, सभी समाज देते हैं।। उन्हें एक तरफ हटाएं... हटाना पड़े, और फिर धीरे-धीरे भीतर निरीक्षण करना पड़े, एक घड़ी ऐसी आ जाती है भीतर जब साफ-साफ दिखाई पड़ने लगता है क्या समाज का है और क्या मेरा है। क्योंकि जब स्वयं की आवाज आती है तो उसके विपरीत कोई आवाज नहीं आती। वह एक-स्वर होती है। समाज की कैसी ही आवजा हो, उसके विपरीत की आवाज सदा मौजूद होती है। चाहे कितना ही अंतःकरण कहता हो।। तथाकथित अंतःकरण।। कि चोरी बुरी है, एक हिस्सा कहता है करो भी, कौन देख रहा है! एक हिस्सा कहता है मांसाहार बुरा है, दूसरा हिस्सा कहता है सारी दुनिया कर रही है। तुम्हीं भले होने के लिए किसलिए पीछे पड़े हो? कोई तुमने भले होने का ठेका लिया है? कि शराब बुरी है। सारी दुनिया पी रही है। तुम क्यों अपना जीवन नष्ट कर रहे हो, पीओ!

अंतःकरण की आवाज का एक लक्षण आपसे कहूं, उसका विरोधी स्वर सदा मौजूद होता है। तथाकथित अंतःकरण में। असली अंतःकरण का विरोधी स्वर मौजूद नहीं होता। एक ही स्वर होता है। उसके विरोध की कोई आवाज नहीं होती। तो जब तक आपको विरोधी स्वर की खनक मिलती रहे, तब तक जानना कि यह समाज के द्वारा दिया गया अंतःकरण है। यह परमात्मा के द्वारा दिया गया अंतःकरण नहीं। जिस दिन एक स्वर उपलब्ध हो जाए... शंकर ने कहा कि काटेंगे, उठाई तलवार और काट ही डाला। एक क्षण को भी शंकर के मन में न हुआ कि जरा सोच तो लूं, मां के शरीर को काटना! यह कहीं हिंसा न हो जाए यह मातृहत्या न हो जाए! यह मैं क्या कर रहा हूं, यह कभी नहीं किया गया! किसी बेटे ने नहीं काटा। और फिर शंकर जैसे बेटे ने तो कभी नहीं काटा। मगर नहीं, वह काटकर और जाकर जला आए और बड़े प्रसन्न थे। काम निपट गया था। एक स्वर है।

फिर जिंदगी में, पूरी जिंदगी किसी ने कभी नहीं सुना कि शंकर को एक दफे भी ऐसा खयाल भी आया हो कि मैंने कुछ गलत किया। आप अपने अंतःकरण।। जिसको आप अंतःकरण कहते हैं, तथाकथित।। उसकी माने तो भी पछताना पड़ेगा, न माने तो भी पछताना पड़ेगा। यह दूसरा लक्षण आपको कहता हूं। माने तो भी पछताना पड़ेगा। न करें चोरी, मान लें, पछताएंगे जिंदगी भर कि चूक गए। सारे लोग कर गुजरे, समय था, अवसर हाथ में आया था, खो गए। फलाने ने की, नहीं पकड़ाया; फलाने ने की, वह मंत्री हो गया; फलाने ने की, उसने यह

कर लिया। और हम भूके मर रहे हैं। कहां की बात में पड़ गए! कर लें, तो भी पछताएंगे। क्योंकि कर लें तो दीनता पकड़ेगी, ग्लानि पकड़ेगी, अपराध पकड़ेगा कि न करते तो अच्छा होता।

अंतःकरण समाज के द्वारा दिया गया हर हालत में पश्चात्ताप लाता है। हर हालत में। क्योंकि दो स्वर हैं। आप एक की ही मान सकते हैं, दूसरे का क्या होगा? दूसरा हिस्सा प्रतीक्षा करेगा, आपको पश्चात्ताप करवाएगा। उसकी मानेंगे तो पहला प्रतीक्षा करेगा, वह आपको पश्चात्ताप करवाएगा। लेकिन जिस अंतःकरण का इस सूत्र में संकते है, उसकी आवाज मान कर कभी कोई पश्चात्ताप नहीं होता। कभी!

तीसरा लक्षण आपसे कहूं। जिस अंतःकरण में हम जीते हैं, इसकी स्मृति बनती है। क्योंकि कोई भी कृत्य पूरा तो होता नहीं, अधूरा रह जाता है। क्योंकि आधा हिस्सा तो खिलाफ रहता है, अधूरा रहता है। चोरी भी करते हैं तो आधे-आधे मन से होती है। पूरा चोर आपने देखा? ऐसा एकाध आदमी कोज सकते हैं आप जो पूरा बेईमान हो? पूरा बेईमान का मतलब है कि जिसके भीतर जरा-भी खयाल न उठता हो कि गलत कर रहा हूं, बुरा कर रहा हूं, नहीं करना चाहिए। कहीं कोई दबी आवाज न कहती हो कि यह बेईमानी है। नहीं, पूरा बेईमान खोजना मुश्किल है। और इन बेईमानों की दुनिया में पूरा ईमानदार आदमी भी खोजना मुश्किल है। जिसके मन में ऐसा न उठता हो कि कर ही लेते तो क्या बिगड़ जाता था। वह उठता ही रहता है। इस अंतःकरण की अगर मानकर चलिएगा तो इसकी स्मृति बनती है। क्योंकि अधूरा कृत्य रहता है, अटका रह जाता है मन में। लगता है पूरा कर लेते। जिस अंतःकरण की इस सूत्र में चर्चा है, उसकी कोई स्मृति नहीं बनती। पूर्ण कृत्य की कोई स्मृति नहीं होती। वह होता है और खो जाता है।

इसलिए चौथी आपसे आखिरी लक्षणा कहूं। इस अंतःकरण को मान कर आप चलेंगे तो कर्म का बंध होता है, क्योंकि कर्म अधूरा होता है, और उसके साथ स्मृति बनती है और चिपट जाती है मन में और छूटती नहीं, छूटती नहीं। अगर कर्म पूरा हो, टोटल, एकूट हो, कोई स्मृति नहीं बनती, कर्म का कोई बंधन नहीं बनता, चित्त सदा मुक्त रहता है। आपने जो किया है पूर्ण हृदय से, वह आपके हृदय पर बोझ नहीं होता। इसलिए अगर मुझसे पूछें तो मैं कहूंगा, अधूरे मन से जो किया जाता है वही पाप है; पूरे मन से जो किया जाता है वही पुण्य है। अगर मुझसे पूछें तो पाप और पुण्य की ऐसी परिभाषा है। जो अधूरे मन से किया जाता है वह पाप है, चाहे आपने मंदिर बानाया हो अधूरे मन से। और जो पूरे मन से किया जाता है, वह पुण्य है, चाहे आपने चोरी ही क्यों न की हो। हालांकि परे मन से चोरी नहीं की जाता सकती यद्यपि अधूरे मन से मंदिर बानाया जा सकता है।

इस अंतःकरण का, इस शब्द अंतःकरण का पहला खयाल ले लें।

दूसरा शब्द है।। प्रणव। ओंकार, ओम्।

भारतीय साधना के बहुत-बहुत रूप हैं। बड़े भेद हैं उनमें। बड़ी विपरीतताएं हैं। बड़े विवाद हैं। जैसे तीन बड़ भारतीय स्वर हैं साधना के।। जैन, बौद्ध, हिंदू। तीनों में बड़े सैद्धांतिक विवाद हैं। कहीं कोई तालमेल नहीं दिखाई पड़ता। हिंदू मानते हैं ईश्वर को भी, आत्मा को भी। जैन मानते हैं सिर्फ आत्मा को। ईश्वर को नहीं मानते। बौद्ध न मानते ईश्वर को, न आत्मा को। बड़े मौलिक भेद हैं। लेकिन एक बड़े मजे की बात है कि ओम के संबंध में तीनों एक साथ राजी हैं। प्रणव के संबंध में जरा-भी विवाद नहीं। छोटी-छोटी चीज पर विवाद हैं और कहीं कोई तालमेल नहीं है, लेकिन यह ओम शब्द के संबंध में कोई विवाद नहीं है। तो लगता है कि ओम जो है, वह कोई सैद्धांतिक बात नहीं है, वैज्ञानिक बात है।

और न केवल भारत में, भारत के बाहर जो तीन बड़े धर्म हैं।। यहूदी, इस्लाम और ईसाइयत।। ओम के संबंध में उनका भी कोई विवाद नहीं है, यद्यपि वे उसको "अमीन" कहते हैं। बस इतना ही फर्क है। और "ओम्"

जो है और "अमीन" जो है, भाषा शास्त्री कहते हैं वह एक ही चीज है। उनमें कोई फर्क नहीं है। वह सिर्फ भाषा में उस ध्वनि को पकड़ने में फर्क हुआ है।

इसलिए आपसे यह बात कहना चाहता हूं, ओम एक शब्द है पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में जिसमें दुनिया के छह महत्वपूर्ण धर्म राजी हैं। जिसे वे स्वीकार करते हैं कि इसमें कुछ है।

इस शब्द में क्या है?

इसे हम दो-तीन प्रकार से खयाल में लें। एक्र मनुष्य का मन जो है, वह शब्दों का समूह है। आपके मन में क्या है सिवाय शब्दों के? अगर आपसे हम सारे शब्द बाहर निकाल लें, तो आपका मन नहीं बचेगा। आपका मन करीब-करीब ऐसा है जैसे कि प्याज होती है।। सब छिलके बाहर निकाल लें तो प्याज में पीछे कुछ बचता नहीं। ऐसा ही आपका मन है। शब्दों के छिलके। सब शब्द बाहर निकाल लें तो पीछे क्या बचेगा? मन तो नहीं बचेगा, शून्य बचेगा। सोचें थोड़ा आप कि आपके पास कोई शब्द न बचे, तो आपके पास कौन-सा मन बचेगा? क्या बचेगा? शब्दों का समूह है मन। और इसी मन से हम सब कुछ कर रहे हैं। बुरा या भला, दुख या सुख, संसार या मोक्ष, जो भी हम कर रहे हैं इस मन से कर रहे हैं।

यह ओम एक शब्द है।। शब्द कहना ठीक नहीं है, एक ध्वनि है, क्योंकि इसका कोई अर्थ नहीं। शब्द उस ध्वनि को कहते हैं जिसमें कुछ अर्थ हो।। ओम एक ऐसा शब्द है जिसका कोई अर्थ नहीं है, सिर्फ ध्वनि, लेकिन इस ध्वनि में समस्त मूल ध्वनियों का सार है। अ, उ, म, ये तीन मूल ध्वनियां हैं। जैसा मैंने कल आपको कहा कि भारतीय मनीषा को तीन का बड़ा बोध है; और जैसा मैंने आपको कहा।। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये जीवन के तीन अंग हैं; जैसा मैंने आपको कहा कि इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, पाजिट्रान फिजिक्स की दृष्टि में पदार्थ के तीन आधार हैं, ऐसे ही भारतीय मनीषा की दृष्टि में अ, उ, म समस्त भाषा, समस्त वाणी, समस्त शब्दों के तीन आधार हैं। सब ध्वनियां इन तीन ध्वनियों के जोड़ हैं। तो मौलिक तीन ध्वनियां ओम में हैं। हम ऐसा कह सकते हैं कि ओम जो है, ध्वनि की दृष्टि से एटम है। ध्वनि की दृष्टि से अणु है। इलेक्ट्रान, पाजिट्रान, न्यूट्रान तीन विद्युत कणों से मिल कर परमाणु निर्मित होता है।। पदार्थ का। अ, उ, म, तीन से निर्मित होकर जो परमाणु बनता है, वह है मन का।

ओम मन का परमाणु है। और सूक्ष्मतम परमाणु है। इससे सूक्ष्म कोई परमाणु नहीं हो सकता। इसको हम तोड़ दें, जैसा कि वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर हम इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और पाजिट्रान को तोड़ दें तो फिर हमारे हाथ से परमाणु खो जाता है शून्य में, फिर पीछे कुछ मिलता नहीं, फिर पीछे कुछ पकड़ में नहीं आता, सब निराकार हो जाता है; लेकिन उसके टूटते ही विराट ऊर्जा पैदा होती है, जिसको हम अणु-विस्फोट कहते हैं। वह अणु-विस्फोट इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और पाजिट्रान इन तीनों के अलग हो जाने से, इन तीनों के बीच जो ऊर्जा छिपी थी, जो अनंत शक्ति छिपी थी, इन तीनों के हटते ही रिलीज होती है। छूटती है। एक परमाणु बम हमने गिरा कर देखा हिरोशिमा पर। पांच मिनट के भीतर एक लाख बीस हजार आदमी राख हो गए। एक छोटा सा परमाणु।। जो आंख से दिखाई नहीं पड़ता।। उसका विस्फोट है। उन तीनों के जुड़े रहने से उतनी शक्ति उसके भीतर छिपी है। छूटते ही इतनी शक्ति बाहर विसर्जित होती है।

ठीक भारतीय मेधा ने भी।। क्योंकि भारतीय मेधा ने पदार्थ पर बहुत मेहनत नहीं की; क्योंकि उसे लगा कि पदार्थ की मेहनत कहीं ले नहीं जाती; पदार्थ पर मेहनत करके भी देख ली तो भी आदमी को कुछ उपलब्ध नहीं होता; सिर्फ वहम होता है कि मिल रहा है, मिल रहा है और हाथ खाली रह जाते हैं।। तो भारतीय मेधा ने पदार्थ पर मेहनत छोड़कर मन पर मेहनत शुरु की। क्योंकि जिस मन को ही सुख-दुख होते हैं, उसे ही क्यों न

बदल डालें। जिन वस्तुओं से सुख-दुख होते हैं उन्हें इकट्ठा करने के बजाय, जिस मन को सुख-दुख होते हैं उसे ही क्यों न बदल डाले, यह भारतीय दृष्टि निर्मित हुई। यह बहुत अनुभव से हुई।

उन सब चीजों को इकट्ठा कर लिया जिनसे सुख मिलता है, फिर भी पाया कि इकट्ठे होते ही उनसे सुख नहीं मिलता। जिनसे दुख मिलता है उनको अलग करके भी देख लिया, अलग हट जाने पर दुख किसी और से मिलना शुरू हो जाता है लेकिन समाप्त नहीं होता। अंततः पाया कि वस्तुओं से सुख-दुख का कोई सीधा संबंध नहीं है। सुख और दुख के लिए वस्तुएं सिर्फ खूंटियों का काम करती हैं। घर में हम जाते हैं, खूंटी पर कोट टांग देते हैं। अगर खूंटी न मिली तो दरवाजे पर टांग देते हैं। दरवाजा न मिला, खिड़की पर टांग देते हैं। कोट कहीं न कहीं टंगता ही है, खूंटी से कोई बहुत प्रयोजन नहीं है। इसलिए खूंटी तोड़ दो, बड़ी कर लो, कुछ फर्क नहीं पड़ता, कोट टंग ही जाता है।

भारतीय मन ने जाना कि वस्तुएं केवल खूटियों का काम करती हैं और मन उन पर टंगता है, कोट की तरह। तो अगर दुखी मन है, तो हर खूंटी पर दुखी हो जाता है। सुखी मन है, हर खूटी पर सुखी हो जाता है। शांत मन है, हर खूंटी पर शांत रहता है। अशांत मन है, हर खूंटी पर अशांत हो जाता है। इसलिए सवाल खूंटियां बदलने का नहीं, इस मन को ही बदल लेने का है। तो मन की खोज शुरू की। और मन की खोज में जो विश्लेषण उन्हें लगा, उसमें उन्होंने पाया कि ओम जो है, प्रणव जो है, वह मन का परमाणु है। क्या इस परमाणु का भी विस्फोट हो सकता है? अगर हो सके, तो इस परमाणु से भी ऊर्जा पैदा होगी। क्या इस परमाणु का भी एक्सप्लोजन हो सकता है? योग कहता है।। हो सकता है। और इसका अगर विसर्जन हो जाए, अगर यह टूट जाए तो भीतर ऊर्जा पैदा होगी। भीतर अग्नि पैदा होगी। और वही अग्नि व्यक्ति को, उसके अहंकार को, उसके कर्मों को, उसके पापों को, उसके पुण्यों को, उसने जो भी किया है।। उसके अतीत को, उसके समस्त बोझ को, उसके समस्त भार को राख कर देती है। यही अग्नि।

अब इस सूत्र को हम पढ़ें।

"ज्ञानी लोग अंतःकरण को नीचे की अरणि बनाते हैं और प्रणव को ऊपर की, और इन दोनों से ज्ञान के मंथन का अभ्यास करते हैं। उससे जो ज्ञानाग्नि पैदा होती है, उसमें अपने समस्त दोषों को जला कर बंधन से छूट जाते हैं।"

आपने शायद अरणि देखी हो? लकड़ियों को रगड़ कर आग पैदा हो जाती है। उन पुराने दिनों में, जब यह उपनिषद लिखा गया, तब आग को पैदा करने का वही सर्वसुलभ उपाय था। या तो चकमक का पत्थर होता है, उनको दो को रगड़ो; या अरणि विशेष तरह की लकड़ी होती है, उन दोनों को रगड़ो, तो अग्नि पैदा हो जाती है।

तो यह सिर्फ प्रतीक है। इस प्रतीक में ऋषि ने कहा है कि अंतःकरण को नीचे की अरणि, नीचे की लकड़ी और ओम को ऊपर की लकड़ी, ऊपर की अरणि, और इन दोनों की रगड़ से जो पैदा होती है वह अग्नि व्यक्ति के समस्त अतीत को, समस्त कर्मों को, समस्त अज्ञान को जला कर राख कर देती है और व्यक्ति मुक्त हो जाता है।

तो ओम एक अरणि। इस ओम का आंतरिक-उच्चार।। उसकी मैं तुमसे बात करूंगा। पहली बात, अंतःकरण की खोज। क्योंकि आपका जो थोथा सामाजिक अंतःकरण है, उसमें आग-माग बिल्कुल पैदा नहीं हो सकती। उसमें कुछ पैदा नहीं हो सकता। वह अरणि नहीं बन सकता। इसलिए मैंने अंतःकरण की इतनी बात आपसे की। पहले इस अंतःकरण की खोज फिर ओम का आंतरिक-उच्चार।

तो ओम् को हम तीन तरह से उच्चार कर सकते हैं। एक तो जोर से, ओंठों के द्वारा। वह बहिर-उच्चार है। फिर हम ओंठों को बंद कर लें, जीभ को भी उपयोग न करें, लेकिन भीतर मन में ही उच्चार करें। वह नंबर दो का

उच्चार है। वह मध्य का उच्चार है। फिर एक तीसरा और आंतरिक-उच्चार है, जब हम न तो ओंठों का उपयोग करें, न कंठ का उपयोग करें, न मन का उपयोग करें, और सिर्फ ओम गूंजता रह जाए। जब यह तीसरा उच्चार संभव हो जाता है, तो ओम की जो परम आण्विक स्थिति है वह हमारे हाथ में आ जती है। और नीचे का अंतःकरण हमारे पास ही और हम ओम् की परम आण्विक सूक्ष्मतम मात्रा हमारे साथ हो, तो इन दोनों की रगड़ से जो अग्नि पैदा होती है, वही ज्ञानाग्नि है।

तो पहले तो उच्चार करके बाहर ही ओम का अभ्यास करना होता है। पहले तो ओंठ से ही, वाणी से ही ओम का उच्चार करके अभ्यास करना होता है। फिर ओंठ बंद कर लें, फिर मन से ही उच्चार करें।

प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग समय लगता है। इंटेसिटी पर, त्वरा पर निर्भर है। कितनी तीव्रता से, तो जल्दी भी हो जाता है। कितनी सघनता से, कितनी प्यास से, तो जल्दी भी हो जाता है।

फिर जब मन का उच्चार इतना सहज हो जाए कि आप कोई भी काम करते रहें और मन का उच्चार चलता रहे, आप भूल जाएं तो भी चलता रहे।। हो जाता है।। आप रास्ते पर चल रहे हैं, उच्चार चल रहा है; आप काम कर रहे हैं, उच्चार चल रहा है; भोजन कर रहे हैं; उच्चार चल रहा है; फिर तो धीरे-धीरे ऐसी हालत हो जाती है कि आप बात भी कर रहे हैं तो उच्चार चल रहा है। जब उच्चार इतना स्वाभाविक हो जाए कि आप सो भी रहे हैं, उच्चार चल रहा है; सोते हैं तो भी उच्चार चलता रहे, सुबह नींद खुलती है तो जो पहली बात स्मरण में आती है, वह उच्चार का अनुभव आता है कि उच्चार चल रहा है, पता चलता है कि रात वह चलता ही रहा। ...

स्वामी राम अमरीका से वापस लौटे, तो सरदार पूर्णसिंह उनके पास थे, हिमालय में। एक रात, आधी रात है, दोनों एक कमरे में सोए हैं, पूर्णसिंह की नींद टूट गई।। अचानक राम-राम की आवाज कमरे में सुनाई पड़ी। तो वे बहुत हैरान हुए। क्या रामतीर्थ जग रहे हैं, राम का उच्चार कर रहे हैं? गए। रामतीर्थ ता सो रहे हैं, उनकी नाक से घर्राटे की आवाज आ रही है। वे तो गहरी नींद में हैं, पर आवाज आ रही है। क्या कोई मकान के आसपास आवाज कर रहा है? डरे हुए बाहर गए। टार्च जला कर सब तरफ देख आए। एकांतवन है, कहीं कोई नहीं है। बरांडा खाली है, दूर-दूर तक कोई दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन बरांडे में जाने पर पता चला कि आवाज थोड़ी कम हो गई। भीतर आए तो आवाज बढ़ गई। समझ में आया कि आवाज तो कमरे के भीतर ही है, लेकिन कमरा तो एक ही है। बिस्तर के दोनों के नीचे झांक कर देखा, कहीं कोई नहीं है। झांक कर जब देख रहे थे, तो राम की खाट के पास गए तो वहां आवाज और ज्यादा मालूम पड़ी। तो राम के हृदय पर कान रख कर देखा तो पता चला वहां आवाज आ रही है। पैर के पास रख कर देखा तो पता चला आवाज आ रही है। हाथ के पास रख कर देखा तो पता चला आवाज आ रही है। राम की यह आवाज पूरे शरीर में ध्वनित हो रही है। घबड़ा गए। चौंक कर राम को उठाया कि यह क्यो हो रहा है? तो राम ने कहा इसमें क्या बात है। यह बहुत दिनों से चल रहा है। मैं भी चौंक जाता था, खुद ही चौंक जाता था कि यह कोई दूसरा तो नहीं कर रहा है। लेकिन अब यह सहज हो गया है। यह भीतर चलता ही रहता है, चलता ही रहता है। तू थोड़ा शांत रहा होगा, इसलिए तुझे सुनाई पड़ गया, शांति से सो जा।

जब ऐसी अवस्था बन जाती है, तब तीसरी संभावना खुल सकती है। तब फिर करना ही नहीं। पड़ता। तब मन को भी अलग किया जा सकता है कि मैं करूंगा ही नहीं आदमी तरफ से। शांत बैठ जाऊंगा, मैं करूंगा ही नहीं; न ओंठ से, न मन से, न कोई संकल्प से, कुछ करूंगा ही नहीं। तब अचानक पता चलता है कि आवाज तो हो रही है। मैं सुन रहा हूं। जब मेरे भी भीतर मैं सुनने वाला हो जाता हूं, करने वाला नहीं, तब परम आण्विक स्थिति ओम की उपलब्ध होती है। तब अरणि बन जाता है ओम्। और तब इस ओम का जो विस्फोट है,

नीचे की अंतःकरण की अरणि से टकरा कर जो विस्फोट होता है, यह विस्फोट व्यक्ति के भीतर सब।। सब जो व्यर्थ है, सबको जला जाता है। उसके बाद व्यक्ति वही नहीं है जो था। दूसरा हो गया। यह दूसरा ही जन्म है। पुराना आदमी समाप्त ही हो गया। इसका उससे कोई लेना-देना ही नहीं। इन दोनों के बीच कोई कंटिन्यूटी, कोई सातत्य भी नहीं है। वह गया, यह दूसरा ही आदमी है।

और जब तक ऐसी अंतर-अग्नि न जल जाए, तक तक व्यक्ति संसार के बंधन से मुक्त नहीं होता।

अंतिम बात, हमारे भीतर अस्तित्व ने वह कुंजी रख दी है, जिसका हम कभी भी उपयोग करें तो मुक्त हो सकते हैं। न उपयोग करें, वह हमारी जिम्मेवारी है।

इतना ही।

दसवां प्रवचन

तृप्ति का सम्मोहन जीवनक्रांति में बाधा

स एव मायापीरमोहितात्मा शरीरमास्थाय करोति सर्वं।
सियन्नपानदिविचित्रभोगैः स एव जाग्रतपीरतृप्तिमेति।। 12।।
स्वन्पे स जीवः सुखदुः खभोक्ता स्वमायया कल्पितजीवलोके।
सुषुप्ति काले सकलेविलिने तमोभिभुतः सुखरुपमेति।। 13।।

मनुष्य माया के वशीभूत होकर शरीर को ही सब कुछ समझ लेता, और सब तरह के कर्मों को करता है। वही मनुष्य विषयवासना और मद्यपान आदि विचित्र भोगों को भोगकर जाग्रत अवस्था में तृप्त होता है।। 12।।

माया से कल्पित जीवलोक में वही मनुष्य स्वप्नावस्था में शरीर के सुखों व दुखों को भोगता है और सुषुप्तावस्था में जब समस्त माया का प्रपंच समाप्त हो जाता है, तब तमोगुण से पराजित होकर सुख का अनुभव करता है।। 13।।

थोड़े से शब्दों को पहले समझ लें।

"मनुष्य माया के वशीभूत होकर शरीर को ही सब कुछ समझ लेता है, और सब तरह के कर्मों को करता है।"

माया से वशीभूत होकर शरीर को ही सब कुछ समझ लेता है। माया शब्द को सबसे पहले हम समझ लें। साधारणतः लोग समझते हैं माया उसे कहते हैं जो नहीं है। इसलिए अंग्रेजी में उसका अनुवाद लोग इलूजन करते हैं। वह अनुवाद गलत है।

माया का अर्थ भ्रम नहीं है। माया का अर्थ सम्मोहन है, हिप्नोसिस। माया का अर्थ हैः मनुष्य के मन की ऐसी क्षमता है कि वह जो भी मान ले, वैसा ही इसके के समक्ष होना शुरू हो जाता है। उसकी मान्यता ही यथार्थ बन जाती है। वह जैसा स्वीकार कर ले, जैसा अंगीकार कर ले, वैसा ही घटिता होना शुरू हो जाता है। माया मनुष्य के मन की एक क्षमता है और इसी का बड़ा विस्तार पूरे जगत में दिखाई पड़ता है। सारे मनुष्य मिल कर सारे जगत में जो सम्मोहन की अवस्था पैदा करते हैं, वह पूरे जगत की माया बन जाता है। जैसे एक आदमी पागल है तो एक आदमी पागल है। अगर पूरा समूह पागल हो जाए तो वह समूह जो पैदा करेगा वह पूरे ही जगत को पागल कर देगा।

माया मन की सम्मोहित होने की क्षमता का नाम है। सम्मोहन का अर्थ हैः कि हम जैसा मानते हैं, वैसा होना शुरू हो जाता है।

थोड़े-से खयाल लेंगे तो समझ में आ जाएगा।

अगर आपने किसी हिप्नोटिस्ट को, सम्मोहन करने वाले को, सम्मोहन-विद को देखा हो।। किसी मेक्सकोली को, या किसी और को।। न देखा हो तो भी कोई बात नहीं, छोटा सा प्रयोग कहीं भी करके देख ले सकते हैं, खुद भी। यहां इतने लोग बैठे हैं, अगर हम सारे लोग अपनी मुट्ठियां खुल न सकेंगी, ये मुट्ठियां खुल न केंगी, ऐसा पांच मिनट सोचते रहे, फिर पांच मिनट के बाद मैं आपसे कहूं कि अब खोलिए मुट्ठियां पूरी ताकत

लगाकर, तो कम से कम तीस प्रतिशत लोग मुट्ठियां बंद कर लें और एक पांच मिनट तक सोचते रहें कि ये मुट्ठियां अब नहीं खोल पाएंगे। और जितनी कोशिश करेंगे, उतना ही पाएंगे कि मुट्ठी खोलना असंभव है। अपनी ही मुट्ठी! तीस प्रतिशत लोग मुट्ठी नहीं खोल पाएंगे। इससे ज्यादा भी संभव हो सकता है। मगस तीस का तो होगा ही और जितनी आप कोशिश करेंगे खोलने की उतना ही पाएंगे कि आपके वश के बाहर हुआ जा रहा है, मुट्ठी और बंधती जा रही है। और मजा यह है कि मुट्ठी आपकी है। और सदा खोलते रहे हैं, और आज क्या हो गया!

वह जो पांच मिनिट आपने भाव किया कि अब मुट्ठी नहीं खुल पाएगी, वह सम्मोहन की क्षमता का उपयोग है। मुट्ठी बंध गई!

अगर हम एक व्यक्ति को, दो दूर कुर्सियां रख दें, पांच फीट दूरी पर, एक कुर्सी पर उसका सिर रखें, दूसरी कुर्सी पर उसके थोड़े से पैर आ जाएं और उसको कहें कि लेट जाओ तो फौरन नीचे गिर जाएगा, क्योंकि कमर झुक जाएगी। कमर के लिए कोई सहारा चाहिए। लेकिन इस व्यक्ति को जमीन पर पहले लिटा दें और सम्मोहित कर दें और उसको कहें कि चाहे कुछ भी हो जाए तुम्हारी कमर नहीं झुकेगी। फिर पांच-सात मिनट के बाद इसको उठा कर कुर्सी पर रख दें, यह लकड़ी के तख्ते की तरह दोनों कुर्सियों पर रख जाएगा। न केवल इतना बल्कि अब इसकी कमर पर बीच पर एक आदमी सवार होकर बैठ जाए तो भी उसकी कमर झुकने वाली नहीं है। क्या हुआ इसको? इसके मन की सम्मोहन की क्षमता का प्रयोग हुआ और शरीर इस क्षमता का अनुगमन करता है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हमारे जीवन की सौ में से नब्बे घटनांए हमारे सम्मोहन से घटती हैं। एक आदमी खांसना शुरू करता है, अचानक सबको खांसी आनी शुरू हो जाती है। एक आदमी उठ कर पेशाब करने चला आएगा, न मालूम कितने लोग उठ कर जाने लगेंगे। आपको पता नहीं है, यह सिर्फ सम्मोहन है। यह सिर्प अपनी क्षमता अपने को सम्मोहित कर लेती है। अभी तब आप बैठे थे, कोई खांसी न थी। लेकिन एक खांसा कि आपको खांसी का खयाल आया। खयाल आते से आपने सम्मोहन को पकड़ा। सम्मोहन को पकड़ते ही से आपके गले में खराश शुरू हुई। अब आप खासेंगे, अब आप बच नहीं सकते। यह"सजेशन" है, यह मंत्र का काम किया। अब आप इसका अनुभमन करेंगे।

गांव में महामारी फैल जाती है। आप कभी खयाल किए हैं, संक्रामक बीमारी फैल जाती है, लोग एकदम बीमार पड़ने लगते हैं। लेकिन डाक्टर और नर्सेज दिन रात उन्हीं मरीजों की सेवा करते रहते हैं और बीमार नहीं पड़ते हैं। अगर बीमारी इनफेक्शियस है, तो सबसे पहले उनको लग जानी चाहिए। सिर्फ सम्मोहन, कि अब यह डाक्टर जानता है कि मैं डाक्टर हूं, यह सम्मोहन उसको बीमारी के प्रवेश से रोकता है। वह दूसरे की सेवा में इस तरह रत है कि बीमारी का मंत्र उस पर काम नहीं कर पाता। और बाकी लोग बीमार पड़ते चले जाते हैं।

मनस्विद कहते हैं कि इसमें बीमारी के कीटाणु जितना काम करते हैं, वह गौण है, इसमें सम्मोहन की क्षमता जितना काम करती है वह प्रमुख है। बीमार होते है, स्वस्थ होते हैं, यहां तक कि मनस्विद कहते हैं कि अगर एक मुल्क में लोग सत्तर साल तक जीते हैं तो मुल्क के मनस में यह सम्मोहन बैठ जाता है कि इससे ज्यादा तो जिया नहीं जा सकता। शरीरशास्त्री कहते हैं कि मनुष्य का शरीर कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता कि इतनी जल्दी क्यों मर जाए। बहुत जी सकता है। लेकिन अगर मुल्क में सत्तर साल की सीमा है लोगों के खयाल में, तो वह सत्तर साल के करीब-करीब पहुंचते आप ही सम्मोहित हो जाते हैं कि अब मरने का वक्त करीब आ रहा। अब बूढ़ा होने का वक्त करीब आ रहा। अब मरने का वक्त करीब आ रहा।

गांधी जी को खयाल था कि वह एक सौ पच्चीस वर्ष जीएंगे, वह जी सकते थे। इसमें किसी और शक्ति का प्रयोग नहीं है। वह जीवन भर से सोच रहे थे, एक सौ पच्चीस वर्ष जीऊंगा, यह सम्मोहन काम करता। अगर उनकी हत्या न की जाती तो यह सम्मोहन काम करता। और अगर इसमें और गहरे उतरें, तो गोडसे उनकी हत्या कर सका, इसमें भी उनका स्वयं का थोड़ा हाथ स्वीकार करना पड़ेगा। क्योंकि हत्या के छह महीने पहले से उन्होंने एक सौ पच्चीस वर्ष जीने का खयाल छोड़ दिया था। और छह महीने से वह कहने लगे थे, अब तो परमात्मा मुझे उठा ले। भीतर कहीं मरने का भाव बैठना शुरू हो गया था।

जीवन बहुत रहस्यपूर्ण है। अगर मैं मरने के भाव को भीतर बिठाना शुरू कर दूं, यह जीवन में यहां सब संयुक्त है, कोई मुझे मारने के भाव से संक्रमित हो जाएगा। और हम दोनों के मेल से घटना घटेगी, जिम्मेवार अकेला वही होगा।

जीसस के बाबत कहा जाता है कि उनको सूली चढ़ा दी गई, फिर वे पुनरुज्जीवित हो गए। यह सिर्फ सम्मोहन की गहन घटना है। जीसस को निरंतर खयाल था कि मुझे मार डालो तो परमात्मा मुझे पुनरुज्जीवित करेगा। क्योंकि यहूदी शास्त्रों में कहा हुआ है कि जो पैगंबर होगा, जो क्राइस्ट होगा, वह मारा जाएगा और पुनरुज्जीवित होगा। जीसस को खयाल था कि वही मैं आदमी हूं, जिसका शास्त्रों ने विचार किया है। उनके शिष्यों को खयाल था कि वही आदमी हैं जीसस। इसलिए हिम्मत से वे सूली पर चले गए। सूली का उन्हें जरा भी भय नहीं था, जबकि उन्हें पता था कि मैं पुनरुज्जीवित हो जाऊंगा।

अगर इसको हम मनसशास्त्र की तरफ से सोचें तो ऐसा दिखाई पड़ता है कि जब उनको सूली दी गई, तो वे सिर्फ गहरे बेहोश हो गए।। लेकिन इन भरोसे से, इस आश्वासन से कि मैं पुनरुज्जीवित हो जाऊंगा। यह बेहोशी हिप्नोसिस है। यह बेहोशी आत्म-सम्मोहन था। मर रहा हूं, यह उन्होंने स्वीकार कर लिया। लेकिन उस स्वीकार के पीछे एक गहरा मंत्र काम कर रहा था कि मैं तीन दिन के बाद पुनरुज्जीवित हो जाऊंगा। वह गहरे कोमा में, बेहोशी में चले गए। यह बेहोशी स्व-निर्मित थी।

और जब दुश्मनों ने जाना कि वह मर गए है, तो उनकी लाश को पास की एक गुफा में रख कर वे चले गए। तीन दिन बाद गुफा खाली पाई गई। और जीसस के अनके शिष्यों ने जीसस को अलग-अलग स्थानों पर देखा। फिर इसके बाद ईसाइयत के पास जीसस का कोई रिकॉर्ड नहीं है कि फिर जीसस का क्या हुआ? अगर जीसस पुनरुज्जीवित हो गए तो वे कब मरे? उनके पास कोई रिकॉर्ड नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि जीसस पुनरुज्जीवित हो गए, फिर उन्होंने जेरुसलम छोड़ दिया। क्योंकि वहां दुबारा मारे जाने के सिवाय कोई उपाय न था। वह हिंदुस्तान चले आए और श्रीनगर के पास एक छोटे से गांव में रहे और वहीं मरे। उस छोटे से गांव का नाम आज भी बेथेनहॅम है। और गांव में आज भी एक कब्र है, जो ईसा की कब कही जाती है।

यह पुनरुज्जीवन, यह मृत्यु गहरे सम्मोहन से घटित हुई। वस्तुतः ही जीसस मर गए हों तो फिर पुनरुज्जीवित होने का कोई उपाय नहीं है। मेरे ही नहीं थे। एक गहरे सम्मोहन में चले गए थे, तीव्र तंद्रा में उतर गए थे, जहां श्वास भी खो जाती है, हृदय की धड़कन भी बंद हो जाती है। सम्मोहन की यह भी क्षमता है कि अगर आप चाहें तो अपनी नाड़ी को कम-ज्यादा कर सकते हैं, बड़ी आसानी से। आप थोड़ा नाड़ी पर हाथ रख कर गिनती कर लें, पिर पांच मिनट सोचते रहें कि नाड़ी की गति बढ़ रही है, बढ़ रही है, बढ़ रही है और पांच मिनट बाद आप पिर नाड़ी को नापिए, आ पाएंगे नाड़ी की गति बढ़ गई। सूत्र आपके हाथ में आ गया। अब चाहें, आप घटा लें। अभ्यास करते-करते एक दिन आप इस जगह आ सकते हैं कि नाड़ी बंद हो जाए और आप जीवित हों। फिर आप हृदय से भी प्रयोग कर सकते हैं। उसकी धड़कन को घटाने-बढ़ाने का प्रयोग करें, फिर

घटाते-घटाते उस जगह ले आएं जहां हृदय की धड़कन शून्य हो जाए। तो एक छह महीने में आपकी हृदय की धड़कन बंद हो जाएगी और आप जीवित होंगे।

शरीर हमारे मन की आज्ञा मान कर ही चल रहा है। अभी भी। बीमार पड़ता है तो हमारी आज्ञा मानकर चलता है, स्वस्थ होता है तो हमारी आज्ञा मानकर चलता है। बूढ़ा होता है तो हमारी आज्ञा मान कर चलता है। जीता है, मरता है, तो भी हमारी गहरी स्वीकृति और आज्ञा उसको होती है। बूढ़े आदमी मर जाते हैं, इसका गहरा कारण यह है कि बूढ़े होते से ही आदमी मरने की आकांक्षा करने लगता है। जवान आदमी नहीं गरते हैं, उसका मौलिक कारण जवानी नहीं है; जवान आदमी मरना नहीं चाहते हैं, वह मौलिक कारण है। यह शारीरिक घटना कम है और मानसिक घटना ज्यादा है।

सम्मोहन को हिंदू शास्त्रों ने माया कहा है। हम जो भी कर रहे हैं, जो भी हैं, जो भी हमारी चित्तदशा है, वह सब हमारा सम्मोहन है। आप सुखी हैं, दुखी हैं, वह आपका सम्मोहन है। लेकिन आपको पता भी नहीं है, इसलिए बदलाहट बड़ी मुश्किल पड़ती है। बड़ी मुश्किल पड़ती है बदलाहट करना। अगर आप दुखी हैं और किसी से कहो कि यह तुम्हारा सम्मोहन है कि तुम दुखी हो, तो वह मानने को राजी नहीं होगा, क्योंकि बदल नहीं सकता। लेकिन सम्मोहन के आप प्रयोग करें तो आप चकित हो ही जाएंगे। एक व्यक्ति को सम्मोहित करके लिटा दें, फिर उसको प्याज का टुकड़ा दे दें और कह दें कि यह सेब है, वह खाएगा और कहेगा सेब है। पिर आप उसके मुंह में मिट्टी डाल दें और कहें कि यह मिठाई है और वह मिठाई की तरह ही भाव पैदा करेगा चेहरे पर। स्वाद लेगा, आनंदित होगा और कहेगा बहुत मीठा है।

क्या हो रहा है उसे?

कुछ भी नहीं हो रहा है, उसका मन जो स्वीकार कर रहा है वैसा ही शरीर चलना शुरू कर देता है। मुसलमान फकीर, और भी लोग आग में कूदते रहते हैं। सूफी फकीर आग पर उतर जाते हैं। वह सिर्फ सम्मोहन है। सिर्फ यह भाव प्रगाढ़ है कि पैर नहीं जल सकते, अल्लाह का साथ है, फिर पैर नहीं जल सकते। इसमें अल्लाह कुछ भी नहीं कर रहा है। सिर्फ यह भाव, प्रगाढ़ भाव कि पैर नहीं जल सकते, तो अंगारा भी पैर पर असर नहीं कर पाता है; क्योंकि अंगारे को भी असर करना हो पैर पर, तो मन का सहयोग चाहिए। मन के सहयोग के बिना वह भी प्रभावी नहीं है। तो आग से आदमी गुजर जाएगा और पैर नहीं जलेंगे। और आप सोचते हैं यह बहुत कठिन है, तो आप किसी को भी सम्मोहित करके बेहोश कर लें और उसके हाथ में साधारण कंकड़ रख दें और कहें कि यह अंगारा है और हाथ में फफोला आ जाएगा।

यह मन की क्षमता का नाम माया है, इस सूत्र में। और इस माया से वशीभूत सारे लोग मिलकर जो जगत निर्माण करते हैं, वह बिल्कुल मैजिकल है, वह बिल्कुल जादूगरी है। जिस जगत में हम रह रहे हैं वह हमारा जादू है। छाती पीट रहे हैं, रो रहे हैं, चिल्ला रहे है, यह दुख हो रहा, वह सुख हो रहा है, यह तकलीफ हो रही है, वह तकलीफ हो रही है, और वह हमारा ही जादू है, और हमारे ही हाथ में उसकी कुंजी है।

यह सूत्र कहता है।। मनुष्य माया के वशीभूत होकर शरीर को ही सब कुछ समझ लेता है। शरीर को सब कुछ समझना हमारा सम्मोहन है। यह सिर्फ हमारा खयाल है। और यह खयाल आप किसी भी चीज के साथ जोड़ दें। यह खयाल जुड़ सकता है किसी भी चीज के साथ। एक स्त्री है, वह आज मर जाए तो आपको कुछ कठिनाई नहीं होगी। कल आप उससे विवाह कर लेते हैं। विवाह करके आप करते क्या हैं? सात चक्कर लगा कर आप करते क्या हैं? वह सिर्फ सम्मोहन की प्रक्रिया है, कि सात चक्कर लगा कर, धूमधाम मचा कर, बैंडबाजा बजा कर, पंडित-पुरोहित को बुला कर, लोगों को इकट्ठा करके आप अपने को सम्मोहित कर रहे हैं कि अब मेरी

पत्नी है यह। वह वही स्त्री है। कल मरती, आपको कोई दुख न होता, आज मरेगी आप छाती पीट कर रो रहे हैं। बड़ा आश्चर्य है! यह सात चक्कर ने, यह मंत्र-तंत्र ने, यह भीड़-भड़क्के ने, बैंडबाजे ने बड़ा चमत्कार किया है कि आप छाती पीट कर रो रहे! सिर्फ सम्मोहित किया है।

इसलिए जो लोग सोचते हैं कि शादी-विवाह में इतने क्रियाकांड की जरूरत नहीं है, उनको पता नहीं है, अगर यह क्रियाकांड नहीं होगा, तो पत्नी पैदा ही नहीं हो सकती। यह कक्रियाकांड अनिवार्य है, सम्मोहन का हिस्सा है। इसलिए जिन मुल्कों ने बुद्धिमानों की बातें मान कर।। और बुद्धिमान कभी-कभी बहुत बुद्धिहीनता की बातें कहते हैं।। उनकी बातें मान कर कि इससे क्या फायदा, सात चक्कर लगाने से क्या मतलब, बैंडबाजे से क्या मतलब, फुलझड़ी-फटाके से क्या मतलब है, घोड़े पर बैठने से क्या मतलब है, दूल्हे के कपड़े पहनने से न पहनने से क्या मतलब है, विवाह करना है तो कर लो, हाथ मिला लो, माला डाल दो, विवाह हो गया। लेकिन ध्यान रखना, वह सारी की सारी प्रक्रिया सम्मोहन की प्रक्रिया थी। उस सम्मोहन के प्रभाव में ही तुम पति बनते हो, वह पत्नी बनती है, तुम्हारे बीच संबंध निर्मित होता है। वह तुम्हें अपनी मालूम पड़ती है, तुम उसे उसके मालूम पड़ते हो। अब अगर वह सारी क्रिया तुमने छोड़दी, तो वह एक स्त्री है, तुम एक पुरुष हो। और तब तलाक अनिवार्य है।

जिन-जिन मुल्कों ने विवाह का क्रियाकांड छोड़ दिया, उन-उन मुल्कों को तलाक का क्रियाकांड निर्मित करना पड़ा है। यह अनिवार्य है, क्योंकि हमें पता नहीं है कि एक मन के काम करने के ढंग क्या हैं। मन के काम करने के ढंग हैं। और मन के काम करने के सब ढंग सम्मोहन के ढंग हैं। उस प्रक्रिया से गुजरेंगे तो मन सम्मोहित हो जाएगा।

जब एक लड़के को और गांव में आप दूल्हा बनाकर घोड़े पर बिठाकर निकालते हैं, ऐसा जिंदगी में मौका उसे दुबारा फिर घोड़े पर बैठ कर निकलने का आनेवाला नहीं है। पहली दफा वह अनुभव करता है, मैं भी कुछ हूं। उसे हम दूल्हा-राजा कहते हैं। एक क्षण को वह भी राजा हो जाता है। और ठीक राजा की शान से घूमता है। जिंदगी में यह शिखर उसको फिर कभी नहीं मिलेगा। इस अहंकार के क्षण में सम्मोहन बहुत आसान है।

ध्यान रखना, अहंकार-शून्य आदमी हो तो सम्मोहित नहीं किया जा सकता। यह साधारण आदमी अचानक दूल्हा-राजा हो गया है। इसका अहंकार मजबूत है, यह घोड़े पर सवार है। सारा गांव घोड़े के नीचे है, यह घोड़े के ऊपर है। इसके अहंकार को एक शिखर उपलब्ध हो रहा है। इस शिखर के क्षण में जो भी घटना घटेगी, यह इस वक्त बहुत"डेलीकेट" है, बहुत नाजुक है, इसके भीतर कोई भी चीज प्रवेश कर जाएगी। सम्मोहन पकड़ जाएगा। फिर दुबारा इस ऊंचाई पर यह कभी नहीं होगा। और इसलिए जिस ऊंचाई पर यह सम्मोहन पैदा हुआ था वह जिंदगी भर टिकेगा। वह अब छूट नहीं सकता पीछे वह उसके अहंकार का हिस्सा हो गया।

जिन्होंने ये सारी प्रक्रियाएं खोजी थीं वे मन की माया को समझते थे। और आज के जो तथाकथित बुद्धिमान आदमी हैं, उनको मन की माया का कुछ भी पता नहीं है। वह निपट मूढ़तापूर्ण बातें लोगों को समझाते रहते हैं। यद्यपि वे तर्क देते हैं, लेकिन तर्क थोथे हैं। और तर्कों के पीछे मनुष्य के मन के विज्ञान का कोई बोध नहीं है। और जब वे बातें करते हैं तो ऐसा लगेगा कि बिल्कुल ठीक तो कह रहे हैं, क्या जरूरत है इतना खर्च करने की। हम समझाते हैं कि भाई, क्या जरूरत है इतना खर्च करने की! लेकिन वह खर्च अगर न हो तो सम्मोहन पैदा नहीं होगा। इसलिए गरीब अपनी हैसियत से भी ज्यादा खर्च कर लेता है। वह हैसियत से ज्यादा खर्च करने का मौका दुबारा उसको नहीं आएगा। हैसियत से ज्यादा खर्च करके वह दिल को नाजुक कर लेता है और अहंकार से भर जाता है। उस क्षण में उसके भीतर जो प्रवेश कर जाता है, वह टिकेगा। वह उसकी माया का

हिस्सा हो गया। अब यह स्त्री नहीं रही, पत्नी हो गई। अब यह पराई नहीं रही, मेरी हो गई। यह जो मेरा होना है, इसके लिए मूल्य चुकाना पड़ता है। और हमारा सारा का सारा जीवन ऐसे ही चलता है। ऐसे ही चलता है।

हम अपने शरीर के संबंध में भी जो धारण बनाए हुए हैं कि यह मेरा है, यह सम्मोहन है। बचपन से हमें सिखाया जाता है, बचपन से हम सीखते हैं। अनुभव से भी पता चलता है। लेकिन मनस्विद कहते हैं कि बच्चा जब पैदा होता है तो उसे कुछ पता नहीं होता कि यह शरीर उसका है। उसे कुछ पता नहीं होता। उसे यह भी पता नहीं होता कौन उसकी मां है, कौन उसका पिता है, कुछ पता नहीं होता। यह सब सम्मोहन से ही सीखता है। मां उसके ज्यादा निकट होती है, दूध पिलाती है, उसकी फिकर करती है, धीरे-धीरे वह उसका चेहरा पहचानना शुरू कर देता है। चेहरा भी वह बाद में पहचानता है, स्तन ही पहले पहचानता है, इसी कारण पुरुष पूरे जीवन स्त्री के स्तन से मुक्त नहीं हो पाता।

पूरे जीवन, हमारे चित्रकार हों, कवि हों, लेखन हों, बड़े विद्वान हो, स्त्री के स्तन से मुक्त नहीं हो पाते। क्योंकि वह पहला समेहन है दूसरे के शरीर का। इसीलिए स्तनों की तलाश चलती रहती है। खोज चलती रही है। मूर्ति हो, चित्र हो, कविता हो, सब जगह स्तन उभर-उभर कर आता रहता है। वह पुरुष के मन में पहला सम्मोहन है। गहरे बैठ जाता है। स्त्री शब्द का उच्चारण करते ही स्तन की छाया निर्मित हो जाती है। फिर वह चेहरे को बच्चा पहचानना शुरू करता है। दूसरों को पहचानना शुरु करता है। धीरे-धीरे दूसरों के बीच अपने को अलग अनुभव करना शुरू करता है। मां का हाथ उसे अलग मालूम पड़ने लगात है। अपना हाथ अलग मालूम पड़ने लगता है। धीरे-धीरे अपने व्यक्तित्व का अलग बोध होना शुरू होता है।

पशुओं के मनोविज्ञान पर कुछ काम चलते हैं। जैसे भेड़ के बाबत हम सब को अंदाज है कि भेड़ भीड़ में चलती है। और एक भेंड़ एक तरफ चली जाए तो सारी भेड़ें उस तरफ चली जाती हैं। भेड़ का नेता एक तरफ जाए तो फिर सारी भेड़ें उस तरफ जाएंगी, चाहे वह खड्डा ही क्यों न हो, जान ही खतरे में क्यों न हो! अब तक ऐसा ही समझा जाता था कि भय के कारण ऐसा होता है, लेकिन अभी नई खोजें यह कहती हैं कि भेड़ों को अपने शरीर का व्यक्तिगत बोध नहीं है। उनके पास एक कम्यूनल माइंड है। एक सामूहित चित्त है। तो वह जो दूसरी भेड़ है, वह भेड़ को दूसरी मालूम पड़ती ही नहीं। भेड़ एक ग्रुप माइंड में जीती है। उनका एक समूह-चित्त है। इसलिए एक भेड़ वहां जा रही है उसका मतलब है कि मेरा एक हिस्सा वहां जा रहा है, तो मैं भी खिंचा चला जा रहा हूं। व्यक्ति-चित्त भेड़ में पैदा नहीं होता।

चींटियों मे भी ठीक समूह-चित्त है। कलेक्टिव माइंड है। और समूह-चित्त पैदा हो सकता है। सिर्फ सम्मोहन की बात है। व्यक्ति-चित्त पैदा हो सकता है, वह भी सम्मोहन की बात है। समूह-चित्त पैदा हो सकता है, वह भी सम्मोहन की बात है।

पूरब के मुल्कों में एक पारिवारिक चित्त था। तो परिवार का एक आदमी मर जाए तो परिवार के पूरे आदमीमरने को तैयार हो जाएं। लेकिन पश्चिम में परिवार-चित्त टूट गया।। पूरब में भी टूट रहा है। अगर बाप पिट रहा हो तो भी बेटा पहले यह सोचेगा पश्चिम में कि सही कौन है? यह बाप जो पिट रहा है यह ठीक है, कि मारनेवाला ठीक है, जब तक यह साफ न हो तब तक किसी का पक्षपात लेना ठीक नहीं है। ऐसे यह ठीक है बात। क्योंकि बाप होने से कोई ठीक तो नहीं हो सकता। हो सकता है इसने कुछ गड़बड़ी की हो और ठीक पिट रहा हो! लेकिन पूरब में यह संभव नहीं था। धीरे-धीरे यहां भी संभव हो जाएगा। परिवार-चित्त था। तुम्हें सवाल ही नहीं था कि बाप पिट रहा है।। मैं पिट रहा हूं। एक सामूहिक भाव था। दोनों के शरीर कहीं भीतर एक ही सम्मोहन में गुंथे थे। वह सम्मोहन टूट जाए, तो भिन्न स्थिति निर्मित हो जाएगी।

मेरा शरीर भी मेरा ही सम्मोहन है। इसलिए खयाल करें आप कि आपके शरीर में भी बड़े विभाजन हैं। जैसे शरीर के ऊपर का हिस्सा आपका ज्यादा मेरा है और शरीर के नीचे का हिस्सा आपका कम मेरा है। यह बड़े मजे की बात है। एक ही शरीर है। उसमें नीचे के शरीर को आदमी ऐसा समझता है कि अपना नहीं, ऊपर के शरीर को समझता है अपना। और सबसे ज्यादा तो खोपड़ी को अपना समझता है, बाकी... अगर आपका हाथ कट जाए तो आपको ऐसा नहीं लगता कि मैं मर गया; लेकिन खोपड़ी, तो गए! शरीर में भी आपके विभाजन हैं।

और विभाजन इतने गहरे हो सकते हैं, जैसे कि सारी संस्कृतियों ने जिन्होंने भी कामवासना का दमन करवाया है तो जननेंद्रिय से आपको ऐसा नहीं लगता कि मेरा हिस्सा है। इसलिए उसको छिपाए चलते हैं। घबड़ाए रहते हैं, डरे रहते हैं। भयभीत रहते हैं। ऐसा लगता है कि वह कोई जैसे कोई दुश्मन शरीर के भीतर है, अपना नहीं है। छोटे से बच्चे में हम सम्मोहन पैदा करवाते हैं। बच्चा जैसे ही जननेंद्रिय छूता है, सारा घर रोकने को तत्पर हो जाता है।। छुओ मत! बच्चे को खुद ही हैरानी होती है, क्योंकि उसको, बच्चे को अभी कुछ पता नहीं हैं कि हाथ और जननेंद्रिय में कोई फर्क है। लेकिन सारा घर सचेत हो जाता है और सारे घर के मन में निंदा का भाव आ जाता है। बच्चा भी भयभीत हो जाता है। कि मामाला कुछ और है, बाकी सब शरीर ठीक है, जननेंद्रिय ठीक नहीं है। फिर यह भाव सघन होता चला जाता है। पिर आप अगर अपने से पूछें, तो आपको पता बिल्कुल पक्का चल जाएगा कि जननेंद्रिय आपका शरीर का हिस्सा नहीं है।

अभी अमरीका की एक खिलौनों की कंपनी ने खिलौना बनाया है।। आपने खयाल नहीं किया होगा कि आपके सब खिलौने झूठे हैं, क्योंकि उनमें जननेंद्रिय नहीं होती है। अगर आपका एक गुड्डा है, तो उसमें जननेंद्रिय नहीं होती और बाकी सब होता है। लड़की है, गुड़िया है, तो जननेंद्रिय नहीं होती और बाकी सब होता है। एक कंपनी को सूझा-बड़ी सूझ की बात है, और मैं समझता हूं पांच-छह हजार वर्षों में पहली दफे सूझी किसी खिलौने करने वाले को कि यह बात तो झूठ है, प्रामाणिक नहीं है।। तो उसने जननेंद्रियां बना दीं खिलौनों में। तो सुप्रीम कोर्ट तक मुकदमा गया। और आखिर सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया अमरीका क कि जननेंद्रियां खिलौनों में नहीं बनाई जा सकतीं।

आश्चर्य जनक बात है! क्या हमारा दिमाग है! क्यों नहीं बनाई जा सकती हैं? उस कंपनी ने बहुत लड़ाई की, लेकिन नहीं बनाई जा सकती। कंपनी का कहना यह था कि अगर यह शरीर में है, तो फिर खिलौनों में क्यों नहीं होनी चाहिए? खिलौना प्रामाणिक होना चाहिए। लेकिन बड़ी घबड़ाहट फैल गई और ऐसा मालूम पड़ा कि सारे अमरीका की बुद्धि इसपर अटक गई। बड़े विरोध में पत्र लिखे गए, अखवारों में खबरें छपीं, विवाद चला, जगह-जगह सिंपोजियम हुए कि यह नहीं हो सकता, इसे तो संस्कृति नष्ट हो जाएगी। आदमी में जननेंद्रिय है और संस्कृति नष्ट नहीं हो रही, और खिलौने में जननेंद्रिय होगी तो संस्कृतियां नष्ट हो जाएंगी!

नहीं पर, उसका कारण है। इस जिद्द और झगड़े का कारण है। और सुप्रीम कोर्ट के बुद्धिमान जजों को भी निर्णय देने के पीछे कारण है। कोई जननेंद्रिय को अपना हिस्सा मानता ही नहीं। हमारा बस चले तो उन्हें काट डालें। जिनका बस चला उन्होंने काट डालीं। रूस में एक बड़ा संप्रदाय था केथॅलिक ईसाइयों का जिसका नियम यह था कि जब तक कोई जननेंद्रिय न काट डाले तब तक वह धार्मिक नहीं हो सकता। तो जननेंद्रियां काट डालीं।

चार-पांच हजार साल पहले सारी दुनिया में ऐसे समूह थे जो जननेंद्रियों को काटने में भरोसा रखते थे। मुसलमान आज भी "खतना" करते है, यहूदी "खतना" करते हैं, वह सिर्फ उसी का सिम्बालिक है। एक जमाना था पूरी जननेंद्रिय काट कर आदमी धार्मिक होता था, फिर उतना तो मुश्किल पड़ने लगा लोगों को, लोग राजी

न रहे, तो थोड़ी सी चमड़ी काटकर प्रतीकात्मक रूप से खतने को जारी रखा गया। तो अगर खतना नहीं हुआ है, तो कोई मुसलमान नहीं है। अगर "खतना" नहीं हुआ है तो वह स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकते। यह सिर्फ छोटा सा प्रतीक रह गया, लेकिन मौलिक आधार यही था।

पर यह, अगर यह हमारे मस्तिष्क में हो तो फिर शरीर में विभाजन हो जाएंगे। हमारे शरीर में विभाजन हैं। विभाजन इतना गहरा घुस जाता है कि जिसका कोई हिसाब नहीं है। पर हम उतने शरीर से जितने से हमारा तादात्म्य बना लेते हैं, उससे तादात्म्य बन जाता है। और जिससे हम तादात्म्य छोड़ देते हैं उससे तादात्म्य छूट जाता हैं। यह जान कर आप हैरान होंगे कि आप बालों को काटते हैं तो आपको कोई तकलीफ नहीं होती। क्योंकि अधिकतर समाजों में बाल और नाखून को शरीर का हिस्सा नहीं माना है। वह मुर्दे हिस्से हैं। लेकिन एक आदमी को सम्मोहित करें और उससे कहें कि बाल भी तुम्हारे शरीर का जीवंत हिस्सा है और अब जब तुम्हारे बाल कभी भी काटे जाएंगे तो तुम्हें तकलीफ होगी, उसे तकलीफ होगी। फिर उसके बाल काटिए तो वह वैसे ही चीखेगा-चिल्लाएगा जैसे अंगुली काटी हो।

क्या यह संभव है कि मैं अपने हाथ को सम्मोहन के द्वारा मान लूं कि मेरा नहीं है और तब आप काटें तो मुझे दर्द न हो? यह संभव है। अगर जीसस को तकलीफ न हुई सूली पर चढ़ते वक्त, तो उसका कारण इस बात की प्रतीति थी कि यह शरीर मैं नहीं हूं। अगर मंसूर के हाथ-पैर काटे गए और वह हंसता रहा, तो उसका कुल कारण इतना था कि उस को प्रतीति थी कि यह मैं नहीं हूं। अगर यह प्रतीति हो कि यह शरीर मैं हूं, तो दुख होगा, पीड़ा होगी। तो पीड़ा और दुख या सुख हमारी प्रतीतियां हैं, हमारे सम्मोहन हैं।

इसे थोड़ा प्रयोग करके देखें।

आपके पैर में तकलीफ हो रही हो तब आप बैठकर ध्यान करें कि यह पैर मेरा नहीं है। और आप पाएंगे कि तकलीफ की मात्रा एकदम क्षीण हो गई। एकदम से पूरी समाप्त नहीं होगी, क्योंकि आप पूरा सम्मोहन नहीं कर पाएंगे! लेकिन जितना कर पाएंगे उसी मात्रा में पैर की पीड़ा कम हो जाएगी। और उससे उलटा भी करके देखें। दूसरे के पैर में तकलीफ हो रही हो और आप यह सम्मोहन करें कि वह भी शरीर मेरा है, वह भी पैर मेरा है, तकलीफ शुरू हो जाएगी। यह तकलीफ इतनी बढ़ सकती है कि थोड़ा आपके पैर पर भी प्रकट हो जाए।

अभी इस पर काफी खोज-बीन चलती है कि जब बच्चे को कोई तकलीफ होती है तो उसकी मां को भी तकलीफ पैदा हो जाती है। दूर रखो तो भी" असल में बच्चे से इतना गहरा सम्मोहन है कि वह कितने ही दूर पीड़ा में पड़े, तो वह मां का ही फैला हुआ हिस्सा। और यह सम्मोहन इतना गहरा है कि इसके दूर-संप्रेषण, इसकी टेलीपैथिक खबरें मां को मिल जाएंगी।

जानवरों पर बहुत प्रयोग किए जा रहे हैं। और क्योंकि जानवरों के पास और भी सरल मन है, इसलिए प्रयोग बहुत ही आसान होते हैं। कुछ खरगोशों पर प्रयोग किए गए रूस में तो खरगोशों की माताओं को समुद्र के नीचे ले जाया गया पनडुब्बियों में, हजार-दो हजार पक्षट नीचे, और बच्चों को रखा गया किनारे पर। और बच्चों को यहां मारा गया और वहां उनकी माताओं की जांच-पड़ताल जारी रखी। जिस क्षण बच्चे मरते हैं, उसी दिन मां, उसी क्षण मां कंप जाती है, उदास, परेशान हो जाती है। और मां को कोई भी खबर नहीं है कि बच्चे के साथ क्या हो रहा है, बहुत दूरी है। लेकिन सम्मोहन संबंध जोड़ देता है। सम्मोहन ही संबंध है।

जिस-जिस से आप संबंधित है, वह आपका सम्मोहन है। और सम्मोहन जरा में टूट सकता है। आप अपने बेटे के लिए जान दे सकते हैं, मर सकते हैं, लेकिन आज आपके हाथ में एक चिट्ठी पड़ जाए और पता चले कि यह बेटा आपसे पैदा नहीं हुआ है, सब सम्मोहन टूट जाएगा। आप इस बेटे की जान लेने को तैयार हो जाएंगे। और

जान ले लें। और बड़े प्रसन्न हों और तब पता चले कि चिट्ठी जाली है, तो फिर छाती पीट कर रोएंगे कि यह क्या कर दिया? यह सारा का सारा खेल न बेटे से संबंधित है, न बापे से संबंधित है, सम्मोहन से संबंधित है। जहां-जहां हम अपने सम्मोहन को फैला देते हैं, वहां-वहां सुख और दुख का राज्य शुरू हो जाता है।

"मनुष्य माया के वशीभूत होकर शरीर को ही सब कुछ समझ लेता है और सब तरह के कर्मों को करता है।"

फिर शरीर जो कर्म बताता है वे उसे करने पड़ते हैं। फिर वह मालिक नहीं रह जाता। फिर शरीर हो जाता है मालिक और आदमी हो जाता अनुगामी। शरीर जो कहता है, फिर वह वही करता है। जानते हुए भी करता है कि इससे हानि हो रही है, तो भी करता है। जानता है कि यह शराब पी रहा हूं तो जहर पी रहा हूं, लेकिन यह जानना काम नहीं आता। क्योंकि शरीर कहता है।। पिओ। शरीर की रासायनिक पकड़ शराब पर हो जाती है।

जो आदमी शराब पीता है, उसके शरीर में रासायनिक फर्क हो जाता है। और जानकर आप हैरान होंगे कि जो आदमी शराब पीता है उसके शरीर का एक-एक सेल धीरे-धीरे शराब का आदी हो जाता है। एक-एक सेल! और एक-एक सेल वक्त पर मांगता है कि शराब दो। इसलिए शराबी जब छोड़ देता है, तो तड़फड़ाता है, परेशान होता है, दिक्कत में पड़ता है। और सब संकल्प धरा रह जाता है, क्योंकि शरीर कहता है।। दो, नहीं तो मर जाएंगे, जीना मुश्किल है। शरीर के पीछे उसे चलना पड़ता है। क्योंकि यह शरीर ही तो मैं हूं, ऐसी गहरी प्रतीति बैठी है। फिर शरीर जो भी करवाता है वह आदमी करता चला जाता है।

शरीर क्या-क्या करवाता है वह इस सूत्र में कहा है।।

"वही मनुष्य विषय-वासना और मद्यपान आदि विचित्र भोगों को भोग कर जाग्रत-अवस्था में तृप्त होता है।"

विचित्र भोग कहा है। विचित्र कारण से कहा है। दो कारण हैं। एक तो कि अगर उसी चीज से आपका सम्मोहन छूट जाए तो आप एकदम हैरान हो जाएंगे कि जिससे आप तृप्त हो रहे थे, उससे तृप्त होना तो दूर, उससे विकर्षण, जुगुप्सा, घृणा हो जाएगी।

बुद्ध को ऐसा ही हुआ।

बुद्ध को उनके पिता ने सारी सुंदरतम स्त्रियां इकट्ठी कर दीं, यहीं भूल हो गई। नहीं तो बुद्ध संन्यासी न होते। अगर उनको एक भी स्त्री न मिलती तो शायद एकाध-दो जन्म और लग जाते। क्योंकि जो नहीं मिलता उसका आकर्षण बना रहता है। जो मिल जाता है, उसका आकर्षण खो जाता है। फिर भी अगर और भी सुंदर स्त्रियां होतीं राज्य में जो बुद्ध को उपलब्ध न होतीं, तो भी और भी वह शायद सोचते, इन स्त्रियों से सुख न मिला हो, उनसे तो मिल सकता है, तो दौड़ में लगे रहते। लेकिन राज्य में जो भी श्रेष्ठतम सुंदर स्त्रियां थी, वह बुद्ध के पास इकट्ठा कर दीं। एक ज्योतिषी की सलाह पर!

ज्योतिषी ने कहा कि यह बेटा या तो चक्रवती राजा होगा या, संन्यासी हो जाएगा। यहां तक तो उसने ठीक कहा था। क्योंकि यहां तक अपने विज्ञान की बात कर रहा था, गणित की। बुद्ध के पिता ने उससे पूछा कि तो मैं कैसे रोकूं? तो ज्योतिषी ने अपनी बुद्धि से कहा होगा, उसको स्त्रियों में रस रहा होगा। उसने अपनी बुद्धि से कहा। उसने कहा कि अच्छी स्त्रियां इसके आसपास रख दो, अच्छे महल बना दो, सब सुख-सुविधा जुटा दो, फिर किसलिए संन्यास लेगा। आदमी दुखी होता है।। यह नहीं मिला, यह नहीं मिला, यह नहीं मिला; ज्योतिषी गरीब रहा होगा! आमतौर से ज्योतिषी गरीब होते हैं। उसने सोचा होगा कि अगर यह सब चीजें मिल जाएं मुझे

तो मैं किसलिए छोडूंगा! उसे कुछ पता नहीं था। ज्योतिष का पता होगा, लेकिन मनुष्य की अंतरात्मा का उसे कोई पता नहीं था।

बुद्ध के बाप ने सारा इंतजाम कर दिया, पिर वहीं संन्यास का कारण बना। सब उपलब्ध था। सुंदरतम स्त्रियां उपलब्ध थीं। लेकिन बुद्ध को धीरे-धीरे घबड़ाहट होनी शुरू हो गई। जब सब उपलब्ध हो, तो विरक्ति बहुत आसान हो जाती है। ऊब पैदा हो जाती है। बोर्डम पकड़ लेती है। सुंदरतम चेहरे भी कितनी देर तक सुंदर रह सकते हैं। जब तक न मिलें तभी तक। सुंदर चेहरा मिल जाए फिर क्या करिएगा! फिर थोड़े दिन में सौंदर्य खो जाता है। अगर इसे हम ठीक से समजें तो सौंदर्य दूरी का फल है। इसलिए सुंदर चेहरा मिल जाए, फिर क्या करिएगा! इसलिए सुंदर व्यक्ति सदा ही खयाल में रहता है एक दूरी बनी रहे। नहीं तो सौंदर्य खो जाने में देरी नहीं लगती। एक फासला बना रहे। एक जगह रहे, जिसको पार न किया जा सके।

बुद्ध एक राज उठे। नींद नहीं उन्हें आ रही थी। वह सोच रहे हैं कि क्या इस सब को पाकर कुछ मिल तो नहीं रहा है।। क्या होगा, क्या नहीं होगा! देखा कि जो लड़कियां नाचते हुए।। उनको सुलाते वक्त उनके चारों तरफ नाच रही थीं और जब वह सो गए तो वे भी गिर कर नीचे सो गई थीं, तो बुद्ध ने उनके चेहरे पर नजर डाली। किसी की लार बह रही थी, किसी का मुंह खुला था, घरघराहट की आवाज आ रही थी, किसी की आंख में कीचड़ जम गया था, कोई नींद में बड़बड़ा रही थीं, कपड़े अस्त-व्यस्त हो गए थे, किसी के शरीर से पसीना बह रहा था, बहुत घिनौना मालूम पड़ा। एक-एक के पास जाकर देखा तो उन्हें मालूम पड़ा। वही रात उनके भागने की रात हो गई।

लेकिन, जो भी हम भोगते रहते हैं, उस किसी भी भोगी गई चीज को अगर हम बहुत गौर से देखें, बहुत निकट से देखें, तो घबड़ाहट पैदा होगी, ऊब पैदा होगी, भागने का मन होगा, कि हम यह क्या कर रहे हैं!

तो विचित्र कहने का एक तो कारण यह है।। ऋषि कर रहा है कि बड़ी विचित्र बात है कि जिन चीजों में कुछ भी नहीं है भीतर, उनको भी आदमी भोगकर और तृप्ति भी अनुभव करता है। भोगता भी है तृप्ति भी अनुभव करता है। उसे विचित्र लग रहा है। लगेगा। जो आदमी भी भोग केप्रति जागेगा उसे हमारा सारा भोग बहुत विचित्र लगेगा। उसे ठीक वैसे ही लगेगा जैसे आपके घर का बच्चा खिलौने से खेल रहा है, खिलौने की टांग टूट गई तो रो रहा है; खिलौना उसके बिस्तर पर नहीं है तो उसे नींद नहीं आ रही है, आपको बहुत विचित्र लगता है कि बिल्कुल पागल है, खिलौने से क्या लेना-देना है, क्या मतलब है? लेकिन आप बच्चे नहीं हैं, सिर्फ इसलिए।

इस ऋषि को विचित्र लगता है क्योंकि यह भी अब आप जैसा बच्चा नहीं है। ऊपर उठ गया है। एक प्रौढ़ता आ गई है। अब इसको लग रहा है कि लोग कैसा-कैसा विचित्र भोग भोग रहे हैं। और भोग ही नहीं रहे हैं बड़ी तृप्ति भी अनुभव कर रहे हैं।

"इसी माया, इसी सम्मोहन के वशीभूत होकर विषय-वासना और मद्यपान आदि विचित्र भोगों को भोगकर जाग्रत अवस्था में तृप्त होता है।"

आदमी की तीन अवस्थाएं हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। जागा हुआ वह तृप्त होता रहता है। कहीं बड़ा मकान बना लेता है, कहीं किसी के प्रेम में पड़ जाता है, कहीं शरीर की कोई तृप्ति कर लेता है, कहीं भोजन कर लेता है, कहीं अच्छे वस्त्र पहन लेता है और तृप्त मालूम पड़ता है। लगता है कि सब ठीक चल रहा है। कुछ भी ठीक नहीं चल रहा! आप कितने ही अच्छे-अच्छे कपड़े पहन लें और कितने ही हीरे-जवाहरात शरीर पर लाद लें, क्या होगा? क्या उसका अर्थ है! आपका पूरा शरीर हीरे-जवाहरातों से लाद दिया जाए, तो भी क्या होगा? इसे क्या

मिलेगा? विचित्र है! विचित्र है बात, लेकिन आदमी तृप्त मालूम पड़ता है। एक आदमी तिजोड़ी भरता जाता है, तिजोड़ी में राशि बढ़ती चली जाती है और बड़ा तृप्त होता है। रोज गिनती करता है और तृप्त होता है। क्या होगा? इससे क्या मिलेगा?

एक आदमी बड़े पद पर बैठ जाता है और सोचता है सब कुछ मिल गया। और जिंदगी सब दांव में लगा देता है, सब दांव पर लगा देता है, बस बड़े पद पर होने की दौड़ में हो जाता है। एक दिन हो जाता है। लेकिन क्या होगा? जीवन का कौन सा रहस्य हाथ में आ जाएगा? जीवन की कौन सी शाश्वतता मिलेगी? क्या जीवन-मृत्यु के पार चला जाएगा? क्या सुख और दुख के ऊपर उठ जाएगा? क्या शांति अनुभव होगी? क्या अमृत का दर्शन होगा? क्या होगा इस सब से?

लेकिन आदमी विचित्र है। वह भोगे चला जाता है। वह भागे चला जाता है। फुर्सत ही नहीं मिलती उसे सोचने की। एक भोग चुकता नहीं, दूसरा भोग खींचने लगता है। एक इच्छा पूरी नहीं होती कि दूसरी जग जाती है। इच्छाएं दौड़ाए रखती हैं। और जाग्रत में पूरे समय हम करते क्या हैं। सुबह से लेकर सांझ तब जब तक हम जागे हुए हैं, हम कर क्या रहे हैं? हम सब इन्हीं इच्छाओं के पीछे भाग रहे हैं, दोड़ रहे हैं और हम कभी यह भी नहीं देखते कि ये इच्छाएं जिनकी पूरी हो गई हैं, उनको क्या मिला? और जो लोग इन बातों को पा गए हैं, जिनको हम पाने की कोशिश कर रहे हैं, क्या वे सुखी है? क्या वे आनंदित हैं?

नहीं, उनका दुख भी इतना ही हैं। और वे भी किसी और आगे की चीज के लिए दौड़े चले जा रहे हैं। और हर आदमी में।। चाहे वह कहीं भी हो।। और उसकी इच्छा में बराबर फासला है। अगर आपके पास हजार रुपये हैं, तो दस हजार की इच्छा है। दस हजार हैं, तो लाख की इच्छा है। लेकिन आपमें और आपकी इच्छा में फासला सदा बराबर है। वह फासला कभी कम होता ही नहीं। एक रूपया है तो दस की इच्छा होती है। दस हों तो सौकी हो जाती है। सौ हों तो हजार की हो जाती है। हजार हों, दस हजार की हो जाती है। वह उतना ही गणित फैलता चला जाता है।

विचित्र है आदमी! जब एक था तब सोचता था दस मिल जाएंगे तो सब ठीक हो जाएगा। जब दस मिल जाते हैं तो बिल्कुल भूल जाता है कि कुछ भी ठीक नहीं हुआ और मैंने सोचा था कि जब एक था तो दस मिलेंगे तो सब ठीक हो जाएगा। कुछ भी ठीक नहीं हुआ! यह बात ही भूल जाता है। अब वह सोचता है, सो मिल जाएंगे तो सब ठीक हो जाएगा। वही गणित। फिर सौ भी मिल जाएंगे और वह पाएगा कि अब हजार के बिना काम नहीं चलनेवाला। लेकिन वह कभी लौटकर नहीं देखेगा कि यह तो मैंने पहले भी सोचा था कि दस मिलेंगे तो सब ठीक होगा, सौ मिलेंगे तो सब ठीक होगा, वह मिल गए हैं। अब मुझे हजार भी मिल जाएंगे तो ठीक होगा? नहीं, यह सोचेगा भी नहीं। वह मन जो एक पर खड़े होकर दस मांगता था, हजार पर खड़े होकर दस हजार मांगता रहेगा। वही मन, ठीक वही अनुपात, कहीं कोई अंतर नहीं, और आदमी चलता चला जाता है।

इसलिए ऋषि कहता है।। विचित्र! भोगों को आदमी जाग्रत में भोगता है यह तो विचित्रता है ही, लेकिन और भी विचित्रता यह है कि तृप्त बिल्कुल नहीं होता और तृप्त अनुभव करता है। यह और भी बड़ी विचित्रता है। और कोई भी तृप्त नहीं है।। फिर भी ऐसा चेहरा लेकर घूमता रहता है, जैसे सब ठीक है। किसी से पूछो, कैसे हैं? कहता है, सब ठीक है। और कुछ भी ठीक नहीं है। और कभी नहीं सोचता कि जो मैं कह रहा हूं यह क्या कह रहा हूं? क्या ठीक है? कुछ भी ठीक नहीं है! लेकिन झूठा चेहरा लगाकर आदमी घूमता रहता है।

शिक्षक विद्यार्थियों को समझाते रहते हैं ऐसे भाव से, जैसे उन्होंने पा लिया हो। पिता पुत्रों को समझाते रहते हैं ऐसे भाव से, जैसे उन्होंने पा लिया हो। बूढ़े नई पीढ़ी को समझाते रहते हैं ऐसे भाव से, जैसे उन्होंने पा

लिया हो। जैसे वे तृप्त हो गए हैं। कोई यह नहीं कहता कि मैं तृप्त नहीं हुआ हूं। क्योंकि उससे अहंकार को चोट लगती है। उससे लगता है, जिंदगी भर दौड़े, इतना परेशानी और अब यह भी कहें कि तृप्त भी नहीं हुए, तो फिर निपट मूढ़ हैं।

तो भीतर तो जानते रहते हैं कि तृप्त नहीं हुए, लेकिन बाहर ऐसा भाव प्रकट करते हैं कि सब ठीक है। यह सब ठीक एक बड़ा गहन धोखा है। अगर यह सारी पृथ्वी के लोग एक बार भी एक स्वर से ईमानदारी प्रामाणिकता से कह दें कि हम तृप्त नहीं हुए हैं, तो इस जमीन के सारे धोखे टूट जाएं। क्योंकि इस धोखे के पीछे फिर बहुत धोखे खड़े करने पड़ते हैं।

किसी से जाकर पूछिए ईश्वर है, तो वह ऐसा नहीं कहता कि मुझे पता नहीं। या तो कहेगा, है, या कहेगा, नहीं है। दोनों हालत में पता तो है ही। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो कहे कि नहीं, मुझे पता नहीं है। मुझे कोई पता नहीं है। क्योंकि यह कहना तो फिर भीतर की अतृप्ति को प्रकट कर देगा। और यह कहना तो फिर भीतर के अहंकार को तोड़ देगा।

किसी भी आदमी से पूछिए तो ऐसा लगता है कि वह जो कहता है, बतात है चेहरे से, वैसी वास्तविक स्थिती नहीं है। निकट आइए, करीब आइए, दो-चार दिन में वह अपने दुख का रोना शुरू कर देगा। दो-चार दिन भी बहुत दूर हैं। सफर में किसी के साथ दो-तीन घंटे भी रह जाइए तो वह अपना दुख रोना शुरू कर देगा। वैसे पहले जब मिला था तो उसका चेहरा और था, फिर धीरे-धीरे चेहरे की खुशी, वह जो धोखा था, जो पलस्तर था, वह हट जाएगा। और फिर उदासी, दुख, पीड़ा के सब भाव प्रकट होने शुरू हो जाएंगे।

इसलिए अजनबी आदमी से मिलने में सुख मिलता है। सुख का कुल कारण इतना है कि दोनों थोड़ी देर एक-दूसरे को धोखा देने में सफल रहते हैं। परिचति आदमियों से बिल्कुल सुख नहीं मिलता, क्योंकि वह सब उपद्रव प्रकट कर देते हैं आकर। और तुम भी प्रकट, वे भी प्रकट कर देते हैं, तो दोहरा दुख हो जाता है उलटा। अपरिचित आदमी से मिलने में थोड़ी देर तो कम से कम चेहरे बने रहते हैं और सुख मिलता है। इसलिए अपरिचित आदमी अच्छे लगते हैं। परिचित आदमी धीरे-धीरे बुरे लगने लगते हैं, क्योंकि उनके आते ही से वह सब गमगीनी, सब उदासी; फिर उन्हें यह कहने की जरूरत नहीं रहती कि सब अच्छा है, वह आते ही से अपना ब्यौरा शुरू कर देते हैं कि क्या-क्या बुरा है।

यह जो जाग्रत में हम भागते हैं वे तो विचित्र भोग हैं ही, हम तृप्त होने का धोखा भी अपने को पैदा करते रहते हैं। वह भी आश्चर्यजनक है! और यह धोखा इतने आयोमों में फैल जाता है, जिसका हिसाब नहीं है! बच्चे से पूछ लो, बच्चा सुखी नहीं है। एक बच्चा नही कहता कि मैं सुखी हूं। यही बच्चे सब कल बूढ़े होकर कहना शुरू करेंगे कि जब मैं बच्चा थ तो बहुत सुखी थ, बचपन में बड़ा आनंद है। यह धोखा है। यह बूढ़ा अपने को समझाने की कोशिश कर रहा है कि भला आज न हो सुख, लेकिन बचपन में तो था। सब बच्चे जल्दी बड़े होना चाहते हैं। क्योंकि बचपन सुखद नहीं है। बच्चों से पूछो। बूढ़ों से मत पूछना, क्योंकि बूढ़े धोखा देंगे। वह अपने को भी धोखा दे लिए हैं कि बचपन बड़ा सुखद था।

असल में आदमी के मन का एक नियम है। जो-जो दुखद होता है, आदमी उसका स्मरण छोड़ देता है। क्योंकि उससे अहंकार को चोट लगती है। जो-जो सुखद होता है, उनको बचाता चला जाता है। तो दुख की स्मृतियां छूट जाती हैं।

मनोवैज्ञानिक एक बहुत अजीब निष्कर्ष पर पहुचं हैं। वे यह कहते हैं खासकर फ्रायड यह कहता है और उसकी बात ठीक मालूम पड़ती है कि किसी भी आदमी को अगर हम पूछें कि तुम्हें आखिरी स्मरण कब का आता

है, तो पांच साल, चार साल तक मुश्किल से आदमी पीछे लौट सकता है। कह सकता है कि जब मैं चार साल का था तब का मुझे आखिरी स्मरण है। लेकिन चार साल भी तो वह था, उसका कोई स्मरण क्यों नहीं है? फ्रायड का कहना है कि बचपन के तीन-चार साल इतने दुखद हैं कि मन उनकी याद रखता ही नहीं। उनकी याद ही नहीं रखता। उनको भूल जाता है। बिल्कुल पोंछ ही डालता है। उनकी जगह ही नहीं रह जाती चित्त में कोई। इसलिए हमारी पांच साल की स्मृति तो बिल्कुल कोरी रहती है। लेकिन कोरी नहीं है। अगर आपको सम्मोहित करके बेहोश किया जाए तो आप बताना शुरू कर देते हैं। यहां तक हैरानी होती है कि बच्चे को अपनी मां के पेट में भी जो घटनाएं घटती हैं, उनका भी स्मरण है। अगर मां गिर पड़ी है और बच्चा गर्भ में है, तो उसको स्मरण में आ जाता है। अगर मां बीमार है तो बच्चा भी दुखी होता है भीतर, स्मरण बन जाता है। लेकिन सम्मोहित करें तो ही स्मरण प्रगट होते हैं। नहीं तो ऐसे बंद हैं। आपको कोई याद नहीं है।

आप कहते हैं पाचं साल के पहले का मुझे कुछ याद नहीं है। इसका कारण यह है कि सब स्मरण ट्रॅमेटिक हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं बहुत दुखद है, बहुत पीड़ादायी हैं। क्योंकि बच्चा इतना असहाय था। इतना परेशान था, हर चीज के लिए मोहताज था, दीन था। दूध भी उसे मांगना है तो रोए, चिल्लाए, कोई दे दे तो ठीक, कोई न दे तो ठीक। उसे अभी दूध और पीना है और मां अलग हट जाए, तो उसके पास कोई उपाय नहीं था। उसको मच्छर काट रहे हैं, वह कुछ कह नहीं सकता। वह पड़ा है, उसे नींद नहीं आ रही है तो उसको जबरदस्ती सुलाया जा रहा है। वह जगना चाहता है तो उसे जबरदस्ती, नही जगना चाहता तो जबरदस्ती जगाया जा रहा है। नहीं खाना चाहता तो खिलाया जा रहा है। खाना चाहता है तो कोई देने को तैयार नहीं है। उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय और भारी कष्ट की है। उसको बिल्कुल भूल गया है। क्योंकि वह उसके अहंकार को सुखद नहीं है।

हम धीरे-धीरे, जो दुखद है उसको अलग करते जाते हैं, जो सुखद है उसको बचाते चले जाते हैं। न केवल बचाते हैं, फिर सुखद को हम मेग्नीफाई करते हैं, उसको बड़ा करते हैं। जरा सा रहा हो तो उसको हजार गुना करते हैं। फिर बूढ़ा आदमी कहता है कि बचपन तो स्वर्ग था। बच्चे ने कभी नहीं कहा! कोई बच्चा कभी कहेगा नहीं! लेकिन बूढ़ा कहता है।

क्यों?

क्योंकि हम तृप्ति को, अगर यहां नहीं मिल रही तो कहीं और हटा देना चाहते हैं। बचपन में मिलती थी, जवानी में मिलती थी, कहीं हटा देना चाहते हैं। लेकिन तृप्ति कहीं मिलती थी, इस भ्रम से हम नहीं छूटना चाहते। क्योंकि यह अगर भ्रम छूट जाए तो आदमी के जीवन में क्रांति घटित हो जाए। तृप्ति मुझे मिली ही नहीं ऐसा जो आदमी जान लेगा, वही धार्मिक हो सकता है। तृप्ति मैंने जानी ही नही, सब तृप्तियां मेरे ही धोखे थे, मैंने मानी थी, कभी मैंने कोई तृप्ति जानी नहीं, कोई ऐसा क्षण नहीं आया जिसे मैं तृप्ति का क्षण कहूं, ऐसा जो आदमी जान लगा वह बड़ा दुखद है जानना। क्योंकि इससे लगेला कि हम बिल्कुल भिखारी हैं तो हमने जीवन यूं ही गंवाया अहंकार बिखरेगा। लेकिन उसके बिना बिखरे कोई धार्मिक होता नहीं।

जाग्रत के लिए ऋषि ने कहा कि विचित्र भोगों को भोगकर और मानता है कि तृप्त हो रहां हूं। लेकीन यहीं तक पूरा नहीं होता है आदमी का मन। सपने में भी भोग जारी रखता है। और मजा तो यह है कि कम से कम चाहे हम पहली बात से राजी न भी हो सकें कि जाग्रत में जो भोग मिले हैं वे वास्तविक नहीं हैं, लेकिन इतना तो हम भी मानेंगे कि स्वप्न में जो भोग मिलते हैं, वे वास्तविक नहीं है। लेकिन जब वे मिलते हैं, तब हम उनको बड़े मजे से भोगते हैं। बड़े मजे से भोगते हैं।

सपने का आपको खयाल है? जो-जो आप नहीं भोग पाते जागने में, वे-वे सपने में भोगते हैं। बड़े महल में नहीं रह पाते, तो बड़ा महल बना लेते हैं सपने में। और सपने में दिक्कत नहीं आती। महल बनाने के लिए न कोई धन की जरूरत पड़ती न कुछ। क्योंकि आपका जो मन है, सपने में अपनी माया का पूरा प्रयोग कर पाता है क्योंकि यथार्थ कोई बाधा नहीं डालता।

समझ लें।

आप जागने में भी माया का प्रयोग करते हैं, लेकिन यथार्थ बाधा डालता है। आप तो मानना चाहते हैं कि चारों तरफ सोना है, लेकिन चारों तरफ पत्थर पड़े हैं। वे बाधा डालते हैं। वे बाधा डालते हैं, वे कहते हैं, कैसे मानेंगे? आपका मन तो मानने का होता है। जिस आदमी को हम पागल कहते हैं, असल में वह वह आदमी है जिसने यथार्थ को इतना इनकार कर दिया कि अब वह जागने में भी अपनी माया का पूरा प्रयोग कर रहा है। पागल का और कोई मतलब नहीं है। पागल का मतलब इतना ही है कि जैसा हम सपने में करते हैं, वैसा अब वह जागनेमें भी करने में समर्थ हो गया है। अगर उसे अपने मित्र से मिलना है, तो कहीं मित्र के पास जाने की जरूरत नहीं है, वह यही बैठे हुए शून्य में उससे बातचीत करता रहेगा। हम कहते हैं, यह आदमी पागल हो गया है। पागल नहीं हो गया है, यह आदमी अपनी माया की शक्ति का पूरा प्रयोग कर रहा है। आप थोड़ा कम कर रहे हैं। आप भी मित्र से बातचीत करते हैं, लेकिन ऐसा नहीं मानते कि वह सामने मौजूद है, आंख बंद करके भीतर उसको देखते हैं, फिर उससे बातचीत करते हैं।

आंख बंद करके जरा कुर्सी पर लेट जाइए और आपको पता चल जाएगा, आपकी माया ने काम शुरु कर दिया। बातें शुरू हो गई, चर्चा शुरू हो गई। और ऐसा भी नहीं है कि कभी-कभी हम बाहर तक नहीं आ जाते। कभी किसी आदमी को रास्ते से चलते हुए देखें, कहीं वह हाथ हिला रहा है, कुछ इशारा कर रहा है, ओंठ हिल रहे हैं, कुछ बोल रहा है। किसी से बातचीत कर रहा है, जो वहां मौजूद नहीं है। तो हममें और पागल में मात्राओं का ही फर्क है।

हम सपने में बिल्कुल पागल होते हैं, दिन में सम्हाल कर चलते हैं। पागल जरा ज्यादा हिम्मतवर है। वह अपने सपने को जागने तक फैला देता है। और इसलिए पागल बड़ा सुखी मालूम पड़ता हैं। अब इसको जरा ठीक से समझ लें। पागल बड़ा सुखी मालूम पड़ता है, क्योंकि अब सुख बिल्कुल उसकी सम्मोहन की बात हैं।

मैं ऐसे मित्रों को जानता हूं, जो पीरियाडिकली पागल होते हैं। कभी छह महीने के लिए पागल हो जाते हैं, छह महीने के लिए ठीक हो जाते हैं। यह बड़े मजे की बात है कि जब वे पागल होते हैं तब बिल्कुल स्वस्थ होते है ओर बड़े प्रसन्न होते हैं। और अब ठीक होते हैं, तब बीमार पड़ जाते हैं और बड़े दुखी हो जाते हैं। क्या मामला है? क्या मामला है।

असल में जब वे पागल होते हैं तब यथार्थ को इतना इनकार कर देते हैं कि यथार्थ उनके लिए बाधा डाल ही नहीं सकता। कल्पवृक्ष के नीचे हो जाते हैं। जो उनकी इच्छा है, वह पूरी हो जाती है, दुनिया उसको रोक नहीं सकती। क्योंकि अब वे सपने से ही पूरा कर लेते हैं। अब उन्हें वास्तविक पूर्ति की कोई जरुरत नहीं है। सुखी हो जाते हैं।

अगर ठीक से समझें, तो इस तथाकथित जगत में जो लोग सुखी दिखाई पड़ते हैं, वे पागलपन की वजह से हैं। अगर ठीक से समझें, तो इसका मतलब यह हुआ, इसका अभिप्राय यह हुआ कि इस तथाकथित विचित्र भोगों को भोगते हुए जो लोग सुख दिखाई पड़ते हैं, वह उनकी पागलपन की मात्रा के कारण है। बुद्धिमान आदमी तो

यहां एकदम उदास हो जाएगा। क्योंकि बुद्धिमान आदमी तो तत्क्षण दिखाई पड़ जाएगा कि यह निपट गंवारी है, मूढ़ता है। यह जो हो रहा है इसमें कुछ है नहीं। लेकिन पागल दौड़े चला जाएगा।

कभी आपने देखी है किसी राजनीतिज्ञ को, जब वह सिंहासन पर पहुंच जाता है तो खुश मालूम पड़ता है? वह पागलपन के शिखर पर खड़ा है। लेकिन उसका सुख तो है। उसका सुख तो है। सुखी तो दिखाई पड़ता है। गहन अध्ययनों से पता चला है कि राजनितिज्ञ जब तक शक्ति में होते हैं तब तक बीमार पड़ते हैं, न मरते। बड़े ताजे और स्वस्थ होते हैं। जैसे ही शक्ति से उतरते हैं, वैसे ही जल्द मर जाते हैं। बीमार पड़ जाते हैं।

राजनीतिज्ञ तो सभी लोग नहीं होते, लेकिन दूसरी तरह से समझ लें।"रिटायर्ड" आदमी मर जाता है। और उदास हो जाता है। और दुखी हो जाता है।

समझ ले कि एक तहसीलदार है। तो गांव में वह राजा है। सारा गांव नमस्कार करता है। दफ्तर में आता है, लोग खड़े होते हैं। घर में पहुंचता है, पत्नी भी मानती है, बच्चे भी मानते हैं। तहसीलदार है! सारा गांव मानता है। उसकी दुनिया पूरी उस मानती है। जहां "मूव" कर जाए, जहां चले जाएं, वहीं सब जाहिर हो जाता है कौन आ रहा है। फिर वह रिटायर्ड हो गए। फिर उसी रास्ते से निकलता है, कोई नमस्कार नहीं करता है। बल्कि जिन-जिन ने नमस्कार किया था, वे बचकर निकलते हैं कि अब इसको कहीं नमस्कार न करना पड़े। अब कोई मतलब का भी नहीं है, बेकार आदमी है। चली हुई कारतूस है। इसका क्या करना है! घर में आता है तो बच्चे भी उसकी तरफ देखते नहीं, पत्नी भी उसकी फिकर नहीं करती, अब तहसीलदार तो रहे नहीं। "क्रीज" तो निकल गई। कपड़ा बिल्कुल ऐसा हो गया उसे रातभर कोई आदमती सोया रहा हो पहन कर। अब उसकी कौन फिकर करता है, कौन उसकी तरफ देखता है। वह एकदम उदास हो जाता है। उसे पता चलता है अब कोई मानने वाला नहीं रहा। भीतर टूटना शुरू हो जाता है, सम्मोहन खंडित हो जाता है, मौत करीब आने लगती है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि रिटायर्ड होते ही आदमी की उम्र दस वर्ष कम हो जाती है। दस वर्ष और जी सकता था, लेकिन दस वर्ष कम हो जाते हैं। क्योंकि अब उसे कुछ नहीं सुझता, कहीं उसकी कोई उपयोगिता नहीं है। कहीं उसके अहंकार की कोई तृप्ति नहीं है। कहीं सुख नहीं मिलता। वह एकदम उदास हो जाता है। इरिटेटड हो जाता है। चिड़चिड़ा हो जाता है। उसका भीतर कारण हे कि वह जो सुख ले रहा था सम्मोहन का, अब उसको यथार्थ साथ नहीं देता। अब उसको यथार्थ साथ नहीं देता।

लेकिन मैं एक ऐसे तहसीलदार को जानता हूं जो रिटायर होने के साथ ही पागल हो गए। मतलब वह अपने को अब भी तहसीलदार मानते, और अब भी दफ्तर में तहसीलदार की अगड़ से कभी-कभी पहुंच जाते, और अब भी वह इसकी फिकर नहीं करते कि कौन खड़ा है, कि नहीं खड़ा है। इसकी भी फिकर नहीं करते कि नमस्कार आपने किया नहीं, वह जवाब देते हैं। वह बड़े प्रसन्न है और लगता है कि वह जीएंगे, उनके दस साल कम नहीं हो सकते। वह उसकी फिकर ही नहीं करते, वह अपने को तहसीलदार मानते ही हैं! वह रिटायर्ड हुए ही नहीं, अपनी तरफ से।

मैं एक हेडमास्टर को जानता हूं। वह अब भी पहुंच जाते हैं स्कूल में। और अब भी थोड़ी देर हेडमास्टर की कुर्सी पर बैठ कर शांति से लौट आते हैं। और बड़े आनंदित हैं। उनको खयाल में नहीं है कि वह रिटायर्ड ही गए हैं। उनका दिमाग खराब हो गया है।

लेकिन मैं यह आपसे इसलिए कह रहा हूं ताकि आपको खयाल में आ जाए कि आपके सब सुख आपकी कल्पना से पैदा होते हैं और पागलपन के हिस्से हैं। बुद्धिमान यहां जरा भी सुख नहीं पाएगा, जहां आप सुख देख रहे हैं।

मगर बड़ा मजा है, बुद्धिमान आदमी हमें पागल मालूम पड़ता है; कि इसका दिमाग खराब हो गया है। कितना मजा जा रहा है, सिनेमा में बैठ कर हम कितना आनंद ले रहे हैं, इसका दिमाग गराब हो गया है। क्या मजा ले रहे हैं आप वहां? वहां परदे पर सिवाय छाया और धूप के कुछ भी नहीं है। लेकिन मैं ऐसे नासमझों को जानता हूं कि अगर कोई स्त्री नाच रही हो और उसका घाघरा ऊपर उठ रहा हो तो कुर्सी से नीचे झुककर देखते हैं। और बडा सुख पाते हैं। बड़ा सुख पाते हैं!

मैंने सुना है कि पहली दफा लंदन में एक फिल्म आई।। पहली दफा जब शुरु हुआ फिल्मों का सिलसिला।। तो उस फिल्म में एक नग्न स्त्री एक तालाब पर स्नान कर रही है। सब कपड़े उतारकर वह तालाब में कूदी है, तभी एक ट्रेन झक-झक करती हुई निकल जाती है और वह तालाब उस तरफ पड़ जाता है। तो जिन लोगों ने पहले दिन टिकट खरीदे थे, वे उसी दिन पूरे दिन का टिकट मांगने लगे। तो मैनेजर ने कहाः तुम तो फिल्म देख चुके। तो उनमें से एक आदमी ने कहा, बात ऐसी है कि ट्रेन इसी वक्त रोज थोड़े ही आएगी! कभी तो लेट होगी! वह ऐन वक्त पर आ गई। वह जान कर ही लाई गई। वह जान कर ही लाई गई थी, ताकि वह नग्न चित्र सीधा नग्न न हो जाए। सब कपड़े उतार रही थी सुंदरी और कूदने के करीब थी, छपाक की आवाज हूई और ट्रेन गुजर गई। तो लोगों ने कहा कि रोज कहीं ट्रेने एक ही टाइम पर आई हैं। किसी दिन तो यह लेट हो ही जाएगी।

यह आदमी है... यह हमारे भीतर छिपा आदमी है! इसको दूसरा समझ कर मत हंसना। नहीं तो आप फिर सम्मोहन कर रहे हैं। यह मत समझना कि यह किसी और की कहानी है। यह आपकी ही कहानी है। और अगर आपने समझा कि मैं किसी और के संबंध में कह रहा हूं, तो आप अपने को धोका दे रहे हैं।

आदमी सपने में भी तृप्ति खोजता है और तृप्त होता रहता है। सुबह सपना टूटता है तब थोड़ी पीड़ा होती है, लेकिन रात, रात तो सपना बड़ा सुख देता रहता है। और सपने से भी तृप्ति पाता है। आपको पता नहीं है, अभी सपने पर काफी खोज-बीन चलती है। तो यह अनुभव हुआ है कि जो लोग सुखद सपने देखते हैं, वे सुबह ज्यादा ताजे उठते हैं। और जो लोग दुखद सपने देखते, वे सुबह बड़े उदास और परेशान उठते हैं। सुखद सपना सपना ही नहीं है, सुबह आपको ताजगी भी देता है, सुबह आप बड़े प्रसन्न उठते हैं। जिंदगी में रस मालूम पड़ता है, पुलक मालूम पड़ती है, ओंठों पर गीत मालूम पड़ता है। अगर रात आपने सुखद सपना देखा, तो सुबह आपके जागने का गुणधर्म बदल जाता है। अगर रात आपने दुखद सपना देखा, कि आपकी पिटाई हुई, इलेक्शन हार गए हैं, या और कोई उपद्रव आपने देखा, कोई नाइटमेयर देखा, तो सुबह बिल्कुल बेजान उठते हैं। उठने का मन ही नहीं होता, बिस्तर छोड़ने को मन नहीं होता।

इसपर काफी वैज्ञानिक शोध चलती है। और एक वैज्ञानिक, स्टेटर ने तो कहा है कि अगर हम आदमी को स्वस्थ रखना चाहते हों, तो हमे सुखद सपने पैदा करने का कोई इंतजाम खोजना पड़ेगा। क्या यह हो सकता है कि हम सुखद सपने पैदा कर सकें? अब इस पर काफी काम चलता है। सपने पैदा किए जा सकते हैं बाहर से भी। एक आदमी सो रहा हो, आप जरा उसके पांव के पास गीले पानी का कपड़ा उसके पांव में लगाते रहें थोड़ी देर, फिर उसको उठा कर पूछे तो वह बताएगा उसने सपना देखा कि वह नदी में से गुजर रहा है। यह सपना आपने पैदा करवा दिया। जरा उसके पांव के पास स्टोव ले जाएं और थोड़ी गरमी दें, फिर उसको जगा कर पूछे तो वह कहेगा, मैंने सपना देखा मैं एक रेगिस्तान में चला जा रहा हूं। वह सपना आपने पैदा करवा दिया। अगर इतना हो सकता है, तो आज नहीं कल हम उपाय खोज लेंगे, कोई यांत्रिक व्यवस्था खोज लेंगे कि हर कमरें में लगा दी जाए और आदमी रातभर सुखद सपने देखता रहे। तो सुबह ज्यादा ताजा, जीवन से भरा हुआ।।

तथाकथित जीवन से भरा हुआ।। ज्यादा धोखे में डूबा हुआ, ज्यादा सम्मोहित, दफ्तर की तरफ तेजी से जाता हुआ, गीत गुनगुनाता मिलेगा।

ऋषि कहता है कि माया से कल्पित जीवलोक में वही मनुष्य स्वप्नावस्था में शरीर के सुखों और दुखों को भोगता है। वहां भी भोगता रहता है वह उसी पागलपन को, जिसको वह जागते मे भोगता है। हमारा सपना हमारा जगाने का ही परिशिष्ठ है, ... उसका ही हिस्सा है। जो-जो अधूरा रह गया है, उसे हम पूरा कर लेते हैं। इतना ही नहीं जब तीसरी अवस्था होती हैं मनुष्य की।। सुषुप्त।। जब सपने भी खो जाते हैं कुछ भी नहीं बचता, सुषुप्त-अवस्था में जब समस्त माया का प्रपंच भी समाप्त हो जाता है, चेतना ही खो जाती है, तमोगुण से पराजित होकर आदमी मूर्च्छित हो जाता है, तब भी वह सुबह उठ कर कहता है कि रात बड़ी गहरी नींद आई, बड़ा सुख मिला। जागने में वह सुख खोजता है, सपने में खोजता है, और जब कुछ भी नहीं बचता, सपना भी नहीं बचता, तब भी सुबह उठ कर कहता है कि रात बड़ी गहरी नींद आई, बड़ा सुख मिला।

मगर इन तीनों अवस्थाओं में सुख सम्मोहन है। और सुख मनुष्य की कल्पना है। हां, जहां-जहां सुख की कल्पना टूटती है, वहां-वहां दुख पाता है। दुख सुख की कल्पना का पूरा न हो पाना है। इसलिए जो आदमी सुख की चाह रखता है वह दुख पाता रहता है। दुख विफलताएं हैं। अपेक्षाओं को पूरा न होना है।

तो सपने भी दुख दे सकते है। जाग्रत भी दुख दे सकता है। सिर्फ सुषुप्तावस्था दुख नहीं देती है। क्योंकि वहां कोई जानने वाला ही शेष नहीं रह जाता है, सब सो जाता है, इसलिए अगर ठी समझें, तो हम तीनों ही अवस्था में मान कर जी हैं कि जीवन ऐसा, ऐसा, ऐसा। प्रोजेक्ट कर रहे हैं, प्रक्षेप कर रहे हैं, जीवन को निर्मित कर है; लेकिन जीवन कैसा है उसका हमें कोई भी पता नहीं है।

ऋषि ने यह तीनों अवस्थाओं की सम्मोहन की चर्चा इसलिए की है कि जिसे ध्यान में जाना है, उसे इस सम्मोहन को तोड़ना पडेगा। ध्यान सम्मोन की विपरीत प्रक्रिया है।। डी-हिप्नोटाइजेशन।

अब हम ध्यान के लिए तैयार हों।

ग्यारहवां प्रवचन

तीन शरीर चार अवस्थाओं की बात

पुनश्च जन्मान्तकर्मयोगात् स एक जीव स्वपिति प्रबुद्धः।
पुरत्रये क्रीडति यश्च जीवस्तमस्तु जातं सकलं विचित्रम्।
आधारमानंदमखण्ड बोधं यस्मिन लयं जाति पुरत्रयंच।। 14।।
एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथ्वी विश्वस्य धारिणी।। 15।।

पिछले जन्मों के कार्यों से प्रेरित होकर वही मनुष्य सुषुप्तावस्था से पुनः स्वप्नावस्था व जाग्रतवस्था में आ जाता है। इस तरह से ज्ञात हुआ कि जीव तो तीन प्रकार के पुरों (शरीरों)।। स्थूल, सूक्ष्म और कारण में रमण करता है, उसी से इस सारे मायिक प्रपंच की सृष्टि होती है। अब तीन प्रकार के शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म कारण) का लय हो जाता है, तभी यह जीव मायिक प्रपंच से मुक्त हो कर अखंडानंद का अनुभव करता है।। 14।।

इसी से प्राण, मन और समस्त इंद्रियों की उत्पत्ति होती है। इसी से पृथ्वी की सृष्टि होती है जो आकाश, वायु, अग्नि, जल और सारे संसार को धारण करती है।। 15।।

सुबह के सूत्र मनुष्य का मन किस भांति सम्मोहित हुआ जाग्रत में, स्वप्न में, और सुषुप्ति में कल्पित सुखों और दुखों में गिरता है, कैसे सुख के आभास बनाता है और कैसे दुख के फल भोगता है, उस संबंध में बात हुई। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीन अवस्थाओं के संबंध में भारत ने बहुत तरह की खोज की हैं। और ये तीन शब्द, फिर आपको दिलाऊं याद, भारत के तीन की खोज का एक और पहलू उपस्थित करते हैं।

मनुष्य की तथाकथित जो दिखाई पड़ने वाली स्थिति है, वह इन तीने से ही मिल कर बनी है। मनुष्य का जीवन इन तीन से ही मिल कर निर्मित हुआ है। इस मनुष्य के जीवन के पीछे जो छिपा है सार, वह इन तीनों के पार है। इन तीन से संसार निर्मित हुआ है। इसलिए इस सूत्र को थोड़ा ठीक से और गहरे में समझ समझ लेना जरूरी होगा। इसके अनेक आयाम हैं।

पहला तो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति हमारे मन की ही दशाएं नहीं, हमारे जीवन के भी आधार-स्तंभ हैं। इन तीन पर ही हम खड़े हैं। और हम चौथे हैं। इन तीन से हमारा भवन निर्मित होता है, लेकिन वह जो निवासी है, वह चौथा है। इसलिए भारत में उसे "तुरीय" कहा है। तुरीय का अर्थ होता हैः चौथा, दि फोर्थ। उसको कोई नाम नहीं दिया, सिर्फ चौथा कहा है। इन तीनों को नाम दिए हैं। उस चौथे को कोई नाम दिया नहीं जा सकता। उसके नाम का कोई पता भी नहीं है। और उसकी किसी से कोई तुलना नहीं हो सकती। इसलिए उसे सिर्फ चौथा कहा है।

ये तीन, रोज हम इन तीन में से गुजरते हैं। सुबह जब आप जागते हैं तो जाग्रत अवस्था में प्रवेश होता है। सांझ जब आप सोते हैं तो पहले स्वप्न में प्रवेश होता है, फिर जब स्वप्न भी खो जाते हैं तो सुषुप्ति में प्रवेश होता है। चौबीस घंटे मे इन तीन अवस्थाओं में बार-बार घूमते रहते हैं, प्रतिदिन। और अगर और सूक्ष्म में देखें, तो हम प्रतिपल भी इन तीन अवस्थाओं में डूबते रहते हैं। लगता है ऊपर से आप जगे हुए हैं, भीतर स्वप्न शूरू हो जाता

है। जिसको हम दिवास्वप्न कहते है। और कभी-कभी ऐसा लगता है कि क्षणभर को आप इस जगत में न रहे, होश ही खो गया। तो सुषुप्ति पकड़ जाती है। चौबीस घंटे तो हम बड़े पैमाने पर इन तीन अवस्थाओं में गुजरते ही हैं। प्रतिपल भी हम तीन अवस्थाओं में डोलते रहते हैं।

इन तीन अवस्थाओं में हम पूरे जीवन ही डोलते हैं और अनेक-अनेक जीवन में भी हम इन तीन अवस्थाओं में घूमते हैं। मृत्यु का क्षण सुषुप्ति में घटित होता है। मरता हुआ आदमी जाग्रत से पहले स्वप्न में प्रवेश करता है, फिर स्वप्न से सुषुप्ति में प्रवेश करता है। मृत्यु सुषुप्ति में घटित होती है। इसलिए पुराने लोग निद्रा को रोज आ गई मृत्यु का, मृत्यु की थोड़ी सी झलक मानते थे। निद्रा मृत्यु की झलक है।

जब आप सुषुप्ति में होते हैं तब आप अवस्था में होते हैं जब मृत्यु घटित होती है, या घट सकती है। सुषुप्ति के बिना मृत्यु घटित नहीं होती। इसलिए सुषुप्ति में आपको सारा बोध खो जाता है। इसलिए मृत्यु की पीड़ा भी अनुभव नहीं होती। अन्यथा मृत्यु बड़ा सर्जिकल काम है। इससे बड़ा और कोई सर्जिकल काम नहीं है।

डाक्टर एक हड्डी निकालता होगा तो भी मार्फिया देता है। मार्फिया देकर वह आपको जबरदस्ती सुषुप्ति में ले जाता है। तभी आपकी एक हड्डी निकाली जा सकती है, आपरेशन किया जा सकता है, अन्यथा असंभव है। सब आपरेशन सुषुप्ति में होते हैं। और जब तक सुषुप्ति न आ जाए तब तक आपरेशन करना खतरनाक है। भयंकर पीड़ा होती है। शायद आपरेशन मुश्किल ही हो जाएगा करना।

मृत्यु सदा से ही बड़े से बड़ा आपरेशन करती रही है। पूरे प्राणों को इस शरीर से बाहर निकालना है। तो गहन सुषुप्ति में मृत्यु घटित होती हैं। जन्म भी सुषुप्ति में ही होता है। इसलिए हमें याद नहीं रहती। पिछले जन्म की याद न रहने का कारण सिर्फ इतना ही है कि बीच में इतनी सुषुप्ति होती है कि दोनों ओर-छोर पर संबंध छूट जाते हैं। सुषुप्ति में ही मृत्यु होती है, सुषुप्ति में ही फिर पुनर्जन्म होता है। मां के पेट में बच्चा सुषुप्ति में ही होता है।

जो बच्चे मां के पेट में सुषुप्ति में नहीं होते हैं, वह मां के स्वप्नों को प्रभावित करने लगते हैं। कुछ बच्चें मां के पेट मे स्वप्न में होते हैं। बहुत कुछ, बहुत थोड़ी संख्या में।। कभी करोड़ में एकाध बच्चा।। मां के पेट में स्वप्न की अवस्था में होता है। लेकिन यह वही बच्चा होता है जिसकी पिछली मृत्यु स्वप्न की अवस्था में हुई है। तिब्बत में इस पर बहुत प्रयोग किए है। "बारदो" इसका नाम है तिब्बत में, इसके प्रयोग का।

तिब्बत में मरते हुए आदमी को सुषुप्ति में न चला जाए, इसकी चेष्टा करते हैं। अगर सुषुप्ति में चला गया तो फिर उसको इस जन्म की स्मृति मिट जाएगी। तो उसके इस जन्म की स्मृति बनी रहे, तो मरते हुए आदमी के पास विशेष तरह के प्रयोग करते हैं। उन प्रयोगों में उस आदमी को चेष्टापूर्वक जगाए रखने की कोशिश की जाती है। न केवल जगाए रखने की बल्कि उस मनुष्य के भीतर स्वप्न को पैदा करने की भी चेष्टापूर्वक कोशिश की जाती है। ताकि स्वप्न चलता रहे, चलता रहे और उसकी मृत्यु स्वप्न की अवस्था में घटित हो जाए। यदि स्वप्न की अवस्था में मृत्यु घटित हो जाए, तो वह आदमी आनेवाले जन्म में अपने पिछले जन्म की सारी स्मृति लेकर पैदा होता है।

इसे हम ऐसा समझें तो आसानी पड़ जाएगी। आप रात-भर सपने देखते हैं, यह जानकर आपको शायद भरोसा नहीं होगा। अनेक लोग कहते हा कि वे सपने देखते ही नहीं। सिर्फ उनको पता नहीं है। अनेक लोग कहते हैं मुझे कभी-कभी सपना आता है। उन्हें सिर्फ स्मरण नहीं रहता। सपना रात भर देखते हैं। पूरी रात में करीब-करीब बारह स्वप्न औसत आदमी देखता है। इससे ज्यादा देखले वाले लोग हैं, इससे कम देखले वाले आदमी खोजने मुश्किल हैं। बारह स्वप्न रात्रि के करीब-करीब तीन चौथाई हिस्से को घेरते हैं। एक चौथाई हिस्से में

सुषुप्ति होती हैं। बाकी तीन चौथाई में स्वप्न होते हैं। लेकिन आपको याद नहीं रहते हैं। क्योंकि एक स्वप्न गया, उसके बाद सुषुप्ति का अगर एक क्षण भी आ गया तो संबंध टूट जाता है स्मृति का।

आपको जो सपने याद रहते हैं, वे करीब-करीब भोर के सपने होते हैं, सुबह के सपने होते हैं। जिनके बाद सुषुप्ति नहीं आती, जागृति आ जाती है। जिस सपने के बाद सुषुप्ति नहीं आती और सीधे आप जाग जाते हैं, वही आपको याद रहता है। अगर किसी भी सपने और जागरण के बीच में सुषुप्ति का थोड़ा सा भी काल आ जाए, तो स्मृति का संबंध-विच्छेद हो जाता है। उसकी स्मृति तो बनती है लेकिन आपको साधारणः याद नहीं रहती। स्मृति बनती नहीं, ऐसा नहीं है। स्मृति तो निर्मित होती है, लेकिन अचेतन हो जाती है। सुषुप्ति में भी स्मृति निर्मित होती है, लेकिन अचेनत हो जाती है। उसका आपको बोध नहीं होता है। चेष्टा की जाए तो अचेतन से उसको जगाया जा सकता हो जाती है। लेकिन साधारणः आपको खयाल में नहीं रहता। इसलिए सिर्फ सुबह के सपने याद रहते हैं।

इसलिए अधिक लोग तो ऐसा भी सोचते हैं कि मुझे सुबह ही सपना आता है। सपने रात भर आते हैं। अब तो इसके लिए वैज्ञानिक आधार उपलब्ध हो गए है। अब तो हमारे पास यंत्र भी उपलब्ध हो गए हैं, जो रात-भर बताते रहते हैं कि कब आप सपना देख रहे हैं और कब आप नहीं देख रहे हैं, पर यह मजे की बात है कि सपना देखने में भी आपकी आंख गतिमान हो जाती है, उसी तरह तेजी से आप वस्तुतः अगर जगत में घटना देख रहे होते हैं। उसी आंख से पता चलता है कि आप सपना देख रहे हैं। जैसे एक आदमी फिल्म देख रहा है तो जितनी तेजी से उसकी आंख चलती है।। फिल्म के साथ चलानी पड़ती है।। जब आदमी सपना देखता है तो उससे भी ज्यादा तेजी से उसकी आंख चलने लगती है पलक के भीतर। रेपिड आई मूवमेंट्स। उसको वह कह सकते हैं कि तब पता चल जाता है कि सपना देख रहा है।

तो आंख पर यंत्र लगा दिया जाता है। वह यंत्र बताता रहता है कि कब आंख की गति कितनी है। और जब आंख की गति तेज है, तब आपको जगाया जाए तो आप सपना पूरा बात देते हैं उसी वक्त कि क्या सपना देख रहे थे। और जब आंख की गति नहीं होती तब आपको जगाया जाए, तो आप कहते हैं मैं कोई सपना नहीं देख रहा था। तो अब इस पर निर्णय हो गया कि आदमी सपना देखता है तो आंख उसकी भीतर चलती है जोर से। जैसे वह फिल्म देख रहा हो।

तो रात भर प्रयोग करके हजारों लोगो पर जाना गया है। कोई दस हजार लोगों को।। अमरीका ने इसके पीछे बहुत खर्च किया।। रात भर सोने का प्रयोगशाला में पैसा दिया है लोगों को। क्योंकि वह अपनी नींद बेचते हैं। उनको बार-बार जगाना पड़ता है और रात भर वह बंधे हुए पड़े रहते हैं। यंत्रो के बीच। दस हजार लोगों पर प्रयोग करके यह निर्णय निया है कि कोई आदमी कहता है कि मैं सपने नहीं देखता, वह सच कहता है अपनी तरफ से, लेकिन झूठ कहता है। जो आदमी कहता है, मुझे कभी-कभी सपने आते हैं, वह भी गलत कहता है। जो लाग कहते हैं हमें सुबह ही सपने आते हैं वे भी गलत कहते हैं। लेकिन फिर भी उनकी बातों में थोड़ी सच्चाई है। सुबह के सपने याद रहते हैं, क्योंकि जागृति हो जाती है।

यह मैंने इसलिए कहा था ताकि तिब्बत का "बारदो" का प्रयोग आपके ख्याल में आ जाए। तिब्बत ने मनुष्य के स्वप्न पर महत्वपूर्ण काम लिया है। शायद पृथ्वी पर किसी देश ने नहीं किया। और उन्होंने यह राज पा लिया कि अगर किसी आदमी को हम सपने की अवस्था में मरने का आयोजन करवा दें, तो वह अपनी इस जन्म की सारी स्मृतियों को लेकर अगले जन्म में प्रवेश कर जाएगा। और इस जन्म की स्मृतियां जिसको अगले जन्म में रहे, उसका अगल जन्म रुपांतरित हो जाएगा। क्योंकि फिर वही मूढ़ताएं करने में उसे स्वयं ही बोध होने

लगेगा, जो वह कर चुका पहले। फिर वही वासनाएं, फिर वही इच्छाएं, फिर वही दौड़ और फल तो कुछ भी नहीं था पूरे जीवन का। पिछला जीवन दौड़-दौड़ कर रिक्त हो गया, और अंत में मौत हाथ लगी। उन सारी वासनाओं के बाद कुछ हाथ लगा नहीं, सिर्फ मौत हाथ लगी।

यह अगर स्मृति में रह जाए, तो अगला जन्म दूसरे प्रकार का होगा। उसका गुणधर्म बदल जाएगा। क्योंकि फिर वह आदमी ठीक उन्हीं वासनाओ में नहीं दौड़ सकेगा, मृत्यु सदा सामने खड़ी मालूम पड़ेगी। और फिर उन्हीं वासनाओं में दौड़ने को अर्थ होगा कि वह फिर अपने हाथ रिक्त करने जा रहा है, फिर मरने जा रहा है। नहीं, इस बार अब वह कुछ और कर सकेगा। जिंदगी को बदलने की कोई चेष्टा सघन हो जाएगी। यह चेष्टा सघन हो सके, इसलिए"बारदो" का प्रयोग है।

"बारदो" का प्रयोग वैज्ञानिक है। व्यक्ती मर रहा है तब उसे जगाए रखने के सब उपाय किए जाते है। सुगंध से, प्रकाश से, संगीत से, कीर्तन से, भजन से, उसे जगाए रखने के प्रयोग किए जाते हैं। उसे सोने नहीं दिया जाता। और जैसे ही उसको झपकी लगती है वैसे ही उसके कान के पास "बारदो" के सूत्र कहे जाते हैं।

"बारदो" के सूत्र ऐसे हैं, जो स्वप्न को पैदा करने में सहयोगी हैं। जैसे उसे कहा जाएगा कि वह समझ ले कि शरीर से अलग हो रहा है। अभी वह झपकी खा गया, उसे कहा जा रहा है वह शरीर अलग हो गया है। मृत्यु घटित हो गई है और वह अपनी यात्रा पर निकल रहा है। यात्रा पर मार्ग कैसा है, यात्रा पर दोनों तरफ कैसे वृक्ष लगे हैं, यात्रा पर कैसे पक्षी उड़ रहे हैं, ये सारे प्रतीक उसके कान में कहे जाएंगे।

पहले तो समझा जाता था कि यह कान में कहने से क्या होगा? लेकिन अब यह नहीं समझा जा सकता है। क्योंकि रूस में बड़े पैमाने पर हिन्पोपीडिया के प्रयोग चल रहे हैं। और रूस के वैज्ञानिक की धारणा है कि आनेवाली सदी में बच्चे स्कूल पढ़ने दिन में नहीं जाएंगे। रात बच्चों की नींद में ही स्कूल उन्हें शिक्षा देगा। क्योंकि रूसी वैज्ञानिक का कहाना है कि बच्चा जब सोया होता है तब उसके कान में एक विशेष ध्वनि पर और एक विशेष वेवलेंथ पर अगर कुछ बातें कहीं जाएं तो उसके अचेतन में प्रवेश कर जाती हैं। इस पर बहुत प्रयोग सफल हो गए हैं, और एक बच्चा जो गणित में कमजोर है और लाख उपाय करके गणित में ठीक नहीं होता, शिक्षक परेशान हो जाते हैं, वह बच्चा भी रात नींद में गणित की शिक्षा देने से कुशल हो जाता है। और उसे कभी पता भी नहीं चलता कि उसको यह शिक्षा दी गई है।

भाषा के संबंध में तो हैरानी के अनुभव हुए, कि जो भाषा तीन साल में सीखी जा सके, वह रात में तीन महीने में सिखाई जा सकती है। और उसमें कोई समयका व्यय नहीं होगा। क्योंकि आपकी नीदं में कोई बाधा नहीं पड़ेगी। आप सोए ही रहेंगे। आपको पता ही नहीं चलेगा। सिर्फ सुबह आपको रोज परीक्षा देनी होगी कि रात भर क्या हुआ?

तो अब तो रूस में उन्होंने कुछ संस्थाएं बनाई हैं जो बच्चों को रात शिक्षा दे रही हैं। हर बच्चे के पास छोटा-सा यंत्र उसके तकिए में लगा रहता है। ठीक बारह बजे रात शिक्षा शुरू होती है। दो घंटे शिक्षा चलती है, फिर बच्चे को एक बार जगाया जाता है। वह बस यंत्र ही कर देता है। घंटी बजा कर बच्चे को जगा देता। जगाया इसलिए जाता है ताकि जो सिखाया गया उसके बाद अगद सुषुप्ति आ जाए तो वह भूल जाएगा। इस सूत्र को समझाने के लिए मैं कह रहा हूं, नहीं तो यह सूत्र समझ में नहीं आएगा।

उसे जगाया जाएगा। दो घंटा शिक्षण चलेगा, फिर घंटी बजेगी। बच्चा जगाया जाएगा। जागकर उसे हाथ-मुंह धोकर पुनः सो जाना है। कुछ और करना नहीं है। बस वह जो शिक्षा दी गई है, उसके बाद सुषुप्ति की पर्त न

आए। नहीं तो सुबह भूल जाएगा। फिर चार बजे उसकी शिक्षा शुरू होगी। फिर चार से छः बजे तक वही पाठ दोहराया जाएगा। छः बजे वह फिर उठ आएगा।

इस चार घंटे में इतना सिखाया जा पाता है कि जिसकी कल्पना करनी मुश्किल है। रूसी वैज्ञानिक तो यह कह रहे हैं कि अब हम बच्चों को स्कूल की कारागृह से जल्दी ही छुटकारा दिला देंगे। वह खतरनाक है कारागृह है। छोटे बच्चे न खेल पाते हैं उसकी वजह से, न मौज कर पाते हें। न नाच पाते हैं। बचपन से ही उनको कारागृह में बिठा दिया जाता है। पांच-छह घंटे छोटे बच्चों को जबरदस्ती स्कूल में बिठाए रखना उनकी जिंदगी के लिए हमेशा का सबसे कीमती और स्वर्ण अवसर व्यर्थ ही स्कूल की बेंचों पर बैठ कर नष्ट होता रहता है। अधिक लोगों की जिंदगी में दुख का कारण वही है। क्योंकि जब सर्वाधिक आनंदित होने के उपाय थे, जीवन ताजा था प्रफुल्लता था और जीवन से एक संबंध निर्मित हो सकता था, तब भूगोल, इतिहास और गणित, उनमें सारा समय गया। और उन सबसे तो मिलनेवाला है, वह जीवन नहीं है, आजीविका है। इसका मलतब यह हुआ कि जीवन को गंवाया आजीविका के लिए।

लेकिन रूसी वैज्ञानिक अब कहता है कि यह ज्यादा दिन नहीं चलेगा। हम शीघ्र ही वह रास्ते खोज लिए हैं जिनसे बच्चे दिन भर खेल सकते हैं, मौज कर सकते हैं, भ्रमण पर जा सकते हैं। जो उन्हें करना हो कर सकते हैं। और रात्रि, रात्रि उनको शिक्षा दी जा सकती है। उसको वे हिप्नोपीडिया कहते हैं, निद्रा-शिक्षण। लेकिन इसमें भी वह सूत्र कि उनको जगाया जाए। और अगर हम शिक्षा दे सकते हैं भीतर, तो "बारदो" ठीक कहता है कि कान में कह कर स्वप्न भी पैदा किए जा सकते हैं।

अगर स्वप्न में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो तो उसे दूसरा जन्म पिछले जन्म की याददाश्त के साथ मिलेगा। ऐसा बच्चा मां के पेट में भी स्वप्न की अवस्था में रहेगा। ऐसा बच्चा नया जन्म भी स्वप्न की अवस्था में लेगा। इस तरह के बच्चे में और सुषुप्ति में जन्म लिए हुए बच्चे में बुनियादी फर्क होगा। जन्म में फर्क होगा।

जो बच्चा मां के पेट में रहेगा, उस बच्चे के कारण मां के मन में अनेक स्वप्न पैदा होंगे। बुद्ध और महावीर, विशेषकर जैनों के चौबीस तीर्थंकरों के संबंध में कथा है कि जब भी वे मां के पेट आए तो मां ने विशेष सपने देखे। चौबीस तीर्थंकरों की मां ने एक से ही सपने देखे।। सैकड़ो, हजारों साल में फासले पर। तो जैनों ने उसका पूरा विज्ञान ही निर्मित किया। तब उन्होंने निश्चित कर लिया कि इस तरह के सपने जब किसी मां को हों तो उसके पेट से तीर्थंकर पैदा होने वाला है। वे सपने निश्चित हो गए। जैसे शुभ्र हाथी दिखाई पड़ें, जो साधारणतः नहीं दिखाई पड़ता।। चेष्टा भी करें तो नहीं दिखाई पड़ता।। तो तीर्थंकर जन्म लेने वाला है। तो यह सिंबालिक हो गए। ये तीर्थंकर के प्रतीक हो गए कि जब किसी मां के पेट तीर्थंकर का व्यक्तित्व आएगा, तो वह उन सपनों को देखेगी।

तो जैनों ने तो उनकी शोध करके सपने तय कर दिए। इतने सपने हैं। अगर ये आएं तो ही पैदा होनेवाला बच्चा तीर्थंकर होगा। बुद्धों के सपने भी तय हैं कि जब बुद्ध की चेतना का व्यक्ति कहीं पैदा होगा, तो उसके सपने क्या होंगे? ये सपने तभी पैदा हो सकते हैं। जब भीतर आया हुआ व्यक्ति स्वप्न की अवस्था में मरा हो, स्वप्न की अवस्था में जन्मा हो और स्वप्न की अवस्था में मां के पेट मे हो। तो मां के सपने उस बच्चे से तीव्रता से प्रभावित होंगे। सच तो यह है कि वह मां बिल्कुल आच्छादित हो जाएगी उस बच्चे से; क्योंकि बच्चा मां से बड़ा व्यक्तित्व लेकर आया हुआ है। ऐसा जो बच्चा पैदा होगा।। जो स्वप्न में पैदा हुआ है।। ऐसा बच्चा चाहे तो एक जन्म में मुक्ति को उपलब्ध हो सकता है। चाहे तो! न चाहे तो और भी जन्म ले सकता है। लेकिन मुक्ति अब उसकी किसी भी क्षण घटित हो सकती है। जब चाहे, तब घटित हो सकती है।

जैसा सुषुप्ति में पैदा होता है, कोई जन्मता और मरता है; स्वप्न में जन्मता और मरता है, वैसे ही जाग्रत में भी जन्म और मरण के उपाय हैं। वह आखिरी बात है, जब कोई जाग्रत में मरता है। अगर जाग्रत में कोई मरता है, तो आने वाला जन्म अगर उसे लेना हो तो ही लेगा, अन्यथा जन्म नहीं होगा। क्योंकि अब चुनाव उसके हाथ में है। जो जाग्रत में मरता है, चुनाव उसके हाथ में है। वह चाहे तो ही, प्रयास करे तो ही जन्म होगा। अन्यथा उसका जन्म नहीं होगा। ऐसा व्यक्ति जागा ही गभ्र में प्रवेश करेगा। जागा ही गर्भ में रहेगा। जागा ही जन्मेगा। सुषुप्ति में जो बच्चा पैदा होता है, वह भी मां को प्रभावित करता है।

इसलिए मां अक्सर ऐसा होता कि जब बच्चा मां के पेट में हो तो मां गुणधर्म बदल जाता है। उसका व्यवहार बदल जाता है। बोलचाल बदल जाता है, अनेक बातें बदलाहट मालूम पड़ने लगती है। कई बार साधारण स्त्रियां अचानक गर्भ के साथ सुंदर हो जाती हैं। विचारशील हो जाती हैं। कई बार सुंदर स्त्रियां गर्भ के साथ कुरूप हो जाती हैं। विचारशील स्त्रियां विचारहीन हो जाती हैं। शांत स्त्रियां अशांत हो जाती हैं। अशांत स्त्रियां शांत हो जाती हैं। नौ महीने एक दूसरा जीवन भी भीतर होता है, वह प्रभावित करता है।

सुषुप्ति बच्चा भी प्रभावित करता है, लेकिन बहुत ज्यादा नहीं। स्वप्न वाला बच्चा बहुत प्रभावित करता है। मां के सारे स्वप्न, सारे विचार उस पर आच्छादित हो जाते हैं। लेकिन अगर व्यक्ति पैदा हो, तो मां पूरी तरह रूपांतरित हो जाती है। यही जैनों के तीर्थंकर की और हिंदुओं के अवतार की धारणा का फर्क है। हिंदू मानते हैं कि अवतार वह व्यक्ति है, जो जागा हुआ ही पैदा होता है। जागा हुआ पैदा होता है, इसलिए वह ईश्वर का अवतरण कहते हैं। क्योंकि वह व्यक्ति चाहता, तो अभी ईश्वर से मिल सकता था।

इसको जरा ठीक से समझ लेना।

पिछले मृत्यु के बाद वह चाहता तो ईश्वर से मिल सकता था। कोई बाधा न थी, कोई जमीन की तरफ खिंचने का कारण न था। नये जन्म की कोई भी वजह न थी। वह ईश्वर से मिलने के ही करीब खड़ा था, मिला गया था, फिर लौट आया। इसको हिंदू अवतरण कहते हैं। इसको जन्म नहीं कहते हैं। क्योंकि वे कहते है, यह आदमी ऊपर से लौटा है। अवतार है। यह जाग्रत में घटेगा।

जीसस जैसे व्यक्ति का जन्म ईसाइयत में भी जाग्रत में है। पूरा जाग्रत में है। यहां एक और बात ख्याल में लेनी चाहिए।

जब भी कोई जाग्रत व्यक्ति पैदा होता है, तो स्त्री-पुरुष को संभोग घटित नहीं होता। इसलिए ईसाइयत बड़ी मुश्किल में पड़ गई है। क्योंकि "वर्जिन" से, कुंआरी लड़की से जन्म हुआ है जीसस का। और ईसाइयत के पास इसका पूरा विज्ञान नहीं है। इसका पूरा खयाल नहीं है कि कैसे घटित हो सकता है। कुंआरी लड़की से बच्चा कैसे पैदा हो सकता है?

सोया हुआ बच्चा कुंआरी लड़की से पैदा नहीं हो सकता। सोया हुआ बच्चा स्वभावतः बिल्कुल ही पाशविक ढंग से, संभोग से पैदा होगा। स्वप्न में पैदा होनेवाला बच्चा साधारण संभोग से पैदा नहीं होता, यौगिक संभोग से पैदा होता है। तांत्रिक संभोग से पैदा होता है। एक विशिष्ट संभोग से पैदा है। जिसमें ध्यान संयुक्त होता है, मूर्छा नहीं होती। जाग्रत पुरुष संभोग से पैदा ही नहीं होता। संभोग से उसका कोई संबंध ही नहीं होता। वह कुंआरी मां से ही पैदा हो सकता है। इसे बहुत बार तो छिपा लिया गया है। छिपा इसलिए गया है कि यह भरोसे को नहीं होगा, विश्वास नहीं किया जा सकेगा और अकारण परेशानी पैदा होगी।

जीसस के मामले में यह बात खुल गई। और खुल जाने का कारण यह था कि जीसस के पिता ने कहा कि उसने तो कोई संबंध ही नहीं किया है पत्नी से। पहली दफा जीसस के मामले में यह छिपा हुआ राज जाहिर हो

गया। नहीं तो सचाई यह है कि जब भी कोई अवतार पैदा हुआ है, उसका संभोग से कोई संबंध नहीं है। भला संभोग होता रहो तो पति और पत्नी में, लेकिन उसके जन्म का संभोग से कोई संबंध ही नहीं है।

यह तो जाग्रत में पैदा हुआ है, इसे मुक्ती के लिए कुछ भी नहीं करना होता, यह मुक्त ही पैदा होता है। ये तीन अवस्थाएं स्वप्न की, सुषुप्ति की, जाग्रत की हमारे जन्म और मृत्यु और मूत्यू में भी गुंथी है।

एक दूसरी तरफ से भी उन तीनों अवस्थाओं का खयाल ले ले।

हिंदू-चिंतना स्वप्न, सुषुप्ति और जागृति में तीन शरीरों का भी निर्माण मानती है। वह कीमती है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण, ये तीन शरीर हिंदू चिंतन मानता हैं। स्थूल शरीर जाग्रत से संबंधित है। सूक्ष्म शरीर स्वप्न से संबंधित है। कारण शरीर सुषुप्ति से संबंधित है। जब आप हुए होते हैं, तो आप स्थूल-शरीर हैं। इसीलिए जब आपको अनस्थीसिया दे दिया जाता है, तो फिर इस शरीर को काटा जाता है और आपको पता नहीं चलता, क्योंकि आप दूसरे में होते हैं।

किसी न किसी दिन मेडिकल साइंस इन इलाजों को हिंदू चिंतन से भी समझेगी तो उसे बड़ा उद्घाटन होगा। किसी दिन चिकित्साशास्त्र अनुभव करेगा कि इन शास्त्रों में सिर्फ दर्शन नहीं है, बहुत कुछ और भी है। लेकिन वह इतना सूत्र में है कि जब तक उसे कोई खोले नहीं, तब तक

वह कभी खयाल में आता नहीं। उसका खयाल में आने का कोई उपाय नहीं है। आपरेशन इसलिए किया जा सकता है स्थूल शरीर का कि आप, आपकी चेतना बेहोशी में स्थूल शरीर से हटा कर दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाए अर्थात सुषुप्ति में तो इस शरीर पर होने वाली किसी घटना का कोई पता नहीं चलेगा। अगर स्वप्न शरीर में प्रवेश कर जाए, तो धुंधला-धुधला पता चलेगा। क्योंकि स्वप्न शरीर के बिल्कुल करीब होता है। जैसे कि कभी कोई आदमी भंग खा लेता है तो वह स्वप्न शरीर में प्रवेश कर जाता है।

जितने एसिड्स हैं।। एल.एसड़ी., मारिजुआना, मेस्कलीन, भांग, गांजा, अफीम, चरस, शराब, यह सब के सब स्थूल शरीर के आदमी को तोड़कर स्वप्न शरीर में प्रवेश करा देते हैं। इनकी कुल कला इतनी है। तो भांग खाया हुआ आदमी आपने देखा है? रास्ते पर डोलता चलता है। पैर ठीक रखना चाहता है, नहीं पड़ता है। हालांकि उसे लगता है कि मैं बिल्कुल ठीक रखता हूं। और फिर भी उसे लगता है कि कुछ गलत पड़ता है। असल में इस शरीर में वह है नहीं। वह शराबी जो रास्ते पर डोलता हुआ चल रहा है, वह दूसरे शरीर में चल रहा है। और यह शरीर सिर्फ उसके साथ घसिट रहा है। वह सूक्ष्म शरीर में चल रहा है। लेकिन फिर भी उसे इसका बोध है। अगर आप उसको डंडा मारें, तो उसको चोट लगेगी। हालांकि चोट उतनी नहीं लगेगी, जितना वह स्थूल में होता है तब लगती। इसलिए शराबी गिर पड़ता है रास्ते पर, आपने देखा? आप गिरकर देखें! रोज गिरता है रात नाली में, रोज घर घसिट कर पहुंचा दिया जाता है। दूसरे दिन सुबह फिर ताजा अपने दफ्तर

की तरफ जा रहा है। इसे चोट वगैरह नहीं लगती?

आपने देखा, बच्चे? बच्चे गिर पड़ते हैं, उनको इतनी चोट नहीं लगती। आप इतने गिरें तो हड्डी-पसली तत्काल टूट जाए। बच्चे स्वप्न शरीर में है। अभी उनका जाग्रत शरीर में आने का उपाय धीरे होगा। आपने देखा है? जब बच्चा पैदा होता है... मां के पेट में चौबीस घंटे सोता है, पैदा होकर तेईस घंटे सोता है। फिर बाईस घंटे सोता है। फिर बीस घंटे सोता है। फिर अठराह घंटे सोता है। यह उसके सुषुप्ति शरीर से वह बाहर आ रहा है। यह सुषुप्ति शरीर से वह बाहर आ रहा है क्रमशः। धीरे-धीरे नींद कम होती जाएगी। लेकिन जब वह नींद के बाहर होगा तब वह अक्सर सपने में होगा।

आपने कभी खयाल है कि छोटे बच्चों को सपने में और वास्तविकता में फर्क नहीं चलता है। इसलिए रात अगर सपने में उसको किसी ने मार दिया है, तो सुबह भी रोता हुआ उठता है। और वह कहता है, किसी ने मुझे मारा। या सपने में किसी ने उसकी गुडिया छीन ली तो वह सुबह रोता हुआ, सिसकता हुआ उठता है। अभी उसे स्वप्न और जाग्रत के बीच फासला नहीं है। अभी वह स्वप्न शरीर में ही जीता है। इसलिए बच्चों की आंखे उतनी सपनीली मालूम पड़ती। लेकिन इनोसेंट, निर्दोष। उसका कुल कारण इतना है कि वह सपने में आंखे खोले हुए है। अभी उसकी दुनिया बड़ी रंग-बिरंगी है, सपनों की दुनिया है। अभी सब तितलियां उड़ रही हैं और सब तरफ फूल खिले रहे हैं। अभी जिंदगी के यथार्थ को कोई आभास उन्हें नहीं हुआ।

उसका कारण?

उसका कारण कि अभी वह जिंदगी के जिस यथार्थ से संबंध होने का मार्ग, जो शरीर है स्थूल, उसमें उनका प्रवेश नहीं हुआ। और प्रकृति इसको जानकर ऐसा करती है। क्योंकि बच्चा अगर चौबीस घंटे सोता है मां के पेट में, तो ही उसका यह शरीर बढ़ सकता है। अगर वह इस शरीर में जाए तो शरीर बढ़ना मुश्किल ही जाएगा। क्योंकि शरीर की बढ़ती के लिए उसकी मौजूदगी बिल्कुल जरुरी नहीं हैं। उसकी मौजूदगी बाधा डालेगी। अभी शरीर में बड़ा आपरेशन चल रहा है। अभी चीजें बढ़ रही हैं, घट रही हैं, फैल रही हैं। अभी यह सब इतना बड़ा काम चल रहा है कि इस बीच उसका जागरण ठीक नहीं है। उसे सोया रहना ठीक है।

इसलिए जो बच्चा सात महीने का पैदा हो जाता है, उसका स्थूल शरीर सदा के लिए कमजोर रहा जाएगा। क्योंकि वह सुषुप्ति से स्वप्न में आ गया और अब शरीर के बनने मे बाधा पड़ेगी। और जो काम मां के पेट में महीने में हो सकता था, वह बाहर छह महीने में भी नहीं हो पाएगा। फिर बच्चे का स्वप्न शरीर चलेगा वर्षों तक। क्योंकि अभी भी उसका शरीर बड़ा हो रहा है।

ठीक स्वप्न शरीर से पूरा छुटकारा बच्चा"सेक्सुअली मेच्योर" होता है, चौदह साल का होता है तब होता है। और चौदह साल की उम्र में ही जैसे काम-प्रौढ़ता आती है, स्थूल में पूरा प्रवेश होता है। यह जानकर आप हैरान होंगे कि काम की ग्रंथि बच्चे जन्म से ही पूरी लेकर पैदा होते हैं, लेकिन स्थूल शरीर में प्रवेश न होने से काम की ग्रंथि ऐसी ही पड़ी है। चौदह वर्ष में स्थूल में प्रवेश होगी और काम की ग्रंथि सक्रिय हो जाएगी। इस स्थूल शरीर में प्रवेश को रोका जा सकता है। कम-ज्यादा किया जा सकता है।

शायद आपको पता न हो कि हर दस वर्षों में, इधर पिछले पचास वर्षों में सेक्स मैच्योरिटी का समय नीचे गिरता जा रहा है। पंद्रह वर्ष मे लड़के अगर प्रौढ़ होते थे कामवासना में, अब वे तेरह में हो जाते हैं। लड़कियां अगर चौदह वर्ष में होती थीं, अब तो बारह वर्ष में हो जाती हैं। और अमरीका में वह संख्या और नीचे गिर गई है। अगर हिंदुस्तान में बारह वर्ष में होती हैं, तो अमरीका में ग्यारह वर्ष में होने लगीं। स्विट्जरलैंड और स्वीडन में और भी कम, दस वर्ष में होने लगी हैं। और वैज्ञानिक कहते हैं कि जितना स्वास्थ्य बढ़ेगा, भोजन अच्छा होगा, उतनी जल्दी सेक्स मैच्योरिटी आ जाएगी। इतना ही नहीं।। वैज्ञानिकों को इतना ही खयाल में है।। लेकिन जगत में जितनी कामवासना ही हवा होगी और जितना कामवासना का वातावरण होगा और जितनी कामुकता होगी, उतने जल्दी ही बच्चे अपने स्वप्न शरीर को छोड़ कर अपने स्थूल शरीर में जा जाएंगे।

इससे उलटा प्रयोग भारत में किया था और हम पच्चीस वर्ष तक बच्चों को प्रौढ़ता से रोकने के अद्भुत परिणामों को उपलब्ध हुए थे। आप यह मत समझना कि हिंदुस्तान के गुरुकुलों में बच्चे चौदह साल में प्रौढ़ हो जाते थे, और फिर पच्चीस साल तक उनको ब्रह्मचर्य रखा जा सकता था। वह असंभव है। अगर चौदह साल में

बच्चा प्रौढ़ हो गया, तो फिर पच्चीस साल तक उसको ब्रह्मचारी रखना असंभव है। और अगर कोशिश की जाएगी, तो पागल होगा। कोशिश की जाएगी तो विकृत हो जाएगा। कोशिश की जाएगी तो विकृत काम-रूप उसमें प्रकट होने शुरू हो जाएंगे।

नहीं, जो प्रयोग था वह बहुत दुसरा था। वह प्रयोग यह था कि पच्चीस वर्ष तक उसको विशेष तरह का भोजन दिया जा रहा था, और विशेष तरह का वातावरण दिया जा रहा था, जहां कामुकता की कोई खबर न थी। और भोजन उसे ऐसा दिया जा रहा था उसके स्वप्न शरीर से उसे पच्चीस तक बाहर न आने दे। और यह मौका थ, इस क्षण में उसे जो सिखाया जाता, वह उसके स्वप्न शरीर में प्रवेश कर जाता था।

मजे की बात है कि चौदह साल के बाद कोई भी चीज सिखाई जाए, वह गहरे प्रवेश नहीं करी। ऊपर-ऊपर रह जाती है। चौदह साल के पहले जो भी सिखाया जाए, वह गहरे प्रवेश करता है। सात साल के पहले जो सिखाया जाए वह और भी गहरा प्रवेश करता है। और अगर हमने किसी दिन कोई उपाय खोज लिया कि हम मां के पेट में बच्चे को कुछ सिखा सके, तो उसकी गहराई का कोई हिसाब ही लगाना असंभव है। वह भी हम किसी न किसी दिन कर पाएंगे। क्योंकि उस दिशा में काम चलता है। उस दिशा में भारत में तो काम किया है। यह पच्चीस वर्ष तक उसकी अगर मैच्योरिटी रोकी जा सके, तो बच्चा स्वप्न की अवस्था में होगा। और स्वप्न की अवस्था बहुत ही ग्राहक अवस्था है।

आपने कभी खयाल किया कि स्वप्न में संदेह कभी नहीं उठता? स्वप्न में आप अचानक देखते हैं कि घोड़ा चला आ रहा है, अचानक पास आकर देखते हैं कि घोड़ा नहीं आपका मित्र है। और थोड़ा पास आता है, आप देखते हैं मित्र नहीं, यह तो वृक्ष खड़ा हुआ है। लेकिन आपके मन में यह भी नहीं उठता कि यह क्या हो रहा है? ऐसा कैसे हो सकता है कि अभी घोड़ा था, अभी मित्र हो गया, अब वृक्ष हो गया। इतना संदेह भी नहीं उठता। स्वप्न शरीर आस्थावान है। स्वप्न शरीर पुर्ण श्रद्धा से भरा है। संदेह उठता ही नहीं। अगर स्वप्न शरीर में कुछ भी डाल दिया जाए तो वह निःसंदिग्ध गहरा उतर जाता है। स्थूल शरीर आस्थावान नहीं है। सब संदेह उठता है। स्थूल शरीर आस्थावान नहीं है। सब संदेह उठता है। स्थूल शरीर का एक दफा बोध जा जाए, फिर शिक्षण मुश्किल हो जाता है।

कभी आपने खयाल किया कि अगर आपके बच्चे जैसे ही सेक्सुअली मैच्योर होते हैं, वैसे ही उनके जीवन में अस्त-व्यस्तता और परेशानी और उपद्रव और विरोध और विद्रोह और हर चीज में जिद्द और हर चीज में झगड़ा और हर चीज से छूटने की कोशिश और कुछ भी न मानने की वृत्ति खड़ी होनी शुरू हो जाती है? किसी को न मानने की। किसी का आदर न करने की। वह स्थूल शरीर का स्वाभाविक परिणाम है।

ऐसे बूढ़ा भी तीन शरीरों को पुनः उपलब्ध होता है। मरने के पहले फिर बूढ़े का स्थूल शरीर पहले नष्ट होने लगता है। जवानी समाप्त होती है उसी दिन, जिस दिन में हमें पता चलता है हमारा स्थूल शरीर क्षीण होने लगा। लेकिन, स्थूल शरीर क्षीण हो जाए, लेकिन वासना क्षीण नहीं होती, क्योंकि वासना सूक्ष्म शरीर का हिस्सा है, स्वप्न शरीर का हिस्सा है। इसलिए बूढ़े की तकलीफ एक ही है। वह तकलीफ यह है कि उसके पास वासना वही होती है जवान के पास होती है और शरीर के उसके पास जवान का नहीं होता। उसकी पीड़ा भारी हो जाती है। इसलिए बूढ़े अक्सर जो जवानों के प्रति इतना... इतनी निंदा से भरे रहते हैं इतनी आलोचना से भरे रहते है और इतने सिद्धांत और तर्क सिर्फ शिक्षाएं देते रहते हैं, उसका गहरा कारण उनकी बुद्धमत्ता नहीं है, उसका गहरा कारण सौ में निन्यानबे मौके पर उनकी ईर्ष्या है। वासना उनके मन में भी वही है, लेकिन शरीर क्षीण हो गया है। स्थूल शरीर साथ नहीं देता।

फिर इसके बाद उनका स्वप्न शरीर क्षीण होना शुरू होता है। जब बूढ़े का स्वप्न शरीर क्षीण होता है, तब उसकी स्मृति प्रभावित हो जाती है। तब चीजें उसे याद नहीं आतीं। असंगत हो जता है, तर्क खो जाता है। अभी कुछ कहता है, घड़ी भर बाद कुछ कहने लगता है।। संगति नहीं रह जाती। स्वप्न शरीर क्षीण होने लगा।

और जब स्वप्न शरीर क्षीण हो जाता है, तब फिर सुषुप्ति में मृत्यु घटित होती है। मृत्यु में सुषुप्त शरीर भी क्षीण होता है। लेकिन समाप्त नहीं होता है। और इन तीनों शरीरों की वासना लेकर सुषुप्त शरीर, कारण शरीर नई यात्रा पर निकल जाता है। वह बीज की तरह। फिर नया जन्म, फिर नई यात्रा, फिर वही खेल, फिर वही चक्कर।

अब यह सूत्र को हम समझें।

"पिछले जन्मों के कर्मों से प्रेरित होकर वह मनुष्य सुषुप्त अवस्था से पुनः स्वप्न व जाग्रत अवस्था में आ जाता है।"

"पिछले जन्मों के कर्मों से प्रेरित हुआ वह मनुष्य सुषुप्त से पुनः स्वप्न और जाग्रत अवस्था में आ जाता है।" जब भी कोई नया व्यक्ति पैदा होता है तो पिछले जन्मों के सारे कर्मों को, प्रभावों को, संस्कारो को लेकर सुषुप्त से पैदा होता है। फिर स्वप्न में आता है, फिर जाग्रत में आ जाता है। नया जीवन शुरू हो जाता है।

"इस तरह से ज्ञान हुआ कि जीव तीन प्रकार के शरीर में।। स्थूल और कारण में।। रमण करता है। उसी से सारे मायिक-प्रपंच की सृष्टि होती है।" यह जीवन का सारा का सारा प्रपंच इन तीन शरीरों पर निर्भर है। इन तीना शरीरों को इस सूत्र में पुर कहा है। तीन पुर। और इसलिए भारतीय जो शब्द है आत्मा के लिए, वह पुर है। पुरुष का मतलब है, पुर के भीतर रहनेवाला। और ये तीन उसके नगर हैं, ये तीन उसके पुर हैं।। स्थूल, सुक्ष्म और कारण। इन तीनों में वह पुरुष रमण करता रहता है। यह तीन उसकी नगरियां हैं, जिनमें वह एक से दुसरे में यात्रा करता है। जब तीन प्रकार के शरीरों का लय हो जाता है, तभी यह जीव मायिक प्रपंच से मुक्त होकर अखंड आनंद का अनुभव करता है। जब ये तीनों शरीर लीन हो जाते है।

जब हमारी मृत्यु घटित होती है, तो हमारा स्थूल शरीर बीज-रूप में सुक्ष्म में समा जाता है। और सुक्ष्म बीज-रूप होकर सुषुप्त में समा जाता है, कारण में समा जाता है। स्थूल सूक्ष्म में, सूक्ष्म कारण में समा जाता है।

कारण शब्द बहुत अदभुत है। अगर हम पूछें, वृक्ष का कारण क्या? तो कहना पड़ेगा, बीज। कभी आपने खयाल किया कि एक वृक्ष में बीज लगता है, इस बीज को अगर आप तोड़ें तो आपको कुछ भी तो नहीं मिलेगा। लेकिन इसे आप जमीन में गाड़ दें। इसमें फिर अंकुर आएगा और जिस वृक्ष में यह लगा था, वही वृक्ष पुनः प्रकट हो जाएगा। इसका मतलब यह हुआ कि वह जिस वृक्ष में लगा था, वह वृक्ष अपने स्थूल, स्वप्न शरीरों को लीन करके इस बीज में समा गया था। कारण शरीर में लीन हो गया था। फिर ठीक अवसर आने पर वह प्रगट हो जाता है।

मैं अगर एक जीवन जिआ मो जो मैंने किया, जो मैं था, जो मैंने सोचा, जो जीवन में हुआ, जो मेरे जीवन का सार है, वह सब पहलू जाग्रत में घटता है। फिर उसका सार निचोड़ कर स्वप्न में संगृहीत हो जाता है। फिर स्वप्न शरीर का भी सारा संगृहीत होकर कारण शरीर में बीज बन जाता है। वह बीज लेकर मैं नीय जीवन की यात्रा पर निकल जाता हूं। वही बीज नये जन्म की शुरुआत बनेगा। फिर स्वप्न उठेंगे, फिर जाग्रत का वृक्ष फैलेगा। फिर जीवन का पूरा-का-पूरा वृक्ष खड़ा हो जाएगा।

जब ये तीनों शरीर नष्ट न हो जाएं, तो भारतीय मनीषा का अनुभव है, तब तक व्यक्ति उस चौथे को उपलब्ध नहीं होता, जो वह है। जब तक ये तीनों से मुक्त न हो जाए, छूट न जाए, तब तक आनंद का कोई

अनुभव नहीं होता। क्योंकि ये तीनों कारागृह हैं और बार-बार पुनरुक्त होने चले जाते हैं। एक कारागृह से दूसरें में स्थलांतरण होता है, दूसरे से तीसरे में। और आदमी स्थानांतरित होता चला जाता है। एक कारागृह दूसरे कारागृह के जेलर के हाथ में सौंप देता है। दूसरा तीसरे के हाथ में सौंप देता है। और अनंत है यह परिभ्रमण उन तीनों का।

लीन हो जाएं ये तीनों शरीर... कैसे ये तीनों शरीर लीन होंगे? ये तीनों लीन हो जाएं तो फिर घटना घटती है, उसको मृत्यु नहीं कहते, उसको मुक्ति कहते हैं। साधारण आदमी जब मरता है, तो उसको मृत्यु कहते हैं। मृत्यु का अर्थ हुआ कि तीनों शरीर कारण में लीन हो गये।। समाप्त नहीं हुए।। और कारण नई यात्रा पर निकल गया।

मृत्यु का मतलब आप समझ लें।

बहुत हैरानी होगी जानकर कि मृत्यु का मतलब बहुत अजीब है। मृत्यु का मतलब है, उस आदमी की मृत्यु को मृत्यु कहते हैं जिसका दूसरा जन्म होने वाला है। कभी खयाल में न आया होगा कि इसको मृत्यु कहते हैं, जन्म के कारण। अगर आगे जन्म होने वाला, तो यह मृत्यु है। और अगर आगे जन्म होने वाला नहीं है, तो यह मोक्ष है, मुक्ति है। इसलिए बुद्ध को हम नहीं कहते कि वह मर गए। कहते है।। समाधिस्थ हुए। महावीर को नही कहते हैं कि वह मर गए। कहते हैं।। समाधिस्थ हुए। समाधिस्थ का अर्थ है कि तीनों के तीनों शरीर लीन हो गए। समाप्त हो गए, शून्य हो गए। और यह व्यक्ति चौथी अवस्था में प्रवेश कर गया। यहां से कोई आवागमन नहीं है।

इसीलिए बड़े मजे की बात है कि भारत में हम शरीर को जलाते हैं। सिर्फ संन्यासी के शरीर को नहीं जलाते हैं। कभी आपने खयाल किया हो, न किया हो, सबके को जलाते हैं, सिफं संन्यासी के शरीर को नहीं जलाते और बच्चों के शरीर को नहीं जलाते है। बच्चो के शरीर को इसलिए नहीं जलाते है कि बच्चों के अभी तीनों शरीर प्रकट नहीं हो पाए थे। इसीलिए बच्चे के शरीर में अभी अपवित्रता नहीं आई। जब तक स्थूल शरीर प्रकट न हो गया, तब तक बच्चे का शरीर अपवित्र नहीं है। ऐसा हमारा इन सारे खयालों के पीछे अनुगमन जो हुआ, अनुसंधान जो हुआ, वह यह है कि जब बच्चा स्थूल शरीर में प्रवेश न कर गया हो।। मतलब कामवासना सघन न हो गई हो।। तब तक उसके शरीर को जलाने की कोई भी जरूरत नहीं है। तब तक उसका शरीर फूल जैसा पवित्र है। इसे हम सीधा सौंप देते है मिट्टी को। मिट्टी उसे सीधा ही आत्मसात कर लेगी।

लेकिन आप जान कर हैरान होंगे कि कामवासना के जग जाने के बाद पहले अग्नि से शुद्ध करेंगे, फिर मिट्टी को सौंपेगे। अपवित्रता प्रवेश कर गई, इसीलिए आग में जलाते हैं। आग में जलाने का प्रयोजन कुल इतना है कि अपवित्र हो गया शरीर, वासनाग्रस्त हो गया, स्थूल तक पहुंच गई चेतना। दूषित हो गई। तो आग उसे शुद्ध कर दे। आग उसे राख बना देगी, फिर राख को हम मिट्टी को, नदी को कहीं सौंप देंगे। फिर दिक्कत न रही।

बच्चे को हम नहीं जलाते हैं और संन्यासी को हम नहीं जलाते हैं।

संन्यासी को न जलाने का दूसरा कारण है। संन्यासी को न जलाने का कारण है कि जिसने अपने भीतर ही उन तीनों शरीरों को जला डाला, अब हम और शुद्ध करने का क्या उपाय करें! परमशुद्धि हो गई। इसलिए हमारी आग किसी काम की नहीं हैं। जिसकी भीतर की आग जग गई और जिसने भीतर तीनों शरीरों को समाप्त कर लिया, अब हमारी आग उसके किसी काम की नहीं हे। उसे भी हम मिट्टी को सीधा सौंप देते हैं। वह सीधा ग्रहणीय है। मिट्टी उसे सीधा ही आत्मसात कर लेगी। वहां भी कुछ अशुद्ध नहीं है। बच्चों में अभी अशुद्ध हुआ नहीं था, संन्यासी में शुद्ध हो गया। इसलिए हम सन्यासी और बच्चे को नहीं जलाते रहे हैं।

मृत्यु तब तक मृत्यु है, जब आगे जन्म होने को हो। मृत्यु कहते इसलिए कहते हैं कि जन्म होने वाला है। यह उलटा लगेगा। बल्कि भारत कहता ऐसा है कि जन्म और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जन्म होता है, तो मृत्यु होती है। मृत्यु होती है तो जन्म होगा। इसलिए हम महावीर या बुद्ध की मृत्यु को मृत्यु नहीं कहते हैं। क्योंकि दूसरा पहलू ही नहीं है। जन्म होने वाला नहीं है। यह मृत्यु नहीं है। यह समाधि है। यह मुक्ति है। यह किसी दूसरी ही यात्रा पर निकल गई चेतना है। यह हमारे चक्कर के, हमारी जो पटरी थी उससे नीचे उतर गई, हमारी पटरी पर इसके लिए अब कोई जन्म नहीं है। इसको हम मृत्यु कैसे कहे? क्योंकि मृत्यु हम कह ही तब सकते हैं सार्थक रूप से, जब जन्म होने वाला हो। जन्म चूंकि नहीं होगा, इसलिए इसे मृत्यु भी नहीं कहते हैं। इसे कहते हैं, समाधि।

समाधि का अर्थ होता है, जिसकी आत्मा समाधान को उपलब्ध हो गई। अब यह बड़े मजे की बात है कि ध्यान की पूर्णता को भी हम समाधि कहते हैं और जीवन की पूर्णता को भी हम समाधि कहते हैं। ाधि म दोनों को कहते हैं। संन्यासी की कब्र को भी हम समाधि कहते हैं। जीवन की पूर्णता को भी हम समाधि कहते हैं, ध्यान की पूर्णता को भी हम समाधि कहते हैं।

जीवन में कहीं कोई एक जोड़ है। तीनों शायद एक ही जगह ले जाते हैं। ध्यान पूर्ण होता है, तो जीवन पूर्ण होता है। जीवन पूर्ण होता है तो ध्यान पूर्ण होता है और जहां पूर्णता है वहां फिर मृत्यु नही है। वहां समाधान है। वहां फिर समाधि है। यात्रा का पथ ही बदल गया। अब हम जन्म और मृत्यु वाले वर्तुलाकार चक्र में नहीं घूमेंगे। अब हम चके से नीचे उतर गए। हम किसी दूसरी यात्रा पर चले। इस यात्रा में जीवन ही जीवन है। न जन्म है, न मृत्यु। इस यात्रा में जीवन ही जीवन है। यह शाश्वत जीवन है।

लेकिन ये तीनों शरीर अंत कैसे हों? इन तीनों शरीरों की लीनता कैसे हो? संक्षिप्त में थोड़ी बाते खयाल में ले लें। फिर आगे के सूत्रों में और विस्तार से बात हो सकेगी।

ध्यान सूत्र है समाधि तक ले जानेवाला। तो ध्यान सूत्र बनेगा इन तीनों शरीरों से मुक्त होने के लिए। जाग्रत में ध्यान शुरू करें। हम जागे हुए भी ध्यानपूर्वक जागे हुए नहीं होते हैं। रास्ते पर आप चल रहे हैं, बिल्कुल जागे हुए चल रहे हैं। लेकिन इसमें एक आयाम और जोड़ा जा सकता है। जागे हुए चल रहे हैं, ध्यानपूर्वक भी चलें। तो आप कहेंगे, जब जागे हुए ही चल रहे हैं, अब और ध्यानपूर्वक चलने का क्या मतलब होगा? जागे हुए आप जरूर चल रहे हैं, लेकिन ध्यानपूर्वक चलने का अर्थ है कि आपका एक पैर भी उठे, हाथ भी हिले, आंख भी उठे, पलक भी झपे, आप मुड़कर देखें, तो यह सब ध्यानपूर्वक हो। यह ऐसे ही मूर्छित न हो जाए।

बुद्ध के सामने कोई बैठा हुआ है, बुद्ध बोल रहे हैं और वह आदमी अपना पैर का अंगूठा हिला रहा है। तो बुद्ध उसे रुककर कहते है कि यह तुम्हारे पैर का अंगूठा क्यों हिल रहा है? तो उस आदमी ने कहा आप भी कहां-कहां की बातें उठा लेते हैं! कहां आप ज्ञान की चर्चा कर रहे थे और कहां मेरे अंगूठे... ! लेकिन जैसे ही बुद्ध ने पूछा, वह अंगूठा रुक गया। उस आदमी ने कहा मुझे पता नहीं था, मुझे खयाल ही नहीं था, ऐसे आदमवश हिल रहा होगा। तो बुद्ध ने कहा देखो, इसका अंगूठा है यह खुदा का, और यह हिल रहा है अंगूठा इसका और इसको पता नहीं है। और यह कहता है, ऐसे हिल रहा होगा। तो तू जागा हुआ है? यह तो ठीक है कि जागा हुआ है, क्योंकि मैं बोला तो तूने सुन लिया। लेकिन तू ध्यानपूर्वक जागा हुआ नहीं है। यह अंगूठा तेरा हिल रहा है और तेरे ध्यान में नहीं है।

जागने में ध्यान को जोड़ दें। जो भी कर रहे हैं, उसमें ध्यानपूर्वक हों। बुद्ध ने जो शब्द प्रयोग किया है ध्यान के लिए, वह कीमती है इस लिहाज से। बुद्ध ने उसके लिए कहा है।। सम्यक स्मृति, राइट माइंडफुलनेस। जो भी कर रहे हों, वह ठीक सम्यक स्मृतिपूर्वक हो। बुद्ध कहते थे, बाएं घूमें तो बाएं के साथ चित्त को यह पता चले कि मैं बाएं घूम रहा हूं। एक आदमी गाली दे तो साथ में गाली सुन जाए और यह भी जाना जाए कि इस आदमी ने गाली दी है और मैंने गाली सुनी है। भीतर क्रोध उठे तो यह भी जाना जाए कि इस आदमी की गाली से भीतर क्रोध हुआ है। और मेरे भीतर क्रोध उठे तो यह भी जाना जाए कि इस आदमी की गाली से भीतर क्रोध हुआ है। और मेरे भीतर क्रोध उठा रहा है। और तब आप पाएंगे, सारी स्थति बदल गई। क्योंकि जो आदमी देख रहा हो कि क्रोध उठ रहा है, उसका क्रोध उठ नहीं पाएगा। जो आदमी देख रहा हो कि क्रोध पकड़ रहा है, उसको क्रोध पकड़ नहीं पाएगा। जो आदमी जान रहा हो कि अब क्रोध आता ही है, उसको क्रोध आ नहीं पाएगा। होश चित्त को बादल देगा।

तो जाग्रत में ध्यान अगर संयुक्त हो जाए और आपकी जागरण की सारी क्रियाएं ध्यानपूर्वक होने लगें, तो आप एक शरी से मुक्त हुए।

फिर इसी प्रक्रिया को स्वप्न में प्रवेश करना होता है। तब स्वप्न में जाग, स्वप्न में भी ध्यानपूर्वक, सोते में भी ध्यानपूर्वक। बुद्ध ने कहा है, सोओ भी तो ध्यानपूर्वक सोना। करवट भी बदलो तो ध्यानपूर्वक बदलना। स्वप्न भी देखो तो ध्यानपूर्वक देखना। लेकिन यह एकदम से शुरू नहीं किया जा सकता। पहले जाग्रत में अगर ध्यान प्रवेश कर जाए, तो आप स्वप्न के दरवाजे पर खड़े हो जाते हैं। फिर दरवाजे से प्रवेश हो सकता है स्वप्न में भी। जो जागने में जाग गया हो ध्यानपूर्वक, वह स्वप्न में भी धीरे से ध्यान के तीर को अंदर ले जाता है। फिर आप स्वप्न देखते हैं और जानते हैं कि यह स्वप्न चल रहा है।

फिर ज्यादा दिन स्वप्न चल सकते हैं। जो होशपूर्वक देख रहा है, वह हंसेगा। और पागलपन साफ होगा और स्वप्न ज्यादा दिन नहीं चल पाएंगे। और जाग गया जो भीतर, स्वप्न टूटने लगेगा, बिखरने लगेगा। स्वप्न के लिए निद्रा जरूरी है, बेहोशी जरूरी है। और जब स्वप्न समाप्त हो जाएं ध्यान से, तो फिर आप तीसरे दरवाजे पर खड़े हुए। सुषुप्ति के। अभी तो उसकी कल्पना ही करनी असंभव होगी। क्योंकि नींद में कैसे ध्यान करेंगे? जब बिल्कुल ही सो गए, होश ही न रहा, तो कैसा ध्यान करेंगे? लेकिन, स्वप्न में जिसने प्रयोग किया हो, वह फिर तीसरे में प्रवेश कर पाता है। और जिस दिन कोई नींद में जाग जाता है।। स्वप्न में जागने से इस सूक्ष्म शरीर से छुटकारा हो जाता है, सुषुप्ति में जागने से कारण शरीर से छुटकारा हो जाता है।

कृष्ण ने जो कहा है कि योगी तब भी जागता है जब सब सोते हैं, सब की निद्रा भी योगी का जागरण है, वह इसी के लिए कहा है। तीसरे ध्यान के प्रयोग के लिए! सुषुप्ति में जब कोई होशपूर्वक हो जाता है, ध्यानपूर्वक, तो तीनों शरीरों से छुटकारा होगा। अब ऐसा व्यक्ति मरते वक्त जागा हुआ मरता है। होशपूर्वक मरता है। क्योंकि सुषुप्ति में वह जाग गया, सुषुप्ति में मृत्यु घटित होती है, अब वह जागा हुआ मरता है। होशपूर्वक मरता है।

बुद्ध की मृत्यु आई तो बुद्ध ने कहा कि आज अब मेरी मृत्यु आती है। अब आज मेरा भीतर मुझे साफ हो गया कि अब सब टूटने के करीब है। तो तुम्हें कुछ पूछना हो तो पूछ लो। यह सुन कर ही सबके हृदय बैठ गए, पूछने का सवाल न रहा। लोग छाती पीट कर रोने लगे। बुद्ध ने कहा रोने में तुम समय मत गंवाओ, क्योंकि मैं ज्यादा देर रुक नहीं सकूंगा। बात मुझे भीतर साफ हुई जाती है। वैसी साफ हुई जाती है कैसे कि किसी दीये का तेल चुक जाता हो और आपके पास आंखे हों, अंधे न हों, तो साफ ही दिखाई पड़ेगा कि तेल चुका जा रहा है, ज्योति बुझने के करीब। तुम रोओ-धोआ मत, चिल्लाओ मत। वह तो हम अंधे हैं, इसलिए दीया बुझता चला जा

रहा है, न हमको पता भी नहीं चलता। तेल भी चुक जाता है और हम ऐसे बैठे हुए हैं ऐसे कि सागर भरा हुआ है तेल का।

तो बुद्ध कहा यह, तेल बिल्कुल चुकने के करीब है, यह घड़ी दो घड़ी की बात है कि मेरी यह ज्योति जलती रहेगी। तुम्हें कुछ पूछना हो, पुछ लो, रोने मेंमत गंवाओ। लेकिन वहां कौन सुनने को तैयार था? बुद्ध अगर जागे होंगे सुषुप्ति में तो वहां तो सोए हुए लोग थे, वे छाती पीट रहे हैं, रो रहे हैं; वे सुन ही नहीं रहे हैं! वे तो न मालूम किन खयालों में पड़ गए हैं।। जो बुद्ध न रहेंगे तो क्या होगा? वह अभी मौजूद हैं, अभी उनसे कुछ और भी सीखा जा सकता है!

तब बुद्ध ने तीन बार पूछा। उनकी सदा की आदम थी। बुद्ध की किताबें अभी जब छापी गई है, तो बड़ी तकलीफ पड़ती है। क्योंकि हर बात वह तीन बार पूछते थे। और हर बात कहते थे। तो अब किताब छापने पर नाहक तीन गुना मालूम पड़ता है। लेकिन का कारण था। वह कहते थे, लोग इतने सोए हुए हैं कि एक बार में सुनता कौन है! तीन बार में भी कोई सुन ले तो बहुत है। काफी जागा हुआ आदमी है। तीन बार बुद्ध ने पूछा मत रोओ, मैं जाने के करीब हूं, वक्त आ गया, नाव खुल गई है, किनारा छूटने को है, दीया बुझने को है, कुछ पूछना हो पूछ लो। पूछने को कोई सवाल न था। तो बुद्ध ने कहाः ठीक, तो मैं मरूं? दुनिया में ऐसा किसी आदमी ने कभी नहीं पूछा। तो अब मैं मरू? अब मैं विलीन हो जाऊं?

तो वह आज्ञा लेकर वृक्ष के पीछे चले गए, जहां बैठे थे। वहां जाकर आंख बंद करके बैठ गए। एक शरीर से उन्होंने संबंध छोड़ कर दूसरे में प्रवेश किया। जब वह दूसरे ही शरीर में थे, तब गांव से भागा हुआ एक आदमी सुभद्र आया और उसने कहा कि बहुत मुश्किल हो गई, मैंने सुना कि बुद्ध की मृत्यु करीब आ गई, गांव में खबर पहुंच गई, मुझे कुछ पुछना है। तो बुद्ध के भिक्षुओं ने कहा कि अब तो असंभव है। अब तो वह मृत्यु में लीन होने की तरफ जा भी चुके हैं। और अब हम उन्हें खींचे, उचित न होगा। और खींच भी हम कैसे सकेंगे? हमें कोई उपाय भी पता नहीं है कि अब क्या होगा? उनका श्वास शिथिल हो गई है, हृदय की धड़कन सुनाई नहीं पड़ती है, शरीर बिल्कुल मृत होने के करीब हो गया है। नहीं, अब कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन सुभद्र ने कहा, कुछ तो करना ही पड़ेगा। भिक्षुओं ने कहा कि नासमझ, तेरे गांव से वह कितनी बार गुजरे? सुभद्र ने कहा कि बहुत बार गुजरे, लेकिन कभी मेरी दुकान पर भीड़ थी, कभी घर में शादी थी, कभी तबीयत ठीक न थी। कभी निकल ही रहा था कि कोई मिलने वाला आ गया। ऐसे हर बार चूक गया। फिर मैंने सोचा फिर कभी मिल लूंगा। लेकिन आज तो मिलना ही होगा। क्योंकि अब तो न मालूम कितने कल्पों तक वैसा आदमी मिले, न मिले। चिल्लाने लगा सुभद्र!

तो बुद्ध उठकर वापस आ गए। और बुद्ध ने कहा, तू ठीक वक्त पर आ गया। अगर मैं सूक्ष्म शरीर से भी नीचे उतर जाता, तो फिर तेरी बात भी मुझे सुनाई न पड़ती। अभी मैं स्वप्न में था। अभी उसको छोड़ ही रहा था। अगर मैं सुषुप्ति में पहुंच जाता, तो फिर बहुत मुश्किल पड़ती। बहुत कठीन हो जाता तेरी आवाज मुझ तक पहुंचनी।

लेकिन सुषुप्ति से भी किसी तरह वापस लौटा जा सकता है। लेकिन अगर सुषुप्ति भी टूट जाए, तब तो फिर लौटने की कोई बात ही नहीं रहती। तो बुद्ध ने कहा कि मत रोको, उसे, वह कुछ पूछता है, पूछ लेने दो। नाहक मेरे ऊपर इलजाम मत लगवाओ कि मैं जिंदा था और एक आदमी पूछने आया था और खाली हाथ वापस लौट गया।

बुद्ध पुनः चले गए हैं उसके उत्तर देकर। और उन्होंने फिर एक-एक शरीर को छोड़ दिया। फिर वे चौथे में लीन हो गए। खो गए।

ये तीन शरीर है और चौथी हमारी आत्मा है। वह शरीर नहीं है। वह चौथी हमारी स्वरूप-अवस्था है। ये तीन के खो जाने पर जो अनुभव होता है, वही आनंद है, वही अमृत है। वही निर्वाण है, वही मोक्ष है।

"इसी से प्राण, मन और समस्त इंद्रियों की उत्पत्ति होती है। इसी से पृथ्वी की सृष्टि होती है जो आकाश, वायु, अग्नि, जल और सारे संसार को धारण करती है। यह जो चौथा है, यही सारे जगत का आधार है, परमात्मा है। इसी से सब पैदा होता है और इसी में सब लीन हो जाता है।

बारहवां प्रवचन

वही तुम हो, तुम वही हो

यत्पंर ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत्।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव तत्।। 16।।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तादि प्रपंचं यत्प्रकाशते।
तद ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।। 17।।

जिस परब्रह्म का कभी नाश नहीं होता, जो सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्म है, जो संसार के समस्त कार्य और कारण का आधारभूत है, जो सब भूतों का आत्मा है, वही तुम हो, तुम वही हो।। 16।।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में जो मायिक प्रपंच दिखाई देते हैं वे सब ब्रह्म द्वारा ही प्रकाशित होते हैं और वह ब्रह्म मैं ही हूं।। ऐसा जो जान लेता है, वह सब प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है।। 17।।

साधना के दो भाग हैं। समस्त प्रयासों के ही दो भाग होते हैं। एक भाग, जिसमें जो असार है उसे छोड़ना होता, त्यागना होता, उससे तादात्म्य तोड़ना होता है और दूसरा भाग, जो सार है उसके साथ एकात्म, उसके साथ तादात्म्य जोड़ना पड़ता है। पहला भाग निषेध है, दूसरा भाग विधेय है।

असत्य को असत्य की तरह जानना पड़ेगा। तभी हम सत्य को सत्य की तरह जान पाएंगे। प्रकाश को भी जानना हो तो पहले अंधेरे को जानना पड़ेगा, तो हम प्रकाश को जान पाएंगे। जीवन को भी पहचानना हो तो मौत की भी पहचान बनानी पड़ेगी, तो ही जीवन हमारे खयाल में आएगा। क्योंकि जो भी हमारे खयाल में आता है, उसे खयाल में आने के लिए विपरीत का भी हमारी दृष्टि में होना जरुरी है। अंधेरी रात होती है तो तारे चमकते हैं। दिन के प्रकाश में भी तारे होते हैं, लेकिन दिखाई नहीं पड़ते। चमकना तो दूर, दिखाई भी नहीं पड़ते। तारे अभी भी आपके ऊपर आकाश में फैले हुए हैं। तारे तो कहीं चले नहीं जाते। कोई सुबह होते से तारे कहीं विलीन नहीं हो जाते हैं। लेकिन सूरज के प्रकाश की पर्त, फिर उन तारों की झलक असंभव हो जाती है। तारों को जानना हो तो रात का गहन अंधेरा चाहिए, तब वे दिखाई पड़ते हैं। और जितना हो गहन अंधेरा, उतने प्रकट होकर, स्पष्ट होकर दिखाई पड़ते हैं।

विपरीत में ही बोध है।

इससे एक बहुत मजेदार बात खयाल में ले लें, फिर हम इस सूत्र में चलें। जिन चीजों को हम विपरीत कहते हैं, वे विपरीत कहने से सहयोगी हो जाती हैं। उनके भीतर एक आंतरिक मैत्री बन जाती है। रात का अंधेरा तारों का दुश्मन नहीं हैं, तारों का मित्र है। क्योंकि उस अंधेरे के बिना तारे प्रकट नहीं होते।

फिर तो मृत्यु भी जीवन की दुश्मन नहीं है। फिर तो मृत्यु भी जीवन की मित्र है। क्योंकि मृत्यु के बिना जीवन भी प्रकट नहीं हो सकता। ऐसा अगर देखेंगे तो समझ में आएगा कि जिसे हम शत्रु कहते हैं, वह भी हमारी नासमझी का ही हिस्सा है। जिसे हम बुरा कहते हैं, वह भी हमारी नासमझी का ही हिस्सा है।

इस जगत में भी विपरीत अंतस में सहयोगी हैं। रावण के बिना राम नहीं हो पाते और न राम के बिना रावण हो पाता। अगर राम को भी जानना हो तो यहीं शुरू करना पड़ेगा कि रावण क्या है? क्योंकि जो-जो रावण है, वह राम नहीं है। इस सूत्र के पहले तक निषेध की प्रक्रिया की बात थी। मनुष्य का अंतर, अंतरात्मा, मनुष्य का आंतरिक यथार्थ क्या-क्या नहीं है। जाग्रत जो है, वह भी वह नहीं है। स्वप्न जो है, वह भी वह नहीं है। सुषुप्ति जो है, वह भी वह नहीं है। यह जो दिखाई पड़ता है प्रपंच, यह माया है, यह भी वह नहीं है। अभी तक हमने वह क्या नहीं है, इस संबंध में चर्चा की है। इस सूत्र के साथ विधायक बात शूरू होती है।। वह क्या है?

और ध्यान रहे, निषेध की बात पहले करनी पड़ती है। निषेध की रेखाओं के बीच में ही विधेय उभरता है। अगर देखना हो कोई पर्वत-शिखर तो उन खाइयों को न भुलना जो उसे चारों तरफ घेरे हुए हैं। कैसे उनके बीच ही वह उभरता है। अगर खाइयां मिटा दें, शिखर मिट जाए। खाइयां बड़ी करो, शिखर बड़ा होता चला जाएगा। वह जो खाई है, वह शिखर की दिशा में नहीं, उलटी दिखाई पड़ती है। वह सहयोगी है। वह चारों तरफ से उसकी रेखा निर्मित करती है। और जितनी होती है उतना ही शिखर ऊपर उठता जाता है।

निषेध खाई की तरह है। गड्ढा है। इनकार करना होता है पहले कि क्या-क्या मैं नही हूं। क्योंकि जब तक भेद स्पष्ट न हो जाए जो-जो मैं नहीं हूं, तो बहुत मुश्किल होगा उसको पकड़ पाना जो मैं हूं। मेरा होना मेरे न होने से घिरा है। और न होना पहले मुझे मिलेगा। फिर होना मुझे मिलेगा। अगर मैं अपनी तरफ जाऊं अपनी यात्रा पर तो पहले मुझे मेरी खाइयां मिलेंगी। और फिर मुझे मेरा शिखर मिलेगा।

इसे बहुत आयामों में समझ लेना।

अगर मैं अपने भीतर जाऊंगा तो पहले तो मुझे बुराइयां मिलेंगी। और जो बुराई से डरता हो वह फिर कभी भीतर नहीं जा सकेगा। अगर मैं अपने भीतर जाऊंगा तो पहले मुझे सारी बुराइयां मिलेंगी। बड़ी ग्लानि होगी, बड़ी आत्मनिंदा जगेगी। लगेगा मुझसे पापी कौन है। सभी संतों ने जो बातें कही है, वह आप यह मत समझ लेना कि विनम्रता के कारण कहीं हैं। अक्सर यही समझा जाता है। कबीर ने कहा है, जब मैं खोजने गया तो मुझसे बुरा मैंने कोई न पाया। बच्चों को बूढ़े समझाते हैं, स्कूल में शिक्षक विद्यार्थियों को समझातें है कि यह कबीर की विनम्रता है। यह विनम्रता नहीं है। इसका विनम्रता से कोई लेना-देना नहीं है। यह कबीर की शोध है।

जब भी कोई व्यक्ति खोजने जाएगा तो पहले बुराइयों की खाइयां मिलेंगी। और जब बुराइयों की खाइयां पार होंगी, तभी भलाई का शिखर आंखों में आएगा। इसलिए जो अपने को भला मान कर बैठा है, वह भीतर जा ही न सकेगा। क्योंकि इसकी भले मानने ही मान्यता ही उसको डर पैदा करवा देगी कि यहां भीतर गए तो बुराई मिलती है। जो अपने को अहिंसक मानकर बैठा है, क्योंकि रात भोजन नहीं करता है, पानी छान कर पी लेता है, इतनी सस्ती अहिंसा में जिसने अपने को घेर रखा है, वह जरा भीतर झांकेगा तो हिंसा मिलेगी। वह घबड़ा जाएगा भीतर जाने से। फिर बाहर ही रहा आएगा।

हम सब अपने बाहर भटक रहे हैं, क्योंकि हम अपनी बुराई की खाई को पार करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते। साहसपूर्वक जो अपनी बुराई खाई से गुजार जाता है, वही अपने भलाई के शिखर को उपलब्ध होता है। इसे ऐसा समझें कि जिसे संत होना है, उसे पहले पापी होना पड़ेगा। होना पड़ेगा का मतलब उसे पहले अपने पाप की खाइयों से गुजरना पड़ेगा। और जितना बड़ा होगा संता, उतनी बड़ी पाप की खाई उसके इर्द-गिर्द होगी क्योंकि वह संतत्व का शिखर पाप की खाई के बिना उभरता नहीं है। है ही नहीं कहीं।

अगर खाई से बचना है तो दो उपाय हैं। या तो खाई में प्रवेश ही मत करो और खाई के बाहर ही अपनी जिंदगी बिता दो। लेकिन तब शिखर पर भी कभी नहीं पहुंचोगे। और दूसरा उपाय यह है कि शिखर पर पहुंचो,

तो फिर खाई से मुक्त हो जाओगे। लेकिन खाई से मुक्त होने के लिए खाई से गुजरना ही पड़ेगा। ईसाई रहस्यवादियों ने उसे "डार्क नाइट ऑफ दि सोल" कहा है कि जब भी कोई परम प्रकाश की तरफ जाता है तो पहले उसे महा अंधरारपूर्ण रात्रि से गुजरना पड़ता है।

पुण्य के सभी शिखर पाप रेखाओं से घिरे हैं। उन रेखाओं से भयभीत मत हो जाना। जानना यह, खयाल रखना यह कि जितनी बड़ी खाई हो, उतना ही बड़ा शिखर निकट है। इसलिए न तो निंदा से भरना, न भयभीत होना। न आत्मग्लानि अनुभव करना, ऐसा समझना कि अब क्या होगा! मैं तो पापी हूं! अगर पाप है तो कहीं छिपा पुण्य भी होगा, थोड़ी और यात्रा की बात है।

और यहां एक बात और समझ लें।

इस खाई में उतरकर आदमी दो काम कर सकता है। या तो इस खाई से लड़ने जाए, जो कि नैतिक आदमी करता है। और या, इस खाई को पार करने लग जाए, जोकि धार्मिक आदमी करता है। और नैतिक आदमी खाई से भी लड़ कर खाई में ही उलट जाता है और शिखर तक कभी नहीं पहुंच पाता। धार्मिक आदमी खाई से लड़ता नहीं, सिर्फ खाई से गुजरता है। स्वभावतः अगर खाई से लडिएगा तो खाई में ही रुकना पड़ेगा, शिखर पर कैसे जाइएगा! जो लड़ेगा, उसे वहीं रुकना पड़ेगा जिसेसे लड़ेगा। दुश्मन का तल ही हमारा तल हो जाता है। इसलिए बुरा दुश्मन अगर मिल जाए जिंदगी में तो आदमी बुरा हो जाता है। बुरा मित्र इतना नुकसान नहीं पहुंचा पाता, बुरा दुश्मन बहुत नुकसान पहुंचा देता है।

इसलिए मित्र तो कोइ भी चुन लें तो चलेगा। दुश्मन बहुत सोच-समझ कर चुनना चाहिए। क्योंकि उससे लड़ना पड़ेगा, उसकी भूमि पर खड़े रहना पड़ेगा। धीरे-धीरे जो भी लोग लड़ते हैं उनको गुणधम्र एक-सा हो जाता है। धीरे-धीरे, दोनों एक-दूसरे को बदल कर उस हालत में ला देते हैं कि दो मित्र भी इतने समान कभी नहीं होते, जितने दो दुश्मन समान होते हैं।

नैतिक व्यक्ति का अर्थ है कि जैसे ही उसे भीतर बुराई दिखाई पड़ती है, जो पहला काम करता है, उससे लड़ने का करता है। बुराई से जब आप लडिएगा तो आप हारिएगा। बुराई से ऊपर उठा जाता है, बुराई को जीता नहीं जाता। ये अलग बातें हैं। बुराई को जीता कभी नहीं जाता, बुराई से ऊपर उठा जाता है। और जो ऊपर उठ जाता है वह जीत भी जाता है। क्योंकि जो हमसे नीचे पड़ जाता है, उसके मालिक हो जाते हैं। लेकिन जो बुराई से लड़ता है, समतल भूमि पर खड़ा रहता है। और लड़नेवाला कभी नहीं जीतता। क्योंकि लड़ने वाले का तल ही वही होता है, जो बुराई का तल होता है। तल की बदलाहट क्रांति है।

तो मेरे भीतर हिंसा है। अगर मैं इससे लडूं तो मैं क्या करूंगा? मैं यही कर सकता हूं कि इसको दबाऊं। उसको भुलाऊं। मैं यही कर सकता हूं कि कुछ अहिंसा आरोपित करूं। और अहिंसा को बढाऊं और हिंसा को दबाऊं। लेकिन दबी हुई हिंसा मिटती नहीं है। दबी हुई हिंसा कभी-कभी तो और ही प्रखर हो जाती है, और नये मार्गों से प्रकट होने लगती है।

नैतिक व्यक्ति का साधन जो है, वह है दमन। धार्मिक व्यक्ति का जो साधन है, वह है निरीक्षण, दमन नहीं। धार्मिक व्यक्ति सिर्फ निरीक्षण करता है, कि यह खाई है, यह बुराई है, और साक्षीभाव रखता है और आगे बढ़ा जाता है। और खयाल रखता है कि यहां किसी भी खाई की किसी भी चीज संघर्ष नहीं लेना है। लेना ही नहीं। नहीं तो संघर्ष ही पड़ाव बन जाएगा। फिर यहीं डेरा डाल कर पड़ा रहा पड़ेगा। और खाई में रह कर खाई को जीतिएगा कैसे? इसलिए नैतिक व्यक्ति को धार्मिक होने में ही कठिनाई पड़ जाती है जितनी अनैतिक को।

अनैतिक और नैतिक में एक बात समान है। अनैतिक खाई को मान कर वहां रुक जाता है। और नैतिक खाई को न मानने की वजह से लड़ने के लिए वहीं रुक जाता है। लेकिन तल-भेद नहीं है। दोनों रुकते वही हैं। हिंसा में अनैतिक भी रुका होता है, उसे मान कर। हिंसा में तथाकथित अहिंसक भी रुका होता है, उसे मानकर। धार्मिक व्यक्ति वह है जो इन दोनों किनारों के बीच कुछ भी चुनाव नहीं करता। जो हिंसा को मानता है, न न मानता है। जो चुपचाप खाई को पार करता और ध्यान शिखर का रखता है, कि शिखर पर मुझे पहुंचना है। खाई पर मुझे किसी तरह का रस पैदा नहीं करता है। राग का या विराग, मित्र का या शत्रु का। खाई से मुझे सिर्फ गुजर जाना है। इसे अगर खयाल रखेंगे तो शिखर बहुत निकट है। और इसमें अगर जरा भी भूल हुई तो शिखर बहुत दूर है।

और इसलिए कई दफे एक बहुत अनूठी घटना घटती है। और वह यह कि इस खाई को मान कर जो अनैतिक व्यक्ति है कभी-कभी शिखर की तरफ दौड़ जाते हैं। और उनके दौड़ने का कारण यह होता है कि बुराई को मान कर वह इतना दुख पाते हैं कि दुख ही किसी क्षण में इतना सघन और तीव्र हो जाता है कि उस दुख के कारण ही वे अचानक खाई को छोड़ कर दौड़ शिखर की तरफ लगा देते हैं। लेकिन जो नैतिक आदमी है, वह बुराई से लड़कर अपने अहंकार को इतना मजबूत कर लेता है। और उसके अहंकार के होने में वह बुराई भी कारण होती है, जिससे वह लड़ता है। इसलिए बुराई में उसका एक अनूठा रस पैदा हो जाता है। वह अनूठा रस यह है कि उसके अहंकार के होने का कारण ही वह बुराई का होना है, जिससे वह लड़ता है।

एक आदमी हिंसा से लड़ कर अहिंसक हो गया है। अब यह खाई छोड़ना उसे बहुत मुश्किल पड़ेगा। इसलिए मुश्किल पड़ेगा कि खाई छोड़ने का मतलब यह अहंकार भी छोड़ना होगा। यह जो भीतर अहंकार है कि मैं अहिंसक हूं, यह तभी तक है जब तक हिंसा से लड़ाई चल रही है। अगर यह हिंसा की लड़ाई छोड़ कर भागना है तो यह जो अहंकार इस लड़ाई से पैदा किया था, यह भी इसी खाई में छोड़ कर जाना पड़ेगा। यह साथ नहीं जा सकता। यह उसका ही अनिवार्य हिस्सा है।

इसलिए नैतिक आदमी को अक्सर धार्मिक होने में अनैतिक आदमी से भी ज्यादा कठिनाई पड़ जाती है। क्योंकि अनैतिक आदमी के पास बुराई से कोई अहंकार पैदा नहीं होता। सिर्फ दीनता, दुख, पीड़ा पैदा होती है। संताप पैदा होता है। सिवाय कष्ट के वह बुराई से कुछ पाता नहीं है। लेकिन नैतिक आदमी बुराई से कष्ट की जगह सुख भी पाता है। अस्मिता का, अहंकार का कि मैं अहिंसक हूं, मैं त्यागी हूं। मैं सच्चा हूं, मैं ईमानदार हूं। यह जो मैं है इन सबके पीछे छिपा, यह बुराई से उत्पन्न हुआ है। यह बुराई की उत्पत्ति है। यह बुराई के बिना पैदा नहीं हो सकता था। इसलिए यह आदमी एक दोहरी झंझट में होता है। जिससे लड़ता है, उसी से जीवन पाता है। जिसकी दुश्मनी बता रहा है, वही इसका अहांकर पैदा करने को आयोजन है। इसे इस खाई को छोड़ने में दोहरी कठिनाई होगी। एक तो यह खाई पकड़ने वाली है ही। और अब इसने खाई के अनुकूल अपने भीतर एक और भी उपद्रव पैदा कर लिया है, जो इसे यहां से जकड़ाए रखेगा। इसकी बुराई स्वर्णिम हो गई। इसके पाप में पुण्य का मजा आ रहा है।

इसलिए बहुत विचित्र मालूम पड़ता है, लेकिन ऐसा है कि बुरा आदमी कभी-कभी इस खाई से छलांग लगाकर निकल जाता है ओर भला आदमी इस खाई से छलांग लगा कर निकलने में बड़ी कठिनाई पाता है। मगर दोनों को ही इससे पार जाना पड़ेगा। दोनों को ही इससे पार जाना पड़ेगा। और पार जाने की जो मौलिक आधारशिला है, वह है।। न तो इसके भोग में रस लेना, न इसके दमन में रस लेना। इसमें रस ही मत लेना। रस रखना शिखर की तरफ। और इतना ही खयाल रखना कि खाली खाई से गुजरना अनिवार्य है, तो गुजरेंगे। यहां

किसी तरह का पड़ाव नहीं बनाना है। और इस खाई से किसी भी तरह का संबंध नहीं जोड़ना है। यह खाई शिखर का अनिवार्य हिस्सा है, इसलिए इससे गुजरना है।

चाहे बुराई का और भलाई का सवाल हो, चाहे पाप और पुण्य का, चाहे ज्ञान और अज्ञान का; एक की, एक ही कठिनाई से गुजरना होता है। अज्ञान की खाई हमारे चारों तरफ है। ज्ञान के शिखर के पास अनिवार्य है। उससे हम दो काम कर करते हैं। उससे गुजर जाएं तो शिखर उपलब्ध हो जाए। उससे लड़ने लगें तो पांडित्य उपलब्ध होता है। अज्ञान से लड़ने लगें तो पांडित्य उपलब्ध होता है। सिद्धांत, शास्त्र, ये उपलब्ध हो जाते हैं। फिर वहीं डेरा डाल कर बैठे जाना पड़ता है। और शास्त्र सिद्धांत बडी वजनी चीजें हैं। इनके बोझ को लेकर कोई भी शिखर पर जा नहीं सकता। कभी-कभी अज्ञानी वहां पहुंच जाते हैं, लेकिन तथाकथित ज्ञानी नहीं पहुंच पाते हैं। क्योंकि अज्ञानी कम से कम निर्बोझ तो होता है। उसके पास कोई साज-सामान नहीं हाता, जिसको ढोना है शिखर की तरफ। सिर्फ यह खाई होती है अज्ञान की, इसको छोड़कर वह कभी भी भाग सकता है। लेकिन पंडित के पास, तथाकथित ज्ञानी के पास खाई तो होती ही है, सिर पर शास्त्रों का, शब्दों का, सिद्धांतों का बड़ा बोझ भी होता है। खाई उतना नहीं पकड़ती जितना यह बोझ पकड़ लेता है। इस बोझ में छाती दबी जाती है। और उसको छोड़ कर वह भाग नहीं सकता, क्योंकि यह बोझ उसका अहंकार है।

ध्यान रहे, खाई ने किसी को कभी नहीं पकड़ा, लेकिन अहंकार ने बुरी तरह खाई में लोगों को रुकवा दिया है, खूंटियां गड़वा दी हैं। फिर वहां से हटना मुश्किल हो जाता है। एक बात पक्की है कि इस खाई में जो अपने को पापी, अज्ञानी जानकर चुपचाप आगे बढ़ता रहे, वह शीघ्र ही शिखर पर पहुंच जाता है। लेकिन पुण्यात्मा को अपने को पापी मानने में बड़ी पीड़ा है। और पंडित को अपने को अज्ञानी मानने में बड़ा कष्ट है। फिर रुकाव हो जाएगा। और उसे शिखर पर तो वे ही पहुंचते हैं जो निर्भार पहुंचते हैं। इस खाई में भार पैदा मत करना। और भार तत्काल पैदा हो जाएगा अगर लड़ाई की तो।

इस खाई से लड़ना ही मत। इससे सिर्फ गुजरना। क्रोध का जाए, इससे सिर्फ गुजरना, लड़ना ही मत। कामवासना पकड़े तो उससे सिर्फ गुजरना, लड़ना ही मत। सिर्फ गुजरनेवाले का मतलब है, साक्षी; देखता रहेगा कि ठीक है, यह आया है और यह खाई है और इससे गुजरना है, इससे गुजरेंगे, इसमें कोई रस पैदा न करेंगे।। इधर या उधर, इस पार या उस पार। कोई किनारा न पकड़ेंगे। मानकर चलेंगे कि अनिवार्य है। अगर मैं जा रहा हूं धूप की तरफ और बीच में छाया पड़ती है, तो मैं इससे गुजरता हूं। इसमें क्या लड़ना और नहीं लड़ना है! इस छाया से क्या करना है। मैं जानता हूं कि छाया के पास सूर्य प्रखर प्रकाश है पार हो जाने का। रास्ते पर डेरे नहीं डालने चाहिए।

जैसा पाप के संबंध में, जैसा अज्ञान के संबंध में, वैसा ही आत्यंतिक रूप से न होने के संबंध में; वह सबसे गहरी खाई है। क्या-क्या मैं नहीं हूं, उसमें से भी मुझे गुजरना पड़ता है। वह सबसे गहरी है। पाप उतना गहरा नहीं है। अज्ञान उतना गहरा नहीं है। लेकिन जो मैं नहीं हूं, उसकी भी खाई मेरे होने के चारों तरफ है। योग की गहतम प्रक्रियाए, धर्म की आधारभूत प्रक्रियाएं उसी खाई से संबंधित हैं।। जो-जो मैं नहीं हूं।

इसलिए क्या-क्या मैं नहीं हूं, उसका नियम ऋषि ने कहा कि जाग्रत में जो-जो हो रहा है वह-वह मैं नहीं हूं। दूकान चल रही है कि दफ्तर जाना हो रहा है, प्रेम हो रहा है, झगड़ा हो रहा है, शत्रुता बन रही है, मित्रता बन रही है, सुख मिल रहा है, दुख मिल रहा है, यह जाग्रत इस छोटे से शब्द में ऋषि ने यह सब कह दिया है।। जाग्रत में जो-जो हो रहा है। विस्तार में जाने की कोई जरूरत नहीं मानी है। इस एक शब्द में सारा कह दिया है कि जागते में जो-जो हुआ, वह मैं नहीं हूं। मगर हमारे पास और तो कोई संपदा नहीं है होने की। जागते में जो-

जो हुआ है वही तो हमारी संपदा है। एक मकान बना लिया है, एक तिजोड़ी भर ली है, दस-पांच दुश्मन खोज लिए हैं, कोई पद बना लिया है, यहीं अखबार में नाम छपवा लिया है, कहीं पहुंच गए मालूम होते हैं। यह हमारा सब जाग्रत में हुआ मामला है।

कभी आपने खयाल किया, बहुत दूर की तो छोड़ दें, स्वप्न में भी आपने जाग्रत में बनाया है वह आप नहीं रह जाते हैं। जागते में आप भिकारी थे और सपने में सम्राट हो जाते हैं। और खयाल भी नहीं आता यह सपने में कि अरे, मैं तो भिकारी था! तो यह जागने की ताकत कितनी है? सपना पोछ देता है। इस जाग्रत को क्या यथार्थ कहें जिसको सपना मिटा देता है। जागमे में सम्राट थे, वह सपने में भीख मांग रहे हैं। और स्मरण भी नहीं आता इतना-सा कि अरे, मैं अभी जागते हुए बारह घंटे बिल्कुल ही सम्राट था!

अब यह थोड़ा सोचने जैसा है। जिस जागने को सपना पोंछ दे, जागने में जो जाना है वह यथार्थ है? और एक और मजे की बात है जो आपको कभी खयाल में न न आई होगी, और इसीलिए भारतीय चिंतन स्वप्न को जाग्रत से गहरे में रखता है। स्वप्न को आमतौर से हम अगर तौलेंगे तो जाग्रत से गहारा नहीं मानेंगे। क्योंकि सपना तो सपना है। इस कहते हैं कि वह तो सपना है, यह जाग्रत है। लेकिन यह भारतीय चिंतन सपने को जाग्रत से गहरे में रखता है। कारण उसके हैं।

पहला कारण और मौलिक कारण तो यह है कि आप जागते में सपने को कभी-कभी थोड़ा याद रख पाते हैं, लेकिन सपने में जाग्रत को बिल्कुल याद नहीं रख पाते हैं। तो मजबूत कौन है? सुबह कभी उठ कर वह तो याद भी रहता है कि सपने में क्या हूआ? लेकिन रात कभी सोकर याद रहा है कि जागतें में क्या हुआ? इस मौलिक कठिनाई की वजह से भारतीय मनीषा से स्वप्न का गहरे में रखा। क्योंकि जिसकी स्मृति जागते तक प्रवेश कर जाती है, वह गहरी अवस्था है। और जिसकी स्मृति सपने तक में नहीं टिकती उसको स्मृति क्या गहरा कहना!

जागते में जो-जो हमने किया जै वही तो हमारा जीवन है। ऋषि कहता है वह तुम नहीं हो। लेकिन जागते में जो-जो हमने किया वह भला हमारा जीवन हो, लेकिन स्वप्न में जो-जो हमने किया है वह हमारा प्रतिमा है। वह हमारी इमेज है। इसीलिए तो कभी भी किसी आदमी को तृप्ति नहीं होती है कि उसके बाबत लोग ठीक समझते हैं। किसी को तृप्ति नहीं होती है। क्योंकि अपने बाबत वह जो समझता है वह उसकी स्वप्न-प्रतिमा है। और दूसरे इसके बाबत जो समझते है वह इसकी जाग्रत की प्रतिमा है।

इसे थोड़ा खयाल में ले लें।

आप अपने को एक बहुत अच्दा आदमी समझते हैं। लेकिन कोई मानने वाला नहीं मिलता जो आपको उतना अच्छा आदमी समझता हो। तो आप समझते हा नासमझ हैं ये लोग, अभी समझ नहीं पाए। वक्त मिलेगा तो समझेंगे। समय आएगा तो समझेंगे। कभी समय नहीं आता और कभी नहीं आती। मामला क्या है? और हर आदमी के साथा यही दिक्कत है, उसको कोई समझने वाला नहीं मिलता। अभी तक मुझ ऐसा आमदी नहीं मिला जो कहे कि मुझे लोग ठीक वही समझते हैं जो मैं हूं। सब लोग गलत समझते हैं! मैं कहां प्रेम से भरा हुआ सागर, और लोग मुझे छोटी तलैया भी नहीं समझ सकते हैं। बल्कि उलटा मुझे समझते हैं यह आदमी चोरी, घृणा से भरा हुआ, ईर्ष्यालु, न मालूम क्या-क्या! जो मैं नहीं हूं।

इसमें मामला है। इसमें मामला यह है कि आपकी खुद की प्रतिमा आप अपने सपनों में बनाते हैं। और आपके सपनों का दूसरों को कोई पता नहीं है। और दूसरों को जो पता है वह आपकी जाग्रत की प्रतिमा है। और वह जाग्रत की प्रतिमा आपसे... आपके मन की प्रतिमा नहीं है। तो आप जानते हैं कि कभी-कभी मैं क्रोध कर

लेता हूं यह बात दूसरी है, ऐसे मैं आदमी शांत हूं। यह शांत होने की प्रतिमा है, यह आपके स्वप्न की प्रतिमा है। और दूसरे आदमी की जो प्रमिमा है वह जो उसमे आप कभी-कभी क्रोध करते हैं, उसी का जोड़ है। इसलिए मेल नहीं पड़ता। और मेल कभी पड़ेगा नहीं, क्योंकि उसमें दूसरे की कोई गलती ही नहीं। दूसरा क्या कर सकता है!

दूसरा आपके व्यवहार को जानता है, आपके सपने को नहीं। और दूसरा आपके व्यवहार का जोड़ कर आपकी प्रतिमा निर्मित करता है। आपके सपनों की उसे कोई खबर भी नहीं है। आप अपनी प्रतिमा अपने व्यवहार से निर्मित नहीं करते। आप अपनी प्रतिमा अपने सपनों से निर्मित करते हैं। बुरा से बुरा आदमी भी आदमी भी अपनी आंखों में बड़ा भोला होता है। और भला से भला आदमी भी दूसरों की आंखों में बड़ा बुरा होता है। इसमें कहीं कोई असंगति नहीं है, इसमें असंगति दो तलों की है। आप अपने को वैसा मानते हैं जैसा आप होना चाहते हैं। जो आपका स्वप्न, वैसा आप मान ही लेते हैं। अगर आप अहिंसक होना चाहते हैं, यह आपका सपना था, आप अपने को अहिंसक मान ही लेते हैं। न आपके सपने की खबर किसी को, न आपकी इस मान्यता की। आपने जो-जो हिंसा की है चारों तरफ।। और जब भी आप करते हैं तो हिंसा करतें हैं। आप हिंसा भी करते हैं तो भी उसको दूसरे में... दूसरे को फौरन पता चलता है कि क्या-क्या हिंसा हा रही है।

बिड़ला ने मंदिर बनाए जगह-जगह। जहां-जहां उन्होंने मंदिर बनाए हैं वहां-वहां उन्होंने सोचा... और वहीं-वहीं मंदिर बनाए हैं जहां फैक्ट्री है, उनका कारबार है। वहां जो लोग उनके नीचे काम करते हैं, उनमें एक अच्छी प्रतिमा बिड़ला की जाएगी। तो उन्होंने वहां-वहां मंदिर बनाए। लेकिन उन्हीं जगह पर लोगों ने मुझसे आकर कहा कि यह भी कोई मंदिर है! बिड़ला मंदिर!! कृष्ण का मंदिर हो, राम का मंदिर हो, बिड़ला-मंदिर!! यह सब अहंकार है। बिड़ला को कभी सूझा भी नहीं होगा कि ये मंदिर केवल अहंकार के प्रतीक होंगे। सूझा होगा कि ये दान के, पुण्य के, शुभ के प्रतीक होंगे। इतना इन पर खर्च किया! बहुत खर्च किया है। लेकिन जिनके बीच मंदिर बनाए हैं, वे बिड़ला को उनके व्यवहार से जानते हैं कि एक तरफ यह शोषण की धारा चलती हैं, इसमें करोड़ों रुपये चूसे जाते हैं और इसमें से लाख रुपये का मंदिर खड़ा हो जात है।

यह मंदिर भी शोषण का हिस्सा है देखले वाले को। यह मंदिर भी तरकीब है। यह मंदिर भी शोषण को चलाए रखने का आयोजन है। यह देखनेवाले को इसका जोड़ है। वह जानता है कि यह सब पाप का मंदिर है। बिड़ला को यह खयाल भी नहीं हो सकता है यह मैं पाप का मंदिर बना रहा हूं। उनके स्वप्न का मंदिर है। पुण्य का मंदिर। जो उनके अपने मन में पुण्य का भाव है। जो उनको खयाल है कि मैं इतना-इतना पुण्य किया हूं। ऐसा अच्छा आदमी हूं। इन दोनों प्रतिमाओं में मेल नहीं पड़ेगा। इसलिए हर आदमी दुखी जीता है।

दूर की तो बात छोड़ दें, अपने निकटतम लोग भी राजी नहीं होते कि उसकी प्रतिमा है, जो वह समझता है। लोग एक-दूसरे से कहते हैं।। तुमने मुझे क्या समझ रखा है! अड़चन आ रही है प्रतिमाओं में।

मेरे एक प्रिंसिपल थे, मुझे पढ़ाते थे। काली के भक्त थे। और पूरे युनिवर्सिटी में बदनामी थी कि दिमाग उनका थोड़ा ढीला है। उनका खयाल था कि वह परम भक्त हैं और सबका खयाल था कि उनका दिमाग ढीला है। मैं उनके घर पहली दफा गया था तो उस वक्त वह वह पूजा कर रहे थे। उनकी पत्नी ने दरवाजा खोला और मुझसे कहा कि आप चुपचाप बैठ जाएं। अगर उन्होंने देख लिया कि कोई मिलनेवाला आया तो वह और जोर से पूजा करते हैं देर तक पूजा करते हैं। यह पत्नी के मन में प्रतिमा है! कि आप बिल्कुल चुपचाप बैठ जाएं, अगर उन्हें पता चल जाए कि कोई मिलने आया है तो फिर पूजा में बहुत देर लग जाती है।

मैं तो उनको जानता नहीं था तब तक। मगर उनकी पत्नी से पहले ही उनकी प्रतिमा मुझे खबर मिली। तो मैंने सोचा कि चलो, प्रयोग करें। वह निकलकर बाहर आए तो मैंने उनसे कहा, आप जैसा भक्त मैंने कभी नहीं

देखा। उन्होंने मुझे छाती से लगा लिया और कहा कि इस पूरी पृथ्वी पर तुम अकेले आदमी समझनेवाले मुझे मिले। अकेले, तुम एक अकेले आमदी। आज तक तुझे कोई समझ ही नहीं सका। यह उनके की प्रतिमा से मेल खा गई।

उनकी पत्नी देख रही थी और जब मैं निकल रहा था बाहर उनसे मिल कर, क्योंकि उन्होंने मुझे घंटे-डेढ़ घंटे रोका, कई बार मैंने कहा, मैं जाऊं, लेकिन वह जो आमदी पृथ्वी पर अकेला हो उसको वह इतनी जल्दी छोड़ने वाले नहीं थे। मुझे खाना खिलाया और दो वर्ष तक युनिवर्सिटी में उन्होंने मेरी फिक्र की जिसका कोई की जिसका कोई हिसाब नहीं। जब मैं बाहर निकल रहा था, तो उनकी पत्नी ने कहा कि अगर तुम जैसे व्यक्ति उन्हें मिल जाएं तो उनको पागलखाने जाना पड़ेगा। तो मैंने क्या कह दिया उनको? क्या उनसे ऐसी बात कहनी चाहिए थी? उनके भीतर वह यह जो भजन-किर्तन कर रहे हैं रोज सुबह, एक और प्रतिमा है। जो देख रहे हैं उनको व्यवहार को, जो उनके व्यवहार से ही संबंधित हैं।। और तो उनके भीतर का किसी से क्या संबंध हो सकता है।। उनके मन में दूसरी प्रतिमा है। इन दोनों प्रतिमाओं में सदा कलह है।

मैं क्या नहीं हूं, इसे ठीक से जान लेना जरूरी है। बड़ा कठोर प्रयास है यह क्योंकि अपनी ही खाल को जैसे छीलना है। जो-जो मैंने अपने को मान रखा है, पाऊंगा कि वह-वह मैं नहीं हूं।

यह ऋषि कहता है, जाग्रत में जो भी तुमने किया है, जो भी तुम समझते हो, वह तुम नहीं हो। फिर वह कहता है, स्वप्न में भी तुमने जो-जो किया है और सपने जो-जो तुमने देखे हैं, वह भी तुम नहीं हो। जब जाग्रत ही तुम नहीं हो तो तुम्हारे स्वप्न क्या तुम होओगे! और गहरे में जाता है और कहता है सुषुप्ति में भी बीजरूप में तुमने जो वासनाएं निर्मित की हैं, जिनका फैलाव स्वप्न में और जाग्रत में होता है।। सुषुप्ति में जड़ें हैं, स्वप्न में वृक्ष हैं, जाग्रत में फूल आ जाते हैं।। वह बीज भी, वह जड़ें भी तुम नहीं हो। ये तीनों तुम नहीं हो।

अगर हम इन तीनों को काट दें तो शून्य हाथ लगेगा। अगर मैं अपने जाग्रत के सब कर्मों को काट दूं, सब प्रतिमाएं तोड़ दूं, स्वप्न में सब विचारों को काट दूं, स्वप्न की सब प्रतिमाओं को तोड़ दूं, सुषुप्ति के सब बीज जो मुझे प्रतिमाएं तोड़ दूं, स्वप्न में सब विचारों को काट दूं, स्वप्न की सब प्रतिमाओं को तोड़ दूं, सुषुप्ति के सब बीज जो मुझे भी पता नहीं है, जिनका मुझे भी खयाल नहीं हैं है कि कहां छिपे हैं, उनको भी इनकार कर दूं, तो मेरे पास क्या बच रहता है? एक शून्य। मैं फिर क्या हूं? फिर मैं एक शून्य रह जाता हूं। इस शून्य से गुजरना पड़े तब वह शिखर प्रगट होगा जो मैं हूं। उस शिखर की इसमें चर्चा है।।

"जिस परब्रह्म का कभी नाश नहीं होता, जो सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्म है, जो संसार के समस्त कार्य और कारण का आधारभूत है, जो सब भूतों का आत्मा है, वही तुम हो। तुम वही हो।"

यह पहली विधायक घोषणा है। इस शून्य में जो प्रकट होगा, इस शून्य की अटल खाई में जो शिखर उभरेगा, एक गहन अंधकार के पार जो प्रकाश के सूर्य का उदय होगा, वही ब्रह्म है। वह वही मूल अस्तित्व है जो सदा से है, सदा रहेगा। वही मूल सागर है जिसमें सब लहरें उठी हैं और गिरी हैं। आईं और गईं। अच्छा था और बुरा था। राम थे और रावण थे। साधु आर असाधु थे। सुख थे और दुख थे। सफलताएं थीं, असफलाएं थीं, सिंहासन थे और सड़क पर भिखारियों के भिखापात्र थे, वे लहरें उठी और गईं। लेकिन जिस सागर से वे लहरें उठी थीं, वही तुम हो। उस मूल का, उस अस्तित्व का, उस गहनतम आत्यंतिक का, आधारभूत का अनुभव हो।

अनुभव नहीं है तुम्हारा, तुम ही नहीं हो।

यहीं थोड़ा ठीक खयाल में लेना जरूरी है। जगत में बाकी सब चीजें हमारा अनुभव हैं। और जहां तक अनुभव है, वहां तक उसका पता नहीं चलेगा अनुभव हो रहा है। अनुभव और अनुभोक्ता अलग हैं। मैंने सुख

जाना, सुख मैं नहीं हूं। क्योंकि सुख मैंने जाना। और जो जान रहा है, वह अलग हो गया। मैं जानने वाला हुआ। सुख कहीं मुझसे बाहर हुआ, जो मुझे मिला। मेरे हाथ में आपने संपत्ति दे दी, वह संपत्ति मैं नहीं हूं। हाथ है मेरा, जिसमें संपत्ति है। कल किसी ने भिक्षापात्र दे दिया। वह भिक्षापात्र मैं नहीं हूं। मै तो वह हूं, जिसके हाथ में भिक्षापात्र है। कभी सुख मेरे हाथ में है, कभी दुख। कभी सफलता, कभी असफलता, कभी जागरण मेरे हाथ में है, कभी सुषुप्ति। कभी स्वप्नों से घिरा हूं मैं और कभी स्वप्नभंगों से। लेकिन कोई भी मैं नहीं हूं। अनुभव मैं नहीं हूं। इसमें थोड़ी कठिनाई होगी। कोई भी अनुभव मैं नहीं हूं। अगर परमात्मा का भी अनुभव हो कि परमात्मा अलग खड़ा है और मैं अलग खड़ा हूं, तो वह भी मै नहीं हूं। क्योंकि मैं फिर पार रह जाता हूं।

यह ऋषि कहता है कि जो सब अनुभवों का कारणभूत है और जो सब अनुभवों का साक्षी है और जो सभी अनुभवों का अनुभोक्ता है, वही परब्रह्म तुम हो। परब्रह्म का अर्थ होता है : जो सदा ही पार है। जहां-जहां तुम कहोगे यहां, वहां से पार होता है। जहां-जहां तुम हाथ रख कर कहोगे कि यह, वहीं से छिटक जाएगा। उसे वहां कभी ऑब्जेक्टिव, वस्तु की तरह नहीं पकड़ा जा सकेगा। कभी तुम उसपर हाथ रख कर न कह सकोगे कि यह। क्योंकि वह सदा वही है जो हाथ रख रहा है। वह पार हो जात है इसलिए उसे परब्रह्म कहा है।

इसलिए ध्यान रखना, भारतीय मनीषा बहुत सोच-समझ कर शब्दों का प्रयोग करती है। ब्रह्म उसे कहती है जो तुम्हारा अनुभव है। परब्रह्म उसे कहती है जो तुम हो। तो ब्रह्म भी तुम्हारा अनुभव है। तो अगर कोई आदमी ब्रह्मवादी है, तो अभी भी वादी है और अभी भी विचार के पार नहीं गया है। बहुत सुक्ष्म विचार में चला गया है, लेकिन पार नहीं गया है, बहुत गहन विचार में चला गया है, लेकिन अभी भी गहनमत में नहीं गया है। सूक्ष्म में चला गया है, लेकिन सूक्ष्म के भी पार... ।

इसलिए सूत्र कहता है, जो सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्म। और यह भाषा के लिहाज से बिल्कुल गलत है। क्योंकि जब सूक्ष्मतम कह दिया तो अब उससे और सूक्ष्म क्या होगा? नहीं तो सूक्ष्मतम का कोई अर्थ नहीं रहा। सूक्ष्मतम का मतलब ही कि अब इससे ज्यादा सूक्ष्म नहीं होता। लेकिन ऋषि कहता है, जिससे ज्यादा सूक्ष्म नहीं होता, वही हो। सुक्ष्मतम से भी सूक्ष्म का मतलब है कि जहां तुम्हारे सूक्ष्म का अनुभव भी चुक जाए। जहां तुम आखिरी जगह आ जाओ। और कहो कि अब इसको न स्थूल कह सकते हैं, न सूक्ष्म। जहां बात इतने पार लिकल जाए कि तुम अलग ही न रहा जाओ अनुभव से। इसलिए उसे परब्रह्म कहा है। वही तुम हो।

लेकिन इसको दोहराया है, और बड़े, बड़े प्रयोजन से दोहराया है।

दो शब्द उपयोग किए हैं। वही तुम हो, तुम वही हो। वही तुम हो का अर्थ हुआ : परब्रह्म तुम हो। दूसरे का अर्थ हुआ : तुम वही हो।। तुम परब्रह्म हो। ऐसा दोहराने का प्रयोजन है और कारण है। हम कह सकते हैं लहर से कि सागर तुम हो। लहर में सागर है। लेकिन यह एक बात हुई, एक पहलू हुआ। और लहर से यह कहना कि तुम ही सागर हो, बड़ी दूसरी बात है।

कबीर के एक पद में यह साफ है। कबीर ने कहा है, खोजते-खोजते मैं खो गया। हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ... खोजता था, खोजने निकला था और खो गया... बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाय... बूंद सागर में गिर गई और बूंद सागर में खो गई, उसे अब वापस कैसे पाया जाए! यह कबीर का पहला सूत्र है। लेकिन कबीर ने दूसरे सूत्र में बात उलट दी। और तत्काल दूसरा सूत्र लिखा। और सूत्र में लिखा।। हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ, समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाय! और बूंद सागर में गिर गई थी तो कभी खोजी भी जा सकती थी। अब तो और भी मुश्किल हो गई, यह तो सागर ही बूंद में गिर गया और अब तो खोजने का कोई उपाय भी न रहा।

बूंद अगर सागर में गिर गई हो तो खोजी भी जा सकती है। बड़ी छोटी चीज है, माना मुश्किल पड़ेगी, कठिनाई होगी, फिर भी, फिर भी खोजते-खोजते किसी दिन बूंद मिल सकती है कि यह रही। लेकिन, अगर बूंद में सागर गिर जाए, तो खोज का उपाय ही न रहा। कैसे खोजिएगा? सब कल्पना भूमिसात हो जाती है। सब विचार चकनाचूर हो जाते हैं। बूंद में सागर का गिरना विचार की सीमा के पार चला जाता है। बूंद का सागर में गिरना विचार के सीमा के पार नहीं जाता। बूंद तो सागर में रोज गिरती ही है। लेकिन ध्यान रहे, बूंद सागर में गिरती है और फिर वाष्पीभूत हो जाती है; फिर बनती है, फिर गिरती है। एक चक्र है। तो बूंद गिरती रहती है सागर में, बनती रहती है, पुनः-पुनः निर्मित होती रहती है, पुनः-पुनः गिरती रहती है। लेकिन बूंद अगर सागर में गिरे तो वापिस लौट आती है। लेकिन कभी जब सागर बूंद में गिर जाता है... ऐसी कोई घटना भौतिक जगत में कोई घटती नहीं जब तक सागर बूंद में गिरता है, लेकिन इस आत्मिक जगत में घटती है। ऐसा नहीं है कि आप जाकर परमात्मा से मिल जाते हैं, बल्कि ऐसा है कि परमात्मा आकर आपसे मिल जाता हे। सिर्फ बूंद तैयार भर होती है; तब तक बूंद रहती है। जिस दिन तैयार हो जाती है उस दिन सागर गिर पड़ता है। फिर बूंद का कहां खोजिएगा? सागर गिर पड़े बूंद पर, फिर बूंद को कहां खोजिएगा? इसलिए दोहरा सूत्र है।

"वही तुम हो, तुम वही हो।"

इस दोहरे सूत्र के और आयाम भी हैं। जब हम कहते हैं।। परमात्मा तुम हो, तो इसमें परमात्मा की स्वीकृति है, तुम्हारी नहीं। लेकिन जब कहते हैं।। तुम परमात्मा हो, तब तुम्हारी भी पूरी-की-पूरी स्वीकृति है। यह तो बहुत आसान है कहना कि परमात्मा सबके भीतर हे, यह कहना बहुत कठिन है कि सब परमात्मा है। इनके आयाम अलग हैं।

जब हम कहते हैं परमात्मा सबके भीतर है, तो कोई एतराज नहीं होता। कोई एतराज नहीं होता कि ठीक है? लेकिन अगर हम यह कहें कि सब परमात्मा है, तो मन पच्चीस एतराज खड़े करने लगेगा कि वह आदमी भी परमात्मा है जो गाली दे रहा था! परसों पत्थर मार गया था! वह आदमी भी परमात्मा है! सबमें परमात्मा छिपा है, सबमें परमात्मा है, इसमें अड़चन नहीं होती। क्योंकि परमात्मा को हम अलग तत्व मान लेते हैं और व्यक्ति को अलग। तो सारी बुराइयां व्यक्ति पर डाल देते हैं और सारी भलाइयां परमात्मा पर। इसमें विभाजन का उपाय है।

हम कह सकते हैं कि बुरे से बुरे आदमी में भी परमात्मा है। और कोई अड़चन नहीं है इसमें कोई हमारे मन को दुविधा नहीं घेरती, कोई शंका नहीं पकड़ती। फिर ठीक है। बुरे से बुरे आदमी में परमात्मा है, छिपा पड़ा है और इससे बुराई का परमात्मा सें संबंध नहीं जुड़ता; परमात्मा अलग रह जाता है, यह बुरा आदमी एक पर्त की तरह अलग रह जाता है। और हम नहीं जानते कि बुराई की अपनी सारी पर्त काट डालेगा, तो ठीक है, परमात्मा प्रकट हो जाएगा।

लेकिन हम कहते हैं कि तुम परमात्मा हो, तो हम सर्व-स्वीकार कर लेते हैं। यह बड़ी क्रांतिकारी घोषणा है। क्योंकि इसमें हम कुछ छोड़ते ही नहीं, बांटते ही नहीं। हम यह नहीं कहते कि बुरा आदमी अपने भीतर ही किसी अंश में परमात्मा है। हम यह कहते हैं।। वह जो भी है। यहां हम बुराई को भी आत्मसात कर लेते हैं। और हमने कभी खयाल नहीं किया कि अगर एक आदमी के भीतर परमात्मा है और फिर भी वह बुरा है, तो यह परमात्मा की निर्वीर्यता सिद्ध होगी। हमने कभी इसका खयाल नहीं किया। हम कहते हैं, बुरा आदमी; फिर भी उसके भीतर परमात्मा है, हालांकि वह बुरा है। बुराई उसके बाहर है, भीतर परमात्मा छिपा है। लेकिन अगर भीतर परमात्मा है, किसी भी स्थिती में, तो यह बुराई बलशाली मालूम पड़ती है। परमात्मा से भी ज्यादा

बलशाली मालूम पड़ती है। तो अच्छा यह हो कि कहो कि यह आदमी बुरा है और उसके भीतर कोई परमात्मा नहीं है। एक तो यह उपाय है, जो कि वस्तुतः हमारी स्थिति है।

यह हमारे कहने की बात है कि भीतर परमात्मा है। यह सिर्फ शब्द है। इसमें हमारी कोई प्रतीति नहीं है। क्योंकि जब आप दुश्मन की हत्या करने जाओगे तो कहा छुरा मारोगे, परमात्मा को बचाकर? कि जब आप गाली दोगे एक बुरे आदमी को तो इस गाली में ऐसा कोई उपाय रखोगे कि परमात्मा को छोड़ कर, जो भीतर है? गाली पूरी जाएगी वह भीतर-वीतर के परमात्मा को बिल्कुल नहीं मानेगी। न कहीं अंग में स्वीकार करगी। पूरे आदमी को गाली दी जाती है। पूरा आदमी दंडित किया जाता है। पूरा आदमी। और भीतर का परमात्मा केवल शाब्दिक औपचारिकता रह जाती है।

नैतिक आदमी इस तरह की बातें कहते रहते हैं। नैतिक आदमी कहते हैं बुराई को मिटाना है, बुरे आदमी को नहीं। आदमी तो अच्छा है, भीतर बुराई को मिटाना है। बुराई का दंडित करना है, बुरे आदमी को नहीं। लेकिन आदमी इकट्ठा है, समग्र है। दंडित होगा तो पूरा, पुरस्कृत होगा तो पूरा; मरेगा तो पूरा, जिएगा तो पूरा। विभाजन कहां है?

तो एक तो उपाय यह है कि हम मानें कि भीतर कोई परमात्मा नहीं हैं, बुराई-बुराई का घर है आदमी। यही हम मानते हैं। परमात्मा भीतर है, वह केवल शाब्दिक है और झूठ है। वह हमारी प्रतीति नहीं है। जिस दिन हमें प्रतीति होगी, यह दूसरी प्रतीति होगी। क्योंकि उस दिन हम कहेंगे यह पूरा आदमी परमात्मा है। उसकी सब बुराइयों समेत।

लेकिन ध्यान रहे, अगर मैं किसी आदमी को उसकी बुराइयों समेत परमात्मा देख लूं तो मेरे लिए उसकी बुराइयां तिरोहित हो जाती हैं। क्योंकि संभव ही नहीं रह जाता। यह संभव ही नहीं रहा जाता। जैसे ही मुझे यह प्रतीति हो जाए कि वह पूरा का पूरा परमात्मा है, तब उसकी बुराई भी भलाई रूप ले लेती है। तब उसकी बुराई भी आलोकित हो जाती है, आभामंडित हो जाती है। तब मैं जानता हूं कि वह जो भी कर रहा होगा, ठीक ही कर रहा होगा। क्योंकि ठीक भीतर है।

"वही तुम हो, तुम वही हो।" यह समग्रीभूत कोई चीज छूट न जाए, इसलिए ऋषि ने दोहराया है। दोनों तरफ से दोहराया है। सब भांति, सर्वभाव से तुम परमात्मा हो। ऐसा अगर कोई दूसरे में देख पाए तो उसका जीवन के प्रति सारा दृष्टिकोण बदल जाता है।

लेकिन ध्यान रहे, ऐसा लोग स्वयं में देखना चाहते हैं, दूसरे में नहीं देखना चाहते हैं। इसको मानने को कोई भी तैयार हो जाएगा कि मैं परमात्मा हूं; दूसरा परमात्मा है, इतना मानने को तैयार नहीं हो पाता। लेकिन यह ध्यान रहे, जो दूसरे को मानने को तैयार नहीं है, वह स्वयं को भी कितना ही कहे, मान नहीं सकता है। दूसरे को मानकर ही उसकी गहराई बढ़ती है स्वयं के प्रति।

कभी एकाध दिन ऐसा प्रयोग करें। चौबीस घंटे के लिए एक व्रत ले लें। बहुत तरह के व्रत लेते हैं लोग। चौबीस घंटे भूखे रहेंगे।। फिर भूखे ही रह पाते हैं, और कुछ होता नहीं। कि चौबीस घंटे घी न खाएंगे।। न घी खाया तो क्या फक्र पड़ता है? कि चौबीस घंटे यह न करेंगे। मैं एक व्रत आपको कहता हूं। चौबीस घंटे एक व्रत ले लें चौबीस घंटे जो भी मिलेगा उसको पूरी तरह परमात्मा मानकर चलेंगे। जो भी होगा उसको पूरा परमात्मा देखेंगे। कोई हिस्सा न काटेंगे। चौबीस घंटे। ओर आपकी जिंदगी दुबारा वही नहीं हो सकेगी। व्रत तो वही है जिसके पार जिंदगी फिर दुबारा वापस न हो सके। अन्यथा व्रत का मतलब!

चौबीस घंटे खाना नहीं खाया। चौबीस घंटे के बाद दुगुना खा लिया। और आदमी वहीं का वहीं रहेगा। बल्कि बदतर हो सकता है। बदतर इसलिए हो सकता है कि अब यह और खयाल में आ गया कि व्रत भी कर बैठे। व्रत भी हो गया। अब यह और एक उपद्रव पीछे लग गया। भूखे क्या रहे, अहंकार का पेट भर गया। शरीर को भूखा मारा, अहंकार का पेट भर लिया।

चौबीस घंटे का एक व्रत लेकर देखें कि चौबीस घंटे में अस्वीकार करेंगे ही नहीं, किसी चीज को बुरा कहेंगे ही नहीं। परमात्मा ही देखे चले जाएंगे। बड़ी घबड़ाहट लगेगी कि इसमें तो लुट जाएंगे। पता नहीं कोई आदमी आकर मारपीट करने लगे, फिर क्या करेंगे? और डर लगेगा, क्योंकि कई को इस हालत में कर दिया है कि आपकी मारपीट करें। कई को लूटा है। इसलिए डर लगेगा कि ऐसा मौका वे लोग न छोड़ेंगे। अगर किसी को ऐसा पता चल गया कि चौबीस घंटे के लिए व्रत लिया है इस आदमी ने कि परमात्मा ही देखेंगे, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।

धर्म अभय में छलांग है। और व्रत अभय का प्रयोग है। भूखे मरने में कोई बड़ा अभय नहीं है। और जिनको ज्यादा खाने-पीने को मिला हुआ है, उनके लिए तो लाभ है, नुकसान जरा भी नहीं है। इसलिए मजे की बात है कि सिर्फ ज्यादा खाने-पीने वाले समाज ही उपवास को व्रत मानते हैं। गरीब लोगों के समाज कभी भी उपवास को व्रत नहीं मानते हैं। अगर गरीब आदमी का समाज व्रत भी करता है तो उस दिन मिष्ठान्न खाता है। सिर्फ अमीरों के समाज व्रत में निराहर रहते हैं। गरीब आदमी का धार्मिक दिन आता है, तो उत्सव मनाता है खाकर। अमीर धार्मिक का दिन आता है, तो उत्सव मानता है भूखा रह कर। यह बिल्कुल व्यवस्थित बातें है। ठीक अर्थशास्त्र से संबंधित। इनका धर्म से कोई लेना-देना नहीं। अमीर आदमी खा-खा कर परेशान है, उपवास उसको राहत देता है। गरीब आदमी भूखा रह-रहकर परेशान है, रोज तो ठीक से नहीं खा सकता, धार्मिक उत्सव के दिन ठीक से खा लेता है। इनका धर्म से कोई संबंध नहीं है, अर्थ से संबंध है।

इसलिए भारत में जैनों के पास एक समृद्ध समाज है तो भूखा रहना, उपवास रखना इत्यादि उनके धार्मिक कृत्य हैं। गरीब आदमी का समाज इनको धार्मिक कृत्य नहीं मान सकता। धर्म का दिन तो उत्सव का दिन है। क्योंकि पूरी जिंदगी तो गैर-उत्सव से भरी है। भूख से भरी है। अब धार्मिक दिन को और भूख से मरने में क्या प्रयोजन है! और फिर कोई भेद भी नहीं मालूम पड़ेगा। ऐसे ही भूखे हैं। ऐसे ही उपवास चल रहा है। ऐसे ही एकाशन में बैठे हुए हैं। अब और एकाशन क्या अर्थ लाएगा? इससे विपरीत चाहिए। स्वाद बदलने के लिए विपरीत अच्छा भी है। लेकिन धर्म से उसका कोई लेना-देना नहीं है।

ऐसा कुछ व्रत जिसके पार आप दुबारा वही आदमी न हो सकें। अगर चौबीस घंटे आपने परमात्मा देख लिया तो फिर आप दुबारा भूल न करेंगे कुछ और देखने की। क्योंकि इस चौबीस घंटे में जितनी आनंद की वर्षा आपके जीवन पर हो जाएगी, वह फिर आपको खींचेगा। बूंद में सागर के गिरने का अर्थ यही है। मैं बूंद हूं, मेरे चारों तरफ जो मौजूद है वह सागर है। जिस दिन मैं उसमें परमात्मा देखा पाऊंगका उस दिन मेरे हृदय के द्वार उसके लिए खुल पाएंगे। उस दिन सागर बूंद में गिर सकता है।

लेकिन धार्मिक आदमी अक्सर बूंद की तरह सागर की खोज पर निकलता है, अब कि सागर यहीं मौजूद है। धार्मिक आदमी कहता है कि ईश्वर की खोज पर जा रहे हैं। और ईश्वर यहीं मौजूद है। ज्यादा बेहतर होता कि ईश्वर की खोज पर न जाते, हृदय के द्वार खोलते, ताकि ईश्वर गिर सके। मगर हृदय के द्वार बंद हैं और हिमालय की यात्रा चल रही है। मक्का और मदीना और काशी की यात्रा चल रही है। और हृदय के द्वार बंद हैं। कहीं भी

घूम आओ, बूंद अगर चारों तरफ से अपने को बंद किए है, सागर उसमें नहीं गिर सकता। और बूंद अगर अपने को चारो तरफ से बंद किए तो सागर के पास पहुंच जाए तो भी गिरने की हिम्मत नहीं जुटा सकती।

इसलिए दोनों बातें ऋषि ने कही हैं।। वही तुम हो, तुम वही हो। "जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में जो मायिक-प्रपंच दिखाई देते हैं, वे सब ब्रह्म द्वारा ही प्रकाशित होते हैं।" मायिक-प्रपंच भी ब्रह्म द्वारा ही प्रकाशित होते हैं। वह जो एक आदमी चोरी करने चला जा रहा है, वह ब्रह्म द्वारा ही चोरी करने चला जा रहा है। वह जो एक आदमी हत्या कर रहा है, वह ब्रह्म द्वारा ही हत्या कर रहा है। बहुत कठिन है! बहुत मुश्किल है! धर्म के दुरूह होने का कारण धर्म नहीं है। धर्म के दुरूह होने का कारण हमारी नैतिक मान्यताएं है। उनकी वजह से धर्म बिल्कुल ही बेबूझ हो जाता है। यह भी क्या बात हुई कि आदमी चोरी करने चला जा रहा है, ब्रह्म से ही आलोकित है! ब्रह्म ही चोरी करने चला जा रहा है!

और चोरी, तो हमारी नैतिक धारणा चोरी के संबंध में है, वह धारणा बाधा बनेगी। वह कहेगी, यह नहीं हो सकता। साधु में देख लें हम ब्रह्म को, चोर में कैसे देखेंगे? ईमानदार में देख भी लें, बेईमान में कैसे देखेंगे? मित्र में देख भी ले, शत्रु में कैसे देखेंगे? लेकिन जब तक शत्रु में न दिख जाए तब तक मित्र में भी औपचारिक है। वह जो दिखाई पड़ रहा है साधु में, वह झूठा है। क्योंकि जब तक अंधेरे में भी प्रकाश दिखाई न पड़ने लगे, तब तक प्रकाश में जो दिखाई पड़ रहा है वह बाह्य है। जब अंधेरे में भी प्रकाश दिखाई पड़ने लग जाता तो प्रकाश भीतरी हो जाता है। उसका मतलब है प्रकाश अब मेरे भीतर है। अब जहां भी मैं देखूंगा वहां प्रकाश दिखाई पड़ेगा।

जिस दिन भीतर ब्रह्म का आवास हो जाता है, अनुभव हो जाता है, उस दिन जहां भी आंख डालूंगा वहां ब्रह्म दिखाई पड़ेगा। क्योंकि प्रकाश अब मेरे भीतर है। अगर अंधेरे पर भी मेरा प्रकाश पड़ेगा तो अंधेरे में ही मुझे प्रकाश दिखाई पड़ेगा। जो जब तक बुरे में भी ब्रह्म दिखाई न पड़ने लगे तब तक ब्रह्म भीतर दिखाई ही न पड़ा है, ऐसा जानना। साधु में तो बिल्कुल आसान है। आसान है, क्योंकि कोई बाधा ही पैदा नहीं कर रहा है। आपको देखने के लिए। हालांकि आप कोशिश जरूर करोगे कि कोई बाधा मिल जाए, पता चल जाए। पता चल जाए कुछ ऐसा कि मानना आसान हो जाए कि परमात्मा इसमें नहीं है। हम इतनी कोशिश में रहते हैं, इतनी कोशिश में रहते हैं इस बात को जानने की कि पता चल जाए कि साधु में असाधु है।

उसका कारण क्या है?

उसका कारण क्या है, उसका कारण एक है, ताकि परमात्मा देखने की झंझट से हम बच जाएं। यह हर आदमी तलाश में लगा हुआ है कि पता चल जाए कि यह साधु कहीं कपड़ों में छिपाए एकाध रुपय का नोट तो नहीं रखे हुए है। रखे जरूर होगा, ऐसी हमारी भीतरी मान्यता है। कहीं न कहीं छिपा रखा होगा, कहीं-न-कहीं किसी बैंक में जमा कर रखा होगा। क्योंकि बिना रुपये के आदमी जीएगा कैसे! जिससे हम जीते हैं, उससे ही यह भी जीता होगा, पता नहीं है अभी। हमारे मन में धारणा रहती है कि साधु-असाधु में जो फर्क है, वह इतना ही है कि असाधु का खुल गया मामला और साधु का अभी खुला नहीं है। बस इतना ही फर्क है हमारे में। जब तक नहीं खुला है। तब तक मजबूरी में मानते चले जाएंगे कि ठीक है। लेकिन कभी तो खुलेगा, इसकी आशा भी रखेंगे। उसका उपाय भी करेंगे।

एक मित्र ने मुझे पत्र लिखा था, राजस्थान से, कि एक आदमी को मैंने दस वर्ष तक परमात्मा की तरह माना और फिर एक दिन देखा कि वह क्रोध में आ गए। तो मेरी सारी आस्था मिट गई। मिट्टी हो गई। और अब

मेरी हालत देसी हो गई है कि अब मैं किसी को भी परमात्मा, किसी में भी परमात्मा नहीं देख सकता। क्योंकि मैं जानता हूं कि कभी न कभी, कुछ न कुछ गड़बड़ होगी। और फिर सब मामला खराब हो जाएगा।

मैंने उन मित्र को खबर पहुंचाई कि दस साल उस आदमी ने क्रोध नहीं किया, दस साल में एक बार उस आदमी ने क्रोध किया तो दस साल का अक्रोध एक क्षण के क्रोध से समाप्त, नष्ट हो गया। तुम जरूर क्रोध की तलाश में थे। दस साल का अक्रोध! हजार परमात्मा था वह आदमी, एक इंच सिद्ध हो गया कि परमात्मा नहीं है, तो हजार इंच बेकार हो गया? तुमने यह भी लौटकर न सोचा कि जब किसी आदमी में हम क्रोध देखते हैं तो जरूरी नहीं है कि वह क्रोधित हो ही। हमारा देखना भी जिम्मेवारी हो सकता है। लेकिन यह खयाल न आया कि यह मेरी धारणा हे कि परमात्मा क्रोध नहीं कर सकता। यह मेरी धारण टूटनी चाहिए थी। लेकिन परमात्मा टूट गया, धारण न टूटी! धारणा यह थी कि परमात्मा क्रोध नहीं कर सकता; और परमात्मा ने क्रोध किया। तो धारणा न टूटी, परमात्मा टूट गया। धारणा ज्यादा कीमती चीज थी... मेरी धारण थी! परमात्मा तुम थे, धारण मेरी थी। तुम टूटोगे, मैं नहीं टूट सकता हूं।

मैंने खबर भिजवाई कि तुम एक बार फिर सोचना। तुमसे किसने कहा कि परमात्मा क्रोध नहीं कर सकेगा? किसने तय किया तुम्हारे लिए कि परमात्मा क्रोध नहीं कर सकेगा? कैसे तुमने जाना कि परमात्मा क्रोध नही कर सकेगा? धारणा है तुम्हारी। इतना जरूर है कि अगर तुम किसी में परमात्मा देखोगे तो उसका क्रोध तुम्हें क्रोध दिखाई नहीं पड़ेगा।

यह पक्का नहीं है कि महावीर ने क्रोध या नहीं किया, यह पक्का है कि जिन्होंने महावीर को परमात्मा जाना, उन्हें उनका क्रोध दिखाई नहीं पड़ा। किया या नहीं किया, इसका कोई पक्का नहीं है। क्योंकि दूसरे को दिखाई पड़ता है। गोशालक का दिखाई पड़ता है कि महावीर क्रोधी हैं। महावीर के भक्तों को दिखाई नहीं पड़ता। कृष्ण के भक्तों को दिखाई नहीं पड़ता कि कृष्ण क्रोधी हैं। लेकिन कृष्ण के विरोधियों को दिखाई पड़ता है कि वक्त पर यह आदमी सुदर्शन निकाल कर खड़ा हो गया था। तब सब असलियत पता चल गई कि यह आदमी क्रोधित होता है। खतम हो गई बात! कैसा परमात्मा! लेकिन सुदर्शन निकाल कर खड़ा हुआ कृष्ण भी, जिसको उसमें परमात्मा दिखाई पड़ रहा था उसको कोई क्रोध नहीं दिखाई पड़ा। उसको लीला दिखाई पड़ी। उसको रहस्य दिखाई पड़ा।

बल्कि सच तो यह है कि अगर सुदर्शन निकाल कर खड़े न होते, तो जिसने कृष्ण को प्रेम किया है वह कृष्ण को भी पूर्ण अवतार न कह पाता। वह पूर्ण कहा ही जा सका इसीलिए कि यह आदमी इतना पूर्ण है कि इसमें दोनों चीजें मौजूद हैं। यह अधूरा, खंडित नहीं नहीं है। इसमें भी है तो अपने पूरे शिखर पर। इसमें बुराई भी है तो अपनी पूरी नीचाई में। यह दोंनो एक-साथ है। इतना संतुलित है, इसीलिए यह पूर्ण है।

इसलिए हिंदू मन को लगा कि कृष्ण पूर्ण अवतार हैं। राम भी उतने पूर्ण नहीं। क्योंकि राम भलाई की तरफ जरा ज्यादा झुके हुए हैं। संतुलन पूरा नहीं है। ज्यादा भले हैं। संतुलित नहीं है। राम का व्यक्तित्व संतुलित नहीं। संयमी है, संतुलित नहीं है। क्योंकि संतुलन तो बुराई से होगा। कृष्ण का व्यक्तित्व बिल्कुल संतुलित है। दोनों तराजू एक सीध में आ गऐ, दोनों तराजू के पलड़े एक सीध में खड़े हो गए, कांटा खबर देता है कि पूर्ण है। बिल्कुल संतुलित है। यह भक्त को दिखाई पड़ा। गैर-भक्त को यह दिखाई पड़ा कि वह जो सुदर्शन ले लिया, उसमें एक पलड़े को जमीन पर लगा दिया, बात सब नष्ट हो गई।

यह कहना मुश्किल है कि परमात्मा क्रोध करता है या नहीं करता है, यह कहना बिल्कुल पक्का है कि जो परमात्मा कहीं भी देख ले, उसको क्रोध दिखाई नहीं पड़ता हैं। और मजा यह है कि यह सवाल ही महत्वपूर्ण

नहीं है कि कृष्ण ने क्रोध ने क्रोध किया या नहीं किया, महत्वपूर्ण यह है कि कोई आदमी देख पाया परमात्मा कृष्ण में। यह महत्वपूर्ण है। यह घटना महत्वपूर्ण है। यह घटना क्रांतिकारी है।

कृष्ण भगवान हैं या नही, यह दो कौडी की बात है। इसका हिसाब नासमझ लगाने बैठते है। लेकिन कोई देख पाया, वह रूपांतरित हो गया। वह देखने से रूपांतरित हो गया। कृष्ण के होने, न होने का सवाल ही गौण है। पत्थर को भी कोई देख पाए कि परमात्मा है, तो रूपांतरण हो जाता है।

सारा मायिक प्रपंच, सारी माया भी उसी ब्रह्म से प्रकाशित है। और वह ब्रह्म मैं ही हूं। यह बहुत मजेदार है बात। यह सारा मायिक प्रपंच।। यह चोरी करने जा रहा है, यह कामी कामना के वश अंधा होकर दौड़ रहा, यह धन का लोभी धन के ढेर पर सांप बन कर बैठ गया, यह सब मायिक प्रपंच ब्रह्म के ही द्वारा प्रकाशित है। और भी अदभुत बात सूत्र में है। "और वह ब्रह्म मैं ही हूं।" यह मैं ही चोर में चोरी करने जा रहा हूं और यह मैं ही लोभी में लोभ, और यह कामी की कामना मैं ही हूं। यह बहुत अदभुत सूत्र है। ऐसी प्रतीति धार्मिक आदमी की प्रतीति है। ऐसा आदमी धार्मिक है।

लेकिन हम जिनको धार्मिक देखते हैं, वे कह रहे हैं कि तुम चोर हो, नरक जाओगे। उनको कभी खयाल नहीं आता कि इसमें नरक मैं ही जाऊंगा। ऐसा खयाल आए तो इतनी निंदा से यह बात कही नहीं जा सकती। इतना रस नहीं लिया जा सकता फिर इसमें।

साधु-संन्यासी बैठे हैं, वह लोगों को समझा रहे हैं कि पापी हो तुम, नरक में पड़ोगे। उन्हें खयाल भी नहीं आता कि उनके भीतर मैं ही पापी हूं। और इनके द्वारा मैं ही नरक में पडूंगा। ऐसा खयाल आए तो धार्मिक व्यक्तित्व पैदा होता हैं।

इस जगत में जो कुछ हो रहा है, उसमें मैं भागीदार हूं। क्योंकि मैं इसका हिस्सा हूं। अगर यहां रावण हुआ है, तो मैं उसके भीतर रावण था। रावण के भीतर मेरा होना अनिवार्य है, क्योंकि मैं जगत में भागीदार हूं, साझीदार हूं। अगर वियतमान में युद्ध हो रहा तो मैं जिम्मेवार हूं। कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ता मेरी जिम्मेवारी। लेकिन जिस दुनिया का मैं हिस्सा हूं इस दुनिया में अगर युद्ध घटित होते हैं, तो मैं जिम्मेवार हूं। अगर यहां हिंदू मुसलमान के दंगे होते हैं, हिंदू मुसलमान काटते हैं, मुसलमान हिंदू को काटते हैं, तो मैं जिम्मेवार हूं। क्योंकि उनके भीतर मैं ही कट रहा हूं। और मैं ही काट रहा हूं।

यह भी समझ लेना आसान है कि ब्रह्म ही चोरी करने जा रहा है। यह समझना और भी मुश्किल है कि मैं ही उसमें चोरी करने जा रहा हूं। ऐसी प्रतीति अदभुत क्रांति ले आएगी। ऐसा खयाल ही आपकी जिंदगी को दूसरा कर जाएगा। वह दृष्टि ही, फिर आप और हो जाएंगे। फिर क्या है बुरा और क्या है भला। और किसकी निंदा और किसकी प्रशंसा। और किसको भेजें नरक और किसको स्वर्ग। क्या करें आयोजन। सब आयोजन गिर जाते हैं। सब व्यवस्थाएं गिर जाती हैं। और ऐसा व्यक्ति अशांत हो सकता है? और ऐसा व्यक्ति तनाव में हो सकता है? और ऐसे व्यक्ति का क्या संताप रहा! ऐसा व्यक्ति ही न रहा। यह अहंकार पर सघनतम चोट है। साधारणतः तो मेरी चोरी को भी मैं नहीं, मान पाता, इसमें दूसरे की चोरी को मेरा मान लिया गया।

साधारणतः तो मैं खुद भी चोरी करता हूं तो भी मैं कहता हूं, परिस्थितिवश। मैं कोई चोर नहीं हूं, परिस्थिति ऐसी थी। पत्नी बीमार पड़ी थी, बच्चा भूखा मर रहा था, नहीं करता चोरी तो क्या करता? ऐसी परिस्थिति तुम्हारी भी होगी तो तुम भी चोरी करोगे। परिस्थिति ऐसी थी कि मैंने चोरी की। मैं चोर नहीं हूं। हम अपनी चोरी को भी अस्वीकार करते हैं। इस सूत्र में दूसरे की चोरी भी स्वीकार कर ली गई। और उसकी भी

चोरी स्वीकार कर ली गई, जिससे सूझ-बूझ में कोई संबंध नजर नहीं आता। हो सकता है उसका मुझे पता भी न हो। हो सकता है उसकी मुझे खबर भी न हो।

फिर भी यह सूत्र कहता है कि उन सबके भीतर मैं हूं। उस सारे मायिक-प्रपंच में जो जो रहा है, वह ब्रह्म का; और वह ब्रह्म मैं ही हूं। यह अहंकार पर सघनतम चोट है। और अगर इस चोट में भी अहंकार बच जाए तो फिर उसके मिटने का कोई उपाय नहीं है। मगर बच नहीं सकता। इस चोट के बाद बचने को कोई उपाय नहीं रह जाता। कभी आपने खयाल किया कि हम दूसरों को चोर कहते है तो हमारे अहंकार को बड़ा रस आता है। जब हम दूसरे को पापी कहते हैं, तो हम जाने-अनजाने पुण्यात्मा हो जाते हैं। जब हम दूसरो की निंदा कहते हैं तो परोक्ष में हम अपनी प्रशंसा करते हैं। इसलिए तो निंदा का इतना रस है।

कवियों ने बहुत रसों की चर्चा की है, लेकिन निंदा के रस के मुकाबले में सब रस बिल्कुल फीके औ बेस्वाद हैं। इसलिए कवि भी कविता कितनी ही करते हों, लेकिन एक-दूसरे कवि की निंदा में जितना रस लेते हैं उतना कविता में नहीं लेते हैं। निंदा ऐसा मौलिक रस है, आधारभूत मालूम पड़ता है। सब काव्य फीके हैं। सब रस साधारण हैं।

कभी आपने खयाल किया कि जब कोई किसी की निंदा करने लगता है तो आपके हृदय में कमल जैसे खिलने लगते हैं और जब कोई किसी की प्रशंसा करने लगता है तो कमले कैसे सिकुड़ने लगते हैं। जब कोई किसी की प्रशंसा करने लगता है तो आप तत्काल डिफेंस में, रक्षा में, खड़े हो जाते हैं। अपनी रक्षा में। अपनी रक्षा का रूप यह होता हैं कि आप यह कहते हैं कि कौन कहता है कि वह आदमी सच्चा है? क्या प्रमाण है कि वह आदमी साधु है? क्या सबूत है? आप तर्क करते हैं, विवाद करते हैं।

कोई कहता है, फलां आदमी चोर है। आपके हृदय के कमल एकदम खिल जाते हैं। द्वार एकदम ग्राहक हो जाता है। रिसेप्टिविटी एकदम बढ़ जाती है। हृदय एकदम स्वीकार कर लेता है। श्रद्धा से आपूरित हो जाते हैं कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं आप, वह तो मुझे पहले ही पता था। न कोई प्रमाण पूछते हैं आप कि किसने कहा कि वह आदमी चोर हैं? कैसे सिद्ध हुआ? जिसने कहा वह झूठा तो नहीं था? इसका कोई पक्का प्रमाण है कि जिसने गवाही दी वह आदमी ईमानदार था खुद? नहीं, अब यह पूछने की कोई भी जरूरत नहीं है। निंदा के साथ हमारी श्रद्धा ऐसी भरपूर हो जाती है।

इसलिए मैं नहीं कहता कि आज ये युग का आदमी अश्रद्धालु है, मैं इतना ही कहता हूं इसकी श्रद्धा के विषय बदल गए हैं, और कुछ नहीं। श्रद्धा पूरी है। कोई कहे कि फलां साधु है तो अश्रद्धा आती है। कोई कहे फलां पापी है, एकदम तुरंत श्रद्धा आती है। श्रद्धा की कोई कमी नहीं है। श्रद्धा पूरी है।

गलत जगह पर श्रद्धा एकदम आती है। उसके कारण हैं, क्योंकि जैसे ही कोई किसी की निंदा करता है, जाने-अनजाने हमारी प्रशंसा करता है। इसलिए तो बहुत कुशल खुशामदखोर हैं, वे आपकी प्रशंसा करने के लिए सबसे अच्छा रास्ता निकालते हैं। आपके पास आकर उनकी निंदा करते हैं जिनके अहंकार के कारण आपके अहंकार को कभी भी कोई तरह ची चोट पहुंचती है। वह कुशलतम खुशामद है। इसमें सीधा वह आपको नहीं कहते कि कि आप महान हैं। वे आपके चारों तरफ जितने हैं उन सबको कहते हैं क्षुद्र हैं और पाप अचानक महान हो जाते हैं।

जो आदमी आपसे सीधा आकर कहता है आप महान हैं, उसे खुशामत का रहस्य पता नहीं है। और जो आदमी सीधा आपसे कहता है आप महान हैं, आप थोड़ा उसके प्रति संदिग्ध हो जाएंगे कि यह आदमी कुछ

गड़बड़ करेगा। लेकिन अगर वह कुशल है तो आपको महान नहीं कहेगा, सिर्फ दूसरों को छोटा कहेगा और आपको महान बनाएगा। वह ज्यादा कुशल है और अगर असली उपद्रव करना है तो वही कर सकेगा।

निंदा में इतना रस है। दूसरो को बुरा बताने में बड़ा रस है। दूसरे को गलत बताने में बड़ा रस है। दूसरा भूल में है, यह सिद्ध करने में बड़ा रस है। यह सारा रस समाप्त हो जाएगा। अगर यह सारा प्रपंच, यह सारी बुराई, यह सारा उपद्रव, यह सारा केऑस जो चारो तरफ फैला हुआ दिखाई पड़ता है, यह भी मैं ही हूं; यह सारी विक्षिप्तता, यह सारी बीमारियां, यह सारी विकृति, यह भी मैं हूं, फिर अहंकार बच नहीं सकता। फिर अहंकार को बचने को कोई स्थान शेष नहीं रह जाता। ओर जहां अहंकार नहीं, वहीं ब्रह्म का आवास है। जहां ब्रह्म का आवास है, वहीं अहंकार का विनाश है।

"जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में जो भी मायिक प्रपंच दिखाई देते हैं, वह सब ब्रह्म द्वारा प्रकाशित होते हैं। और ब्रह्म मैं ही हूं।। ऐसा जो जान लेता है, वह सब प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है।"

तेरहवां प्रवचन

स्वयं पर लौटती चेतना का प्रकाश ही ध्यान

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रो हं सदाशिवः।। 18।।
मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
मयि सर्वं लयं तद ब्रम्हद्वयमस्यम्यहम्।। 19।।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति।। इन तीनों अवस्थाओं में जो भोग, भोग्य और भोक्ता के रूप में है, उससे भिन्न वह सदाशिव, चिन्मय और अदभुत साक्षी मैं ही हूं। 18।।

मैं ही वह अद्वैत हूं। मुझमें ही सब कुछ उत्पन्न होता, मुझमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित रहता और मुझमें ही सब का लय होता हैं।। 19।।

स्वयं की खोज अंततः उसकी खोज, जिसके समक्ष सारे अनुभव घटित होते हैं। जिसके समक्ष सारी प्रतीतियां फलित होती हैं। जिसके समक्ष सारे दृश्य, सारे जगत का विस्तार प्रकट होता है।

एक पत्थर है, वह है जरूर, लेकिन होने का उसे कोई अनुभव नहीं है। उसके होने में कोई कमी नहीं है, लेकिन होने की कोई चेतना उसक पास नहीं है। एक पशु है, वह भी है ओर उसे होने का बोध भी है। पशु का अस्तित्व का उसे अनुभव भी है। पत्थर का सिर्फ अस्तित्व है, अस्तित्व का कोई अनुभव नहीं है। को अस्तित्व भी है, अस्तित्व का अनुभव भी है। मनुष्य में चेतना का एक तीसरा आयाम भी शुरू होता है। मनुष्य है, उसी तरह जैसा पत्थर; मनुष्य को होने का अनुभव भी है, उसी तरह जैसा किसी भी पशु को है; और मनुष्य इन दोनों का भी साक्षी हो सकता है। मनुष्य यह भी जान सकता है कि मैं हूं, मुझे होने का अनुभव हो रहा है और इन दोनों बातों को भी पीछे खड़े होकर अनुभव कर सकता है।

यह जो तीसरे का अनुभव है, यही साक्षी है। पत्थर अचेतन है, पशु चेतन है, मनुष्य अपने चैतन्य के प्रति भी चेतन है। अपनी चेतना के प्रति भी जागा हुआ है। लेकिन, यह मनुष्य की संभावना है। सभी मनुष्य इस अवस्था में नहीं हैं। यह हो सकता है, ऐसा है नहीं। साधारणतः अधिकतर मनुष्य पशु के तल पर ही होते हैं, जहां हैं और होने का पता है, लेकिन तीसरे तत्त्व का, साक्षी का कोई अनुभव नहीं है। और यह अवस्था भी सिर्फ जाग्रत में रहती है। निद्रा में तो हालत वही हो जाती है जो पत्थर की है। है, होने का भी कोई पता नहीं।

जब हम नींद में हैं तों हमारी और पत्थर की अवस्था में कोई भी फर्क नहीं। जब हम गहरी प्रसुप्ति में पड़े हैं तो हम ठीक पत्थर जैसे हैं। चाहे तो उलटा करके भी कह सकते हैं कि पत्थर हमारे जैसा ही है, किसी गहरी प्रसुप्ति में पड़ा हुआ। और जब हमें साक्षी का कोई पता नहीं हैं, होने का खयाल है, तो हम पशु की अवस्था में हैं। चाहें तो उलटा भी कह कहते हैं कि पशु हमारी ही अवस्था में हैं, अभी उसका भी साक्षी जाग्रत नहीं हुआ है। लेकिन वास्तविक मनुष्यता का जन्म हमारे भीतर"विटनेसिंग", साक्षी के साथ शुरू होता है।

तो साक्षी का ठीक अर्थ समझ लें। यह शायद मनुष्य के शब्दों में, खासकर उन शब्दों में जो आध्यात्मिक खोज में संलग्न किए गए हैं, सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द है। इसकी प्रक्रिया पर पीछे हम बात करेंगे, पहले इस शब्द को ठीक से समझ लें।

मेरे हाथ में चोट लग जाए, पीड़ा हो, तो साधारणतः हमें लगता है कि मुझे पीड़ा हो रही है। अगर ऐसा लगता है कि मुझे पीड़ा हो रही है, तो साक्षी मौजूद नहीं है। अगर ऐसा लगे कि मेरे हाथ को पीड़ा हो रही, ऐसा लगे कि हाथ को पीड़ा हो रही है और मैं जान रहा हूं, तो साक्षी उपस्थित हो गया। पेट में भूख लगी है, अगर ऐसा लगे कि मुझे भूख है तो साक्षी खो गया, तादात्मय हो गया भूख के साथ। अगर मुझे ऐसा लगे कि मुझे पता चल रहा है कि पेट को भूख लगी है, या पेट में भूख लगी है ऐसा मुझे पता चल रहा है, मैं जाननेवाला ही बना रहूं, कोई भी अनुभव में समाविष्ट न हो जाऊं, दूर, बाहर, मेरे और मेरे अनुभव के बीच एक फासला बना रहे, यह फासला जितना बड़ा हो उतना ही साक्षी जन्मेगा। यह फासला जितना कम हो, उतना ही साक्षी खो जाएगा। साक्षी के खो जाने के लिए जिस शब्द का प्रयोग किया जाता है, वह है तादाम्त्य, आइडेंटिटी। किसी चीज के साथ एक हो जाना।

साक्षी का अर्थ है, किसी चीज के साथ अलग हो जाना। अगर कोई व्यक्ति अपने समस्त अनुभवों से अलग हो जाए, चाहे दुख हो और सुख, चाहे जीवन हो चाहे मृत्यु, चाहे कुछ भी घटित होता हो, किसी भी घटना में मेरी चेतना घटना के भीतर प्रवेश न करे, बाहर ही रहे, तो साक्षी का अनुभव शुरू होता है। किसी ने आपको गाली दी, तत्काल लग जाती है भीतर, फासला टूट जाता है। गाली का तीर चुभ जाता है भीतर और फासला टूट जाता है। तब यह खयाल नहीं रहता कि एक है गाली देने वाला, एक है जिसको गाली दी गई है और एक मैं हूं जो देख रहा हूं।। गाली देने वाले को भी, जिसको दी गई है उसको भी।

स्वामी रामतीर्थ इस प्रयोग को करते-करते, इस साक्षी के प्रयोग का करते-करते अपनी भाषा को भी धीरे-धीरे बदल डाले। शायद प्रयोग करते-करते भाषा बदल गई थी। न्यूयार्क में थे, कुछ लोगों ने उनका अपमान किया था। लौटकर वे आएं, हंसते हुए, और उन्होंने अपने साथियों को कहा कि आज बड़ा मजा आया। राम गया था बाजार में।। रामतीर्थ उनका नाम था।। लेकिन उन्होंने कहा राम गया था बाजार में, कुछ लोग राम को गाली देने लगे, राम बड़ी मुसीबत में पड़ गया। तो मित्रों ने कहा आप इस तरह बोल नहें हैं जैसे किसी और को गाली दी गई हो और कोई और मुसीबत में पड़ गया हो। तो राम ने कहा ठीक ऐसा ही हुआ। क्योंकि मैं देख रहा था, गाली देने वालों को भी और राम को भी जिस पर गालियां पड़ रही थीं।

गाली पड़ती तो तब फासला करना बहुत मुश्किल है। तब तत्काल, एक क्षण में भीतर सब तादात्म्य हो जाता है, गाली को हम झेल लेते हैं।

यह चेतन की संभावना है कि वह किसी तथ्य के करीब आकर एक हो सकती है और किसी तथ्य से दूर हंटकर फासले पर खड़ी हो सकती है। यही समस्त धर्म की संभावना है। अगर यह संभावना नहीं है, तो फिर धर्म का कोई उपाय नहीं है। और जीवन के दुख के विसर्जन का भी कोई मार्ग नहीं हैं, अगर साक्षी संभव न हो।

एपीटेक्टस यूनान में एक विचारक हुआ। उसके संबंध में खबर थी कि वह साक्षीभाव को उपलब्ध हो गया है। लेकिन सम्राट को भरोसा नहीं था। सम्राट ने कहा साक्षी कोई कैसे हो सकता है! खैर, परीक्षा ले लेंगे। एपीटेक्टस को बुलवा लिया गया। सम्राट ने दो पहलवान बुलाए, और कहा कि इसके पांव इसके पांव सामने ही मरोड़ कर तोड़ डालो। एपीटेक्टस ने अपनी टांग आगे बढ़ा दी। सम्राट ने कहा कोई झंझट न करोगे!

एपीटेक्टस ने कहा झंझट बिल्कुल फिजलू है, क्योंकि पहलवान मुझसे काफी तगड़ हैं। झंझट बिल्कुल बेकार है। और देर लगाने में एपीटेक्टस को तकलीफ भी बहुत होगी। इसलिए जितनी जल्दी टांग टूट जाए उतनी जल्दी निपटारा हो जाए।

कहा एपीटेक्टस ने कि देर लगाने में एपीटेक्टस को तकलीफ भी बहुत होगी। सम्राट ने कहा कि तुम्हारा मतलब क्या है? एपीटेक्टस ने कहा कि मेरा मतलब यह है कि जिसको आपने बुलाया है, एपीटेक्टेस को, जो इस शरीर काम नाम है, उसको बहुत तकलीफ होगी। सम्राट ले कहा, और तुम्हे? एपीटेक्टेस ने कहा हम देखेंगे। हम देखेंगे तुम्हारी मूढ़ता, तुम्हारे पहलवानों की पहलवानी, एपीटेक्टस की मुसीबत, सब हम देखेंगे।

सम्राट ने कहा बातचीत से हल नहीं होगा, टांग तो तोड़नी ही होगी। टांग तोड़ दी गई। और एपीटेक्टस देखता रहा। और एपीटेक्टस ने कहा कि अगर कार्य पूरा हो गया हो तो मै एपीटेक्टस को ले जाऊं।

सम्राट रोने लगा। उसने सोचा भी नहीं कि यह संभव हो सकता है। उसने पैर पकड़ लिए एपीटेक्टस के और कहा कि इसका राज? एपीटेक्टस ने कहा अभी भी तुम जिसके पैर पकड़े हुए हो, वह मैं नहीं हू। अभी मैं देख रहा हूं कि सम्राट रो रहा है, एपीटेक्टस फिर मुसीबत में है, दूसरी मूसीबत में। उनका पैर पकड़ा गया है। अभी तोड़ने के लिए पकड़ा गया था, अब पड़ने के लिए पकड़ा गया है। लेकिन मैं देख रहा हूं।

साक्षी का अर्थ है, कोई भी अनुभव तादात्म्य न बने। कोई भी अनुभव, कोई भी अनुभव मुझसे न जुड़े। मैं दूर ही रह जाऊं। पार ही रह जाऊं। मेरा अलगपन कहीं भी विनष्ट न हो।

रास्ते पर आप चल रहे हैं, ऐसे भी चल सकते हैं ऐसे भी चल सकते हैं कि मैं चल रहा हूं और ऐसे भी चल सकते हैं कि चलने कि घटना घट रही है और मैं देख रहा हूं। हर घटना से तादात्म्य को छिन्न-छिन्न करना पड़े। हर घटना से तादात्म्य विसर्जित करना पड़े। खाना खा रहे हैं, ऐसे भी खा सकते हैं कि खा रहा हूं और ऐसे भी खा सकते हैं कि खाना खाया जा रहा है, मैं देख रहा हूं।

एक-एक पल इसका होश रखा जाए, तब कहीं सतत प्रयोग के बाद साक्षी का जन्म शुरू होता है। तब आपके भीतर वह चेतना आ जाती है, जो सिर्फ देखती है, द्रष्टा होती है। जानती है, ज्ञाता होती है। लेकिन भोक्ता नहीं होती।

इस सूत्र को हम समझें।।

"जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओं मे जो भोग, भोग्य और भोक्ता के रूप में है, उससे भिन्न वह सदाशिव, चिन्मय और अदभुत साक्षी मैं ही हूं।"

जाग्रत हो, या स्वप्न हो, सुषुप्ति हो, तीनों अवस्थाओं में हमारा अनुभव तीन हिस्सों में विभाजित है।। भोग, भोग्य और भोक्ता भेग्य जिसे हम भोगते हैं। भोजन आप कर रहें हैं, तो भोजन भोग्य हैं। आप रहें हैं, आप भोक्ता हैं। और भोक्ता और भोग्य के बीचे में जो संबंध है, उसका नाम भोग है। भोग संबंध है।

या, ऐसा समझें। सूरज निकला है, आप देख रहे हैं। तो सूरज दृश्य है, आप द्रष्टा हैं, दोनों के बीच का संबंध दर्शन है। आपके पैर में कांटा गड़ गया, पीड़ा हो रही है, तो पीड़ा ज्ञेय है, आप ज्ञाता हैं, बीच का संबंध ज्ञान है। हर अनुभव तीन हिस्सों में टूट जाता है। विषय, जो बाहर है, जिसका आपको अनुभव हो रहा है। अनुभोक्ता, अस्मिता, अहंकार जो भीतर है, जिसको अनुभव हा रहा है। और दोनों के बीच का संबंध जो अनुभव बन रहा है।

ये तीन समझ में आते हैं। इन तीनों के पार अगर आपके भीतर कोई चौथा भी हो, तो उसका नाम साक्षी है। इन तीनों के पार अगर कोई चौथा भी हो जो इन तीनों को ऊपर से देख रहा हो।। जो देख रहा हो कि भोजन

किया जा रहा है, भोग लिया जा रहा है। भोक्ता भोग ले रहा है और भोग के बीच में संबंध निर्धारित हा गया है भोग का, इन तीनों के पार भी अगर कोई खड़ा होकर देख सके आपके भीतर, तो उस चौथी संभावना का नाम साक्षी है।

इन तीन को तो हम अनुभव करते हैं, चौथे को हम अनुभव नहीं करते हैं। और जिन तीन अवस्थाओं की हमने चर्चा की है, उन तीनों में इन तीन का ही हम अनुभव करते हैं। जागते हैंतो भोग, भोग्य और भोक्ता होता है। स्वप्न देखते हैं तो वही भोग, वही भोग्य, वही भोक्ता होता है। गहरी तंद्रा में पड़ जाते हैं, तो सुबह उठकर हम कहते हैं... बड़ा सुख आया। और तब फिर सुख का अनुभव वही भोग, भोक्ता और भोग्य में विभाजित हो जाता है। लेकिन चौथे का हमें कोई भी पता नहीं है। इस सारे अनुभव में चौथे की हमें कोई झलक भी नहीं मिलती है।

उस चौथे को जगाना, उस चौथे को उठाना, उस चौथे को आधार देना, उस चौथे में प्रवेश करना, उसका ही साधन ध्यान है। जो भी आप कर रहे हों, खयाल रखें कि तीन तो ठीक है, चौथा भी कहीं है या नहीं? और जैसे ही खयाल रखेंगे, चौथा जागना शुरू हो जाएगा। क्योंकि वह स्मरण से ही जागता है। और उसके जगाने का कोई उपाय नहीं है।

जॉर्ज गुरजिएफ ने शब्द प्रयोग किया है।। रिमेंबरिंग। कहा है कि रिमेंबरिंग, स्मरण ही उसे उठाने का उपाय है। गुरजिएफ ऐसा करता था, अगर कोई क्रोधी साधक करके उसके पास आता तो वह नहीं कहता था क्रोध छोड़ दो। वह कहता था।। क्रोध करो, पूरी तरह करो, लेकिन साक्षी को जगाए रखो कि मैं क्रोध कर रहा हूं। कि क्रोध हो रहा है। कि क्रोध आ गया है। कि क्रोध ने पकड़ लिया है। कि क्रोध प्रगट हो रता है। एक क्षण को भी ये मत भूलो, क्रोध के साथ तादात्म्य मत बनाओ। कहीं भी ऐसा न हो जाए कि तुम ही क्रोध हो जाओ। क्रोध से फासला बनाए रखो।

साधक बड़ी मुश्किल में पड़ते थे। क्योंकि क्रोध का नियम यह है कि अगर स्मृति रहे, तो क्रोध हो नहीं सकता। और अगर क्रोध हो, तो स्मृति खो जाती है। ये दोनों बातें एक साथ नही होतीं। तो अगर कोई साधक यह आकर कहे कि हां, आज मैंने क्रोध किया और स्मृति रही, तो गुरजिएफ हंसता था। क्योंकि उसको पता है।। और साधक को पता नहीं है।। कि यह अंसभव है, यह होता ही नहीं। क्षणभर को भी अगर क्रोध पकड़ेगा तो तत्क्षण स्मृति खा जाएगी। यह चेतना की फोकसिंग का सवाल है। यह ठीक वैसे ही है कि जब मैं बायीं तरफ देखूंगा, तो मेरी आंखे दायीं तरफ नहीं देख पाएंगी। यह ठीक वैसा ही है कि जब मैं आंख बंद करूंगा, तो बाहर का जगत मुझे दिखाई नहीं पड़ेगा। अगर कोई आदमी आकर कहे कि मैंने आंख बंद की और बाहर का जगत दिखाई पड़ता रहा, मैंने बायें देखा और दायें भी देखता रहा, ठीक उससे भी कठीन है यह बात कि मैं जागा रहा और क्रोध करता रहा। मैं साक्षी बना रहा और क्रोध करता रहा। यह संभव नहीं हो सकता।

गुरजिएफ ने बहुत प्रयोग किए, लेकिन बड़ी मुश्किल थी। अगर कोई व्यक्ति जागा रहता, तो क्रोध नहीं होता था। और अगर क्रोध हो जाता, तो जागना नहीं होता था। तो गुरजिएफ ने एक नया प्रयोग भी शुरू किया और वह था।। क्रोध का अभिनय। वह कहता था वास्तविक क्रोध में तो तादाम्त्य हो जाता है, गिर जाता है आदमी। तो वह कहता था कि सिर्फ क्रोध का अभिनय करो। सब तरफ से कोशिश करो कि क्रोध में आ गए हो। सब भावभंगिमा ले आओ। चेहरा विकृत कर लो, हाथ की मुट्ठियां बांध लो, दांत पीस डालो, कंप जाओ, सारा क्रोध का पूरा अभिनय कर लो, जैसा एक अभिनेता नाटक में कर रहा हो।

और यह मजे की बात है कि जब उसने क्रोध का अभिनय सिखाया तो लोग दोनों एक-साथ हो जाते थे।। क्रोध का अभिनय भी कर लेते थे और साक्षी भी बने रहत थे। और जब एक दफा अनुभव में आ जाए कि मैं

साक्षी बना रह सकता हूं एक ही अवस्था में, जब जो भी मैं कर रहा हूं उसमें कर्ता न बनूं।। वह अभिनय रहे तो कर्ता नहीं बनता आदमी। राम रामलीला में काम कर रहे हैं। तो बहुत रोते-पीटते हैं, सीता को भी झाड़-झाड़ से पूछते हैं, फिर पर्दा गिरा और पीछे जाकर वह चाय बैठकर पी रहे हैं। उस सीता से कोई संबंध न था। वह सब अभिनय था। लेकिन कभी-कभी अभिनय में भी।। हमारी नासमझी गहरी है कभी-कभी अभिनय में भी तादात्म्य हो जाता है। या कभी-कभी अभिनय के भीतर कर्ता प्रकट हो जाता है।

ऐसा मैंने सुना एक गांव की रामलीला में हो गया। हनुमान को भेजा गया है लेने संजीवनी। वह लेकर तो आ गए पहाड़, लेकिन जिस रस्सी पर सरक रहे थे ऊपर वह अटक गई। तो बड़ी मुश्किल हो गई। राम नीचे खड़े हैं, वह कहते हैं जल्दी संजीवनी लाओ, लक्ष्मण मरे जा रहे हैं, हनुमान भी उतरने की बहुत कोशिश करते हैं, लेकिन रस्सी की घिर्री अटक गई है। अटके हैं। घबड़ाहट हो गई, किसी ने जाकर जल्दी से ऊपर रस्सी काट दी, धड़ाम हनुमान नीचे गिरे। तो हनुमान भूल गए कि यह रामलीला है। तो राम कह रहे हैं कि संजीवनी कहां है? हनुमान ने कहा कि भाड़ में जाए संजीवनी, रस्सी किसने काटी है, पहले यह पता कर लेने दो! वह जो नाटक चल रहा था, वह क्षण भर को तिरोहित हो गया। चेतना कर्ता बन गई। उस क्षण राम-लक्ष्मण सब बेमानी; संजीवनी, सब व्यर्थ हो गई। वह हनुमान बिल्कुल भूल गए कि काफी लोग देखने आए हैं, ये क्या सोचेंगे?

सवाल यह नहीं रहा, भूलने की कोई बात नहीं थी, वह बात खो गई, वहां जहां अभिनय चल रहा था वहां कर्ता तत्काल प्रकट हो गया। इस घटना से हनुमान अपने को अलग न कर पाए। हमारे अभिनय में भी अगर कहीं कर्ता प्रवेश कर पाए तो तादात्म्य हो जाएगा। और इसके विपरीत अगर हमारे कर्म में भी अभिनय का बोध आ जाए, तो साक्षी प्रकट हो जाएगा। इसका मतलब हुआ कि जब भी हम कर्म के कर्ता बनते हैं तब साक्षी का खोकर बनते हैं। साक्षी की कीमत पर बनते हैं। अगर हम कर्म के सिर्फ अभिनेता रह जाएं, तो कर्ता खो जाता है, और कर्ता की कीमत पर साक्षी उपलब्ध होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि आप दो में एक ही सकते हैं।। या तो कर्ता, या साक्षी।

और हम सब कर्ता हैं। जो भी हम करते हैं, उससे हम तत्काल अपने अहंकार को जोड़ लेते हैं। जोड़ने का हमें उपाय नहीं करना पड़ता, जुड़ ही जाता है। वह बिल्कुल हमारी आदत का हिस्सा हैं। ऐसे कर्म में भी हम कर्ता बन जाते हैं जिसमें हमारा कर्म है ही नहीं। आदमी कहता है, मै श्वास ले रहां हूं। श्वास में----कोई श्वास लेता नहीं दुनिया में नहीं तो मरना मुश्किल हो जाए। मौत खड़ी है और आप श्वास लिए चले जा रहे हैं! मौत कह रही है कि अब बंद भी करिए और आप कहते हैं हम बंद नहीं करेंगे, तो मौत क्या करे? श्वास आप लेते नहीं हैं, श्वास चलती है। लेकिन उसके भी भी हम कर्मा बन जाते हैं। हम कहते है।। मैं श्वास ले रहा हूं। मै श्वास छोड़ रहा हूं। हमारी भाषा हर चीज को कर्म बना देती है।

वह तो आपको पता नहीं कि आपका खून चल रहा है, नहीं तो आप कहें कि मैं खून चला रहा हूं। आपको पता नहीं है।। तीन सौ साल पहले तक किसी को पता नहीं था।। कि खून चलता भी है। जब यह पहली दफा जिस आदमी ने कहा कि खून चलता है, उसको क्षमा मांगनी पड़ी अदालत में जाकर। वे कहें, कया फिजूल की बात कर रहे हो! खून कैसे चलेगा! खून भरा हुआ है। और चलने का हमें कभी खुद भी तो चलता नहीं। तीन सौ साल पहले तक दुनिया में किसी को पता नहीं था कि आदमी के भीतर खून चलता है। लेकिन चलता ता है और आप तो चलाने वाले हैं ही नहीं, आपको पता ही नहीं है चलाने का। वैसे ही श्वास भी चलती है, आप चलाने वाले नहीं हैं। जब तक चलती है, जब नहीं चलती है तो नहीं चलती है। फिर एक श्वास भी कम-ज्यादा लेना संभव नहीं है।

लेकिन हम श्वास के कर्ता बन जाते हैं और कहते हैं।। मैं श्वास ले रहा हूं, मैं श्वास छोड़ रहा हूं। मैं कुछ कर रहा हूं। अगर बहुत गहरे में प्रवेश करें तो सारा जीवन श्वास की तरह ही चल रहा है। उसमें आप कर्ता नहीं हैं। जब बिल्कुल मौलिक चीज के आप कर्ता नहीं हैं, श्वास, जिसके बिना जीवन क्षणभर न चलेगा, तो बाकी सबका आप क्या सोच रहे हैं! भूख आप लगाते हैं? लग रही है। प्रेम में आप पड़ते हैं? पड़ जाते हैं। घृणा आप करते हैं? हो जाती है। क्रोध आप करते हैं? आ जाता है। अगर जीवन की सारी क्रियाओं में ठीक से प्रवेश करें, तो आपको पता चलेगा कर्ता एक भ्रांति है। शायद एकमात्र भ्रांति है। अकेली भ्रांति है, बस वही भ्रांती है। बाकी सब भ्रांतीयां उसी के फूल-पत्ते हैं। उस कर्ता को की हम अहंकार कहते हैं, इगो कहतें हैं। वह हमारी भ्रांति है। फिर उस भ्रांति पर हमारा जो भी महल खड़ा होता है, वह सब झूठा है। उसका कहीं कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन जब झूठा आधार ही हमने स्वीकार कर लिया हो, तो फिर झूठे महल को बनाने में हमें कोई अड़चन नहीं होती। यश् का, प्रतिष्ठा का यह जो संसार है, सफलता का, दंभ का यह जो फैलाव है, यह फिर उसी झूठे कर्ता पर खड़ा होता चला जाता है।

लेकिन जीवन की प्रक्रिया का ठीक-ठीक बोध हो, तो पता चलेगा कर्ता हम हैं नहीं। फिर हम क्या हैं अगर कर्ता नहीं हैं? अगर यह कर्ता का भाव छूट जाए तो फिर हम क्या हैं? तब हमें पता चलेगा कि हम साक्षी हैं।

मेरा किसी से प्रेम हो गया है, तो मैं सिर्फ साक्षी हूं। साक्षी हूं इस बात का कि मेरे भीतर कुछ है और उस व्यक्ति के भीतर कुछ है, और इन दोनों के बीच एक आकर्षण निर्मित हो गया है। मैं साक्षी हूं इस बात का। मुझे इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि यह घटना घट रही है, यह वैसे ही प्राकृतिक घटना है जैसे कि एक चुंबक के पास लोहा खिंच जाए। न तो चुंबक खींचता है और न लोहा खिंचता है। चुंबक और लोहे के गुणधर्म को मेल है कि खींचने की घटना घट जाती है। न तो चुंबक को खींचने के लिए कोई उपाय करना पड़ता है और न लोहे को खिंचने के लिए कोई चेष्टा करनी पड़ती है। इन दोनों के स्वभाव से यह घटना घट जाती है। यह घटना घटना ही है, इसमें कर्ता कोई भी नहीं है।

अगर चुंबक भी आदमी हो, तो वह कहेगा मैंने खींचा। निश्चित कहेगा। और अपनी डायरी रखेगा कि मैंने कितने-कितने लोहों को खींचा। और कितनी-कितनी बार कैसे लोहे मेरे चारों तरफ इकट्ठे खिंचकर आ गए। अगर लोहा भी आदमी हो तो वह भी यह मानने को तैयार नहीं होगा, वह भी कहेगा।। कितने-कितने चुंबकों के पास मैं गया, कितने-कितने चुंबकों के पास मैंने यात्रा की, वह भी अपनी डायरी रखेगा। यह तो हम जानते हैं कि वहां न तो कोई खींच रहा है, न कोई खिंचा जा रहा है। चुंबक का स्वभाव है, उसका स्वभाव-क्षेत्र है, उसका एक फिल्ड है, मैग्नेटिक फील्ड है, वह उसका स्वभाव है। वह उसका स्वभाव ही है जैसा कि लोहे का एक स्वभाव है। उसक भी एक अपना फिल्ड है। उन दोनों फील्डों के बीच जो घटना घटती है वह खिंचाव है। उसमें कर्ता कोई भी नहीं है। उसमें कर्ता कोई भी नहीं है। अगर एक स्त्री एक पुरुष के प्रति आकर्षित हो जाती है तो यह वैसा ही मैग्नेटिक फील्ट है। अगर एक पुरूष एक स्त्री के प्रति आकर्षित हो जाता है, तो यह वैसा ही मैग्नेटिक फील्ड है। यह घटना वैसी ही चुंबकीय है।

लेकिन आप कहेंगे कि एक लोहा एक खास चुंबक के पास आकर्षित क्यों होता है? एक पुरुष एक खास स्त्री के प्रति आकर्षित क्यों होता है? एक स्त्री एक खास पुरुष के प्रति आकर्षित क्यों होती है? अगर इसकी भी गहराई में उतरना शुरू करें तो आपको पता चलेगा कि यह भी स्वभागत है।

अभी पश्चिम में जुंग ने इस संबंध में बहुत काम किया और जुंग ने इस बात की खोज की कि हर पुरुष के भीतर जन्म के साथ ही स्त्री की एक प्रतिमा है, एक छिपी हुई स्त्री है। एक रूप है स्त्री का। हर स्त्री के भीतर पुरुष

की एक प्रतिमा है, एक छिपा हुआ रूप है पुरुष का। और जब कोई पुरुष किसी स्त्री के प्रति आकर्षण होता है तो रूप से मेल खाता है तो उसका कुल कारण इतना होता है कि इस स्त्री का रूप उसके भीतर की छिपी हुई स्त्री के रूप से मेल खाता है। और जब कोई स्त्री किसी पुरुष के प्रति आकर्षित होती है तो उसका इतना ही मतलब होता है कि उस स्त्री के भीतर का पुरुष, छिपा हुआ पुरुष-तत्व इस पुरुष ने किसी तरह का मेल खाता है। यह मेल खीचता है।

भूलकर मत कहना कि मैंने प्रेम किया। प्रेम कोई कर्म नहीं है। यह वही चुंबक की भूल है, जो कहे कि मैंने लोहे को खींचा। यह लोहे की भूल है कि मैं गया। लेकिन हम इसमें भी कर्ता बन जाते हैं। प्रेम और घृणा और क्रोध, सब श्वास की तरह चलते हैं।

अगर यह जीवन हमें श्वास की तरह चलता हुआ दिखाई पड़ने लगे, तो जिसको यह दिखाई पड़ेगा और इसके बीच में जो खड़ा होकर जान रहा है, देख रहा है।। इस सारे खेल को।। उस सारे खेल में कहीं भी"मैं" का भाव नहीं नहीं जोड़ रहा है, सिर्फ"मै" के भाव के बाहर खड़े होकर सिर्फ जान रहा है, सिर्फ ज्ञाता है, सिर्फ साक्षी है, तो हमने अपने भीतर इस बिंदु को पा लिया, जो बिंदू इस संसार का हिस्सा नहीं है।

कर्ता इस संसार का हिस्सा है। साक्षी इस संसार के बाहर हो गया।

स्वप्न हो, चाहे जाग्रत, चाहे सुषुप्ति, तीनों ही स्थितियों में जो सदा ही साक्षी है, वही चिन्मय और अद्‌भुत साक्षी मैं हूं। यह जो साक्षी है, उसका गुण है चिन्मयता। इसका गुण है चैतन्य। मात्रा इसका गुण है। चैतन्य का अर्थ हुआ कि मात्रा जानना इसका गुण हैं। जैसे दर्‌पण का गुण है कि चीजें उसके सामने आएं तो प्रतिबिंब बन जाए। ऐसे ही इस साक्षी का गुण है कि जो भी इसके सामने आए, उसे यह जान ले। बस जानना इसका गुण है।

ऐसा खयाल करें, फोटो खींचने वाला कैमरा है, तो उसके भीतर की प्लेट भी प्रतिबिंब बनाती है वैसे ही जैसे दर्पण बनाता है। लेकिन दर्पण में, "फोटो-प्लेट" में एक फर्क है। "प्लेट" जो प्रतिबिंत बनाती है उसे बनाती ही नहीं, पकड़ भी लेती है। दर्पण भी प्रतिबिंब बनाता है लेकिन पकड़ता नहीं। आप हटे और प्रतिबिंब भी हट जाता है और दर्पण खाली, शून्य और शांता हो जाता है।

इसका यह भी मतलब हुआ कि जब फोटो-प्लेट पकड़ती हे, तो ऐसा नहीं है कि जब आपका चित्र बनता है उसके बाद में पकड़ती है, बनता ही नहीं है और पकड़ जाता है। और दर्पण जब आप हटाते हैं तभी खाली होता है ऐसा नहीं, जब आप सामने होते हैं, प्रतिबिंब भी बनता होता है तो भी दर्पण खाली होता है। नहीं तो आपके हटने से खाली नहीं हो जाएगा।

फोटा-प्लेट की तरह कर्ता का भाव। जो कुछ भी करते हैं, फौरन पकड़ लेते हैं। जकड़ जाते हैं। दर्पण की तरह है साक्षी का भाव होता है सब, दर्पण पर बनता है, बोध होता है, पकडता कुछ भी नहीं। फोटो-प्लेट और चित्र के बीच जो पकड़ने की घटना बनती है उन्हीं सब घटनाओं के जोड़ का नाम है। सब घटनाओं के जोड़ का नाम। जितनी-जितनी घटनाएं फोटो-प्लेट ने पकड़ी हैं उन सबके जोड़ का नाम "मैं" है। दर्पण के साथ "मै" नहीं बन सकता, क्योंकि जोड़ना असंभव है। एक चीज हटती है, दर्पण खाली हो जाता है; दूसरी चीज आती है, हटती है, दर्पण खाली होता चला जाता है। दर्पण के पास कोई संपदा नहीं हैं जिसको जोड़कर वह "मै" निर्मित होता है, तब तक जानना कि कर्ता का काम जारी है और साक्षी से अभी कोई संबंध नहीं हुआ है।

बुद्ध जैसा व्यक्ति जब जमीन पर घूमता है वह दर्पण की तरह घूमता है। एक दर्पण है, चलता हुआ। सब दिखाई पड़ता है, सब घटित होता, सबका प्रतिफलन बनता है, लेकिन कुछ पकड़ता नहीं। पकड़ने से ही हमारे मन की सारी की सारी बोझ-अवस्था निर्मित है।

इसे थोड़ा ऐसा समझें, राह से आप चल रहे हों, किनारे पर खिला फूल दिखाई पड़ा, सुंदर है, अनुभव हुआ; सुगंधित है, जाना; फिर आप आगे बढ़ गए; आप आगे बढ गए, फूल पीछे छूट गया, लेकिन आपके मन में अनुगूज फूल की अभी भी चलती है। यह अनुगूंज बताती है कि फोटा-प्लेट हैं आप, आप दर्पण नहीं। दर्पण होते, फूल छूट गया, आप हट गए, बात समाप्त हो गई, दर्पण खाली हो गया। एक सुंदर स्त्री दिखाई पड़ी, अगर दर्पण हों आप, तो भी दिखाई पड़ेगी। सुंदर है, यह भी दिखाई पड़ेगा। लेकिन दर्पण हैं आप। स्त्री चली गई, दर्पण खाली हो गया। एक सुंदर भवन दिखाई पड़ा। सुंदर है, दिखाई पड़ेगा। हट गया, समाप्त हो गया। आप फिर निर्मल और खाली हो गए। प्रतिपल साक्षी शुद्ध होता है, प्रतिपल। इसलिए साक्षी किसी तरह का कर्मबंध इकट्ठा नहीं करता। क्योंकि साक्षी किसी चीज को जकड़ता ही नहीं। बंधता ही नहीं। बस गुजरता चला जाता है। जिंदगी साक्षी भोगता नहीं, देखता है। जिंदगी में साक्षी फंसता नहीं, गुजरता है।

कबीर ने कहा हैः "ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया। वह साक्षी के लिए कहा है। जैसी दी थी परमात्मा ने जिंदगी, वैसी की वैसी वापस रख दी। उस पर नहीं पड़ने दिया। दाग कर्ता का। और सच तो यह है कि हम जैसे कर्ता की तरह जीते हैं, उसमें चदरिया तो लौटती नहीं, दाग ही दाग लौटते हैं। फिर खोजना मुश्किल है कि चदरिया कहां हैं। दाग ही दाग रह जाते हैं। इतनी छपाई हो जाती है। छपाई पर छपाई हो जाती है। चदरिया तो खो जाती है, दागों का एक संग्रह रह जाता है।

लेकिन साक्षीभाव से गुजरा हुआ आदमी... रिंझाई ने कहा है अपने शिष्यों से, मरते वक्त, कि एक ही सूत्र तुम्हें कहे जाता हूं।। पानी से गुजरना तो, लेकिन तुम्हारे पैर न भींगे। पानी से गुजरिएगा तो पैर हम कहेंगे भींग ही जाएंगे। लेकिन साक्षी के नही भींगते। क्योंकि साक्षी इन पैरों को अपना पैर ही नहीं मानता। साक्षी तो यह भी देखता है कि पानी से गुजर रहा है, अगर रिंझाई हैं तो रिंझाई देखता है पानी से गुजर रहा है, रिंझाई के पैर भींग रहे हैं, लेकिन मेरे! मेरे तो पैर नहीं भीग रहे हैं, क्योंकि मैं पानी से गुजरा ही कहां रहा हूं! पानी भी है, पैर भी है, गुजरने वाला भी है और एक देखने वाला भी है। वह देखने वाला अस्पर्शित रह जाता है, अछूता रह जाता है।

वह अछूतापन जो है, वही अगर ठीक से समझें।। वही जीवन की गहनमत, जीवन की आत्यंतिक आधारशिला है। वैसा व्यक्ति सदा ही कुंवारा है, अछूता है। फूल की पखुडियों पर भी धूल बैठ जाती होगी, उस पर धूल नहीं बैठती। क्योंकि धूल जिस कारण से बैठती है, वह कारण विसर्जित कर दिया गया है। तादात्म्य, कता का भाव विसर्जित कर दिया गया है। हम पर तो हर चीज की धूल बैठ जाती है। और ऐसी धूल ही नहीं बैठ जाती जिसमें कारण हो, अकारण धूल भी बैठ जाती है। राह से गुजर रहे हैं, कोई एक फिल्म की कड़ी गुनगुना रहा है, वह आदमी भी चला गया, वह फिल्म की कड़ी भी चली गई, आप गुनगुना रहे हैं अब उसे। इस तरह धूल बैठ जाती है। अब आप उसको गुनगुनाए जा रहे हैं। और जरा कोशिश करिए उसको रोकने की तो मन इनकार कर देगा। वह कहेगा, गुनगुनाएंगे। जितना रोकेंगे उतना ज्यादा गुनगुनाएंगे। रोकने की कोशिश की तो पता चलेगा पराजित हो गए।

यहां एक बात और खयाल में लेनी चाहिए।। जो लोग कर्ता भाव से जीते हैं, अगर वे धार्मिक भी हो जाएं तो भी उनका कर्ता भाव नहीं जाता है। वे वहां कर्तापन लगाए रखते हैं। वे कहते हैं।। पहले वे कहते थे हमने महल बनाया, अब वे कहते हैं हमने त्याग किया। इसे थोड़ा से ले लेंगे।।

अगर कर्तापन जारी रहे, तो धर्म में प्रवेश नहीं होता। लेकिन हम जिन धार्मिकों को आमतौर से जानते हैं वे धार्मिक संसार में तो कर्ता थे ही, धर्म में भी कर्ता रहते हैं। वे कहते हैं कि पहले भोग भोगा, अब त्याग किया

लेकिन करना जारी रहता हैं। वे कहते हैं, पहले महल में रहते थे, महल बनाया, अब आश्रम में रहते हैं, आश्रम बनाया; पहले वस्त्र पहनते थे, अब नग्न रहते हैं। लेकिन कर्ता का भाव जारी रहता है। धार्मिक व्यक्ति वह है, संन्यस्त वह है, संन्यासी वह है, जो कर्ता के भाव से नहीं जीता, चाहे महल में जीता हो, चाहे झोपड़े में जीता हो, चाहे नग्न रहता हो और चाहे लाखों के वस्त्र पहनता हो। एक बात ही उसका गुण है कि वह कर्ता के भाव से नहीं जीता। वह साक्षी के भाव से जीता है।

डायोजनीज के संबंध में मैंने सुना है कि वह गांव बाहर एक टीन कें पोंगरे में पड़ा रहता था नग्न। टीन का पोंगरा था, गांव के बाहर था, आवारा कुत्ते भी उसमें आकर सो जाते थे। डायोजनीज भी उसमें सोया रहता था। नग्न फकीर था, न उसके पास कोई घर था, न कोई झोंपडा था। वह यह टीन का पोंगरा गांव के बाहर पड़ा था बेकार, कचराघर का, जिसमें लोग कचरा फेंकते थे, खराब हो गया था, गांव के बाहर फेंक दिया था, वह उसी में घुस कर सो जाता था। आवारा कुत्ते भी उसमें सोते थे। कभी-कभी डायोजनीज के दूर-दूर से शिष्य भी आ जाते थे, उसको पूछने, कुछ ताछने।

तो अनेक बार शिष्य कहते थे।। इन कुत्तों को भगा क्यों नहीं देते? तो डायोजनीज कहता था, कौन भगाएगा? डायोजनीज भी सोया रहता है, ये लोग सोए रहते हैं। रही अपनी बात, तो वहां तो सोना ही कहां है! डायोजनीज भी सोया रहता है, कुत्ते भी सोए रहते हैं, रही अपनी बात, तो वहां तो सोना ही कहां है, वहां तो जाग गए सो जाग गए!

यह जो जिसकी बात डायोजनीज कर रहा है, यह साक्षी है। वहां कोई सोना नहीं है, जाग गए, जाग गए; अब डायोजनीज भी सोया रहता है, कुत्ते भी सोए रहते हैं। डायोजनीज से भी उतना ही फासला है अब जितना कुत्तों से।

इसे थोड़ा ठीक समझ लें।

जब तक आपको अपने से उतना ही फासला नहीं है जितना दूसरे से है, तब तक आप साक्षीभाव को उपलब्ध नहीं हो सकते। अगर आपको दूसरे से ज्यादा फासला ही है, जैसे आग अगर गर्म है यह उसका गुणधर्म है, तो फिर आग ठंडी नहीं हो सकती। और अगर तो आप कर्ताभाव में बंधे रहेंगे। आपका ठीक-ठीक उतना ही फासला अपने से हो जाना चाहिए जितना दूसरे से है। बस उसी क्षण, उसी क्षण डायोजनीज भी सोया रहता है, कुत्ते भी सोए हैं और डायोजनीज के भीतर जो है जागा ही हुआ है, वह देखता ही रहता है। और आपने से कम पासला है।

तो डायाजनीज ने कहा, भगाए कौन? किसको भगाए और क्यों भगाए?

यह जो तटस्थता है, यह जो दूरी है, अपने से ही, यह दूरी ही साक्षी है।

चिन्मय उसका स्वरूप है। बस एक लक्षण उसका कहा जा सकता है।। चिन्मय। चैतन्य, कांशिवसनेस। इसका, इसका अर्थ गहरा है लेकिन। क्योंकि अगर चिन्मय उसका है तो उसका अर्थ हुआ कि वह कभी चिन्मय-शून्य नहीं हो सकता। कभी अचेतन नहीं हो सकता। चेतना अगर उसका गुणधर्म ठंडी हो जाती है और आग बनी रहती है, तो फिर यह गरम होना उसका गुणधर्म न रहा। स्वभाव का अर्थ है जिससे कभी च्युत नहीं हुआ जा सकता।

अगर इस भीतर छिपे हुए रहस्य का स्वभाव ही चैतन्य है तो फिर हम सो कैसे गए? फिर हम बेहोश क्यों हैं? फिर हम अचेतन क्यों हैं?

यह बड़ा महत्त्वपूर्ण सवाल है जो सदियों-सदियों में पूछा गया है और खोजा गया है, कि अगर सच है कि यह भीतर छिपी हुई आत्मा ज्ञान है। ज्ञान उसका स्वधर्म है, तो फिर यह अज्ञान घटित कैसे हुआ है? और यह संगत है सवाल। अगर मेरा स्वभाव ही शाश्वसता है, तो फिर यह मृत्यु घटित कैसे होती है? फिर मैं मरता कैसे हूं? अगर मेरा स्वभाव ही स्वास्थ्य है, तो यह बीमारी आती कैसे है? और अगर मेरे भीतर यह शुद्ध-बुद्ध परमात्मा छिपा है, तो फिर मैं बुरा कैसे हो जाता हूं?

दो ही बातें हो सकती हैं। यह तो मेरा स्वभाव न हो। यह मेरा स्वभाव न हो, सिर्फ सांयोगिक गुण हो। तो यह हो सकता है। लेकिन अगर यह स्वभाव नहीं है, तो एक खतरा होता है और खतरा वह यह है कि अगर यह स्वभाव नहीं है, यह चेतना सिर्फ सांयोगिक गुण है, तो फिर इसे पाने और खोजने की जरूरत भी क्या है, और पाकर भी जो सांयोगिक है वह कभी स्वभाव नहीं बन सकता। इसलिए भारत में तो एक बहुत अनूठी चिंतनधारा चली, अनेक भारत में ऐसे विचारक हुए हैं, गहन विचारक, जिन्होंने कहा कि परम अवस्था में चैतन्य रह नहीं जाएगा। मोक्ष में चेतना नहीं रह जाएगी। क्योंकि उन्होंने कहा कि चेतना जो है और अचेतना जो है, ये सब सांयोगिक गुण हैं।

मगर यह तो बड़ी अजीब बात है। अगर मोक्ष में चेतना ही न रह जाए, तो मुक्ति किसकी? अगर होश ही न रह जाए, तो उससे तो यह बेहोश बेहतर। कम से कम थोड़ी चेतना तो है। परतंत्रता है माना, लेकिन होश तो है! स्वतंत्रता पूरी हो जाए और बेहोशी हो जाए, तो बेमानी है। लेकिन उन विचारकों की तकलीफ यही थी कि वे यह समझाने में हुए कि अगर चेतना का स्वभाव चेतन्य है, तो फिर आदमी बेहोश क्यों है? फिर आदमी सोया हुआ क्यों है? अगर जागा हुआ होना उसका भीतरी गुण है, तो यह नींद कहां से घटित होती है?

लेकिन न समझा पाने के कारण विपरीत को मान लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। समझाया जा सकता है, लेकिन कठिनाई तब खड़ी होती है जब कि कोई सिर्फ विचार से चलता है, तो अड़चन आ जाती है। जब कोई साधना से चलता है तो अड़चन नहीं आती। क्योंकि तब चीजें दिखाई भी पड़नी शुरू होती हैं। चेतना तो सदा ही चेतन है। दर्पण तो सदा ही दर्पण है। लेकिन कोई चीज आच्छादित होकर प्रतिबिंबित हो सकती है। चैतन्य तो उसका स्वभाव है, लेकिन चेतना में कोई भी चीज प्रतिफलित होती है, और जो प्रतिफलित होती है उसको स्वयं मान लेने की भ्रांति चेतना कर सकती है। इससे चैतन्य को कोई विरोध नहीं है।

तो पुराना जो उदाहरण है, वह है नीलमणि का। नीलमति को अगर पानी में डाल दें तो, पुराने शास्त्रों में उदाहरण दिया है, कि पूरा पानी नीला दिखाई पड़ने लगता है। होता नहीं नीला। लेकिन नीलमणि को डाल देने से उसकी आभा पूरे पानी पर छा जाती है। और पूरा नीला दिखाई पड़ने लगता है। यह जो दिखाई पड़ना है इसका नीला, यह होना नहीं है।

तो चेतना का मूर्च्छित होना मूर्च्छित दिखाई पड़ना है।। चेतना का सो जाना चेतना का सोया हुआ दिखाई पड़ना है। इसलिए एक मजे की बात फकीरों ने कही है।। कबीर ने भी कही है, फरीद ने भी कही है, और फकीरों ने भी कही है कि अगर कोई आदमी सचह में ही सोया हो तो उसे जगाना बहुत आसान है। लेकिन कोई बन कर सोया हो, तो फिर जगाना बहुत मुश्किल है। लेकिन बनकर सोया जा सकता है। यह मजे की बात है, बन कर सोया जा सकता है। और बनकर अगर कोई सोया हो, तो उठाना बहुत मुश्किल है।

शायद हम उठ नहीं पाते हैं इतनी चेष्टा के बाद भी, उसका मौलिक कारण यह है कि हम सोए हुए कम, बनकर सोए हुए ज्यादा हैं। खैर... इसीलिए इतनी चेष्टा चलती है! कितने बुद्ध, कितने महावीर, कितने जीसस, कितने जरथुस्त्र चेष्टा करते रहते हैं जगाने की, लेकिन आदमी है कि करवट बदल कर फिर अपनी चादर ओढ़कर

सो जाता है। पहली दफा से और अच्छी तरह से, ढंग से सो जाता है। अस्त-व्यस्त हो गया होगा, थोडा निंद में, चादर उघड गई होगी, कही पैर उघड गया होगा, कहीं सिर से तकिया हट गया होगा, तो महावीर-बुद्ध की कृपा से इतना होता है कि करवट बदल कर, तकिए को ठीक करके, बिस्तर संभालकर, चादर को ठीक से ओढ़कर सो जाता है।

यह जो आदमी है, यह सोआ हुआ नहीं है। यह सोया हुआ-सा है। यह अपने ही कारण... मैं गांव में था। एक मित्र मुझ मिलने आए। कुछ आधी ही बात हुई होगी और अधूरी ही बात में था कि वे एकमद अचानक खड़े हो गए। और उन्होंने कहा कि क्षमा करें, मैं और ज्यादा आपकी बात नहीं सुनना चाहता। तो मैंने पूछा कि न मैं कभी आपको... पहले कहने आपके घर गया नहीं था, आप ही आए थे, मैंने बात शुरू भी नहीं की थी, आपने ही कुछ पूछा था। उन्होंने कहा मैं आया था और मैंने ही पूछा था और मैं ही आपसे कहता हूं कि बस आप रुक जाएं, मैं और सुनना नहीं चाहता; अभी मेरे छोटे-छोटे बच्चे हैं! मैंने कहा मेरी बात से आपके छोटे बच्चों का क्या संबंध? तो उन्होंने कहा घर-गृहस्थी बिल्कुल कच्ची है। आऊंगा एक दिन आपके पास, लेकिन अभी नहीं। अभी वक्त नहीं आया। मुझे जाने दें। और उनकी पीड़ा वास्तविक है। और मैंने जाना वह आदमी ईमानदार है। वह उन आदमियों से धा, जो जेच जाए तो फिर कष्ट बदलकर सों नहीं सकते। उसने पहले ही इनकार कर दिया कि यह बातचीत करनी ही नहीं है। आऊंगा एक दिन, अभी वह वक्त नहीं आया। अभी मैं जैसा हूं, रहने दें। जैसा हूं, सोया रहने दें।

एक बात उस आदमी को साफ खयाल में आ गई कि यह सोना होना उसका चुनाव है। उसने चुना है। इसे आप ठीक से समझ लें। अगर सोया हुआ सोना आपने चुना नहीं है, तो आप भी चुन नहीं सकते। अगर सोया होना आपकी मजबूरी हो तो जागना फिर आपके हाथ में नहीं हो सकता। फिर जिसने आपको सुलाया होगा, वही जाने। अगर आप ही सो गए है, तो ही आप जाग सकते हैं। और चूंकि हम जानते हैं कि लोग जाग जाते है, इसलिए हम दूसरी बात भी कह सकते हैं कि लोग अपनी ही तरफ से सोए हुए हैं। चेष्टा करने से आदमी जाग जाता है। यह साफ है बात कि चेष्टा करने से आदमी सोया है।

क्या है चेष्टा हमारे सो जाने की? क्या है रस? रस तो होगा ही अन्यथा हम सोएंगे क्यों? रस कुछ होगा। रस कुछ है। वह रस क्या है?

आदमी चैतन्य है। चैतन्य होने के कारण उसके पास दृष्टि है, प्रकाश है, बोध है। यह बोध जैसे ही उसके पास है वह चीजों पर पड़ता है, वस्तुओं पर पड़ता है, लोगों पर पड़ता है। एक दीया हम जलाएं। तो दीया जलते ही करेगा क्या? दीया प्रकाश है, तत्क्षण चीजों को प्रकाशित करेगा। और क्या करेगा? कमरे में अंधेरा था, कुछ दिखाई नही पड़ता था, दीया जला, भभक कर लपट बनी, तत्काल पूरा कमरा आलोकित ओ गया। अगर दीये की चेतना भी हो, तो दीये को अपनी ज्योति दिखाई नहीं पड़ेगी। अगर चेतना हो, तो दिखाई पड़ेगा कमरे में क्या-क्या रखा है? दीवाल है, सोफा है, कुर्सियां हैं, तस्वीरें हैं, तिजोड़ी है, सब कुछ दीखाई पड़ेगा, सिर्फ एक चीज दिखाई नहीं पड़ेगी।। वह जो ज्योति है, वह दिखाई नहीं पड़ेगी।

दीये को ज्योति दिखाई पड़ेगी? दीया अगर होश से भर जाए, अचानक दीये में आत्मा आ जाए, तो क्या होगा? कमरा दिखाई पड़ेगा, जो-जो प्रकाशित हो रहा है वह-वह दिखाई पड़ेगा, और उसी दिखाई पड़ने से वासना का जन्म होगा। दस तस्वीरें लगी है, अगर दीया सजग हो जाए तो तो तस्वीर उसे प्यारी लगती है वह चाहेगा कि मुझे मिल जाए; न भी मिले तो कम से कम मैं उसके निकट पहुंच जाऊं, और पास, और पास, और पास... । दिखें चारों तरफ तिजोरियां रखी हैं, तो दीया सरकने लगेगा। कोशिश करने लगेगा, पास जाने लगेगा।

और आदमी की चेतना का दीया जिस प्रकाश का फैलाता है, वह इस पूरे ब्रह्मांड पर पड़ता है। अनंत-अनंत वासनाएं हो जाती हैं। अनंत वासनाएं पाने की, सोचने की, होने की। और एक बात भूल जाती है, जो स्वाभाविक है, कि जो देख रहा है, जान रहा है, प्रकाशित कर रहा है, इसका विस्मरण हो जाता है। यही निद्रा है।

और जब यह भागती है चेतना की ज्योति, चीजों का पाती लेती है, इकट्ठा कर लेती है, तो अहंकार जन्मता है। कि मैंने यह-यह पा लिया, यह-यह इकट्ठा कर लिया, तो फिर कर्ता निर्मित होता है। इसका मतलब हुआ, बोध से वासना जागती है, वासना की सफलता से कर्ता निर्मित होता है, नींद गहरी पर्त-दर बढ़ती चली जाती है।

इसका यह कारण नहीं है कि चेतना का स्वभाव चेतन्य नहीं है। चैतन्य है स्वभाव, इसीलिए यह सब घटित होता है। अगर चेतना में ज्योति न होती, चेतना न होती तो कुछ भी घटित न होता। पत्थरोमें कहीं वासना जगती है। पत्थर पड़ा है जहां का तहां, बिल्कुल सिद्ध अवस्था में रहात है। कोई वासना की लहर नहीं उठती है। इसलिए तो हम उसे जड़ कहते हैं। अगर जड़ और चेतना का ठीक से अर्थ समझें, तो जहां-जहां वासना उठती है वहीं-वहीं चैतन्य है। और जहां-जहां वासना नही उठती वहीं जड़ है। फिर वासना को भी अगर ठीक से समझें, तो पशुओं में उतनी तीव्रता से नहीं उठती जितनी मनुष्यों में उठती हैं। भभक कर उठती है। तो वासना जितनी भभक कर उठती है, चैतन्य उतना ज्यादा है। इसलिए भभक कर उठती है।

चैतन्य जितना बढ़ता जाता है, वासना उतीन भभक कर उठती है। इसलिए आदमी जितना विकसित हो रहा है, समय में, इतिहास में, उतनी तीव्र वासना की भभक है। इससे घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। इससे बेचैन होने की कोई जरूरत नहीं है। यह सिर्फ खबर दे रही है कि चेतना का प्रकाश और चीजों पर भी पड़ रहा है, जिस पर कल नहीं पड़ रहा था। अब उनकी भी वासना है। अब चांद पर भी पहुंचने की वासना है। अब मंगल पर भी पहुंचने की वासना है। जहा-जहा मनुष्य की चेतना का प्रकाश पहुंचेगा, वहां-वहां होने की वासना जगेगी।

आज हम सोच ही नहीं सकते, अभी हमारे मन में यह खयाल भी नहीं उठता कि चांद पर नहीं गए तो जिंदगी बेकार है। लेकिन पच्चीस साल में उठेगा। पच्चीस साल में हमारे बच्चे जब चांद पर हो उनकी जिंदगी सार्थक मालूम पड़ेगी। जो नहीं जा पाएंगे, वे सिर पीटेंगे कि बेकार है, जिंदगी में कोई सार ही नहीं हैं, चांद पर तो अभी गए ही नहीं।

चांद भी विषय बन जाएगा वासना का। चेतना की भभक और बढ़ गई। चेतना जहां-जहां देखेगी, जितनी दूर तक देख पाएगी, उतना ही चाहेगी, मांगेगी, दौड़ेगी, भागेगी। और उतना ही अपने को भूलती जाएगी। जितन दूर जाएगी, उतना ही अपने को भूलती जाएगी।

इसीलिए मैं कहता हूं कि चेतना का विकास हुआ है मनुष्य के इतिहास में, क्रमशः। आज चेतना अतीत से ज्यादा विकसित है। लेकिन वासना अतीत से ज्यादा विकसित है। और एक मजे की बात, जितना दूर की चीज की कामना होगी उतना ही मैं अपने को ज्यादा विस्मरण कर जाऊंगा। इसलिए अतीत में जितना अपने पर लौटना आसान था, उतना आज अपने पर लौटना आसान नहीं है।

दूरी हमारे वासना के विषयों की बड़ी है। इतना फासला है उन तक जाने में कि लौटना मुश्किल होता चला जाता है। इसलिए अतीत में धर्म आसान था। आज धर्म मुश्किल है।

लेकिन एक और बात खयाल में ले लेली चाहिए। अतीत का आदमी आसानी से धार्मिक हो जाता था, लेकिन उसके धार्मिक होने का विस्फोट था वह इतना बड़ा नहीं हो सकता था जितना आज हो सकता है। जितनी दूर से भटक कर राही लोटेगा घर, उतना बड़ा विस्फोट भी होगा।

तो सभी चीजों के लाभ हैं, हानियां हैं। चेतना भभक कर बड़ी होगी, वासना भी बड़ी हो जाएगी। वासना बड़ी होगी, धर्म पर लौटना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन अगर लौटना होगा, तो गहराई बढ जाएगी।

क्या करें? जब वस्तुएं दिखाई पड़ती हों, वासना पैदा होती है, कर्ता निर्मित हो जाता है। अपने पर लौटने के लिए क्या करें? वस्तुओं पर जाने के लिए क्या करते हैं? वस्तुओं पर जाने का एक ही उपाय है कि वस्तुएं दिखाई पड़ें। अपने पर आने का भी एक ही उपाय है कि यह चेतना जो दूसरों को देखती है, यह प्रकाश जो दूसरों को प्रकाशित करता है, यह दूसरों से मोड़ा जाए, वापिस, अपने पर, ताकि यह स्वयं को भी देख सके। यह स्वयं पर लौटते हुए प्रकाश का नाम ही ध्यान है। वस्तुओं को देखते हुए प्रकाश का नाम ज्ञान है। स्वयं पर लौटते हुए प्रकाश का नाम ध्यान है, और जब अपने पर लौट आता है, यही प्रकाश जिससे सारा जगत प्रकाशित होता है, जिस दिन हम स्वयं इससे प्रकाशित हो जाते हैं, जब यह चेतना की लौ अन्य को ही नहीं स्वयं को भी प्रकाशित कर देती है, तो, तो जो अनुभव आता है वह साक्षी का अनुभव है। बाकी सब अनुभव कर्ता के अनुभव हैं।

इस साक्षी को अदभुत भी कहा। अदभुत इसीलिए कहा कि जो यह नहीं है, वैसा भी होता हुआ मालूम पड़ता है। यही स्ट्रेंज है। अज्ञानी यह नहीं है, अज्ञानी होता हुआ मालूम पड़ता है। सो यह नहीं सकता है, लेकिन सोया सा हो सकता है। यह कभी स्वयं से च्युत से च्युत नहीं हो सकता है, लेकिन फिर भी भटक सकता है। यह स्वयं को कभी खो नहीं सकता है, लेकिन फिर भी भूल सकता है! इसलिए कहा कि चिन्मय और अदभुत साक्षी मैं ही हूं।

"मैं ही वह अद्वैत ब्रह्म हूं। मुझमें ही सब कुछ उत्पन्न होता है। मुझमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित रहता और मुझमें ही सबका लय हो जाता है।" यह जो मेरे भीतर छिपा हुआ साक्षी है, इसको पाते ही मैं उस मौलिक आधार को पा लेता हूं, जिससे सबका जन्म, सबका स्थिर होना और सबका खो जाना जो। उस मौलिक अस्तित्व का अनुभव इस साक्षी के द्वार से हो जाता है।

अंतिम बात। कर्ता के द्वार के चलें तो संसार मिलता है। साक्षी के द्वार से चलें तो परमात्मा मिलता है। और साक्षी और कर्ता के द्वार के द्वार दो नहीं है। एक ही द्वार पर लगी हुई विपरीत तख्तियां हैं। हर द्वार पर होती हैं। बाहर दरवाजे पर लिखा होता है "इन"।। भीतर जाने के लिए। भीतर लिखा होता है "आउट"।। बाहर जाने के लिए। दरवाजा एक ही है। भीतर से जिसे जाना है उसके लिए बाहर का है, बाहर से जिसे आना है उसे भीतर का है।

चेतना जब वस्तुओं की तरफ जाती है, तो वह कर्ता है। और चेतना जब वस्तुओं की तरफ से वापस अपनी तरफ आती है, तो यह साक्षी है। दिशाएं भिन्न हैं, द्वार एक ही है। वस्तुओं पर जाती है तो संसार है।। अनंत। स्वयं पर आती है तो परमात्मा है।। अनंत।

इतना ही।

सब हम रात के ध्यान के प्रयोग के लिए तैयार हों।

चौदहवां प्रवचन

तर्क से पार है द्वार प्रभु में

अणोरणीयानहमेव तद्वन्महानहं विश्वमहं विचित्रम्।

पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि।। 20।।

मैं छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा हूं। इस विचित्र संसार को मेरा ही रूप मानना चाहिए। मैं ही पुरातन पुरूष हूं, जो सबका आधार है। मैं ही शिव का रूप हूं और मैं ही हिरण्यमय हूं।। 20।।

जीवन खंडों में विभजित नहीं, अखंड है। खंडों में विभाजित दिखाई पड़ता है तो भी अखंड है। बहुत तरह के खंड दिखाई पड़ते हैं, लेकिन सभी खंड मूल आधार में संयुक्त हैं और इकट्ठे हैं। अन्यथा जगत के होने की संभवना ही नहीं है, अस्तित्व के होने की संभावना ही नहीं है। अस्तित्व बिखर जाए, अगर खंडों में हो। अस्तित्व बिखरता नहीं क्योंकि खंडों में बंटा हुआ नहीं है, अखंड है।

इसे हम ऐसा समझें। मेरा हाथ है, एक खंड है; मेरी आंख है, एक खंड है; मेरे पैर हैं, एक खंड हैं; लेकिन मैं अखंड हूं। और मेरी आंख और मेरा हांथ गहरे में जुड़े है, संयुक्त हैं। मेरी आंख देखती है मेरा हाथ चीज को बढेंगा। मेरी आंख देखती है सड़क सांप को और मेरा पैर छलांग लगा लेता है। फिर भी पैर अलग है, पैर देख नहीं सकता, आंख छलांग नहीं लगा सकती। हाथ छू सकते है, कान सुन सकते है। हृदय धड़कता, मस्तिष्क सोचता है। खून बहता है, हड्डी-मांस-मज्जा बनती है, ये सब खंड है। और एक-एक खंड अलग से समझने की हम कोशिश करें तो अलग दिखाई पड़ता है।

लेकिन गहरे में उतरे तो सभी खंडों के भीतर कोई एक भी छाया हुआ है, जो सभी को घेरे हुए है। अन्यथा आंख देखे और पैर छलांग लगा जाए, यह कैसे हो? कहीं न कहीं आंख और पैर जुड़े होने चाहिए। कहीं न कहीं आंख और पैर एक ही चीज के दो रूप होने चाहिए। कहीं गहरे में जहां हृदय धड़कता है, वहीं मस्तिष्क का विचार भी जुड़ा हांना चाहिए। क्योंकि मस्तिष्क में विचार फर्क होता है, हृदय कि धड़कन बदल जाती है। मस्तिष्क में विचार का फर्क होता है, खून की चाल बदल जाती है। मस्तिष्क में क्रोध होता है, रक्तचाप बढ़ जाता है। मस्तिष्क में वासना जगती है, सारा शरीर प्रभावित हो जाता है, आंदोलित हो जाता है। पैर में कांटा गड़ता है, आंख में आंसू आ जाते हैं। कहीं न कहीं पैर और आंख, कहीं न कहीं हृदय और मस्तिष्क, कहीं न कहीं इस शरीर का अणु-अणु संयुक्त होना चाहिए।

वह संयुक्तता दिखाई नहीं पड़ती। दिखाई तो ये खंड पड़ते हैं। वह संयुक्तता ओझाल है आंख से। होगी ही। गहरे में छिपी है। ठीक ऐसे ही, जैसे यह व्यक्ति, हमारा व्यक्ति संयुक्त है ऐसे ही यह पूरा विराट भी संयुक्त है।

इसे हम एक तरफ से समझें तो शायद खयाल में आ जाए।

एक-एक आदमी के शरीर में काई सात करोड़ जीवकोश, अर्थ होता है कि एक व्यक्ति के शरीर को बनाने में सात करोड़ जीवंत कोश काम करते हैं। मतलब सात करोड़ जीवन आपके भीतर बसे हैं। आप एक बड़ी बस्ती हैं। इसलिए भारतीयों ने आपके शरीर को पुर कहा है और आपको पुरूष कहा है। आप एक बड़ी बस्ती हैं। सात करोड़ व्यक्ति आपके भीतर हैं। प्रत्येक "सेल" अपने-अपने में अपनी नियती रखता है, अपना व्यक्ति रखता है।

आपके शरीर का एक-एक "सेल" एक-एक व्यक्ति है, अपनी हैसियत से। आपकी हैसियत से नहीं, अपनी ही हैसियत से एक-एक व्यक्ति है। आपके "सेल" को बाहर निकाल लिया जाए, तो वह जिंदा रहेगा, आपके बिना भी, और करोड़ों वर्ष तक जिंदा रह सकता है। आप सत्तर वर्ष में समाप्त हो जाएंगे, वह करोड़ों वर्ष तक जिंदा रह सकता है, अपनी हैसियत से। उनका अपना छोटा सा हृदय है और अपना छोटा सा मस्तिष्क है। और वैज्ञानिक कहते हैं, आज नहीं कल शायद हमे पता चले कि उसका अपना अनुभव, उसके अपने विचार, उसका अपना अहंकार है। क्यों? क्योंकि वह अपनी आत्मरक्षा करता है। वह अपने जीवन को बचाने की चेष्टा करता है। "सेल" हमले में सिकुड़ जाता है, प्रेम में फैल जाता है। वह भी प्रेम करता है।

और उस जीवकोश को आपका कोई भी पता नहीं है कि आप भी है! ये जो सात करोड़ जीवकोश हैं आपके शरीर में इनको बिल्कुल भी पता नहीं कि इनका जुड़ कर भी कोई एक व्यक्ति है। इन सबके जोड़ से भी कोई एक समग्र व्यक्तित्व निर्मित हो रहा है, इसका इन्हे कोई पता नहीं है।

उपनिषद मानते हैं, रहस्यवादी मानते हैं।। कहना ठीक नहीं कि मानते हैं, वे जानते ही है।। कि ठिक हम भी इस विराट जगत में छोटे-छोटे जीवकोश हैं और हम सबसे मिल कर जो निर्मित हो रहा है, उसका हमे पता नहीं हैं। जिस दिन पता चल जाता है उसी दिन उसका नाम परमात्मा है। हम सब भी इस विराट में जीवकोश हैं। हम अपनी हैसियत से जीते हैं। जैसे हमारी शरीर का जीवकोश अपनी हैसियत से जीता है। शायद किसी दिन सूक्ष्म निरीक्षण से पता चलेगा कि उस जीवकोश के भीतर भी छोटे जीवकोश हैं, जो अपनी हैसियत से जीते हैं।

जैसे अणु हैं भौतिकविद के लिए, परमाणु हैं, इलेक्ट्रान है, इनसे मिल कर सारा पदार्थ बना है। ठीक ऐसे ही चैतन्य के भी कण हैं, जीवकोश है, उनसे मिल कर सारा समस्त जीवन बना है। इस विराट जीवन को खंड-खंड में देखना ही विज्ञान है, इसको अखंड देख पाना ही धर्म है।

अगर आपके शरीर को भी वैज्ञानिक छुएगा तो वह खंड-खंड कर लेंगा। तोड़ लेगा टुकड़ो में। एक-एक "सेल" को अलग करके समझने की कोशिश करेगा। निश्चित ही। क्योंकि आपके शरीर के किसी "सेल" को आपका पता नहीं है, आपके शरीर का कोई भी "सेल" आपकी खबर नहीं दे सकता है। इसलिए वैज्ञानिक कहेगा, आदमी के भीतर कोई आत्मा नहीं है। आदमी करोंड़ो "सेलों" का एक जोड़मात्र है। इकाई नहीं, सिर्फ जोड़। आदमी अलग से कुछ भी नहीं है। आत्मा अलग से कुछ भी नहीं है। इन सात करोड़ जीवनकोशों का जोड़ है। फिर वह एक जीवनकोश को काटेगा तो पाएगा, उसमें कुछ रासायनिक तत्व है, पाएगा के कुछ धातुएं हैं, पाएगा की कुछ रस हैं, पाएगा कि कुछ पदार्थ हैं। वे पदार्थ के कण भी उसे खबर नहीं देंगे कि हमसे मिलकर जो बनता था, वह एक जीवन था। वे भी सिर्फ अपनी ही खबर देंगे, उन्हें भी जीवन का कोई पता नहीं है।

तो अंततः वैज्ञानिक कहेगा कि जीवकोश रासायनिक पदार्थों का जोड़ है और व्यक्ति की आत्मा इन जीवकोशों का जोड़ है। जोड़ है! इसका ठीक से समझ लेना। अलग कोई व्यक्तित्व नहीं है जीवन में, सिर्फ जोड़ है! खंडों का जोड़ ही अखंड है।

धर्म इसकी ठीक विपरीत मान्यता है। धर्म कहता है, खंड का जोड़ नहीं है अखंड। खंड अखंड का भाग है। अखंड खंडों का जोड नही है। खंड अखंड का भाग है। खंडों के जोड़ से अखंड नहीं बनता, अखंड अपनी हैसियत से है। वह कोई गणितिक जोड़ नहीं है, सावयव एकता है। अखंड अपनी हैसियत से है, खंडों को उसका पता नहीं है। क्योकि खंड को अखंड का पता इसलिए नहीं होता कि खंड अपने भीतर ही बंध कर जीता है। उसे पता नहीं

है। जब खंड अपने से बाहर निकलता है, अपने से उपर उठता है, जाग कर अपने से पार देखता है, तब उसे अखंड की प्रतीती शुरू होती है।

इस अपने से उपर उठने का सूत्र साक्षी है। इस अपने से पार उठने का सूत्र साक्षी है। जब भी कोई अपने प्रति भी साक्षी होकर देखता है, तो उसके भीतर अखंड का स्मरण शुरू हो जाता है। क्योंकि यह सब जोड़ तो उसे दिखाई पड़ता है।। हाथ दिखाई पडता है, पैर दिखाई पड़ते हैं, आंख दिखाई पड़ती हैं, इन सबको वह देखने वाला कौन है? वह अलग हो जाता है। अलग होते से ही खंड के उपर अखंड की छाया पड़नी शुरू हो जाती है, या खंड के भीतर अखंड का अंकुरण शुरू हो जाता है। या खंड के भीतर जो सोया हुआ भाव था वह टूट जाता है, जागरण पकड़ता है और अपने से पार आंख उठती है।

ऐसा हम समझें कि मां कि पेट में एक बच्चा हैं गर्भ में, उसे इस जगत का कोई भी पता नहीं है। क्यों पता नही हैं? क्योंकि मां के पेट में जो बच्चा है, वह अपनी ही हैसियत से एक इकाई है। और उसका जगत काई सीधा संबंध नहीं है। उसे पता भी नहीं है कि सूरज निकलता है, चांद-तारे है; उसे पता भी नहीं कि लोग है, विराट जगत है, उसे कुछ भी पता नहीं है। और गर्भ के भीतर बच्चा इतना सुनिश्चित इकाई में बंधा हुआ है कि वह अपने को ही जगत मान ले तो कोई आश्चर्य नहीं है। क्योंकि न उसे खाने के लिए आयोजन करना पड़ता है, न उसे पीने के लिए आयोजन करना पड़ता है, न उसे आत्म-रक्षा के लिए आयोजन करना पड़ता है, उसे कुछ करना ही नहीं पड़ता है, वह सिर्फ होता है। और परिपूर्ण होता है। उसको कहीं कोई कमी नहीं होती। उसे खयाल भी नहीं आ सकता कि मुझसे अलग कुछ है। लेकिन गर्भ के बाहर आएगा, आपनी सीमाओं को तोड़ेगा तो जगत का प्रारंभ होंगा।

इसलिए वैज्ञानिक।। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चे का जन्म जो है, बहुत ट्रामेटिक है, उसे बड़ा धक्का लगता है। एकदम एक सीमा में बंधा हुआ अस्तित्व था, एकदम से टूट जाता है और एक असिम जगत में खड़ा हो जाता है जहा कुछ भी सूझता नहीं हैं। पहली बार पता चलता है, मै ही नहीं हूं और भी बहुत कुछ है। मनावैज्ञानिक कहते हैं कि यह धक्का इतना गहरा है जिंदगी भर इस धक्के से आदमी संभल नहीं पाता। और मनावैज्ञानिक यह भी कहते हैं।। इसमें थोड़ी सच्चाई है।। कि आदमी जो शांती की खोज करता है, आनंद की खोज करता है, स्वतंत्रता की खोज करता है, आत्मा की खोज करता है, परमात्मा की खोज करता है, यह उसके गर्भ के अनुभव के कारण करता है। क्योंकि गर्भ में वह परम स्वतंत्र था, परम आनंदित था, परम शांत था, कोई तनाव न था, कोई सीमा न थी, जीवन पूरा का पूरा उपलब्ध था। उसमें कहीं कोई बाधा न थी; कोई जिम्मेवारी न थी, कोई बोझ न था, कोई चिंता न थी।

मनोवैज्ञानिक कहते है कि यह जो मोक्ष की खोज है, यह उस गर्भ में जो अनुभव हुई है शांति, उसके ही कारण है। इसमें थोड़ी दूर तक सच्चाई है। क्योंकि वह अनुभव गहरा है और फिर उसके बाद जगत का धक्का गहरा है। अभी किसी मनोवैज्ञानिक ने इस बात को और भारतीय चिंतन को जोड़ा नहीं, नहीं तो उन्हे बड़ी हैरानी होगी। अगर वे उस चिंतन को जोड़ेंगे तो भारतीय मन की यह आकांक्षा कि जन्म से कैसे छुटकारा हो, मरण से कैसे छुटकारा हो, तत्काल उनके खयाल में आ जाएगी कि यह जन्म से छुटकारे का मतलब है गर्भ से जो धक्का लगा है, उससे कैसे छुटकारा हो? जन्म लेने से जो धक्का लगा है, उससे कैसे छुटकारा हो?

मोक्ष जो हमारी धारणा, वह विराट गर्भ की है। उसे हमने हिरण्यमय गर्भ कहा भी है, दि वूंब ऑफ दि डिवाइन। वह जो परमात्मा का गर्भ है, उसमे मैं ऐसे लीन हो जाऊ जैसे मां के गर्भ में था। न कोई चिंता, न कोई पीड़ा न पराए का पता। लेकिन बच्चा बाहर आता तो उसे जगत दिखाई पड़ता है।

बीज टूटता है, अंकुरीत होता है तो उसे सूरज के दर्शन होते हैं। जहां तक हमारी स्थिती है, जैसे हम है, अभी हम अहंकार की खोल में बंद है। उसके पार हमें कुछ नहीं दिखाई पड़ता। मैं ही मैं दिखाई पड़ता हूं। अगर कभी थोड़ी बहुत झलक किसी की मिलती भी है तो वह भी मेरे होने के कारण मिलती है। "मेरा" मित्र है, "मेरा" भाई है, "मेरी" पत्नी है, "मेरा" पती है। तो मेरे से कहीं थोडा सा संबंध जुड़ता है तो थोड़ी सी झलक मुझे मिलती है। बस यही मेरा जगत है। इसके पार जो विराट फैला हुआ है, उसका मुझे कोई पता नहीं है। धर्म एक पुनर्जन्म है, एक रिबर्थ। एक और गर्भ को तोड़ना है। यह अहंकार को भी तोड़ देना है। लेकिन यह अहंकार तभी टूटे, जब मेरे खंडों का जो जोड है उसके पार मुझमें कोई अंकुरण शुरु हो जाए। कुछ भिन्न मेरे भीतर जागने लगे, मरे जोड़ से ज्यादा। जिस दिन व्यक्ति को खंडों के बीच अखंड की प्रतीति शुरू होती है, उसी दिन ब्रम्ह की यात्रा पर हम निकले, ऐसा जानना।

पहली बात तो अखंड खंडों का जोड़ नहीं है। इसे हम थोड़ा इस तरह से समझ ले तो शायद खयाल मे आ जाए। क्योंकि बात तो कठिन है। और अनुभव की न होने से और कठिन हो जाती है समझना।

एक से दस तक की गिनती है, यह सिर्फ जोड़ है। एक-एक को दस बार जोड़ देने से दस हो गया। अगर एक-एक को दस बार निकाल देंगे तो पीछे शून्य हो जाएगा, कुछ बचेगा नहीं। तो दस खंडों का जोड़ है। जोड़ से ज्यादा कुछ भी नहीं है दस में।

लेकिन एक कविता है, उसमें जितने शब्द है उनका जोड ही नहीं है वहीं, उनसे थोड़ी ज्यादा है। वह जो थोड़ी ज्यादा है, वही गणित और काव्य का फर्क है। अगर कोई कहे कि यह सिर्फ शब्दों का जोड़ है तो वह गलत कह रहा है। जब एक कविता को आप पढ़ते है, उसके शब्द भूल भी जाए तो भी कुछ भनक आपके भीतर शेष रह जाती है। शब्द याद भी न रह जाए तो उस काव्य का जिस भांति से हृदय में स्पर्श हुआ था, वह पीछे छूट जाता है। अगर कविता के सारे शब्दों को अलग निकाल कर रख लें, एक कागज पर क्रमवार लिख दें, तो उनको पढ़ने से कुछ भी भाव पैदा नहीं होता। वह कविता के उन्हीं शब्दों को दूसरे ढंग से जमा दें, सब काव्य बिखर जाता है, विसर्जित हो जाता है। कविता को पढ़तेवक्त जो आपके भीतर अनुभूती होती है वह शब्दों का जोड़ नहीं है, जोड़ से कुछ ज्यरदा है। शायद इसे भी समझना थोड़ा कठिन हो।

तो ऐसा समझें, एक चित्रकार केनवास पर चित्र बनाता है, रंगो से बनता है, लेकिन चित्र रंगों का जोड़ नहीं है। वे ही एक पिकासो के हाथ में कुछ और हो जाता हैं। वे ही रंग वानगॉग के हाथों में कुछ और हो जाते है। वे ही रंग आप भी पोत डाले तो कुछ भी नहीं होते। यह भी हो सकता है कि आप ज्यादा कीमती रंग और ज्यादा रंग केनवास पर पोत डालें, और पिकासो साधारण से रंग उठा कर केनवास पर फेंक दे तो भी केनवास कुछ और हो जाता है। निश्चय ही रंगों का जोड़ नहीं है। चित्र जोड़ से कुछ ज्यादा है। रंग से प्रकट होता है, लेकिन रंग ही नहीं है। कविता शब्द से प्रकट होती है, लेकिन वह शब्द ही नहीं है।

एक वीणावादक वीणा पर चोट कर रहा है, यह सिर्फ तार पर की गई चोट नहीं है। यह चोट कोई भी कर सकता है, संगीत उससे पैदा नहीं होता। इस चोट में भी एक भीतरी समन्वय है। इस चोट में भी चोट से ज्यादा एक गुण है। यह संगीत जो संगीत सुनाई पड़ रहा है, इस सुनाई पड़ने वाले संगीत में एक छिपा हुआ संगीत भी है। वह छिपा हुआ संगीत प्रकट हो रहा है इस संगीत से, लेकिन इसका जोड़ नहीं है।

जोड़ का मतलब है, खडों मे जितना है, जोड़ में भी उतना ही होगा। जोड़ से ज्यादा का अर्थ होता है, खंडों में जो नहीं दिखाई पड़ता था, वह जोड़ में प्रकट होता है। जोड़ खंडों के जोड़ से ज्यादा अगर हो तो सावयव, आर्गनिक यूनिटी पैदा हो जाती है।

कई बार ऐसा हो जाता है कि इन दोनों में हम फर्क नहीं कर पाते हैं। और अगर फर्क न कर पाए तो जीवन का एक बहुमूल्य आयाम खो जाता है। हम फर्क नहीं कर पाते है। पहली बात तो हमारी समझ में आ जाती है, दूसरी बात हमारी समझ में नहीं आती।

इसे ऐसा समझें।

मेरे शरीर को काट डाला जाए, सब खंड अलग रख लिए जाएं, और फिर सारे खंडों को जोड़ कर मुडे खड़ा कर दिया जाए। मेरे सारे खंड अलग कर लिए जाएं और फिर सारे खंडों को जोड़ कर खड़ा कर दिया जाए। फिर उस मोटर का इंजिन है, उसको खोल कर एक-एक टुकड़ा अलग कर दिया जाए और फिर सारे टुकड़े जोड़ दिए जाएं। तो फर्क पता चलेगा कि मोटर का इंजिन अंगों का एक जोड़मात्र था। तोड़ दो, फिर जोड़ दो। फिर इंजिन शुरु हो जाता है। लेकिन आदमी के शरीर को तोड़ दो, फिर बिल्कुल वैसा ही जोड़ दो, कुछ भी शुरु नहीं होता। कोई चीज खो गई। जो जोड से ज्यादा थी वह खो गई।

इसका मतलब यह हुआ कि जो जोड़मात्र है, उसको हम विश्लेषण से समझ सकते है। जो जोड़ से ज्यादा है, उसे हम विश्लेषण से कभी नहीं समझ सकते। इसलिए अनेक बार ऐसा हो जाता है कि व्याकरण में जो बहुत गहरा निष्णात है वह काव्य को समझने में असमर्थ हो जाता है। क्योंकि वह केवल जोड़ जानता है भाषा के नियम जानता है, भाषा का गणित जानता है, सब जानता है, लेकिन भाषा में कुछ ऐसा भी प्रकट होता है जो नियम के पार है, जो गणित दूर है, जो व्यवस्था का हिस्सा नहीं है।। व्यवस्था में भीतर प्रकट जरूर होता है लेकिन व्यवस्था के बाहर से आता है, उतरता है।। वह चूक जाता है। इसलिए भाषाशास्त्री जितना ज्यादा भाषा को जानता है, उतना ही मुश्किल हो जाता है उसे काव्य को समझना। क्योंकि काव्य कि समझ एक दूसरे ही आयाम की मांग करती है। वह आयाम है कि जीवन-इकाई खंड का जोड़ नहीं होती, जोड़ से जयादा होती है। और वह जो ज्यादा है वह सिर्फ प्रकट होता है। अगर आपने तोड़ दिया तो वह अप्रकट हो जाता है, वह खो जाता है।

इस सूत्र में इस गहन सत्य की उद्घोषणा की गई है। ऋषि ने कहा हैः "मैं छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा हूं।" दोनों में ही हूं। ऐसा मत सोचना कि मैं छोटे से छोटा हूं तो मैं बड़े से बड़ा कैसे हो सकूंगा? इस सूत्र में ऋषि कह रहा है कि खंड भी मैं ही हूं। और अखंड भी मैं ही हूं। क्षुद्रतम भी मैं ही हूं यह विराटतम मे भी मैं हूं। इसका मतलब हुआ कि क्षुद्र और विराट दो चीजें नहीं है, संयुक्त हैं। नहीं तो मैं दोनों मैं कैसे हो सकूंगा? इस अंगुली में मैं ही हूं और इस पूरे शरीर में भी मैं ही हूं। असल में मेरा होना एक विस्तार है, जो क्षुद्र से लेकर विराट तक फैला हुआ है। या ऐसा कहें कि क्षुद्र और विराट मेरे ही दो छोर हैं, सूक्ष्म से सूक्ष्म, जहां दर्शन समाप्त हो जाता है और दिखाई नहीं पड़ता, वहां भी मैं हूं। और विराट से विराट, जहां दर्शन को सीमा नहीं मिलती, अनंत हो जाता है, वहां भी मैं ही हूं। यहां "मैं" से अर्थ ऋषि का नहीं है। जहां "मैं" से अर्थ अहंकार का नहीं है। यहां "मैं" से अर्थ उस साक्षी का है, जिसकी पिछले सूत्र में चर्चा की गई है। उस साक्षी का है। उस साक्षी का अनुभव होते ही क्षुद्र और विराट दानों मेरे छोर है।

और यह क्षुद्र और विराट।। अनेक दिशाओं में फैला हुआ है। जिसे जीसस ने कहा है; बिफोर अब्राहम ऑफ वॉज।। अब्राहम था, उसके पहले भी मैं था। अब्राहम को हुए हजारो वर्ष हो चुके थे जीसस के वक्त में। अब्राहम के पहले मैं था, इसका क्या मतलब? अर्जुन से कृष्ण ने कहा है कि इस गीता जो मैं तुझे कहता हूं, मैंने पहले फलां ऋषि को कहा था। उसके पहले फलां ऋषि को कहा था। उसके पहले फलां ऋषि को कहा था। और इन ऋषियों को हुए हजार वर्ष हो चुके थे।

यह कृष्ण और जीसस क्या कह रहें है? यह कह रहे हैं कि समय के आयाम में जो प्रथम है वह भी मैं हूं, और समय के आयाम में जो अंतिम होगा वह भी मैं हूं। यह जो समय की धारा है, इसमे प्रथम और अंतिम जुड़े है। यह समय की पूरी धारा मेरी ही धारा है। क्षुद्रतम कण है, उसमें भी मैं ही हूं। और एक विराट सूर्य है, उसमें भी मैं ही हूं। यह क्षेत्र, स्पेस के दो छोर हैः छोटे से छोटा, बड़ा से बड़ा। पहला, अंतिमः ये समय के छोर हैं। हर आयाम में एक का ही विस्तार है।

ऊपर से देखने से बहुत कठिन होगा मालूम कि एक क्षुद्र कण पड़ा है आपके आंगन में, वह भी वहीं है, और यह विराट जगत भी वहीं हैं। गणित मुश्किल में पड़ेगा। क्योंकि गणित कैसे मान सकता है कि यह छोटा सा कण और यह विराट जगत, दोनों एक है। गणित कहेगा यह छोटा सा कण है, कहां यह विराट जगत! कहां यह विराट जगत, कहां यह छोटा सा कण! कहां यह घास की दूब और कहां यह विराट जीवन! लेकिन घास के एक छोटे से तिनके में भी वहीं जीवन प्रकट हो रहा है जो एक महासूर्य में जल रहा है।

इसे अगर हम वैज्ञानिक ढंग से भी समझना चाहें, तो समझ सकते हैं। थोड़ी सहायता मिलेगी।

कभी आपने खयाल न किया होगा कि अगर वैज्ञानिक गणनाओं को भी हम थोड़ी सी गहराई में खोजना शुरु करे और विज्ञान को सीमा में न बांधे और वैज्ञनिक बुद्धि को एक मतांधता न बनाएं, तो विज्ञान से भी झलकें धर्म की ही मिलना शुरू हो जाती हैं। क्योंकि अंततः विज्ञान भी तो उसी जगह काम कर रहा है, उसी जीवन पर जिस पर धर्म। कहीं न कहीं उसकी प्रतीतियां भी धर्म की अनुभूतियों से कुछ न कुछ संबंध तो बनाएंगी ही। क्योंकि दोनो का काम तो एक जगह चल रहा है, एक ही जीवन पर। एक छोटा सा घास का तिनका है, उसके भीतर जीवन का विज्ञान में क्या अर्थ है? उसके भीतर भी जीवन का अर्थ वहीं है जो आपके भीतर है, एक महासूर्य के भीतर है।

महासूर्य के भीतर क्या हो रहा है? बड़े पैमाने पर हो रहा है। हमारी पृथ्वी जितनी बड़ी है, हमारा सूर्य उससे साठ हजार गुना बड़ा है। वैज्ञानिक यह बहुत छोटा, मीडियाकर सूर्य है। सूर्य यह कोई बहुत बड़ा नहीं है। इससे बहुत बड़े-बड़े सूर्य जगत में हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई दो अरब सूर्य जगत में है। जिनको आप रात में तारे कहते हैं वे महासूर्य हैं। सिर्फ फासला इतना ज्यादा है कि वे छोटे तारे दिखाई पड़ते हैं। यह हमारा सूर्य उनके सामने बहुत छोटा है। इसकी कोई गणना नहीं है। इस विराट जगत में अगर इस सूर्य का आप पता पूछेने जाएं तो पता लगाना बहुत मुश्किल होगा कि आप किस सूर्य की बात कर रहे हैं।

जिस दिन हम अंतरिक्ष यात्रा में सफल हो जाएंगे और दूर की यात्रा पर आदमी निकलेगा, उस दिन अगर हमें कहीं किन्हीं दूसरी पृथ्वीयों पर।। और वैज्ञानिक कहते हैं कि कम से कम पचास हजार ग्रहों पर जीवन है, कम से कम होना चाहिए।। तो उन ग्रहों पर अगर हम कभी हम पहुचेंगे तब उनको पहली दफा पता चलेगा कि एक सूरज और भी है जिसके पास एक छोटी सी पृथ्वी पर जीवन है। यह जो दो-तीन अरब सूर्यों का विस्तार है, इनमें भी जीवन का जो सूत्र है वह वही है जो एक छोटे से घास के तिनके में है। वैज्ञानिक उसे कहते हैं, आक्सीडाइजेशन। वे कहते हैं कि छोटा सा तिनका भी हवा से आक्सीजन को पीता है और भीतर जलाता है। उसके जलने से ही जीवन चलता है। जैसे दीया आपका जल रहा हो है। आपने कभी खयाल किया कि तुफानी हवा चल रही है और दीया जल रहा है, तो यह हो सकता है कि तूफानी हवा में दिया बच जाए, लेकिन बचाने के लिए अगर एक बर्तन आप उस पर ढांक दें, तो जल्दी बुझ जाएगा। क्योंकि बर्तन के भीतर की आक्सीजन जैसे ही दीया पी लेगा, जला लेगा, फिर मरेगा, फिर बच नहीं सकता। वह दीया पूरे वक्त हवा की आक्सीजन को लेकर जला रहा हैं।

आप भी वहीं कर रहे हैं। पूरे वक्त जो श्वास चल रह रही है, वह आक्सीजन लेने के लिए चल रही है, और आप के भीतर एक अग्नी है जो उस आक्सीजन को जला रही है। इसलिए आपकी श्वास बंद कर दें और प्राण छूट गए। जब आप दिए पर बर्तन ढांक देते हैं, आपने उसकी श्वास बंद कर दी, प्राण छूट गए। एक घास के उपर बर्तन को ढांक दें, आपने उसकी श्वास बंद कर दी। प्राण छूट जाएंगे।

एक खूबसूरत पौधे को घर के भीतर लगा कर रख लें, दो दिन में पाएंगे कि उसका प्राण जाने लगा। क्योंकि उसे जो जीवंत, जो प्रक्रिया थी उसके भीतर विज्ञान के हिसाब से वह इतनी थी कि वह अपने भीतर हवा को ले जाकर उसमें से आक्सीजन जला रहा है। और जब आक्सीजन जल जाती है, तब जो कार्बन बच जाता है उसको बाहर फेंक रहा है। हम भी फेंक रहे है, पूरे वक्त। इसलिए अगर एक भीड़ भरे कमरे में आप सो जाएं और सब तरफ से कमरा बंद हो, रात भर में सारे लोग मर सकतें हैं। क्योंकि अगर कमरे की आक्सीजन चूक जाए और सब कार्बन को फेंकते चले जाएं और फिर मजबूरी में कार्बन ही पीना पड़े, तो आप मर जाएंगे।

चाहे महासूर्य जल रहा हो और एक घास का तिनका जी रहा हो, और चाहे एक बुद्ध जी रहे हो, जीने का नियम एक ही है। सब अपन-अपने पैमाने पर प्राणवायु को जला रहे हैं, विज्ञान के हिसाब से। तो अगर हम यह भी समझे तो भी पता लगेगा कि क्षुद्र से क्षुद्र में और विराट से विराट में एक ही जीवन है।

कुछ वैज्ञानिकों को संदेश है कि पृथ्वी भी श्वास लेती है। पृथ्वी भी श्वास लेती है; रोएं-रोएं, छिद्र-छिद्र से। और इसलिए कोई भी पृथ्वी जीवित नहीं हो सकती अगर उसके पास कम से कम दे सौ मील का वायु का घेरा न हो। यह हमारी पृथ्वी भी, दो सौ मील तक वायु का घेरा है इसके चारों तरफ। इसलिए अब तो वैज्ञानिकों को सूत्र मिल गया है कि जिस ग्रह के पास भी वायु का घेरा है, अगर उसमें कार्बन और आक्सीजन की एक निश्चित मात्रा है, तो वहां जीवन होगा। क्योंकि वह पृथ्वी जीवित है। इसका मतलब हुआ कि कुछ पृथ्वीयां जीवित हैं, कुछ पृथ्वीयां मृत हैं। लेकिन जो आज मृत है, वह कभी जीवित थी। और आज जो जीवित है, वह कभी मृत हो जाएंगी। इनकी जीवन-प्रक्रिया लंबी है, यह दूसरी बात है कि हम कई बार मरते हैं और जीते हैं।। अनेक-अनेक बार।। और पृथ्वी जीती रहती है।

पहाड़ भी श्वास लेते हैं। पहाड़ों में भी मुर्दा पहाड़ हैं और जिंदा पहाड़ हैं। जिस पहाड़ी पर हम बैठे हुए हैं, यह एक मरी हुई पहाड़ी है। यह कभी जीवित थी। यह जगत की पुरानी से पुरानी पहाड़ी है। हिमालय इस पहाड़ी के सामने एक बच्चा है। लेकिन हिमालय अभी जीवित है। यह जानकर आप हैरान होंगे कि हिमालय पर भागने का सन्यांसी का आकर्षण गहरे में कुछ और है। हिमालय इस पृथ्वी पर थोड़ से जीवित पर्वतों में से एक है। अभी जीवित है अभी बढ़ रहा है, अभी श्वास ले रहा है। हिमालय रोज बढ़ रहा है। ऊंचा होता जा रहा है। अभी उसमें गति है, "ग्रोथ" है, बढ़ाव है। जो जीवित होता है, उस पर साधना बहुत आसान हो जाती है। लेकिन साधना की पद्धति पर निर्भर करेगा। साधना की पद्धति पर निर्भर करेंगा कि कौन सा पहाड़? कुछ साधना पद्धतियां ऐसी हैं कि मुर्दा पहाड़ सहयोगी होता है।

जैनों ने जहां-जहां अपने तीर्थ चुने है, वे सब मुर्दा पहाड़ है। जानकर चुने हैं। जैनों कि जो साधना पद्धति है, यह मुर्दा पहाड़ पर सहयोगी है। इसलिए जैनों ने हिमालय बिल्कुल छोड़ दिया। हैरानी कि बात मालूम पड़ती है। हिमालय जैसा पर्वत जिस देश में हो, उसमें एक धर्म उसको बिल्कुल छोड़ दे, कहीं उससे संपर्क ही नहीं बनाए, जरुर कुछ गहरा कारण होगा। कारण है। हिमालय जिंदा पहाड़ है। जैनों की जो पद्धति है, वह गहरे में तप भर निर्भर है। जितनी मुर्दा जगह हो, तप उतना गहन हो जाता है।

हिंदुओं की जो जीवन-पद्धती है, वह जीवन को घटाने की तरफ नहीं है, बढ़ाने की तरफ है। दोनो एक अंत पर पहुंच जाते हैं। अगर जीवन बिल्कुल घट कर शून्य हो जाए, तो आदमी विराट में प्रवेश कर जाता है। या जीवन बढ़कर बिल्कुल पूर्ण हो जाए, तो भी आदमी विराट में प्रवेश कर जाता है। तो हिंदुओं ने जितने तीर्थ चुने है, जितने स्थान बनाए साधना के, वह जीवित पहाड़ चुने हैं। और अगर जीवित पहाड़ न मिला तो नदी चुनी है। यह मजे की बात है कि कोई मुर्दा नदी नहीं होती। सब नदियां जिंदा होती हैं। क्योंकि मुर्दा नदी का मतलब होता है कि सिर्फ नदी का रास्ता रह जाता है। क्योंकि मुर्दा नदी का मतलब होता है कि सिर्फ नदी का रास्ता रह जाता है, पानी तो सूख जाता है। मुर्दा नदी का मतलब होता है कि वह खो गई, वह नहीं है।

जहां जीवन मिल सकता था, हिंदुओं ने वहां, वहां-वहां अपने साधना के स्थल चुने। जहां जीवन खो गया था, वहां-वहां जैनों ने अपने साधना के स्थल चुने, ताकि वहां तप में और गहनता हो सके, तप में और गहरा उतरा जा सके।

जैन-पद्धति पूर्ण मृत्यु को उपलब्ध करने की पद्धती है। इसलिए "संथारा" की आज्ञा दी जा सकी। हिंदू-पद्धति पूर्ण जीवन को पाने की पद्धति है। परिणाम एक है। क्योंकि चाहे जीवन शून्य हो जाए और चाहे जीवन पूर्ण हो जाए।। दो छोर हैं।। इनसे आप बाहर गिर जाते हैं। पूर्णता के छोर से गिरते हैं तो भी, शून्यता के छोर से गिरते हैं तो भी, बाहर गिर जाते हैं।

पृथ्वी भी श्वास ले रही है, पहाड़ भी श्वास ले रहा है, उनकी प्रक्रिया भी वही है। जमीन के भीतर कोयले की खदाने हैं। विज्ञान कहता है कि वह जमीन के द्वारा जो कार्बन इकट्ठा होता है, वही वैद्य। आपके भीतर भी कोयला इकट्ठा होता है। वही कोयला इकट्ठा हो-हो कर आपको बूढ़ा करता है। जितना कार्बन इकट्ठा होता जाता है, उतने आप बूढ़े होते चले जाते हैं। जिस दिन कार्बन कि मात्रा इतनी हो जाती है कि वह आपके जीवन से ज्यादा हो जाता है, उस दिन आप मरने के करीब पहुंच जाते है। जिस दिन आप मरते है, विज्ञान कि भाषा में, उस दिन आप कार्बन हो गए। उस दिन आप में आक्सीजन न रही, बात समाप्त हो गई। आपका यंत्र टूट गया। अगर हम इसे जीवन की प्रक्रिया मान लें, है यह जीवन की प्रक्रिया।। कम कम कम जीवन के प्रकट होने की; जीवन यही नहीं है, लेकिन जीवन के प्रकट होने का अवसर यही है कि वहां एक विशेष संतुलन आक्सीडाइजेशन का, आक्सीकरण का एक विशेष संतुलन चाहिए।। तो सारा विराट जगत इसी एक ही प्रक्रिया से जीता है। और सारा विराट जगत एक ही आंदोलन से जीता है। पृथ्वी श्वास लेती है तो ठीक है।

इधर कुछ रुसी वैज्ञानिकों का खयाल बनना शुरु हुआ है कि जैसे हमारी छाती फूलती है और सिकुड़ती है श्वास लेने में, ऐसे पृथ्वी प्रतिपल थोड़ी बड़ी और छोटी होती है। बहुत बार शायद पृथ्वी के इसी हड़कंप से बहुत से हलन-चलन पैदा हो जाते हैं। आज नहीं कल यह बात शायद साफ हो जाएगी कि पृथ्वी पर भी हृदय के दौरे पड़ जाते हैं। न केवल पृथ्वी बल्कि पूरा विश्व भी यूनिवर्स भी श्वास लेता है और पूरा विश्व भी छोटा और बड़ा होता है। जैसे हमारी छाती फूलती और... । निश्चित ही उसके छोटे-बड़े होने का समय लंबा होगा। क्योंकि उसकी श्वास बड़ी गहरी होगी।

हिंदुओं ने इसको प्रतिक में कहा है कि जो हमारे लिए एक कल्प है, वह ब्रम्हा के लिए एक दिन है। तो जो हमारे लिए करोड़ों श्वास होगी, वह ब्रम्हा के शायद एक श्वास हो। शायद वह श्वास इतनी लंबी होगी कि हम उस श्वास में अनेक बार जन्मेंगे और मरेंगे। इसलिए हमें उसका पता भी नहीं चलेंगा।

जब हम श्वास ले रहे हैं तब उसमें भी जीवाणु मर रहे हैं, उनको कभी पता नही चलेगा। हमारी एक श्वास भीतर जाती है, उस बींच हमारी श्वास में न मालूम कितने करोड़ जीवाणु जी लेते हैं। हमारा ओंठ एक बार दूसरे

ओंठ से मिलता है, उस मिलने क्षण में न मालूम कितने करोड़ जीवाणु जी लेते हैं।। जन्म लेते हैं, मर जाते हैं। उन्हे पता भी नहीं चलेगा कि यह ओंठ वापस खुलेगा। जो हमारी श्वास में जन्मा, जीआ, जन्म दे गया दूसरों को, मर गया, उसे कैसे पता चलेंगा कि यह श्वास अब बाहर भी लौटेगीं?

पूरा विश्व श्वास ले रहा है। इसी को हिंदुओं ने कहा है कि जो अंड में है, जो पिंड में है, वही ब्रह्मांड में है। विस्तार है। जो अणु में है, वही विराट में है। विस्तार का फर्क है।

लेकिन ऋषि कहता है, "मै छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा हूं। इस विचित्र संसार को मेरा ही रूप मानना चाहिए। मैं ही पुरातन पुरुष हूं, जो सबका आधार है। मैं ही शिव का रूप हूं और मैं ही हिरण्यमय हूं।"

इस विचित्र संसार को मेरा ही रूप मानना। विचित्र जान कर कहां है। विचित्र इसलिए कहा है कि गणित इसे समझा पाएगा। तर्क इसे हल न कर पाएगा। यह इसकी विचित्रता है। और जो इसे तर्क से हल कर लेता है, वह विचित्र नहीं है। गणित जिसे निबटा लेता है, वह विचित्र नहीं है। विचित्र का मतलब ही होता है कि गणित जहा असमर्थ है, तर्क जहां व्यर्थ है, हिसाब-किताब के कुछ पकड़ मे नहीं आता है।। बल्कि उसकी पकड़ में आ जाता है जो सब हिसाब-किताब छोड़ कर छलांग लगा जाता है। यह संसार विचित्र इसलिए है कि कभी-कभी पागल इसे समझ लेते हैं और बुद्धिमान इसे चूक जाते है।

शायद हमारी सभी की पीड़ा ही यही है कि अति बुद्धिमत्ता है। शायद पीड़ा ही यही है कि हमने सब नियम खोज लिए है कि ठीक क्या है, सत्य क्या है, सही क्या है, और जो उसमें नहीं बैठता तो मुश्किल में पड़ जाते हैं।

यूनान ने तर्क को जन्म दिया और दो-ढाई हजार वर्षों में उसकी काफी प्रक्रिया को विकसित किया। लेकिन मजे की घटना यूरोप में घटी। और वह घटना यह घटी कि यूनान ने तर्क के आधार से सत्य को खोजने कि जो चेष्टा कि थी, सत्य तो नहीं मिला दो हजार वर्षों की चेष्टा में, मिला कुछ और। और पश्चिम में यूनान की जड़ों पर बढ़े हुए पौधे का जो आज फूल खिला है, वह कहता है, जीवन में कोई सत्य है ही नहीं; जीवन अर्थहीन है, मीनिंगलेस है। जीवन एब्सर्ड है, बेमानी है। सत्य तो मिला नहीं, अर्थ तो मिला नहीं, जीवन का अभिप्राय तो मिला नहीं, जीवन का प्रयोजन तो मिला नहीं, किसलिए है इसका उत्तर तो मिला नहीं, लेकिन तर्क जैसे-जैसे बढ़ता चला गया वैसे-वैसे निष्पत्ति हाथ में यह आई कि सत्य है ही नहीं और सत्य कि सारी बातचीत केवल शब्दों का खेल है।

इसलिए पश्चिम में अनुभव किया जा रहा है कि दर्शन मर गया है। ऑक्सफोर्ड हो या कैंब्रिज हो, या हावर्ड हो, वहां जो आज पढ़ाया जा रहा है दर्शन के नाम पर, वह दर्शन बिल्कुल नहीं है। वहां आज यह पढ़ाया जा रहा हैं कि दर्शन का जन्म ही भाषागत भूल से हुआ है। लिंग्विस्टिक है मामला, भाषा का मामला है। यह गलती भाषा की हो गई है। यह भाषा की वजह आदमी ऐसे-ऐसे सवाल उठा लेता है, फिर उनके प्रश्न पूछने लगता है। कोई सत्य नहीं है। सत्य केवल भाषगत खेल है। और कोई अर्थ नहीं जीवन में, अर्थ सब कल्पित है। और जीवन मेंशृंखलाबद्ध सूत्र नहीं है, जीवन एक अराजकता है।

तर्क यहां ले जाएगा। उसका कारण है, क्योंकि जीवन विचित्र है। जीवन एक रहस्य है। और रहस्य को समझने जब भी कोई तर्क से चलेगा तो असल में वह नहीं समझने का तय करके चला। मैं कहता हूं कि मुझे किसी से प्रेम है। अब प्रेम एक विचित्रता है। आप कहेंगे, कहां है दिखा दें, तब मै मुश्किल में पडूंगा। अगर मैं दिखाने कि भी कोशिश करुं तो क्या करूंगा? यही कर सकता हूं कि प्रेमपूर्ण व्यवहार करूं। आप कह सकते है यह

नाटक नहीं होंगा, इसका क्या भरोसा? यह नाटक हो सकता है। और हम प्रेम के इतने नाटक देख रहे है कि संभवना यही है कि नाटक हो। इसमें भीतर कोई आथेंटिक, कोई प्रामाणिकता है, इसका क्या सबूत है?

हनुमान से कोई पूछता है कि अपनी छाती फाड़ कर बता देते हैं। मगर अगर इस वक्त बताएंगे तो हम पकड़ कर उसकी जाच करवाएंगे कि जरूर कोई चालबाजी है। इसमें राम जो अंदर दिखाई पड़ते है, पहले से कुछ इंतजाम किया हुआ है। प्रि-अरेंज्ड है होना चाहिए। अन्यथा हृदय में कहां राम होने वाले हैं। क्या प्रमाण है कि प्रेम है? अब तक कोई प्रमाण दिया नहीं जा सका। यह भी मजे की बात है कि आप सब विचार करते हैं।। भला सब प्रेम करते हों, विचार करते हैं।। लेकिन इसे अब तक भी सिद्ध नहीं किया जा सकता कि आप विचार करतें है। क्योंकि क्या प्रमाण है? अपने मस्तिष्क को काटा-पीटा जाए, वहा कोई विचार नहीं मिलते। आपके हृदय को काटा-पीटा जाए, वहा कोई प्रेम नहीं मिलता। आपके हृदय में फुफ्फस मिलता है जो श्वास को चलाने का यंत्र है। आपके मस्तिष्क में बहुत-बहुत सूक्ष्म स्नायुओं का जाल मिलता है, विचार तो कोई मिलते नहीं। इन स्नायुओं के जाल में विचार कहां होते होगे, यह भी साफ नहीं हो पाता। कैसे होते होंगे, यह भी कठिनाई मालूम पड़ती है। क्योंकि विचार और स्नायु, इनका कोई तालमेल नहीं दिखता।

यह बिजली का तार फैला हुआ है। इस तार को अगर कोई काट कर जांच करे तो बिजली नहीं मिलेगी। तार की जांच से तार ही मिलेगा, बिजली न मिलेगी। बिजली थी जरुर, बल्ब जलता था जरूर, लेकिन तार के काटने से नहीं मिलती है। तार से कुछ भिन्न उसमें प्रवाहित होता है। काटते से ही प्रवाह बंद हो जाता है। जैसे ही मस्तिक को काटते हैं, प्रवाह बंद हो जाता है।

एक नई चिकित्सा कि दिशा पैदा होनी शुरु हुई है जो कहती है कि आदमी के संबंध में जितने भी अभी तक के निदान है, डाइग्नोसिस का ढंग है, वह सब गलत है। जैसे समझ लें कि आप बीमार है और आपके खून को निकाल कर जांच कि जाती है, तो नये विचारक यह कह रहे कि जो खून भीतर बहता है वह जीवित था, और आपने बाहर निकाल लिया वह मर गया। मरे की जांच करके जीवित के संबंध में जो निर्णय लिया जा रहा है, वह ठीक नहीं है। शरीर के भीतर वह खून जिंदा था, उसका गुणधर्म और था, वह जीवन की धारा में प्रवाहित था, उसमें एक बिजली दौड़ रही थी जो जीवन था; आपने उसे शरीर के बाहर निकाल लिया, वह बिजली तो पीछे छूट गई, तार हाथ में आया। बिजली पीछे छूट गई, अब तार की जांच करके आप जो निर्णय ले रहे है, उस निर्णय से आप बिजली को प्रवाहित करने की कोशिश करेंगे। यह सब भ्रांत है।

शायद आज नहीं कल हमें आदमी के भीतर ही शरीर को जाचने के उपाय खोजने पड़ेगे। बाहर मुर्दा हो जाता है। उसका गुणधर्म ही बदल गया।

जीवन चिचित्र है क्योंकि तर्क से समझने नहीं आता। और तर्क से जो समझने आता है, उसमें से जीवन चूक जाता है, छूट जाता है, छिटक जाता है। जैसे पारे पर कोई मुट्ठी बांधे और पारा छिटक जाए, ऐसा ही जीवन छिटक जाता है। मगर अगर हम जिद्द करते जाएं की चाहे जीवन छिटके, लेकिन हम तर्क को तो पूरा करके ही रहेंगे, तो आखिर में हम पाएंगे की जीवन व्यर्थ है। जीवन है ही नहीं। सब धोखा है। सब असत्य है।

फिर भी इससे कोई मर तो नहीं जाता हैं। सार्त्र कितना ही कहता हो कि जीवन अर्थहिन है, फिर भी जीएगा। और मार्क्सियन कितना ही कहे कि जीवन बेबूझ है, व्यर्थ है, जिएगा। और कोई कुछ भी कहे, बेबूझ होने से व्यर्थ होने से, अकारण होने से, अराजक होने से कोई मर तो जाता नहीं। लेकिन तब उदासी से जीता है और तब जीवन एक संताप बन जाता है। तब जीवन एक बोझ है, जिसे खींचना पड़ता है।

यूनान में एक विचारक हुआ, पिरहो। वह कहता था जीवन इतना व्यर्थ है कि आत्महत्या के सिवाय कोई सार्थकता नहीं हैं। लेकिन पिरहो नब्बे वर्ष तक जीआ, और जब नब्बे वर्ष का बूढ़ा हो गया, तब किसी ने पिरहो से पूछा कि तुम जिंदगी भर समझाते रहे कि जीवन व्यर्थ हैं और आत्महत्या के सिवाय कोई मार्ग दिखाई नहीं पड़ता इससे छूटने का, तुम अब तक मरे क्यों नहीं? तो पिरहो ने कहा मामला ऐसा है कि लोगों को समझाने के लिए मुझे जीना पड़ा। कई लोग मर गए, ऐसी कथा है कि पिरहो कि मान कर लोगों ने आत्महत्या कर ली, कई शिष्य आत्महत्या कर लिए, लेकिन पिरहो को मजबूरी में, लोगों को समझाने के निमित्त जीना पड़ा। लेकिन लोगों को समझाने की जरुरत ही क्या है कि अगर जीवन व्यर्थ? और समझा कर भी क्या समझ में आएगा?

कम से कम पिरहो का जीवन तो सार्थक मालूम पड़ता है। समझा रहे हैं। सफल हो रहे हैं, कोई मर रहा है और वे बेचारे इस सबके लिए जी रहे हैं! उनका जीवन कम से कम सार्थक मालूम पड़ता है, भला दूसरों कों उन्होंने समझा दिया हो कि व्यर्थ है! और फिर हो प्रसन्नता से जी रहे हैं, क्योंकि तमाम भक्त उन्हें मिलते हैं, शिष्य मिलते हैं। वह प्रसन्नता से जी रहे हैं।

अगर सार्त्र भी जी रहा है, और जीवन व्यर्थ है, तो फिर जीना भारी हो जाएगा।

अलबर्ट कामू ने अपनी एक महत्वपूर्ण किताब इस वक्तव्य से शुरु की है कि एक ही दार्शनिक प्रश्न है मनुष्य के सामने, वह है आत्मघात। दि ओनली मैटाफिजिकल प्रॉब्लम बिफोर मैनकाइंड इ.ज सुसाइड। जीवन नहीं है सवाल, आत्मघात है सवाल। और है यूनान के तर्क की दो हजार साल की निष्पाती, यह भूल है।

भारत एक दूसरी दिशा से काम कर रहा। भारत कि दिशा है जीवन के रहस्य को, उसकी विचित्रता को तर्क हल करने की नहीं, अनुभूती से प्रवेश करने की। विचार करके कोई उपाय नहीं है विचित्र को समझने का। विचार दुश्मनी है। चिंतन से कोई द्वार नहीं खुलता। रहस्य के समक्ष चिंतन मूढ़ता है। चिंतन का अपना मार्ग है।

जहां रहस्य न हो, वहा चिंतन का उपाय है। लेकिन जहां रहस्य हो, वहां चिंतन के कपड़े बाहर ही उतार कर नग्न प्रवेश करना उचित है। जहां चिंतन का क्षेत्र न हो।। कहां है वह क्षेत्र जो चिंतन का नहीं है? खंड को जानना है तो विचार उपयोगी है, अखंड को जानना हो तो निर्विचार उपयोगी है। टुकड़े को समझना हो तो तर्क उपयोगी है; विराट को, समग्र को समझना हो, तर्क उपयोगी नहीं है।

क्यों?

क्योंकि तर्क काट कर ही समझता है, विश्लेषण करके ही समझता है। तर्क की पद्धति ही तोड़ना है। इसलिए अगर जोड़ को समझना है तो तर्क से समझना एकदम बेमानी है। अगर तलवार का काम काटना है, तो किसी चीज को जोड़ने के लिए तलेवार का उपयोग करना मूढ़ता है। क्योंकि उसमें तलवार का कोई कसूर नहीं है। तलवार का काम ही काटना है। वह है ही काटने के लिए। उठाई तलवार और चले कोई चीज जोड़ने तो आखिर में जोड़ और मुश्किल हो जाएगा। जो जुड़ा था वह और टूट जाएगा।

तर्क तलवार है, किसी भी तथ्य को तोड़ने के लिए। निश्चित तोड़ने से भी बहुत बातें समझ में आती हैं। विज्ञान उस प्रक्रिया उपयोग करता हैं। विज्ञान है विश्लेषण, एनालिसिस तोड़ना, इसलिए तर्क उपाय है। धर्म है संश्लेषण, सिंथेसिस, जोड़ना इसलिए तर्क नहीं है उपाय। और अगर तर्क उपाय नहीं है तोफिर यह सूत्र ठीक कहता है।। इस विचित्र संसार को मेरा ही रूप मानना चाहिए। विचित्र है संसार। अतर्क्य है। इल्लॉजिकल है, इररेशनल है। बुद्धि की जिद्द करें तो बाहर ही खड़े रह जाते हैं। बुद्धि को छोड़ें, तो ही भीतर प्रवेश है। इसलिए मैने कहा कि कभी-कभी पागल पहुंच जाते हैं और बुद्धिमान अटक जाते हैं। इसलिए बुद्धिमानों कि नजरों में जीसस पागल ही हैं। कुछ लोगों ने पश्चिम में ऐसी किताबें लिखी हैं, जिनमें सिद्ध करने की कोशिश की है कि

जीसस विक्षिप्त थे। क्योंकि कोई आदमी अपने होश में यह कैसे कह सकता है कि मैं इश्वर का पुत्र हूं! क्या मतलब इसका?

हिंदुस्तान इतना हिम्मतवर नहीं है, नहीं तो हम कृष्ण को भी कहेंगे।। इस आदमी का दिमाग खराब था। क्योंकि कोई आदमी कैसे कह सकता है कि सब छोड़ कर मेरी शरण में आ! यह तो निपट अहंकार मालूम पड़ता है, यह तो पागलपन आखिरी ऊंचाई है कि एक आदमी कहे कि सब छोड़कर मेरी शर में आ; मैं ही सब कुछ हूं।

अगर सूत्र भी हम फ्रायडियन मनस्विद से पूछेंगे इसका अर्थ क्या है, तो वह कहेगा।। मैं, छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा भी मैं हूं।। यह दिमाग खराब हो गया है! न्यूरोसिस है। या तो छोटे हो सकते हो या तो बड़े हो सकते हो। दोनों एक साथ हाने की बात ही गलग है। और अगर वह सुने कि यह भी कह रहा है ऋषि कि इस विचित्र संसार को मेरा ही रुप मानना; और मैं ही पुरातन पुरुष हूं; जिससे यह सब जन्मा, वह मैं ही हूं; और जिसमें यह यह सब लीन होगा वह अंतिम भी मैं ही हूं; तो वह कहेंगा कि यह आखिरी बात हो गई। इस आदमी ने सब होश खो दिए। यह जो "ईगो" है, इतनी बड़ी हो गई कि पुरातन को भी घेर रही है। यह अहंकार इतना बड़ा गुब्बारा हो गया कि इसने सब घेर लिया।

फ्रायडिन मनस्विद "अहं ब्रह्मास्मि"।। मैं ब्रह्म हूं।। इस घोषणा कि अहंकार की आखिरी विक्षिप्तता कहेगा। इसके आगे कुछ भी नहीं मान सकता। और अगर तर्क से चलें, तो वह ठीक कहता है। अगर हम मान लें कि तर्क ही चलने का उपाय है, तो वह बिल्कुल ठीक कहता है। लेकिन बड़े मजे कि बात है कि जो ऐसा कह पाता है, उसके जीवन में ऐसे फूल खिलते हैं।। जो कह पाता है, "अहं ब्रह्मास्मि", उसके जीवन में ऐसे फूल खिलते हैं, उसके जीवन में ऐसा सेगीत बहता है, उसके जीवन से ऐसी आनंद की किरणें फूटने लगती हैं, उसके जीवन में चारों तरफ शीतल हवाएं बहने लगती है, न केवल वह आनंद से भर जाता है, उसको जो छू लेता है निकट से, उसके पास जो आता है, वह भी किसी अपूर्व प्रसाद का भागीदार हो जाता है। लेकिन फ्रायड, जो कहता है कि यह सब पागल हैं, वह रात अंधेरे में बिना बिजली जलाए नहीं सो सकता। सदा भयभीत है। जरा सा कोई उसके खिलाफ बोल दे तो वह इतना क्रोधित हो जाता है कि उस क्रोध में कुछ भी कर सकता है। बुद्ध को वह समझेंगा कि वह एब्नार्मल है, तो वह थोड़े चूक गए। खुद वह समझता है नार्मल।

अगर बुद्ध एब्नार्मल हैं, तो फिर एब्नार्मल होना उचित ही है। अगर बुद्ध पागल है, तो फिर पागल होना ही उचित है। अगर फ्रायड बुद्धिमान है, तो फिर ऐसी बुद्धिमानी बुद्धिहीन ही चुनेंगे।

लेकिन तर्क! फ्रायड का कसूर नहीं है। फ्रायड वैज्ञानिक है। बुद्धि उसके पास विश्लेषण की है। संश्लेषण का उसके पास कोई उपाय नहीं है। हाथ में उसके पास तलवार है। चीजों को काटता है। काट कर खंड हाथ लगते है, अखंड जाता है। फूल के टुकड़े हाथ लगते है, फूल का सौदर्य खो जाता है; कविता शब्द हाथ लगते है, काव्य खो जाता है। चित्र के टुकड़े हाथ लगते है, रंग केनवास हाथ लगता है, चित्र की समग्रता खो जाती है। वह भी क्या करे! उसकी टेबल पर, जिस प्रयोगशाला की टेबल पर वह बैठा है, वहां काटने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। काट-काट कर टुकड़े हाथ लगते हैं। एक सुदरतम चित्र भी टुकडों में कुरुप हो जाता है, बेमानी हो जाता है।

मेरी अपनी दृष्टी यह है कि सार्त्र और उस तरह के सारे विचारक, जो कहते हैं जीवन मीनिंगलेस बुद्धि है, उसका कारण यही है कि टुकड़े उनके हाथ में हैं जीवन के। एक कविता के पच्चीस टुकड़े करके बांट दें लोगों को, अर्थहीन हो जाएगी। अर्थ तो जोड़ में था।

एक मजेदार घटना घटी वानगॉग के जीवन में।। एक डच पेंटर था, अदभुत। किसी स्त्री ने उसको कभी प्रेम नहीं किया, चेहरा उसका कुरूप था। एक वेश्या सिर्फ दयावश।। चेहरे में और तो कोई चीज उसको दिखाई

नहीं पड़ी जिसकी वह प्रशंसा करे।। वानगॉग के कान की प्रशंसा कर दी कि तुम्हारे कान बड़े सुंदर हैं। यह पहला मौका था कि वानगॉग के किसी हिस्से की किसी ने प्रशंसा की, किसी सुंदर स्त्री ने। वानगॉग ऐसा अदभुत हो गया कि घर गया, कान काटा, कपड़े लपेटा और वेश्या को भेंट कर आया। वेश्या तो घबड़ा गई! उसने कहा, यह तुमन क्या किया? उसने कहा कि किसी ने कभी मेरी किसी भी चीज की तो प्रशंसा नहीं कि तुम्हें कान इतना पसंद आ गया तो मैने सोचा भेट ही कर आऊं।

लेकिन कटा हुआ कान है, बेमानी है, अर्थहीन है। उसमें अगर कोई अर्थ था तो भी सारे शरीर की संयुक्तता में था। यह वेश्या इसे फेकने के सिवाय और क्या कर सकती है?

करीब-करीब पूरे जीवन के साथ वैज्ञानिक के प्रभाव में, तर्कशास्त्री के प्रभाव में हमने यही किया है। सब चीजें काट डाली हैं। काट कर सब चीजें व्यर्थ हो गई हैं। और किसी चीज में कोई अर्थ और किसी चीज में कोई अभिप्राय नहीं रहा हैं। और किसी चीज में कोई रस नहीं रह गया है, क्योंकि जीवन की धार ही कट गई है और सूख गई है। सब मुर्दा-मुर्दा हो गया है।

मृत्यु हो सकती है खंडों में, जीवन सदा अखंड में है। और यह अखंडता सब आयामों में है। इसलिए सूत्र कहता है।। पुरातन पुरुष मैं ही हूं। सबसे पहले जो था, वह मैं ही हूं। सबसे अंत में होगा, वह भी मैं ही हूं। जिसने सबको आच्छादित किया है, वह भी मैं ही हूं। जो सबसे आच्छादित होकर भीतर छिपा है, वह भी मैं ही हूं।

ये "मैं" की घोषणाऐ नहीं। इनका "मैं" से कोई संबंध नहीं है। ये केवल अनुभूत तथ्य हैं। जो उन्होंने जाने जिन्होंने तर्क को फेंका और रहस्य को अंगीकार किया। और जिन्होंने बुद्धि को, बहुत बुद्धि के साथ प्रयोग करके देखा और पाया कि बुद्धि जीवन को छीन लेती है, मृत्यु को हाथ में दे देती है। अगर बुद्धि के हाथ में सब कुछ रहा तो जगत एक मरघट के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता। जीवन बुद्धि से बड़ा है। और जीवन बुद्धि के पार है। और बुद्धि का कोई तालमेल जीवन से नहीं हो पाता।

असल बात यह है कि बुद्धि केवल जीवन का एक उपकरण है, उपादेय। सीमाओं में, मर्यादाओं में। जीवन बड़ा है और विराट है। क्षुद्र से जब ही हम विराट को समझने चलेंगे तो क्षुद्र अपनी सीमाएं विराट पर भी थोप देता है। जीवन को जीकर जाना जा सकता है, सोच कर नहीं। जीवन को जीवन होकर जाना जा सकता है, विचार कर नहीं। और जीवन जैसा है, उसे वैसा ही जानने की हिम्मत हो तो ही जाना जा सकता है। अगर पहले से ही हम तय कर के चलें कि जीवन ऐसा होना चाहिए तो ही स्वीकार करेंगे, तो फिर कभी नहीं जाना जा सकता। बुद्धि पहले ही तय करके चलती है। बुद्धि निर्णय पहले ले लेती है। बुद्धि कहती है जो संगत है, वही सत्य होगा। और सत्य बिल्कुल असंगत मालूम होता है। तब मुश्किल खड़ी हो जाती है।

बुद्धि कहती है दो और दो मिल कर चार होने ही चाहिए। और जिंदगी बड़ी विचित्र है, यहां कभी दो और दो मिल कर पांच भी हो जाते हैं, और कभी दो और दो मिल कर तीन भी रह जाते हैं। जिंदगी जीवंत है। मुर्दा चीजों को अगर जोड़ो तो दो और दो मिल कर चार ही होती हैं। लेकिन जिंदा चीजों को जोड़ो तो कुछ भी हो सकता है, कुछ कहा नहीं जा सकता। कुछ कहा नहीं जा सकता!

अगर हम दो प्रेमियों को अलग-अलग नापें, और फिर वह प्रेम में पड़ जाएं तब नापें, तो क्या आप समझते हैं कि दो मिल कर वह सिर्फ दो ही होंगे। वे हजार गुना बढ़ जाते है, दो ही नहीं होते। अगर कभी आपने प्रेम का क्षण जाना है, तो आप पाएंगे कि प्रेम के क्षण में आपकी न मालूम कितनी उर्जाएं जग जाती हैं जो कभी जगी नहीं थीं। तो जब दो प्रेमी मिलते हैं तब दो व्यक्ति नहीं मिलते हैं, दो जगत मिल जाते हैं। और जोड़ नहीं होता,

जोड़ कुछ भी हो सकता है। और प्रतिपल जोड़ बदलता रहेगा। सुबह कुछ होगा, दोपहर कुछ होगा। सांझ कुछ होगा। आज कुछ होगा, कल कुछ होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।

जिंदगी बेबूझ है, तर्क के पकड़ के बाहर हैं। तर्क मुर्दा ढांचे है। जिंदगी किसी ढांचे को मानती नहीं। जिंदगी सब ढांचों को तोड़ कर बहती है। जिंदगी बहती चली जाती है, कोई नियम नहीं मानती। लेकिन अराजक नहीं है। यह नियम न मानना उसकी गहन स्वतंत्रता है, अराजकता नहीं। इस गैर-नियम में भी एक गहरी संगति है। लेकिन वह संगति उन्हीं को दिखाई पड़ेगी जो कि तर्क की संगति का ढांचा जबरदस्ती बिठाने की कोशिश न करें।

मैंने सुना है, एक यूनानी लोककथा है कि एक आदमी के पास एक बहुत बहुमूल्य बिस्तर था। एक बहुमूल्य चारपाई थी, स्वर्ण की, हीरे जवाहरातों से जड़ी। इतनी महंगी थी चारपाई, बिस्तर इतना महंगा था कि उसे तो छोटा-बड़ा नहीं किया जा सकता था, तो जब कोई मेहमान उसके घर आता, उसपर वह उसे सुलाता, वह मेहमान को छोटा-बड़ा कर देता था। अगर मेहमान की टांग बाहर निकलती तो रात काट देता। चारपाई बहुत कीमती थी और चारपाई को छोटा-बड़ा नहीं किया जा सकता था। और मेहमान की सेवा की दृष्टी से कि मेहमान को तकलीफ न हो, अगर पैर लंबे होते तो पैर छांट देता; अगर गर्दन बाहर जाती तो गर्दन छांट देता। अगर पैर छोटे होते, तो दो पहलवान लगा कर खिंचाई करवा देता, ताकि ठीक से बिस्तर पर वह आदमी आ जाए।

वह आदमी बिल्कुल तर्कयुक्त था। यह आदमी बुद्धिमानी की आखिरी सीमा था। वही कर रहा था जो सभी बुद्धिमान करते हैं। वही कर रहा था जो सभी तर्कशास्त्री करते हैं। ढांचा तय है, आपको हम छोटा-बड़ा कर लेंगे। आपके साथ ढांचा बदलनेवाला नहीं है।

धर्म का यही भेद है। धर्म कहता है कि हम जीवन जैसा है उसे स्वीकार करते हैं। और जैसा है जीवन वैसा ही उसे जानेंगे। जैसा है जीवन वैसा ही उसे जीएंगे। हम कोई बुद्धि को ऊपर से आरोपित करने का आग्रह हमारा नहीं है। तभी अखंड जाना जा सकता है। और तभी रहस्य में प्रवेश है।

पंद्रहवां प्रवचन

परमात्मा को पाना नहीं, जीना है

अपणिपादों हं अचिन्त्यशक्तिः पश्चाम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः।
अहं विजनामि विविक्तरुपो न चास्ति वेता मम चित्सदाहम्।। 21।।

जिसके न हाथ-पैर हैं और न जिसके संबंध में चिंतन किया जा सकता है, वह शक्ति अर्थात परब्रह्म मै ही हूं। मैं बुद्धि के बिना ही सब कुछ जानने, कानों के बिना ही सब कुछ सुनने और आंखों के बिना ही सब कुछ देखने की सामर्थ्य रखता हूं। सब रुपों से परे मैं जानने वाला हूं, लेकिन मुझ चित स्वरूप को जानने वाला कोई नहीं है।। 21।।

इस सूत्र में प्रवेश के पहले कुछ शब्दों समझ लेना चाहिए। जिसका कोई शरीर नहीं है, फिर भी जो है; जिसका कोई रूप नहीं है, फिर भी जो है; जिसका कोई आकार नहीं है, फिर भी जो है, उसके संबंध में इशारा है।

जो हमें दिखाई पड़ता है वह रूप है, आकार है, शरीर है। जो हमें नहीं दिखाई पड़ता है, वह भी है। मैं आपको देखता हूं। जो मुझे दिखाई पड़ता है, वह आप नहीं है। निश्चित ही जो आप हो, मेरी आंख की पकड़ के बाहर छूट जाता है। आपके हाथ दिखते हैं, पैर दिखता है, शरीर दिखता है, चमड़ी दिखती हे, आंख-कान दिखते हैं। आप मुझे दिखाई नहीं पड़ते हैं। जैसा आप अपने को भीतर जातने हो, वैसा आपको बाहर से जानने का कोई भी उपाय नहीं है।

हम दूसरे में भी आत्मा मान लेते हैं, सिर्फ इसलिए कि हम अपने में आत्मा को खयाल कर पाते हैं। अन्यथा दूसरे का शरीर ही दिखाई पड़ता है। उसके भीतर कुछ है या नहीं, वहीं तो दिखाई नहीं पड़ता। स्वयं के भीतर जरूर शरीर से ज्यादा किसी की प्रतीति हमें होती है, इसलिए हम अनुमान कर लेते हैं कि दूसरे के भीतर भी वह होगा। लेकिन दूसरे में दिखाई नहीं पड़ता है। और जो दिखाई पड़ता है, वह उससे भिन्न है। इसलिए एक दिन ऐसा होता हे कि जिसे हमने कल तक जिवित जाना था, वह मरा हुआ पड़ा है। सब कुछ वही है जो कल तक था, फिर भी कुछ भी वही नहीं रहा। जहां तक दिखाई पड़ने का संबंध है, सब कुछ दिखाई पड़ता है अभी भी, जो इंद्रियों की पकड़ में आता था वह अब भी मौजूद है, लेकिन इंद्रियों की पकड़ में कुछ नहीं आता था, वह तिरोहित हो गया। वह हट गया।

वह जो हट गया है, वह हटता हुआ भी कभी दिखाई नहीं पड़ता था। शरीर टूटता है, नष्ट होता है, मृत होता है, तो शरीर को छोड़ता हुआ कभी कोई दिखाई नहीं देता। इस कारण वैज्ञानिक सदा से कहते रहे हैं कि कुछ है नहीं भीतर। आत्मा सिर्फ शरीर का ही एक गुणधर्म है। शरीर के अंगो का ही एक जोड़ है जैसे घड़ी चलती है, तो कोई प्राण तो उसका चलाता नहीं है। यंत्र का ही जोड़ है। यंत्र बिखर जाता है तो हम यह नहीं पूछते कि इसकी आत्मा कहां चली गई? आत्मा उसमें थी ही नहीं।

वैज्ञानिक कहते रहे हैं अब तक, भौतिकवादी चिंतक कहते रहे हैं अब तक, कि शरीर भी एक यंत्र है। और उसके भीतर यंत्र के संयोग से जो क्रिया फलित हो रही है, वही जीवन है। जीवन इस शरीर से भिन्न नहीं है।

यही सतत विवाद का कारण रहा है। और मनुष्य-जाति दो वर्गों में बट गई है, जाने-अनजाने। एक वर्ग है जो मनुष्य को यंत्र को नहीं मानता। और एक वर्ग है जो मनुष्य को यंत्र मानता है।

जो वर्ग मनुष्य को यंत्र नहीं मानता, वह पूरे जगत को भी यंत्र नहीं मान सकता। जो वर्ग मनुष्य को यंत्र मानता है, फिर और कोई चीज नहीं बचती जिसको यंत्र मानने में कोई भी बाधा हो। फिर सारा जगत एक यंत्र हो जाता है।

भौतिकवादी की दृष्टि है कि जगत यंत्रवत है। उसमें कोई चैतन्य पृथक से नहीं है। अध्यात्मवादी की दृष्टि है कि जगत यंत्रवत नहीं है। यंत्रवत जो दिखाई पड़ रहा है, वह जगत का केवल बाह्य आवरण है। उसमें छिपा हुआ अदृश्य ही है।

इस अदृश्य को कैसे प्रमाणित किया जाए? इस अदृश्य को कैसे अनुभक किया जाए? इस अदृश्य को कैसे स्वीकार करें? कैसे इसके प्रति श्रद्धा जागे?

तर्क से यह नहीं हो सका अब तक। अध्यात्मवादियों ने बहुत तर्क दिये हैं, लेकिन सभी व्यर्थ गये। अध्यात्मवादियों ने बहुत प्रमाण दिये हैं, लेकिन सब बचकाने हैं। अध्यात्मवादी तर्क नहीं दे पाए। भौतिकवादियों ने जो भी तर्क दिये हैं, बड़े गंभीर हैं। महत्वपूर्ण हैं। और अगर तर्क से ही निर्णय करना हो, तो विजय भौतिकवादी के हाथ पड़ेगी। अगर तर्क ही निर्णायक हो तो नास्तिक ही जीतेगा। आस्तिक तर्क से जीत नहीं सकता।

लेकिन फिर भी अंततः आस्तिक ही जीत जाता है। और उसका कारण तर्क नहीं है। उसका कारण दूसरा आयाम है, अनुभव का। कुछ है जीवन में, जो अनुभव से ही जाना जा सकता है। बहुत कुछ। और जितना हो श्रेष्ठ, जितना हो सत्य, जितना हो सुंदर, जितना हो गहन, जितना हो दूरूह, जितना हो रहस्यमय, उतना ही अनुभव ही मार्ग हो जाता है।

एक अंधा आदमी है। प्रकाश के संबंध में कोई भी तर्क नहीं है समझाने का कि हम उसे समझा पाएं की प्रकाश है। या आप सोचते हैं कोई तर्क है, जो अंधे आदमी को भरोसा दिला दे कि प्रकाश है। अब तक कोई तर्क नहीं खोजा जा सका। अंधे आदमी को प्रकाश का भरोसा तो दिलाना दूर, अंधेरे का भी भरोसा नहीं दिलाया जा सकता कि अंधेरा भी है। आमतौर से हम सोचते हैं कि शायद अंधे का अंधेरा रहता होगा। पर हम गलत सोचते है। अंधे का अंधेरा भी नहीं दिखाया पड़ता है। क्योंकि अंधेरा देखने के लिए भी आंख ही चाहिए। ऐसा मत सोचना आप कि अंधा अंधेरे में जीता है। अंधेरे को देखना भी आंखा के ही द्वारा संभव है। प्रकाश और अंधेरा, दोनों ही आंख के अनुभव हैं।

तो हम अंधे से यह भी नहीं कह सकते कि प्रकाश अंधेरे से विपरीत है। यह भी नहीं कह सकते। क्योंकि उसे अंधेरे का भी तो अनुभव नहीं है। उसे उस आयाम का कोई अनुभव ही नहीं है। उसके भीतर प्रकाश और अंधेरे का कोई अस्तित्व ही नहीं हैं। उनके भीतर प्रकाश और अंधेरे के संबंध में कोई सूचना कभी ग्रहण नहीं की गई है। तो तर्क हम कितना ही दें, वे तर्क बेमानी होंगे। उनका कोई अर्थ नहीं होगा। और अंधे को श्रद्धा उन तर्कों पर नहीं आ सकती। सच तो यह है कि अंधे के सामने जो प्रकाश के लिए तर्क देता है, वह नासमझ है।

अंधा सिर्फ अंधा है। और तर्क देनेवाला मूद है। मूढ इसलिये है कि वह नहीं समझ ही नहीं पा रहा है कि प्रकाश के लिए सिर्फ एक ही तर्क है, वह आंख है। अगर मेरे पास कान है, तो मेरे लिए अस्तित्व में ध्वनि का कोई भी उपाय नहीं है, कि मैं जान पाऊं कि ध्वनि है।

इस संबंध में एक बात बहुत गहरी खयाल में लेने जैसी है। कठिन पड़ेगी थोड़ी, लेकिन इधर विज्ञान भी इस बात पर झुकाव लेता चला गया है।

आप कभी देखते हैं आकाश में थोड़ी बादल हैं, थोड़ी वर्षा हो रही है, एक कोने से सूरज निकल आया है बादलों को चीरकर और इंद्रधनुष बन गया है। क्या आपने कभी यह सोचा है अपने मन में कि अगर आप आंख बंद कर लें, तो भी इंद्रधनुष आकाश में रहेगा कि नहीं रहेगा? आप निश्चित ही कहेंगे कि मेरी आंख से क्या लेना-देना? मैं आंख बंद करूं, इंद्रधनुष तो रहेगा। लेकिन विज्ञान कहता है कि आपके आंख बंद करते ही इंद्रधनुष नहीं रहेगा। क्योंकि इंद्रधनुष के बनने के लिए सूरज की किरण चाहिए, पानी की बूंद चाहिए और आंख चाहिए। तीन चीजें चाहिए। सूरज की किरण एक खास कोण पर पानी की बूंद से गुजरे और आंख पर एक खास कोण पर गिरे तो इंद्रधनुष निर्मित होता है। इंद्रधनुष आप वहां देखते हैं ऐसा मत समझना, आपकी आंख भागीदार है उसको निर्माण करने में।

इसका मतलब यह हुआ कि अगर जमीन पर कोई देखने वाला न हो, तो कभी इंद्रधनुष निर्मित नहीं होगा। इंद्रधनुष में आपकी आंखे उतना ही हाथ बंटाती हैं, जितना सूरज, जितना पानी की बूंद।

इंद्रधनुष के संबंध में तो यह समझ लेना आसान है। लेकिन क्या आप समझते हैं कि सूरज की किरण भी, अगर जमीन पर आंख न हो, तो प्रकाश नहीं होगा। यह जरा थोड़ा कठिन मालूम पड़ेगा। लेकिन यह भी कठिन नहीं है। वैज्ञानिक इसके लिए अब बिल्कुल राजी हैं कि अगर जमीन पर कोई भी आंख न हो तो प्रकाश नहीं होगा। क्योंकि प्रकाश के भी बनने में, प्रकाश के अनुभव में भी सूरज की किरण उतनी ही जरूरी है, जितनी आंख। प्रकाश सूरज की किरण और आंख के बीच का सम्मिलन है। आंख जहां सूरज की किरण से मिलती है, वहां प्रकाश पैदा होता हैं। प्रकाश एक अनुभव है। प्रकाश एक वस्तु नही हैं।

इसे ऐसा समझें थोड़ा।

एक कमरे में आप बैठे हुए है। कई रंग के चादर लटके हुए हैं, कुर्सिया अलग रंग की हैं, किताबें बहुत रंग की रखी हुई हैं, दीवालें रंगी हुई हैं, कई रंग हैं। क्या आपने कभी खयाल किया कि जब आप प्रकाश बुझा देते हैं, तो आपकी लाल कुर्सी लाल नहीं रह जाती और आपके हरे पर्दे हरे नहीं जोते? आप सदा रात को सोते होंगे तब यही सोचते होंगे अपने अंधेरे में, अपने कमरे का जो पर्दा है वह अभी भी हरा होगा, तो आप गलती में है। यह वैज्ञानिक तथ्य मैं कह रहां हूं, इनका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है।

विज्ञान कहता है कि पर्दे के हरे होने के लिए सूरज की किरण चाहिए, आदमी की आंख चाहिए। अगर यह दोनों मौजूद न हों, पर्दा हरा नहीं होता। क्योंकि जो पर्दा आपको हरा दिखाई पड़ता है, वह हरा होता नहीं है।। या किसी भी प्रकार की किरण पड़ती है, तो किरण में सात रंग हैं। जब भी किसी चीज पर किरण पड़ती है, तो वापिस लौटती है। और हर वस्तु।। कोई वस्तु रंगीन नहीं है... हर वस्तु इन सात किरणों में कुछ किरणों में से कुछ किरणों को पी लेती है, आत्मसात कर लेती है और कुछ किरणों को वापिस लौटा देती है।

यह बहुत मजे की बात है हरे पर्दे का मतलब होता है कि इस पर्दे के कपड़े ने सब किरणें पी लीं, सिर्फ हरी किरण को वापिस लौटा दिया। इसलिए वह जब लौटती है, हरी किरण जब आपकी आंख पर पड़ती है, तो यह पर्दा हरा दिखाई पड़ता है। यह बहुत उलटा मालूम पड़ेगा। हरा पर्दा हरी किरण को छोड़ देता है, पीता नहीं है। बाकी सबको पी जाता है। हरा बिल्कुल नहीं है, बाकी सब हो भी सकता है। हरे को छोड़ देता है। और वह जो हरी किरण छूटती है वापिस, जब आंख से टकराती है तो पर्दा हरा मालूम पड़ता है।। उस हरी किरण की वजह से।

लेकिन अगर कमरे में कोई आंख ही नहीं है, समझ लो कमरे में प्रकाश है लेकिन आंख नहीं।। दरवाजा बंद है, भीतर कोई भी नहीं।। तो पर्दा हरा नहीं होगा, कुर्सी लाल नहीं होगी। दीवाल पीली नहीं होगी। किताबों में अक्षर काले नहीं होंगे पन्ने सफेद नहीं होंगे। और रात के अंधेरे में न आंख है, न प्रकाश है, सब चीजें बेरंग हो जाती है।

प्रकाश का अनुभव किरणों की मौजूदगी और आंख की मौजूदगी की सम्मिलित अनुभव है। इसलिए अंधे आदमी को बिना आंख के प्रकाश के अनुभव करवाने की कोई भी व्यवस्था नहीं है। या प्रकाश की प्रतीति करवाने के लिए कोई भी तर्क उपयोगी नहीं है। हम भी समझ जाएंगे अंधे को समझाने में कि समझाना व्यर्थ है। बेहतर है कि चिकित्सा करें।

लेकिन मनुष्य के भीतर जो आत्मा है, उसके लिए हम तर्क से निर्णय करने चलते हैं। वह भी अनुभव है। और जब तक ध्यान की आंख उपलब्ध न हो तब तक वह अनुभव नहीं होता। इसलिए ध्यान तो तीसरी आंख कहा है। वह आंख उपलब्ध हो, तो जो दिखाई पड़ता है, वह आत्मा है। और तब जो दिखाई पड़ता है, उसके हाथ-पैर नहीं है, उसका शरीर नहीं है, वह अरूप है। वह मात्र चैतन्य है। और तब जो दिखाई पड़ता है, अगर वह अपनी परिपूर्ण शुद्धता से अनुभव में आए, तब यह सूत्र खयाल में आएगा।

इस सूत्र में ऋषि ने कहा है।। "जिसके न हाथ हैं, न पैर; और न जिसके संबंध में चितन किया जा सकता है।" क्योंकि चिंतन वहीं तक किया जा सकता है जहां तक इंद्रियों की पकड़ में कुछ आता हो। चिंतन की सीमा इंद्रियों की सीमा है। इंद्रिया जहां तक देख पाती हैं, चिंतन वही तक जा पाता है। चिंतन इंद्रियों का अनुगामी है। आपकी आंख ने जो देखा है, आपका मन उसका चिंतन कर सकता है। आपकी आंख ने जो नहीं देखा है, आपका मन उसका चिंतन नही कर सकता हैं।

लोग आमतौर से कहते हैं कि फलां बात कल्पना है। लेकिन कल्पना भी आपके अनुभव के आधार पर ही होती है। कोई कल्पना वस्तुतः कल्पना नहीं होती। सिर्फ दो अनुभवों का जोड़ होती है। आप कह सकते हैं कि मैंने ऐसा कोई घोड़ा नहीं देखा जो सोने का बना हो और आकाश में उड़ता हो, लेकिन मैं कल्पना कर सकता हूं। लेकिन ध्यान रखिए, आपने उड़ने वाली चीजें देखी हैं, सोने की चीजें देखी हैं, घोड़ा देखा है। और इन तीनों को आप जोड़ भर ले रहे हैं। इसमें कल्पना कुछ भी नहीं है। इन तीन अनुभवों को आप जोड़ रहे हैं। लेकिन तीनों आपके अनुभव हैं। आप एकाध ऐसी कल्पना अगर कर सकें जो आपका अनुभव ही न हो, तो आप जगत में चमत्कार घटित कर रहे हैं! अब तक ऐसा हुआ नहीं है।

आप जो भी सोच सकते हैं, वह आपकी इंद्रियों के द्वारा दिया गया अनुभव है। मन इंद्रियों का राजा नहीं है, इंद्रियों का अनुगामी है। मन इंद्रियों का मालिक नहीं है, केवल इंद्रियों की छाया है। आंख देती है, कान देता है, हाथ देता है, नाक देती है, जबान देती है, यह सारे अनुभव मन इकट्ठे कर लेता है। और उनके पीछे चलता है। आपकी पांच इंद्रियां हैं, उन्होंने जो-जो आपको दिया है, क्या आपका मन ऐसी कोई चीज कभी सोच सकता है जो इन पांच इंद्रियों से संबंधित न हो? एक भी बात नहीं सोच सकता।

इसे थोड़ा हम और तरह से समझें तो शायद आसानी पड़े।

जमीन पर बहुत तरह के प्राणी हैं। कुछ प्राणी हैं जिनके पास चार इंद्रिया हैं। मान लो। उनके पास आंख नहीं है। तो उन प्राणियों के चिंतन में प्रकाश कभी भी रूप नहीं लेगा। कुछ प्राणी हैं जिनके पास तीन इंद्रियां हैं, समझ लो उनके पास कान नहीं हैं। तो उन प्राणियों के जीवन में प्रकाश और ध्वनि का कभी कोई अनुभव नहीं होगा। न चिंतन होगा, न विचार होगा। न स्वप्न होगा।

इससे हम जरा उलटा सोचें।

कहीं किसी उपग्रह पर।। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कोई पचास हजार ग्रहों पर जीवन होना चाहिए; इसकी संभावना है।। अगर कहीं जीवन हो और वहां जो व्यक्ति हो उनके पास छः इंद्रियां हों, तो उनकी छठवीं इंद्रिय की हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि कि उससे वे क्या जानते होंगे। अगर चार इंद्रियां हो सकती हैं, तीन हो सकती हैं, तो छ भी हो सकती हैं, सात भी हो सकती हैं, दस भी हो सकती हैं। अगर दस इंद्रियों वाला प्राणी कहीं हमें मिल जाए तो हम सोच भी नहीं सकते कि वह क्या सोचता होगा। और वह हमसे कहे भी तो हमारी समझ में कुछ भी आएगा। उसक शब्द ही हमें बेमानी लगेंगे। अर्थहीन लगेंगे। हमारे पास पांच हैं तो हम सोचते हैं, पांच इंद्रियों पर जगत समाप्त हो गया। जिनके पास चार हैं, वह सोचते हैं चार अनुभव में जगत की समाप्ति हो गई। जिनके पास तीन हैं, वह समझते हैं तीन में जगत पूर्ण है।

अमीबा, है बैक्टिरिया हैं छोटे, बहुत छोटे जीवाणु हैं, उनके पास सिर्फ शरीर है, कोई इंद्रिय नहीं है।। कहें कि वे एक इंद्रिय हैं। सिर्फ शरीर है उनके पास। प्राथमिक जीवाणु "अमीबा" है। उसके पास सिर्फ देह है। न आंख है, न कान है, न... कुछ और नहीं है। वह सिर्फ शरीर से सरकता है।। उसके पास पैर नहीं है-शरीर की उसका बड़ा होता चला जाता है। एक सीमा के बाद शरीर दो टुकड़ो में टूट जाता है। वही उसकी संतति है। उसके पास कोई इंद्रियां नहीं हैं। और उसको भी तो कुछ अनुभव होगा जगत का? वह जगत का अनुभव सिर्फ स्पर्श का होगा। चीजों से टकराता होगा, छूती होंगी चीजें, बस स्पर्श का अनुभव होगा। उसका जगत बड़ा सरल जगत होगा। उनमें सिर्फ एक ही घटना घटी है।। स्पर्श की। उस अमीबा को समझाने का कोई भी उपाय नहीं है कि यहां और घटनाएं भी घटती हैं।

ऋषि ने कहा हैः जिसका चिंतन नहीं किया जा सकता। क्योंकि इंद्रियां जितना जानती हैं उतने का ही चिंतन हो सकता है। और उसे इंद्रियां कभी भी नहीं जानतीं। न आंख उसे देखती है, न कान उसे देखती है, न कान उसे सुनते हैं, न हाथ उसे छूते हैं, वह इंद्रियों के पार रह जाता है। वह जो इंद्रियों के पार है, वह मन से सोचा नहीं जा सकता। चिंतन उसका असंभव है। मनन उसका असंभव है।

"जिसके न हाथ हैं, न पैर हैं जिसके संबंध में चिंतन किया जा सकता, वह शक्ति अर्थात परब्रह्म मैं ही ही हूं।" वह जो अचिंतनीय है, अचिंत्य है, अपरिभाष्य है, अपरिभाष्य है, अतीद्रिय है, वह मैं ही हूं। इसे भीतर से ही जानेंगे तो ठीक होगा। आपको अपना पता चलता है। इतना तो तय है कि आपको अपने होने का पता चलता है। लेकिन क्या कभी आपने कि जब दूसरी चीजों का आपको पता चलता है तो इंद्रियों के द्वारा चलता है, आपको स्वयं के होने का पता किस इंद्रिय के द्वारा चलता हे? प्रकाश का पता चलता है तो आंख से चलता है। ध्वनि का पता चलता है तो कान से चलता है, लेकिन आपको अपना पता किस इंद्रिय से चलता है? आप हैं, ऐसा आपको अनुभव किस इंद्रिय से होता है?

ऐसा अनुभव तो होता ही है कि मैं हू। यह नास्तिक को भी होता है, पदार्थवादी को भी होता है। और कोई यह भी कहे कि मैं नहीं हूं, तो भी कम-से कम कहने के लिए भी, इनकार करने के लिए भी स्वयं को उसे स्वीकार करना पड़ता है। मैं को इनकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि उस इनकार करने में भी स्वीकार करने की मजबूरी है।

मुल्ला नसरुद्दिन एक दिन अपने मित्रों को घर ले आया। कॉफीहाउस में बैठ कर काफी बातचीत में बढ़ गया। और बातचीत यहां तक पहुंच गई कि मुल्ला ने कहा कि मुझसे उदार व्यक्ति इस गांव में दूसरा नहीं है। यह सिर्फ चर्चा थी, मुल्ला को पता नहीं था कि यह उपद्रव हो जाएगा। बीस-पच्चीस मित्र इकठ्ठे थे। उन्होंने कहा

अगर ऐसा है, तो हमने कभी तुम्हारा निमंत्रण नहीं सुना आज तक। कभी तुम्हारे घर चाय भी पीने नहीं बुलाया तुमने, तो आज अगर तुम उदार ही हो तो हम तुम्हारे घर भोजन के लिए चलें। मुल्ला जोश में था, उसने कहा कि सब चलो, निमंत्रण है।

पर जैसे-जैसे घर पास आने लगा, पत्नी भी पास आने लगी, वैसे-वैसे भय भी व्याप्त होने लगा। घर के दरवाजे पर उसके हाथ-पैर कंपने लगे कि यह तो मुसीबत हो गई। पत्नी को क्या कहेगा? उसने कहा मित्रो, जरा बाहर रुको, तुम जानते ही हो, जरा मैं पत्नी को पहले राजी कर लूं, फिर तुम्हें भीतर बुलाऊं।

पर जैसे-जैसे घर पास आने लगा, पत्नी भी पास आने लगी, वैसे-वैसे भय भी व्याप्त होगने लगा। घर के दरवाजे पर उसके हाथ-पैर कंपने लगे यह तो मुसीबत हो गी। पत्नी को क्या कहेगा? उसने कहा मित्रो, जरा बाहर रुको, तुम जानते ही हो, जरा मैं पत्नी को पहले राजी कर लूं, फिर तुम्हें भीतर बुलाऊं।

वह भीतर गया। पत्नी को उसने कहा कि मैं बीस-पच्चीस मित्रों को, बड़ी भूल में पड़ गया हूं, निमंत्रण दे आया हूं। और भोजन का इंतजाम----पत्नी तो आग बबूला बैठी थी, क्योंकि व दिन भर से मुल्ला लौटा नहीं आया था। उसने कहा की दिन भर के बाद आए हो और यह उपद्रव लेकर आए हो! भोजन तो आज बिल्कुल बनाया ही नहीं। तो मुल्ला ने कहा, फिर एक काम करो। तुम जाकर उनसे कह दो कि मुल्ला नसरुद्दिन घर पर नहीं है। उनकी पत्नी ने कहा तुम पागल हो नहीं हो गये हो? तुम्हीं इनको लेकर आए हो। मुल्ला ने कहा तू कोशिश कर।

मुल्ला की पत्नी बाहर गई, मित्रों से उसने पूछा कैसे आए हैं आप? उन्होंने कहाः कैसे आए हैं! मुल्ला हमें निमंत्रण देकर आए हैं, भोजन के लिए हम आए हैं। पत्नी ने कहा मुल्ला तो घर पर नहीं हैं। मित्रों ने कहाः आश्चर्य, हमने अपने साथ उन्हें अपनी आंखो से घर के भीतर जाते देखा है। हमने अपने कानों से तुम्हारी और उनकी बातचीत सुनी है। हमने उन्हें यह भी कहते सुना है कि तुम जाकर मित्रों को कहा कि मुल्ला घर पर नहीं हैं। मुल्ला को इससे बड़ा क्रोध आ गया।। उसे तो सुनाई पड़ रहा था। जोश उसका बढ़ गय। उसने खिड़की खोली और जोर से कहा कि यह भी तो हो सकता है कि मुल्ला तुम्हारे साथ आए हों और पीछे के दरवाजे से कहीं चले गये हों।

जो आदमी इनकार करता हो कि मैं नही हूं, उसका ऐसा ही होगा। इनकार करने में भी तो मै मौजूद हो जाता है। लेकिन इस मैं का आपको पता कैसे चलता है? कैसे आपने जाना कि आप हैं? क्या उपाय, क्या विधि, क्या उपकरण है? कौन सी इंद्रिय ने, किस माध्यम से आपको खबर मिली कि आप हैं? तब आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे। लेकिन इंद्रिय से यह खबर नहीं मिलती। निश्चित ही आपका जो अनुभव है, वह इंद्रियों से उपलब्ध नहीं होता। आप अपने को जानते हैं कि मैं हूं, बिना किसी कारण, के बिना किसी गवाही के!

अगर किसी अदालत में आप पर मुकदमा चले और आपको गवाही उपस्थित करनी पड़े कि आप गवाही दें, कौन हैं गवाह कि आप है? हां, यह गवाह मिल सकते हैं आपको कीं आपका नाम क्या है, आपके पिता का नाम क्या हैं, लेकिन अगर कोई अदालत यह जिद करे कि यह गवाही दे पहले कि यह पक्का हो कि आप, हैं तो आप कोई भी गवाही उपस्थित न कर सकेंगे। क्योंकि उसकी कोई गवाही नहीं है। यह आपका अंतर्बोध है। अतींद्रिय बोध है, इंद्रियों से उसका कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए कोई इंद्रिय उसकी गवाही नहीं दे सकती।

इसीलिए दूसरी बात भी आप खयाल में ले लें, अगर मेरी सारी इंद्रियां भी मुझसे अलग कर दी जाएं तो भी मेरे होने का बोध नहीं खोता। अगर मेरा हाथ काट दिया तो भी मेरे होने के बोध में कमी नहीं पड़ती। मेरी आंखें निकाल ली जाएं तो मेरे होने के बोध में कोई कमी नहीं पड़ती। मेरी जबान काट दी तो मेरे होने के बोध में

कमी नहीं पड़ती है। मेरा जगत छोटा हो जाएगा, मैं छोटा नहीं होऊंगा। मेरी आंख अगर फूट गई, तो प्रकाश का जगत मेरा समाप्त हो गया। इस जगत में मेरे लिए प्रकाश का आयाम न रहा, मेरा जगत दरिद्र हो जाएगा। उनमें से प्रकाश और रंग खा जाएंगे। मेरे कान अगर किसी ने फोड़ दिए, तो मेरे लिए जगत में फिर संगीत न रहा, ध्वनि न रही, शब्द न रहा, भाषा न रही, मेरा कान अगर छोटा हो गय और भी। मेरे पैर और हाथ किसी ने काट दिये तो गति ने इस जगत में मेरा संबंध होता था, वह छूट गया।

लेकिन एक मजे की बात है, इससे मेरे होने के बोध में इंच भर भी कमी नहीं होगी। क्योंकि अगर मेरे होने का बोध आंख से मिला ही नहीं था तो आंख के हटने से खोएगा भी क्यों? और अगर मेरे होने के बोध में कान ने कुछ दान ही नहीं किया था, तो कान के हट जाने से मेरे के बोध में कमी क्यों पड़ेगी। अंधे का जगत छोटा होता है, लेकिन आत्मा छोटी नहीं होती आपकी। और कभी-कभी तो बड़ी भी होती है। बड़ी का मतलब यह है कि जगत छोटा होता है, इसलिए ध्यान बंटाने के लिए बाहर का कम उपाय होता है, तो ध्यान भीतर की तरफ प्रवेश करने लगता है।

इंद्रियों से उसका बोध नहीं होता। उसके बोध का कोई संबंध इंद्रियों से नही है। इसलिए मेरी सारी इंद्रियां भी हट जाएं तो भी मैं उतना ही हाता हूं जितना था। जिसका बोध इंद्रियों से नहीं होता, फिर भी जिसका बोध होता है, इस बोध कम हमें कोई नया नाम देना पड़े; इसीलिए इसे आत्मबोध कहा है। अगर आप मुझे दिखाई पड़ रहे हैं तो प्रकाश चाहिए। अभी प्रकाश बुझ गया था, आप मुझे दिखाई नहीं पड़ रहे थे। लेकिन सारा प्रकाश जगत से बुझ जाए, तो भी क्या ऐसा हो सकता है कि स्वयं को दिखाई न पड़ूं? सारे जगत का प्रकाश बुझ जाए, गहन अंधकार हो जाए, कुछ भी मुझे न दिखाई पड़े तो भी एक तो मुझे दिखाई पड़ता रहेगा, वह मैं हूं। यह जो मेरे भीतर का अस्तित्व है, अतींद्रिय है। आपके भीतर भी जो है वह अतीद्रिय है।

और जिसका बोध इंद्रियों पर निर्भर नहीं है, उसके लिए भी ऋषि ने कहा है, जिसका न हाथ है, न पैर। जो हाथों में और पैरों में है, लेकिन जिसके न हाथ हैं और न पैर हैं। जिसके न आंख हैं, न कान हैं। जो कान में से सुनता है और जो आंख में से झांकता है, लेकिन न कान है, न आंख है। कान और नाक और हाथ और पैर का जो उपयोग करता है, लेकिन जिसका कोई भी हाथ-पैर, कान-नाक नहीं। इंद्रियां जिसके उपकरण हैं, लेकिन इंद्रियां जिसकी अनिवार्यता नहीं है। तो बिना इंद्रियों के है। और यह भी समझ लें कि क्योंकि भीतर की चेतना बिना इंद्रियों के है, इसीलिए इंद्रियों का उपयोग कर पाती है; नही तो उपयोग नहीं कर पाएगी। आंख खुद नहीं देखती। आंख से वह देखता है जिसके पास कोई आंख नहीं है। इस आंख से भी वह देखता है जिसके पास कोई आंख नहीं है। यह आंख भी एक खिड़की से ज्यादा नहीं है। इस कान से भी वही सुनता है जिसके पास कोई कान नहीं है। यह कान भी एक खिड़की से ज्यादा नहीं है।

और इसलिए एक और मजे की बात है, वह यह कि अगर प्रयास किया तो बिना कान से भी सुना जा सकता है। और अगर प्रयास किया जाए तो बिना आंख के भी देखा जा सकता है। और अगर यह प्रयास किया जाए तो बिना शब्द के भी बोला जा सकता है। अब तो इस संबंध में काफी खोजबीन चल पड़ी है, और न-मालूम कितने विश्वविद्यालय"साइकिक रिसर्च" पर, इस परा-मनोविज्ञान पर अध्ययन, विश्लेषण, शोध कर रहे हैं। और बहुत से तथ्य वैज्ञानिक बन गये हैं।

इसीलिए पहने उन तथ्यों की आपसे बात कहूं जो वैज्ञानिक बन गये, हैं, क्योंकि इनमें फिर कोई विवाद नहीं है। लेकिन धर्म उन तथ्यों की निरंतर घोषणा करता रहा है। निरंतर घोषणा करता रहा है। लेकिन धर्म की बात तब तक माननी लोगों की मुश्किल पड़ती है, जब तक कि कोई अनुभूत प्रयोग स्पष्ट न हो जाएं।

बुद्ध के संबंध में कथा है, कि बुद्ध का शिष्य जहां भी दूर, कितनी ही दूर हो, जब भी बुद्ध का स्मरण करे तो बुद्ध से अंतर्संबंध स्थापित हो जाते थे। कितने ही दूर अगर बुद्ध से पूछना चाहे तो उत्तर पर सकता था। लेकिन यह बात कपोल-कल्पना और कथा मालूम पड़ती है। लेकिन अब वैज्ञानिक आधारों पर पश्चिम में सब सुनिश्चित हो गया है कि समय और स्थान का फासला विचार के संक्रमण में बाधा नहीं है। कितनी ही दूर विचार संक्रमित हो सकता है।

रूस के फयादेव ने एक हजार मील दूर तक विचार के संक्रमण के स्पष्ट प्रयोग वैज्ञानिक व्यवस्थाओं में सफल किये हैं। एक हजार मील दूर पर कैसे भी व्यक्ति को फयादेव संदेश प्रसारित कर सकता है।। बोलता नहीं है, आंख बंद कर लेता है, बंद ही नहीं कर लेता करीब-करीब कोमा की हालत में पड़ जाता है। बेहोश हो जाता है। ध्यान करता है, पंद्रह-बीस मिनट बाद बिल्कुल मुर्दे की तरह हो जाता है। और जब मुर्दे की तरह हो जाता है तब वह विचार संक्रमित कर पाता है। तब बिना बोले, बिना शब्द का, कंठ का उपयोग किये उसके विचार संक्रमित कर पाता है। दूर, कितने ही दूर।

रूसी उत्सुक रहे हैं पिछले बीस वर्षों से, विशेषकर अंतरिक्ष की यात्रा के लिए, क्योंकि अंतरिक्ष की यात्रा में यंत्रों पर ही निर्भर रहना कभी भी खतरनाक हो सकता है। जैस अभी एक दुर्घटना हो गई। अगर रेडियो-यंत्र जरा भी बिगड़ जाए।। और यंत्र का भरोसा नहीं है। कितना ही सुनिश्चित हो तो भी भरोसा नहीं है, कभी बिगड़ तो सकता ही है।। अंगर अंतरिक्ष की यात्रा में किसी यात्री-विमान का रेडियो-यंत्र बिगड़ जाए तो हमारे संबंध उससे सदा के लिए खो जाएंगे। फिर वह जीवित है, यान के यात्री बचे या मर गये, कहां गये, क्या हुआ, फिर कभी उनका हमें कोई भी पता नहीं चलेगा। यह स्थिति भयजनक है।

इसलिए रूस में बीस साल में चिंता पैदा हुई और इसकी फिकर की गई कि यंत्रों के साथ-साथ परिपूरक व्यवस्था भी कोई होनी चाहिए। जब यंत्र असफल जो जाएं, तो क्या विचार संक्रमण तब भी हो सकता है? कि यंत्र बंद पड़ गये हों तो यात्रियों में कोई कम से कम पृथ्वी को इतनी खबर तो दे सके कि हम कहां हैं। कि हमसे संबंध कैसे निर्मित किया जाए। दो-चार शब्द भी वहां से संक्रमित हो सकें, ऐसा कोई उपाय। तो पहली दफे उनको टेलीपैथी का खयाल आया। पहली दफा उनको पता चला कि सारी दुनिया में धर्म कहते हैं कि विचार का संक्रमण बिना इंद्रिया के हो सकता है। तो इसकी कोशिश की जाए। तो बीस वर्ष में रूस ने बहुत प्रयोग किये हैं और उनकी सफलता अनूठी है। विचार संक्रमण सफल हो गया है। कितनी दूरी पर, सिर्फ मैं अपने भीतर ध्यान करूं, तो विचार को प्रक्षेपित किया जा सकता है।

अब बड़ी कठिनाई है वह विचार जाता कैसे है? कोई इंद्रिय उपयोग में नहीं आती। देने वाले की तरफ से भी और लेने वाले की तरफ से भी। रिसीवर की तरफ भी कोई इंद्रिय काम में नहीं आती। क्योंकि रिसीवर को भी शांत होकर पड़ जाना पड़ता है, बस। जिसको विचार सुनाई पड़ता है। वह भी यह नहीं कीता है कि कान से सुनाई पड़ रहा है। वह भी कहता है, भीतर सुनाई पड़ता है। कान से कुछ लेना-देना नहीं है। कानों को बिल्कुल बंद कर दिया तो भी सुनाई पड़ता है। कानों को सब तरफ बंद कर दिया कि जरा सी भी आवाज अंदर प्रवेश न कर सके।। बाहर ढोल बज रहे हैं, वह सुनाई नही पड़ता।। लेकिन फयादेव हजार मील दूर से जो बोल रहा है वह सुनाई पड़ता है। एक बात साफ है कि कान से वह नहीं जा रहा है।

फिर कहां से जा रहा है?

अमरीका में टेड सीरियो है, वह कितने ही दूर स्थानों में चीजों को देख पाता है। कितने ही दूर। न्यूयार्क में बैठ कर उसने ताजमहल को देखा। और फिर देखते ही उसकी आंख में चित्र भी आ जाता है ताजमहल का। और

सिर्फ आंख में चित्र ही नहीं आता, उसका फोटोग्राफ भी उतार जा सकता है। हजारों फोटोग्राफ उतार गए हैं। जो उसकी आंख में से लिये गये हैं। और वह ठीक ताजमहल की खबर देते हैं। इस आदमी को क्या हो रहा हैं? और जब इसकी आंख में चित्र आता है, तब इसकी आंख बंद होती है। आंख बंद करके वह ध्यान करता है ताजमहल पर, फिर जब चित्र भीतर आ जाता है तब वह कहता है।। अब मैं आंख खोलता हूं, कैमरा तैयार कर लो। क्योंकि क्षण भर में खो जाता है वह चित्र। और कई दफे तो बहुत मजेदार घटनाएं घटी है। जैसे पिछली दफे जब वह ताजमहल पर प्रयोग कर रहा था, तो उसने कैमरामैन का कहा कि ठीक, चित्र पकड़ गया है मेरे भीतर।। आंख बंद है, तो इसलिए बंद आंख में इस ताजमहल के चित्र के आने का कोई उपाय नहीं है; सामने भी ताजमहल के खड़े होओ तब भी नहीं आ सकता है, तो न्यूयार्क और आगरा में बहुत फासला है, आंख देख पाए इसका कोई उपाय नहीं हैं।। आंख बंद है और तब कहा कि ठीक है, कैमरा तैयार कर लें, क्लिक दबाने के लिए हाथ रख लें, मैं आंख खोलता हूं। आंख उसने खोली और उसने कहा कि चूक गये, यह तो हिल्टन होटल आ गये। और जो फोटो में चित्र आया वह हिल्टन होटल का था। वह ताजमहल का नहीं था।

आंख के बिना भी देखा जा सकता है। दूरी पर, फासले पर। तो भीतर जो छिपा है, उस छिपे हुए का हमने अब तब इंद्रियों से ही उपयोग किया है। हमने इंद्रियों के बिना उसका उपयोग नहीं किया है। इसलिए हमें कुछ पता नहीं कि उसकी अतीद्रिय क्षमता क्या है?

इस सूत्र में उस क्षमता की खबर है। वह खबर यह है कि।। वह वरम शक्ति, वह परम ब्रह्म मैं ही ही हूं। मैं बुद्धि के बिना ही कुछ जानने और कानों बिना ही कुछ सुनने और आंखो के बिना ही सब कुछ देखने की सामर्थ्य रखता हूं। यह सामर्थ्य प्रत्येक के भीतर छिपी है। इस सामर्थ्य का उपयोग हम करें हम करें या न करें, यह बिल्कुल दूसरी बात है। हमारे जीवन में जो बड़े से बड़े चमत्कार दिखाई पड़ते हैं, वैसी सामर्थ्य सबके भीतर छिपी है, प्रयोग की ही बात है।

राममूर्ति थे, तो वह अपनी छाती पर हाथी को खड़ा कर लेते थे। या मोटर को लिकाल सकते थे। लेकिन उनकी छाती में कोई भी विशेषता न थी। जैसी सबकी छातियां है वैसी छाती ही थी। फर्क इतना ही था कि लंबे समय अभ्यास का फर्क था। फिर भी कितना ही अभ्यास हो, छाती पर हाथी को खड़ा करना तो प्राणायम का एक प्रयोग है। हम सब रोज देखते हैं, लेकिन हमारे खयाल में नहीं आता। रबर का एक पहिया कितने ही वजह के ट्रक को खींचे लिये चला जाता है। वह रबर की ताकत नहीं है, रबर के भीतर हवा की ताकत है।

तो राममूर्ति ने एक अभ्यास किया था कि छाती में हवा का इतना आयाम भर लिया जाए कि छाती टायर की तरह उपयोग में आ जाए। तो फिर हाथी खड़ा हो सकता है। वह हाथी छाती पर नहीं पड़ता उसका वजन, छाती के भीतर भरे हुए हवा के आयाम पर पड़ता है। इसलिए छाती को नुकसान नहीं पहुंचता। वह हवा का आयाम ही उसे झेल लेता है। इताना आयाम सबकी छाती में भर सकता है। हम सबकी छाती में छह हजार छिद्र हैं, जिनमें हवा भर सकती है। लेकिन सामन्यताः डेढ़ हजार छिद्रों से ज्यादा हम सांस ही नहीं लेते कभी। हमारी सांस ऊपर ही जाती है और निकल जाती है। साढ़े चार हजार छिद्र तो जीवन भर कार्बन से ही भरे रहते हैं। उन तक हवा पहुंचती ही नहीं।

योग कहता है कि अगर वे साढ़े चार हजार छिद्र भी प्राणवायु से भर जाएं तो आदमी की उम्र तीन गुनी हो जाएगी। क्योंकि उम्र और जीवन आक्सीजन का ही खेल है। यह क्षमता सबके भीतर है। लेकिन यह क्षमता प्रकट नहीं हो सकती। क्योंकि प्रकट होने के लिए तो अभ्यास चाहिए।

मन की भी ऐसी ही क्षमताएं सबके भीतर हैं जो प्रकट नहीं हो पातीं। उनके लिए भी अभ्यास चाहिए। और इस अतीद्रिय आत्मा की अनंत क्षमताएं मनुष्य के भीतर हैं, उनका तो हमें पता ही नहीं। अभ्यास तो बहुत दूर, उनका हमे पता ही नहीं। उनका पता न होने से चमत्कार मालूम पड़ता हैं। अब कोई कहे कि मैं बिना बुद्धि के सोच पाता हूं, तो हम कैसे मानेंगे। कोई कहे कि मैं बिना आंख के देख पाता हूं, तो कैसे माने। कोई कहे कि मैं बिना कानों के सुन पाता हूं, तो हम कैसे मानेंगे। नहीं मानेंगे उसका कारण यह नहीं है कि ये बातें मानने योग्य नहीं है, उसका कुल कारण इतना है।। हमारे अनुभव से इनका कहीं भी कोई संबंध नहीं है।

थोड़े प्रयोग करें तो आप चकित हो जाएंगे।

अगर यहां चार सौ लोग हैं, अगर ये चार सौ लोग प्रयोग करें तो चार सौ में कम से कम चार तो ऐसे व्यक्ति इसी वक्त निकल आएंगे। उन्हें भी पता नहीं है।

रूस में ऐसा हुआ। पिछले दस वर्ष पहले एक महिला ने अंगुलियों से देखना शुरू किया। अचानक। उसकी आंख खराब हो गई थी और उसे पढ़ने का शौक था। पढ़ना ही उसका एकमात्र शौक था और आंख अचानक खराब हो गई, तो वह इतनी व्याकुल हो गई, इतनी व्याकुल हो गई।। उसकी व्याकुलता हम समझ सकते हैं। उसके पास एक ही रुचि थी जीवन में।। किताब। और आंखे खो गयीं तो उसका सारा जीवन खो गया। उसने आत्महत्या की दो बार कोशिश कि, बचा ली गई। और उसका जिन किताबौं से प्रेम था वह प्रेम इतना ज्यादा था कि फिर वह अंधी हो गई तो किताबों को हाथ में रखकर उनपर हाथ ही फेरती रहती थी। अचानक एक दिन उसने पाया कि किताब का शीर्षक उसको दिखाई पड़ रहा है। वह घबड़ा गई। हाथ फेरती थी किताब पर, उसे शीर्षक दिखाई पड़ रहा रहै, वह घबड़ा गई। पन्ने उलटे, किताब उसके सामने धीरे-धीरे साफ होने लगी। उसने किताब पढ़ना शुरू कर दिया।

तो रूस तो वैज्ञानिक बुद्धि का मुल्क है। वह ऐसा नहीं मानता कि जो एक में घटता है, वह कोई चमत्कार है। वह ऐसा मानते हैं कि वह सब में घट सकेगा। तो फिर उन्होंने सैकड़ो बच्चों पर प्रयोग किया और पाया कि सैकडों बच्चे रूस में उंगली से पढ़ सकते हैं। सिर्फ हमने कभी उपयोग नहीं किया।

लेकिन अंगुली तो देख नहीं सकती, अंगुली पर आंख नहीं है। तो उंगली तो सिर्फ बहाना है। सच बात है कि आदमी के भीतर जो क्षमता है, वह बिना आंख के देख सकती है। हम उसका प्रयोग भर नहीं किए। कभी थोड़ा प्रयोग करना शुरू करें और आप चकित हो जाएंगे। थोड़ा प्रयोग करना शुरू करें और चकित हो जाएंगे। कभी आंख बंद करके बैठ जाएं और किताब को खोल लें और सिर्फ इतना ही ध्यान करें कि कितने नंबर का पृष्ठ है। कोई फिकर नहीं है। दस-बीस बार भूल-चूक होगी, किये चले जाएं। कुछ न कुछ लोग आपमें से निकल आएंगे जिनको पृष्ठ का अंक दिखाई पड़ेगा। अगर एक अंक दिखाई पड़ सकता है, तो फिर कुछ भी दिखाई पड़ सकता है। फिर बात तो अभ्यास की है, फिर कोई अड़चन नहीं है बहुत। और जो मैं यह कह रहा हूं, अब इस पर इतन प्रयोग हो गये हैं कि अब इस पर वैज्ञानिक बुद्धि का आदमी भी संदेह नहीं कर पाता है।

इंद्रियां हमारे सामान्य द्वार हैं जानने के। लेकिन अनिवार्य द्वार नहीं हैं। इंद्रियों के पर भी जाना और देखा जा सकता है। वह हमारी अनिवार्य क्षमता है।

महावीर के संबंध में कहा जाता है।। जैन बड़ी मुश्किल में रहे हैं, समझाना बहुत कठिन है।। कि महावीर बोले नहीं अपने शिष्यों से, वह चुप ही बैठे रहते थे और इस चुप्पी में ही बोलते थे, जैनों को बड़ी कठिनाई रही है। फिर वह यही कह सकते हैं कि तीर्थंकर का चमत्कार है, यह सबके बस की बात नहीं है। लेकिन नहीं, इसमें तीर्थंकर का कोई लेना-देना नहीं है। यह सब के बस की बात भी हो सकती है।

जार्ज गुरजिएफ ने अपने शिष्यों के साथ आज से तीस साल पहले एक प्रयोग शुरू किया था, जिसमें वह तीन महीने तक पूर्ण मौन में रखने का आग्रह करता था। पूर्ण मौन। बहुत कठिन है। लेकिन तीन महीने अगर सतत कोई प्रयास करे, सतत चौबीस घंटे प्रयास करे, तो फलित हो जाता है। भीतर बिन शून्य हो जाता है। और गुरजिएफ कहता था, जिस दिन तुम पूर्ण मौन हो जाते हो दिन मैं तुमसे बिना वाणी के बोलने लगूंगा। और वह बोलता था अपने शिष्यों से।

गुजरजिएफ को मरे अभी थोड़े ही दिन हुए। उसके सैकड़ो शिष्य आज भी मौजूद हैं दुनिया में जिनसे वह बिना शब्दों के ही बोलता था। लेकिन तीन महीने उसको पूर्ण मौन से गुजरना होता था। जब पूर्ण मौन में तीन महीने आदमी गुजर जाता है तो उसके मन का सारा का सारा जो शोरगुल है, वह बंद हो जाती है। उस बंद शोरगुल में वह जो धीमी सी आवाज है, जो कान से नहीं पहुंचती ह्नदय है, वह पकड़ी जा सकती है।

वह पहुंचती आप तक भी है, लेकिन आप इतनी भीड़ में भीतर घिरे हैं, ऐसा बाजार भीतर है कि वह आपको सुनाई नहीं पड़ती। वह कोई विशेषता नहीं है। आप बड़े विशेष हैं, यही मुश्किल है! आपके भीतर भीड़ है, बाजार है भारी, उस बाजार की वजह से वह आवाज सुनाई नहीं पड़ती। अन्यथा वह आवाज प्रतिपल चल रही है। और कभी-कभी हमको भी सुनाई पड़ती है, लेकिन हमको भरोसा नहीं आता। क्योंकि हमको कोई अनुभव नहीं है। अचानक आप एक दिन देखते हैं कि आपको मित्र का खयाल आया और उसने द्वार पर दस्तक दी। तब आप सोचते हैं, संयोग होगा। क्योंकि आपको उसका पता नहीं है भीतर। एक दिन अचानक आपको लगता है कि आप बिल्कुल प्रसन्न थे और एकदम उदास हो गए, आपको कुछ समझ में नहीं आता, पीछे तार आता है कि कोई मित्र चल बसा, कि कोई प्रियजन बीमार है; तब आप सोचते हैं।। संयोग होगा।

संयोग जरा भी नहीं है। जब भी आपका प्रियजन मरता है तब आपके भीतर बिना इंद्रियों के खटका पहुंचता है। पहुंचेगा ही। क्योंकि मरना कोई छोटी घटना नहीं है, बड़ी घटना है। और जिससे आप जुड़े हैं, उससे एक भीतरी संबंध है, एक भीतरी द्वार है, जहां से खबरें आ-जा सकती हैं। लेकिन हम संयोग मानकर छोड़ देते हैं कि हो गया ऐसा। क्योंकि हमें पता नहीं है। अगर हमें पता हो तो हर आदमी अपनी जिंदगी में अनेक ऐसी घटनाएं पाएगा, जो उसे खबर देंगी कि उसके भीतर जो छिपा है वह इंद्रियों के बिना काम कर सकता है।

और अगर आपको खयाल हो और सचेतन प्रयोग आप करते हों, तो आप वर्ष दो वर्ष दूसरे ही आदमी हो जाएंगे। आपको चीजें दिखाई पड़ने लगेंगी जो आंख से दिखाई नहीं पड़तीं। और वे चीजें सुनाई पड़ने लगेंगी जो कान से सुनाई नहीं पड़तीं। और वे आपके अनुभव बन जाएंगे जिनको बाहर से अनुभव करने का कोई उपाय नहीं है। तब एक भीतरी संपदा का जगत शरू होगा। तब एक भीतरी अनुभव का अलग ही लोक खुलता हे। तब फूल खिलते हैं जो हमें बिल्कुल अपरिचित हैं। और संगीत बजता है जिसका कानों से कोई संबंध ही नहीं है। और ऐसे नाद और ऐसे प्रकाश और ऐसे रंग और ऐसे अनुभव में हम उतरते चले जाते हैं जिनका इन इंद्रियों ने कभी भी कोई संस्पर्श भी नहीं किया है।

लेकिन, जीवन में संयोग शब्द का थोड़ा कम करें। और बन सके तो जीवन से संयोग शब्द बिल्कुल काट दें। और जब भी कोई ऐसी घटना घटती हो जो इंद्रियों के पार की खबर देती हो, तो उसको तथ्य मानकर उस दिशा में काम शुरू कर दें। संयोग मानना एक तरह का बचाव है। एक तथ्य को झुठलाने का, एक तथ्य को भुला डालने का, एक तथ्य को किसी तरह समझा लेने का उपाय है। एक तथ्य जो विचित्रता की तरह पैदा होता है, उसको हम सामान्य कर देते हैं संयोग कहकर। इस जगत में संयोग कुछ भी नहीं है। कोइंसीडेंट, संयोग जैसी कोई बात नहीं है।

इस जगत में जो भी है वह गहरे कार्य-कारण से अनुबद्ध है। गहरे कार्य-कारण में जुड़ा है। जो भी यहां घटित होता है, उस घटने के पीछे कारण है। संयोग कहकर हम उन कारणों की खोज नहीं कर पाते। अगर हम कारणों की खोज करें तो हमारी भीतरी शक्तियों का अनुभव हमें शुरू हो जाएगा। और जिस दिन हमें उस शक्ति का पता चलने लगे, आंख के बिना जहां दर्शन हो जाए और कान के बिना जहां सुनना हो जाए, उस दिन हमने संसार के बाहर कदम रख दिया। उस दिन हम ब्रह्म के मंदिर में प्रविष्ट हुए।

"सब रूपों से परे मैं सबको जाननेवाला हूं लेकिन मुझ चितस्वरूप को जाननेवाला कोई भी नहीं है।"

"सब रूपों से परे मैं सबको जानने वाला हूं, रूप को तो मैं जानता ही हूं, रूप के भी जो परे है उसको भी मैं जानता हूं।

"लेकिन मुझे जानन वाला कोई भ नहीं है।" यह थोड़ा कठिन सूत्र है। कठिन इस कारण कि इसमें एक बहुत गहरी दार्शनिक निष्पत्ति छिपी है और वह यह है कि परमात्मा के लिए सारा जगत उसके सामने है। जैसे उस विराट परमात्मा को हम छोड़ भी दें, हमारे भीतर जो परमात्मा का, परमात्मा की एक लौ, एक दीया जलता है, उसको ही समझें, आसानी होगी।

मैं देखता हूं आपको, मैं देखता हूं वृक्षों को, मैं देखता हूं आकाश को, चांद-तारों को, मैं सबको देखता हूं लेकिन मैं स्वयं को नहीं देख पाता हूं। स्वयं को देखने का मेरे पास कोई उपाय नहीं है। स्वयं का मुझे अनुभव होता है, प्रतीति होती है, दर्शन नहीं होता। हो भी नहीं सकता। क्योंकि दर्शन उसी का हो सकता है जो दूर हो। पराया हो, अलग हो। मैं खुद को ही कैसे देखूं। देखने के लिए भी तो दूर होना पड़ता है। देखने के लिए भी तो अलग होना पड़ता है। देखने के लिए भिन्नता चाहिए, बीच में जगह चाहिए। द्रष्टा अगर मैं बनूं अपना ही, तो मुझे अपने को ही दो हिस्सों में तोड़ना पड़े। एक देखे और एक देखा जाए। यह संभव नहीं है। मैं दो हिस्सों में टूट नहीं सकता। और अगर मैं टूट भी जाऊं तो जो देखा जाएगा वह मैं नहीं रहा। मैं तो वही रहा जा देख रहा है।

इसे ऐसा समझें कि मेरी अनिवार्य नियति द्रष्टा होने की है और दृश्य मैं नहीं हो सकता हूं। मैं चाहे कुछ भी करूं, मै द्रष्टा ही रहूंगा, दृश्य नहीं बन सकता हूं। क्योंकि मैं दृश्य कैसे बनूंगा? मैं जानने वाला। जानने वाला, हर स्थिति में जानने वाला रहूंगा। यह व्यक्ति के भीतर जो चेतना छिपी है, वह अनिवार्यरूपेण द्रष्टा है, दृश्य कभी भी नहीं हो सकती। ऐसे ही इस पूरे जगत के भीतर जो चेतना छिपी है, वह भी अनिवार्यरूपेण द्रष्टा है, दृश्य नहीं हो सकती।

इसलिए इस सूत्र में कहा हे।। "सबको मैं जानता हूं, सबको मैं जाननेवाला हूं, लेकिन मुझ चितस्वरूप को जानने वाला कोई भी नही है।" परमात्मा आत्यंतिक द्रष्टा है, आखिरी। फिर, फिर उसे देखने का कोई उपाय नहीं है। यह जो हम कहते हैं परमात्मा का दर्शन, तब हम बड़ी भूल भरी भाषा का उपयोग करते हैं, लेकिन मजबूरी है। क्योंकि कुछ भी उपयोग करें, वह भूल भरा होगा। भाषा ही भूल भरी है। उस दिशा में, उस आयाम में भाषा ही भूल भरी रही है। तो हम कहें परमात्मा का दर्शन, तो भी गलती हो जाती है। क्योंकि परमात्मा का दर्शन, इसका मतलब हुआ कि हम परमात्मा के भी द्रष्टा हो गए।

इस तरह कभी सोचा न होगा। हम सोचते हैं।। परमात्मा का दर्शन, लेकिन उसका मतलब क्या होता है? उसका मतलब, मैं परमात्मा का भी द्रष्टा हो सकता हूं। उसका मतलब होता है कि मैं परमात्मा को भी एक वस्तु बना सकता हूं, जिसको मैं देख लूं। परमात्मा का कोई दर्शन नहीं हो सकता। जो होता है, उसे हम दर्शन शब्द से कहने की कोशिश कहते हैं, क्योंकि हमारे पास और शब्द नहीं है। और दूसरे शब्द भी ऐसे ही हैं। अगर हम कहें,

अनुभव, तो उसमें भी वही बात हो जाती है कि वह वस्तु बन गई। कुछ भी हम कहें, जो भी हम शब्द उपयोग करेंगे, उसमें परमात्मा वस्तु बन जाएगा।

इसलिए बुद्ध जैसे मनीषा ने परमात्मा के संबंध में कुछ कहने से इनकार कर दिया। इसलिए नहीं कि वह नहीं है, बल्कि इसलिए कि जो भी कहा जाए वह गलत होगा। लेकिन लोग समझे कि बुद्ध ईश्वर को मानते नहीं हैं। बुद्ध से ज्यादा परम आस्तिक व्यक्ति जगत में दूसरा नहीं हुआ है। लेकिन उनकी परम आस्तिकता इतनी आत्यंतिक और आखिरी है कि वह ईश्वर के संबंध में एक गलत शब्द का उपयोग करने को भी तैयार नहीं है। तो वह ईश्वर शब्द का भी उपयोग करने को तैयार नहीं है। वह कहते हैं उसमे भी गलती हो ही जाएगी। क्योंकि हम जब भी कोई शब्द का उपयोग करें, हम उस शब्द के जानने वाले हो गये, ज्ञाता हो गये। और शब्द से तो जानने वाला बड़ा हो जाता है।

जब कोई कहता हैं मैंने ईश्वर को जान लिया, तो उपनिषद कहते हैं, समझना कि उसने बिल्कुल नहीं जाना। क्योंकि जो कहता है ईश्वर को जान लिया, उसे समझ ही नहीं पड़ रही है बात बिल्कुल कि उसे जाना नही जा सकता। जान जिन चीजों को जा सकता है वह ईश्वर नहीं हैं, संसार है। इसे हम ऐसा कहें, जो भी जाना जा सकता है वह संसार है। और जो जानने के पार छूट जाता है, वही ब्रह्म है। लेकिन फिरी ब्रह्मज्ञानी किसको कहें? तो ब्रह्मवेत्ता किसको कहें? तो किसे कहें ऋषि?

तब, तब दूसरी तरह से बात को खयाल में ले लें तो आसानी हो जाएगी। वह जाना तो नहीं जा सकता, लेकिन उसमे हम मिट सकते हैं। उसमें हम खो सकते हैं। उसे जानना तो मुश्किल है, लेकिन हम वही हो सकते हैं। क्योंकि जानने के लिए तो दूरी चाहिए, वही होने के लिए सब दूरी मिटानी है। जानने में फासला है। वही होने में सब फासले का गिर जाना है। बूंद सागर को जाने भी तो क्या! लेकिन बूंद सागर में गिर सकती है! गिरकर एक तो हो सकती है! और एक होकर फिर जानना वैसा ही हो जाएगा जैसे अभी अपने को जानते हैं।। बिना कारण, बिना इंद्रियों के।

जिस दिन व्यक्ति परमात्मा से एक हो जाता है उस दिन भी वह जानता है, लेकिन अब वह पदार्थ की तरह नहीं जानता, अपने होने की तरह जानता है। आप अपने को किस तरह जानते हैं? उसी तरह वह व्यक्ति परमात्मा का जानता है। कोई कारण नहीं, कोई प्रकाश नहीं, कोई इंद्रिय नहीं, फिर भी जानता है। वह जानना इसी जानने का विस्तार है। वह जानना जगत को जाननेवाला जानना नहीं है।

इसलिए इस सूत्र में कहा है।। "सब रूपों से परे सबको जानने वाला मैं ही हूं, लेकिन मुझ चित स्वरूप को जानने वाला कोई भी नहीं है।" यह सूत्र बड़ा कीमती है। यह उस परम ब्रह्म की खोज में निकले हुए व्यक्ति को बहुत हृदय के गहरे में रख लेना चहिए कि उसे जाना नहीं जा सकता, उसे जीआ जा सकता है। उसमें एक हुआ जा सकता है, उसमें खोया जा सकता है, उसमें मिटा जा सकता है, वही हुआ जा सकता है, लेकिन जाना नहीं जा सकता। जानने में दूरी है, इसलिए फासला है इसमें। और परमात्मा के साथ जब तक इंच भर का भी फासला है, तब तक कोई उपाय नहीं है।

उस फासले को भी कम करना हो तो क्या करें? परमात्मा को पास लाएं? बुलाएं? चिल्लाऐ? पुकारें? कितना ही चिल्लाओ, कितना ही बुलाओ, उसे पास लाने का उपाय नहीं है, क्योंकि वह पास है ही। फिर भी हम चिल्लाते हैं, पुकारते हैं। तो एक बात साफ है कि वह जो पास है, वह हमे पता नहीं चल रहा है। और कोई कारण नहीं है। इसलिए अगर हम परमात्मा को पास लाना चाहते हों तो उसे बुलाने और पुकारने से काम नहीं

होगा, अपने को मिटाने से काम होगा। जैसे-जैसे हम पिघलेंगे, मिटेंगे, बिखरेंगे, वैसे-वैसे वह पास होने लगेगा। जिस दिन हम बिल्कुल बिखर जाएंगे। खो जाएंगे, उस दिन वह यहीं हो जाएगा जहां हम हैं।

ऐसा समझें कि एक बरफ की चट्टान पानी में बही जा रही है। सागर से मिलना है उसे। चिल्लाती है, चीखती है, लेकिन पिघलती नहीं। और सागर में ही है। इसलिए चीखने-चिल्लाने से कुछ भी न होगा। सागर को बुलाने से कुछ न होगा। सागर यही हैं। वह उसी में तैर रही है। वह सागर से मिलना चाहती है। कहां खोजे सागर को? जितना खोजती है, कहीं उसका पता नहीं मिलता।

ठिक वैसी हमारी दशा है। बरफ की चट्टान हैं। तो बरफ की चट्टान के लिए एक ही काम है कि काम है पिघल जाए, खो जाए, तो यहीं, यहीं पैरों के तले, इसी जमीन में उसे परमात्मा, उसे सागर उपलब्ध हो जाएगा। हमे भी पिघलना पड़ेगा।

इसलिए हमने जो शब्द चुना है इस पिघलने के लिए, वह तप है। कीमती शब्द है। तप का मतलब होता है, ताप। अगर चट्टान का पिघलना है तो तपना पड़ेगा, तपना पड़े तो पिघल जाए।

हमें भी अपने को तपाना पड़ेगा। उस तपन में ही हम पिघलें, और हमारा अहंकार, हमारी बर्फ, हमारी चट्टान पिघले, तो सागर से एक हो जाए। तब हम सागर ही हो जाएंगे। तब ऐसा हम न कहेंगे कि हम सागर को जानते हैं। तब हम ऐसा कहेंगे।। अब हम न रहे, सागर ही है।

अब हम ध्यान के लिए तैयार हों।

सोलहवां प्रवचन

समग्र का माध्यमरहित ज्ञान है परमात्मा

वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृदविदेय चाहम।

न पुण्य पापे मम नास्ति नाशो न जन्मदेहेन्द्रिय बुध्दिरस्ति।। 22।।

मैं ही वेदों का उपदेश करता हूं; मैंने ही उपनिषदों अर्थात वेदांत की रचना की हैं; और सारे वेद मेरी ही चर्चा करते हैं। मैं जन्म और नाश से परे हूं। पाप और पुण्य मुझे छू नहीं सकते। मैं शरीर, इंद्रिय और बुध्दि से रहित हूं।। 22।।

मैं ही वेदों की रचना करता हूं। मैं ही वेदों का उपदेश करता हूं। मैंने ही उपनिषदें रची हैं और सारे वेद मेरी ही चर्चा करते हैं।

यह सूत्र थोड़ा अजीब सा मालूम पड़ेगा। क्योंकि मैं ही वेदों का उपदेश करूं और वेद मेरी ही चर्चा करें! मैं उपनिषद रचूं और उपनिषदों में मेरी चर्चा हो! अपनी ही अभिव्यक्ति! ऊपर से देखने पर सूत्र अजीब मालूम पड़ेगा, लेकिन थोड़े गहरे में देखेंगे तो बहुत महत्वपूर्ण है।

कुछ सूत्र के मौलिक आधार समझ लेने चाहिए।

पहला तो यह कि जो भी है, परमात्मा है। तो चाहे चर्चा की जाए और चर्चा करनेवाला हो; चाहे दृश्य बने और चहे द्रष्टा हो; चाहे मूर्ति हो और चाहे मूर्तिकार हो; अगर एक ही है अस्तित्व, तो फिर मूर्तिकार अपनी ही मूर्ति बना रहा है। और गीतकार अपना ही गीत गा रहा है। और वेद का जो निर्माता है, वही वेद का विषय भी होगा। क्योंकि दो का कोई उपाय नहीं है। अगर अस्तित्व एक ही है तो फिर सभी कुछ उस एक से ही संबंधित है।

इसलिए इस अजीब से दिखने वाले सूत्र में महत्वपूर्ण सूचना दी गई है और वह सूचना यह है कि जो कुछ भी हो रहा है यहां, वह सभी मैं हूं। उसमें कुछ भी वर्जित नहीं है। हमारा मन कठिनाई में पड़ेगा। क्योंकि यहां बहुत कुछ हो रहा है जिसे हम वर्जित करना चाहेंगे और हम कहना चाहेंगे कि यह न हो तो बेहतर है। बहुत कुछ है, जो भी सोचेगा वह पाएगा कि जीवन में न होता जीवन बेहतर होता। लेकिन हमें जीवन की गहराइयों का पता नहीं है, इसलिए ऐसा विचार उठता है। कौन नहीं होगा जो चाहे कि अगर जगत में असाधु न हों तो बेहतर है, पाप न हो तो बेहतर है। यह बहुत साफ दिखाई पड़नेवाली बात भी है, बहुत गणित है, क्योंकि साधु हो ही सकता है तब जब असाधु भी हों। और पाप हो तो ही पुण्य हो सकता है। और अगर बीमारी न हो तो स्वास्थ्य के होने को कोई भी उपाय नहीं है। और अगर मृत्यु न हो तो जन्म असंभव हो जाएगा।

जीवन के गणित को अगर हम समझें जो जीवन सदा ही, द्वंद्व के बीच एक संतुलन है। उस दो से हम एक को काटने की इच्छा रखते हैं। तो हमें पता नहीं है कि जीवन का संतुलन बिखर जाएगा तत्काल।

इधर मैं मनुष्य के "बुद्धि-अंक" के संबंध में कुछ अध्ययन करता था। "आई.क्यू". के संबंध में, "इंटेलीजेंस कोशियंट" के संबंध में। हर आदमी की बुध्दि की एक गणना हैं। कुछ अध्ययन करता था। हर आदमी की बुद्धि-मापी जा सकती है। तो "बुद्धि-अंक" उपलब्ध हो जाता है। तो बड़ी हैरानी का अनुभव मुझे हुआ कि अगर सौ

आदमियों की बुद्धि मापी जाए तो एक आदमी उसमें प्रतिभाशाली होता है, जिसको जीनियस कहें। और एक आदमी मूढ़ होता है, जो जीनियस के बिल्कुल विपरीत है। एक। दो प्रतिभाशाली नहीं होते। अगर दो प्रतिभाशाली हों तो दो महामूढ़ होते हैं। एक होता है प्रतिभाशाली, एक होता महामूढ है, दो महामूढ़ नहीं होते है। अगर जगत की पूरी बुद्धि की गणना की जाए तो अनुपात है उसमें, बड़ी हैरानी की बात है, कि एक प्रतिभाशली के लिए एक महामूढ़ अनिवार्य है। अगर दस विलक्षण प्रतिभा के लोग होते हैं, प्रतिभा से नीचे, तो दस मूढ़ के ऊपर मूर्ख होते हैं। और ये अनुताप ऐसा ही चलता है। पचास व्यक्ति उस तरफ बंटे होते हैं, पचास व्यक्ति इस तरफ बंटे होते हैं। और इस अनुताप में कभी भी फर्क नही पड़ता।

तो उसका मतलब यह हुआ कि बुद्धि भी अबुद्धि के साथ ही इस जगत में खिल सकती है। और समान अनुताप में। नहीं तो नहीं खिलती। इसका मतलब हुआ कि एक बुद्धिमान जब इस जगत में आता है तो अपने साथ एक महामूढ़ को ले आता है। इसका यह भी मतलब हुआ कि जब भी एक महामूढ़ पैदा होता है तो एक बुद्धिमान को पैदा होने का अवसर बनाता है। इसलिए बुद्धिमान को अलग करने की, मूढ़ को अलग करने की जरूरत नहीं हैं, वह एक ही तराजू के दो पलड़े हैं। और उनमें से एक को काटा तो दूसरा फौरन गिर जाता है। इसलिए बुद्धिमान को मूढ़ के प्रति अनुग्रहीत होना चाहिए, उसके बिना वह हो नहीं सकता। और आज नहीं कल हमे पता चलेगा कि जीवन में सभी चीजें इसी तरह संतुलित हैं। यहां एक राम पैदा होता है तो रावण के बिना नहीं पैदा होता। रावण को तत्काल तराजू पर आ जाना पड़ता है। हमारा मन कहता है, रावण न हो। लेकिन रावण के बिना राम नहीं हो सकते।

जीवन एक संतुलन है। यहां भलाई और बुराई के दो पलड़े हैं तराजू के, एक ही तराजू के। और इसलिए असली सवाल यह नहीं हैं कि बुराई मिट जाए, असली सवाल यह नहीं है कि भलाई बढ़ जाए, असली सवाल यह है कि बुराई और भलाई जिस सूत्र से जुड़े हैं वह सूत्र हमें दिखाई पड़ जाए। तो फिर न बुराई बुराई रह जाती है, न भलाई भलाई रह जाती है। तब हम जानते हैं कि यह तो जीवन की अनिवार्यता है। जैसे कि अगर हम एक मकान में एक"आर्च" बनाते हैं, एक दरवाजा हैं, एक दरवाजा बनाते हैं गोल, तो दोनों तरफ उलटी ईंटे लगाते हैं। और उन्हीं उलटी ईंटो के सहारे पूरा भवन खड़ा हो जाता है उसके ऊपर। कोई सोच सकता है कि हम एक-सी ईंटे न लगाएं तो फिर भवन खडा नहीं होता। तत्क्षण गिर जाएगा। वे उलटी ईंटे एक दूसरे का साध लेती हैं। और उन्हीं उलटी ईंटो का वजन जब संतुलित हो जाता है, तो महाशक्ति पैदा हो जाती है।

इस जगत की सारी ऊर्जा द्वंद्व से निर्मित है। और द्वंद्व से ही संचालित है। इसलिए ऐसा दिन कभी भी नहीं आएगा जिस दिन राम हो सकें रावण के बिना। इसमें निराश होने का कोई भी कारण नहीं है। और अगर यह खयाल में आ जाए तो फिर रावण भी बुरा नहीं मालूम पड़ेगा। और राम और रावण एक ही खेल के दो हिस्से मालूम पडेंगे। दनमें से एक भी हट जाए तो खेल बंद हो जाता हैं। जरा रामलीला रावण के बिना करके देखें तब पता चलेगा! तो वह रामलीला ही नहीं है, "राम-रावण लीला" है। अगर उसको ठीक से समझें तो यह दोनों एक ही"आर्च" की दो ईंटे हे जिन पर सब संभला हुआ है। हमारा राम से मोह इसलिए हमने रामलीला नाम रख लिया है। लेकिन अगर यह मोह को हम छोड़ें और चीजों को सीधा देखें, तो हम"राम-रावण-लीला" कहेंगे।

इस जगत में अगर एक ही है, तो उस एक ने ही अपने को दो में विभाजित करके यह द्वंद्व, यह ऊर्जा पैदा की है। ईंटे सब एक-जैसी हैं। लेकिन उलटी रख दिये जाने पर "आर्च" बन जाती हैं, फिर भवन उसके ऊपर जा सकता है। ईंटे एक ही है। राम और रावण दो तरह की ईंटो से नहीं बने हुए हैं, बुराई और भलाई दो तरह की ईंटों से नहीं बनी हुई हैं, एक ही तरह की ईंटा से बनी हुई हैं। सिर्फ एक दूसरे के विपरीत एक ही तरह की ईंटे

रख दी जाती हैं। साधु कोशिश में रहते हैं कि असाधु दुनिया से मिट जाए। ओर उन्हें पता नहीं हैं कि असाधु के कारण वे हैं। इसलिए उनकी कोशिश चलती रहती है लेकिन असाधु मिटता नहीं। असाधु मिट नहीं सकता। असाधु उसी दिन मिट सकता है जिस दिन साधु भी न रह जाए, उसके पहले नहीं मिट सकता। और वह दुनिया बड़ी नीरस, अर्थहीन होगी जिस दिन साधु-असाधु, दोनों न हों।

दुनिया में तो वे दोनों रहेंगे, क्योंकि दुनिया एक लीला है और इस लीला में द्वंद्व चलेगा। लेकिन आप अगर समझ जाएं और अगर आपको यह दिखाई पड़ जाए कि यह द्वंद्व लिला है और द्वंद्व के पीछे जो एक ही छिपा है वह अनुभव में जा आ जाए, तो आपके लिए यह लीला समाप्त हो जाएगी। और जिसके लिए लीला समाप्त हो गई वह संसार के पार हो जाता है। जिसके लिए यह लीला समाप्त हो गई, वह संसार के पार हो जाता है। और जब तक लीला में आपका चुनाव है तब तक आप संसार में भीतर रहेंगे। जिसने रावण के खिलाफ राम को चुना है, यह राम के खिलाफ रावण को चुना हैं, वह संसार में रहेगा। अभी इसे जीवन का अत्यांतिक संतुलन समझ में नहीं आया है। इसमें कोई चुनाव नहीं है राम और रावण में। यह लीला है, यह समझ में आना चाहिए। यह द्वंद्व ही जगत का खेल है। इस द्वंद्व के भीतर वह जो एक है, उसका दिखाई पड़ जाना है।

इस सूत्र में बहुत तरह के...

"मैं ही वेदों का उपदेश करता हूं, मैंने की उपनिषदें रचीं और सारे वेदा मेरी ही चर्चा करते हैं"। मै अपनी ही चर्चा करता हूं, क्योंकि कोई दूसरा तो है नहीं। कभी आपने किसी आदमी को अकेले में ही ताश खेलते देखा हे? खेलते हैं लोग। दोनों बाजियां फैला लेते हैं। इस तरसे भी चलते हैं और उस तरफ से जवाब भी देते हैं? ठीक यह जगत परमात्मा का ऐसा ही खेल है। दोनों बाजियां उसकी हैं। वही इस तरफ से चलता है, वही उस तरफ से उत्तर देता है। इससें दूसरा नहीं है। लेकिन यही भारतीय मनीषा की दृष्टि है। ऐसी दृष्टिं भारत के बाहर और कहीं उपलब्ध नहीं हो सकी। सभी जगह इस द्वंद्व को, इस दिखाई पड़नेवाले, द्वंद्व को आत्यंतिक मान लिया गया है। इसके भीतर एकता नहीं है।

ईसाइयत, यहूदी या इस्लाम ईश्वर और शैतान को आत्यंतिक इकाइयां मान लिये हैं। उनके भीतर कहीं कोई जोड़ नहीं है, कहीं कोई तालमेल नहीं है। भारत में भी जैनों ने शैतान और ईश्वर में तो विभाजन नहीं किया, लेकिन जगत और मोक्ष में विभाजन कर लिया है। वे भी मानते हैं कि जगत और मोक्ष में कोई तालमेल नहीं हैं, ये अलग इकाइयां हैं। इसलिए जैन द्वैतवादी हैं। वे कहते हैं, दो का अस्तित्व तो है ही--एक जगत है और एक ईश्वर एक जगत और एक मोक्ष।

इस लिहाज से जैन और मुसलमान और ईसाई और यहूदी सहमत हैं कि जगत दो में बांटा गया है--एक नहीं है।

हिंदू-चिंतना जगत को कहती है कि दो में बंटा हुआ है लेकिन जो बंटा हुआ है वह एक है। क्योंकि हिंदू-चिंतना का यह खयाल है कि अगर जगत दो में बंटा हैं, तो इस जगत में शांति का फिर कोई उपाय नहीं है। कभी भी कोई उपाय नहीं है। क्योंकि ये दो अगर आत्यंतिक इकाइयां हैं तो संघर्ष फिर तो अनिवार्य होगा। फिर सदा होगा। कभी ईश्वर जीतेगा, कभी शैतान जीतेगा; कभी बुराई जीतेगी, कभी भलाई जीतेगी; लेकिन इसका अंत कैसे होगा? क्योंकि बुराई अपनी ही हैसियत से अलग शक्ति है, उसको नष्ट नहीं किया जा सकता है, सिर्फ हार-जीत हो सकती है।

और भलाई भी अपनी ही हैसियत की एक शक्ति है, वह भी अंतिम रूप से विजेता नहीं हो सकती, क्योंकि बुराई की शक्ति नष्ट नहीं की जा सकती। वह भी शक्ति है। दोनों शक्तियां है। दोनों शाश्वत हैं। शैतान और

ईश्वर, दोनों शाश्वत है। संसार और मोक्ष, दोनों शाश्वत हैं। तो इसमें अंत कैसे होगा? और अगर एक व्यक्ति आज संसार में पड़ गया है, किसी तरह झगड़कर, जीतकर बाहर निकल जाए, कल नहीं पड़ेगा इसका क्या उपाय है? क्योंकि किसी दिन पड़ ही गया था, कल फिर पड़ सकता है। और संसार मोजूद रहेगा। संसार तिरोहित नही होता। संसार फिर खींच सकता है। अगर इस बार खींचा है तो फिर क्यूं नहीं खींच सकता है? तो संघर्ष शाश्वत हो जाएगा। दो विरोधी शाश्वत शक्तियों के साथ संघर्ष भी शाश्वत हो जाएगा। और इसका कोई अंत नहीं है।

इसलिए हिंदू-चिंतना में एक बहुत ही अद्भुत बात कही है और वह यह कि यह संघर्ष खेल है, शाश्वत नहीं है। यह संघर्ष सिर्फ दिखावा है, भीतरी नहीं है। यह संघर्ष केवल मनबहलाव है। इसलिए भारत ने कहा, विशेषकर हिंदू-चिंतन ने, कि संसार एक लीला, एक खेल है। उसे वास्तविकता देने का कोई कारण नहीं है। अगर खेल है तो खेल बंद किया जा सकता है। और अगर खेल है और दोनों विपरीत के भीतर एक ही छिपा है, तो इसका अनुभव होते ही खेल विलीन हो जाएगा। और न विलीन हो, खेल ही खेल है ऐसा पता चल जाए, तो भी मुक्ति हो गई।

इसलिए हिंदू-चिंतन ने दो तरह के मुक्त माने हैं। एक, जिसको कहा है जीवनमुक्त। जीवनमुक्त उसे कहा है, जो खेल में खड़ा है और जानता है कि खेल है। और एक को कहा है--मुक्त। जो खेल को खेल जानकर खेल के बाहर हो गया हे।

दोनों तरफ मैं ही हूं। दोनों बाजुएं मेरी हैं। इसकी गहरी निष्पत्तियां हुई। इसका मतलब सब हार मेरी है, सब जीत मेरी है। इसक मतलब हुआ कि न मैं कभी हारता हूं, न मैं कभी जीतता हूं, क्योंकि खिलाड़ी मै अकेला हूं। इसका यह मतलब हुआ कि संसार और मोक्ष के बीच का फासला टूट गया। इसका यह मतलब हुआ कि संसार में भी रहकर कोई मुक्त हो सकता है। कोई विरोध न रहा।

जगत को एक अनिवार्य शत्रुता की तरह को कोई कारण नहीं है। तब जगत एक गहनता में एक का ही खेल है। तो फिर द्वंद्व में तोड़ने की और तोड़कर तनाव से भरने की कोई जरूरत नहीं हे। ध्यान रहे, जब हम जगत को दो में तोड़ते हैं, तो हम मनुष्य को भी दो में तोड़ देते हैं। तो उसका शरीर और उसकी आत्मा दुश्मन हो जाती है। तब उसकी इंद्रियां और उसकी चेतना दुश्मन हो जाती है। इस तनाव से भरा हुआ व्यक्ति या तो इंद्रियों को नष्ट करने में लग जाता है और या फिर आत्मा को नष्ट करने में लग जाता है। और दोनों ही स्थिति में दुख पाता है।

भारतीय मनीषा की दृष्टि है कि जब इन दो में बांटा ही लेते हैं, तभी तनाव पैदा हो जाता है और अशांति पैदा हो जाती है। इन दोनों को दो में बांटो ही मत। इनके पीछे एक ही छिपा है।

इस एक का बोध हर दिशा से हो सके, इसलिए सूत्र में कहा है।"मै ही वेद का उपदेश करता, मैं ही उपनिषद रचता, और सारे वेदा वेद उपनिषद मेरी ही चर्चा करते हैं।" क्योंकि मेरे अतिरिक्त और कोई भी नहीं है।"मै जन्म और नाश से परे हूं। पाप और पुण्य मुझे छू नहीं सकते।"

"पाप और पुण्य मुझे छू नहीं सकते।" ऐसा वक्तव्य और कहीं उपलब्ध किसी भी धर्मशास्त्र में होना असंभव हैं। क्यों कि सभी धर्मशास्त्रों मे परमात्मा को पुण्य के साथ एक कर लिया है और पाप को वर्जित कर दिया है। पाप को वर्जित करने की वजह से शैतान को निर्मित करना पड़ा है, क्यों पाप फिर किसके पल्ले जाए और कहां जाए। बुराई जगत में है। भलाई हम परमात्मा को दे देते हैं, फिर बुराई कहां जाए।

ईसाइयत सदा से कठिनाई में रही है कि जगत में बुराई है, इसका क्या करें? कौन इसके लिए उत्तरदायी हो? परमात्मा को उत्तरदायी बनाने की हिम्मत नही पड़ती, क्योंकि अगर परमात्मा ही बुराई कर रहा है तो

फिर बुराई से छूटने का उपाय नहीं सूझता। और अगर परमात्मा भी बुराई कर रहा है तो वह कैसा परमात्मा। अंग्रेजी में"गॉड" और"गुड" एक ही जगह से निष्पन्न होते हैं। वह शुभ हे, वही ईश्वर है। इसलिए वस्तुतः ईश्वर का अंग्रेजी में अनुवाद"गॉड" करना ठीक नहीं है। क्योंकि यह जो ईश्वर है यह कहता है, पाप और पुण्य मुझे छू नहीं सकते। मैं दोनों में हूं और दोनों के पार भी हूं।

इसमें एक बात और समझ लेना जरूरी है कि छू नहीं सकते इसका यह मतलब नहीं है कि मैं दोनों से दूर हूं। क्योंकि अगर दूर हो तो छूने का कोई सवाल ही नहीं हैं। इसका साफ मतलब है कि मैं दोनों के बीच हूं और छू नहीं सकते हैं। नदीं से मैं गुजरता हूं और पानी मुझे छुता नहीं। काली कोठारी सें मैं गुजरता हूं और काला दाग मुझे नहीं लगता है। अगर मैं काली कोठरी से गुजरता ही नहीं हूं तो छूने-नहीं छूने का सवाल नहीं है। यह सूत्र कि पाप और पूण्य मुझे छू नही सकते, यह कहता है कि पाप और पुण्य में मैं ही हूं, फिर भी वे मुझे छू नहीं सकते। मैं उन दोनों में होकर भी दोनों के पार हूं।

तो परमात्मा का यह अतिक्रमण करनेवाला रूप, यह"ट्रांसेंडेस" का रूप, शुभ अशुभ दोनों के पार एक अनूठी दृष्टि है। यहां हम परमात्मा को शुभ के साथ एक नहीं करतें, इसलिए हमे शैतान बनाने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन तब हमारा परमात्मा जटिल हो जाता है। क्योंकि शुभ और अशुभ दोनों ही उसी से निष्पन्न होते हैं। स्वास्थ्य भी वही देता है, बीमारी भी वही देता है। और जन्म भी वही और मृत्यु भी वही। और राम भी उससे आते है और रावण भी उससे आते हैं। और जहर भी उससे ही बनता है और अमृत भी। तब हमारे परमात्मा की धारणा जटिल हो जाती है।

एक मुसलमान मित्र मेरे पास आए थे, विचारशील हैं। वे कह रहे थे कि और तो सब ठीक है, यह हमारी समझ में नहीं पड़ता कि अगर बुराई भी परमात्मा कर रहा है, तो वह क्यों कर रहा है? एक छोटा बच्चा पैदा होता है और पैदा होते से ही मर जाता है। तो अगर यह परमात्मा ही कर रहा तो यह क्यों कर रहता है? बीमारी क्यों है? गरीबी क्यों है? दुख क्यों है? पीड़ा क्यों है? उनका सवाल संगत दिखाई पड़ता है। और हिंदू-विचार से निरंतर ईसायइत और इस्लाम ने यही पूछा है कि यह क्यों है? उनको आसानी है, क्योंकि वे कह सकते हैं कि यह शैतान के कारण है।

मैंने उस मुसलमान मित्र से पूछा कि पहले तुम यह बताओ कि यह शैतान तुम्हारे परमात्मा की बिना आज्ञा के जगत में है? शैतान क्यों है? इससे हल कहां होता है? तुम सिर्फ सवाल को एक कदम पीछे हटाते हो। हल कहां होता है। शैतान क्यों है? छोड़ो, बुराई क्यों है यह हिंदू जवाब नहीं दे पाते हैं, तुम मुझे कहो कि शैतान क्यों है?

दो ही उपाय हैं। या तो तुम मानो कि यह परमात्मा की आज्ञा से है, परमात्मा ने इसे बनाया। और अगर परमात्मा शैतान को बना रहा है तो इसमें चक्कर क्यों लेना, बीमारी का सीधा क्यो नही बना सकता? शैतान को एजेंट बनाए, फिर शैतान बीमारी बनाए, इसका क्या प्रयोजन है? और या तुम यह कहो कि यह शैतान परमात्मा से स्वतंत्र शक्ति है, परमात्मा ने उसे बनाया ही नहीं है। यह भी उसी हैसियत से है जैसा परमात्मा है। तब तुम शैतान को एक दूसरा परमात्मा मान रहे हो। तब मैं तुमसे पूछता हूं कि पक्का है कि इन दोनों परमात्मा में कौन जितेगा? जहां तक जगत का अनुभव कहता है, वहां तक तो यही कहता है कि शैतान रोज जीतता है और परमात्मा रोज हारता है? तो अंततः परमात्मा जीतेगा, यह तुम्हें किसने कहा? और क्या वजह है सोचने की कि परमात्मा अंततः जीतेगा? शैतान रोज जीतता दिखाई पड़ता है, परमात्मा जीतता दिखाई नही पड़ता!

जिसे तुम अवतार कहते हो, उसे एक गुंडा छुरा मार दे तो अवतार मर जाता है। जिसे तुम ईश्वर-पुत्र कहते हो, जीसस को, सूली पर लटका दिया जाता है। कहां जीतता दिखाई पड़ता है तुम्हारा परमात्मा! लगता तो ऐसा है कि शैतान ज्यादा बड़ा ईश्वर है फिर। और जीत उसके हाथ में मालूम होती है। हल तो कुछ भी नहीं हुआ है शैतान को मानने से।

लेकिन हिंदू-चिंतना कुछ और जवाब देती है। हिंदू-चिंतना का कहना यह है कि जिसे तुम बुराई कहते हो, वह तुम्हारी दृष्टि में बुराई है। अगर तुम पूरे अस्तित्व को सोचा तो वह बुराई नहीं है। बुराई तुम्हारा दृष्टिकोण है।

मैंने उनसे पूछा, एक छोटा बच्चा पैदा हुआ और मर गया, तुम कहते हो कि बुरा है। क्या तुम्हें पक्का पता है कि मरता नहीं तो ज्यादा अच्छा होता? मर गया तो ज्यादा बुरा हुआ? क्या तुम मानते हो कि यह मरता नहीं, जो जगत में शुभ फलित होता। एक हिटलर मर सकता था पैदा होकर। अगर हिटलर पैदा होकर मर जाता, तो हम कहते बहुत बुरा है यह जगत। लेकिन हमें पता नहीं था कि यह जीकर क्या कर सकता है और क्या हो सकता है।

हमें पूरे का कोई पता नहीं है। हम अंश से अनुमान कर रहे हैं। हमारी हालत ऐसी है कि हम किसी उपन्यास से एक पन्ना फाड़ लें और उसको पढ़े और पूरे उपन्यास के संबंध में वक्त्व्य दें। या कविता की एक पंक्ति काट लें, उसे पढ़े और पूरी कविता के संबंध में वक्त्व्य दें। यह जगत एक विराट महाकाव्य है, जिसका न हमें ओर का पता है न छोर का। इसमें हम बीच की कोई घटना पकड़ लेते हैं उससे हम हिसाब लगाते हैं। वहीं भूल हो जाती है। एक घटना को पकड़कर हिसाब नही लगाया जा सकता। घटना अकेली नहीं है, एक महान जाल का हिस्सा है। एक विराट शृंखला का हिस्सा है।

तो एक बच्चा पैदा हुआ, वह क्या हो सकता है, इसका हमे कोई पता नहीं है। अगर एक हिटलर मर जाए और हमें पता हो कि यह हिटलर हो सकता है, तो कोई भी नहीं कहेगा कि यह बुरा हुआ। जर्मन एक विचारक ने लिखा है कि ऐसे ही क्षणों में आदमी की नीति और आदमी की समझ उथली पड़ जाती है। अगर हिटलर की मां अपने बच्चे की गर्दन दबा दे तो महापुण्य का कार्य होगा। लेकिन इसे कोई महापुण्य मानेगा नहीं, उसकी मां तो अदालत में सजा काटेगी। और सारी दुनिया उसकी निंदा करेगी कि यह कैसी मां है! और ठीक ही है, क्योंकि हमें कुछ भी तो पता नहीं है कि यह बच्चा क्या हो सकता है? क्या इसकी संभावना है?

फिर यह भी हम छोड़ दें कि यह बच्चा क्या हो सकता है, यह भी कहां पक्का पता है कि जीना शुभ है और मर जाना अशुभ है। यह किसने कहा? यह कैसे जाना? क्योंकि मरा हुआ आदमी कुछ लौटकर आपसे कहता नहीं है कि मैं बड़े दुख में पड़ गया हूं। और संभावना तो यह है कि अगर मुर्दे दुख में पड़ते हों तो जरूर लौटकर कहेंगे, क्योंकि दुख की बातें कहने की इतनी इच्छा होती है! मालूम ऐसा पड़ता है कि मूर्दे ऐसे सुख में पड़ जाते हैं कि लौट कर कहने तक का उपद्रव लेने की जरूरत नहीं रह जाती। तब कौन तय करेगा कि मृत्यु दुख है?

एक तो बात साफ है कि जीवन में तनाव है, दुख है, संताप है, लेकिन मृत्यु में तो विश्राम है, यह तो साफ है। दिन भर आप दौड़ते हैं, भागते हैं, परेशान होते हैं, रात सोकर विश्राम पाते हैं। मृत्यु एक महानिद्रा है। किसने कहा हे कि यह दुख में पड़ गया? यह अशुभ क्यों हैं?

यह अशुभ इसलिए मालूम पड़ता है कि मेरा बेटा मर गया। यह अशुभ इसलिए नहीं मालू पड़ता कि कोई मर गया, यह अशुभ मालूम पड़ता है कि "मेरा" कोई मर गया। यह "मेरे" का कुछ हिस्सा मर गया, इसलिए अशुभ मालूम पड़ता है। यह अशुभ इसलिए मालूम पड़ता है कि इस बेटे के साथ मेरी बहुत-सी महत्वाकांक्षाएं

पैदा हुई थी, वे सब मर गईं। इस बेटे के साथ मैंने जगत में अपने अहंकार को पूरा करने के लिए न मालूम कितनी कल्पनाएं बांधी थीं, वे सब मर गयीं।

लेकिन कौन कहता है कि महत्वाकाक्षांओ का मर जाना बुरा है? और कौन कहता है कि मेरे अहंकार की पूर्ति न हो पाई, यह बुरा है और कौन कहता है कि मेरा हिस्सा कुछ टूट गया, यह बुरा है? क्योंकि जो जानते हैं वे तो कहते हैं कि जिस दिन सब कुछ मेरा टूट जाए, मेरा जैसा मेरे भीतर कुछ रहे ही नहीं, तो ही मैं परमानंद को उपलब्ध होऊंगा। यह दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि हम किस चीज को बुरा कहें, किस चीज को भला कहें।

यह मनुष्य की चिंतना है कि क्या बुरा है और भला हैं। परमात्मा की तरफ से जहां विराट का पूरा बोध है, जहां पूरा दिखाई पड़ रहा है, वहां बुरा और भला का सवाल नहीं है; वहां बुरा और भला है ही नहीं।

इसे हम यूं समझें।

मैंने सुना है, कैनेथ वॉकर लंदन का एक बड़ा सर्जन था। उसने एक बार किसी मरीज की किसी बीमारी का आपरेशन किया और ग्रंथि भीतर बन गई थी उसको काटकर बाहर निकाला। वह बीमारी असाधारण बीमारी है, कभी करोड़ो में एक आदमी को होती है। मरीज क रिश्तेदार बाहर बैठ कर रो रहे हैं, दुखी हो रहे हैं और कैनेथ वॉकर ऐसी संलग्नता से लगा है आपरेशन में जैसे कोई चित्रकार चित्र बना रहा हो। और उसकी प्रफुल्लता, उसकी ताजगी! उस मरीज से उसका कोई संबंध ही नहीं है। वह तो एक बहुत अनूठी बीमारी उसके हाथ में लग गई है जो कभी करोड़ों में एक को होती है और कभी एकाध सर्जन को सौभाग्य मिलता है उस बीमारी को आपरेट करने का! वह उसमें ही संलग्न है। वह इतना प्रफुल्लित, इतना आनंदित है, उसकी जिंदगी का बड़े से बड़ा क्षण आ गया! और जब उसने गंथि काट कर बाहर निकाली और टेबल पर रखी उसके मुंह से जो शब्द निकले, वह थे।। हाउ ब्यूटिफुल! वह जो ग्रंथि थी, वह जो बीमारी की गांठ थी, उसने जब उसे टेबल पर रखा और देखा तो उसके मुंह से जो शब्द निकले वे यह थे कि हाउ ब्यूटिफुल।

दृष्टि पर निर्भर करता है। किसी भयंकर बीमारी की गांठ किसी कलाविद चिकित्सक को सुंदर मालूम पड़ सकती है। सुंदर है या नहीं, कहना मुश्किल है। जिसे हम बीमारी कहते हैं... सूफी फकीर हुआ, सरमद। उसको नासूर हो गया था ह्नदय में और उसमें कीड़े गये थे। और जब वह मस्जिद में नमाज पढ़ने के लिए झुका तो कीड़े नीचे गिर गये। तो कथा है कि सरमद से कीड़े उठाकर वापस नासूर में रख लिये। लोगों ने कहा सरमद, यह क्या पागलपन करते हो? सरमद ने कहा कि जो मेरी मौत है, वह इनकी जिंदगी है। लेकिन कौन निर्णय करे कि कौन सी जिंदगी बेहतर है। तो मैं नमाज पढ़ना बंद कर दूंगा, क्योंकि यह बेहतर है कि मैं अपनी ही जिंदगी का बदतर समझूं बजाय इनके क्योंकि इनकी जिंदगी के बाबत मैं कैसे निर्णय लूं? तो सरमद ने नमाज बंद कर दी, क्योंकि झुकेगा, कीड़े गिर जाएंगे।

अब यह अजीब आदमी है। दृष्टि की बात है। क्योंकि उसने कहा कि यह मेरी जिंदगी जो है वह उनकी मौत है। अगर मैं बचना चाहूं तो ये कीड़े मरेंगे। उनको मारना पड़ेगा। लेकिन किसकी जिंदगी उस अंतिम हिसाब में उपयोगी है, कौन जाने! एक बात पक्की है कि अगर भूल ही करनी हो तो अपनी तरफ करनी उचित है। इन कीड़ों की तरफ! पता नहींये किस प्रयोजन से हैं? इनका भी जीवन है।

आपकी जो बीमारी है, वह न मालूम कितने जीवाणुओं का जीवन है। और आपकी जो जिंदगी है, पता नहीं कितनों के लिए बीमारी हो। आपने उस तरह कभी नहीं सोचा होगा कि मेरी जो जिंदगी है, वह न मालूम कितनों के लिए बीमारी हो। मेरा होना न मालूम कितनों के लिए उपद्रव हो।

नहीं, हम जहां से सोच रहे हैं वहां से शुभ और अशुभ दिखाई पड़ता है। अगर परमात्मा की आंख हमारे पास हो जो सारे विस्तार को युगपत देख ले, छोर दोनों दिखाई पड़ जाएं, सारा विस्तार इकट्ठा दिखाई पड़ जाए, पूरा अस्तित्व झलक में आ जाए, तो वहां शुभ और अशुभ कुछ भी न होगा। शायद शुभ और अशुभ वहां ताना-बाना होगा। जैसा कोई जुलाहा कपड़ा बुनता है। है तो एक आड़ा धागा डालता है, और दोनों से मिल कर कपड़ा बनता है। वह जो ताना-बाना है, हमारी इच्छा है कि हम सीधा ही सीधा बुन दें। तो फिर कपड़ा निर्मित नहीं होता। या हमारी इच्छा तिरछा ही तिरछा बुन दें, तो भी कपड़ा निर्मित नहीं होता। धागे एक दूसरे के विपरीत पड़कर, धागे एक दूसरे से गुंथ कर, एक दूसरे से पार कपड़े को निर्मित करते हैं।

यह सारा जगत एक चादर की तरह है, जिसमें शुभ और अशुभ ताने-बाने की तरह बुने हुए हैं। इसमें बुरे आदमी की भूल यही है कि वह सोचता है कि सारे जगत को मैं बुराई में डुबा दूं। और भले आदमी की भूल भी यही है कि वह सोचता है सारे जगत को मैं भलाई में डुबा दूं। ये दोनों ही आदमी हैं, और इन दोनों को परमात्म-बोध नहीं है। परमात्म-बोध जिसे है, वह जगत जैसा है उसे वैसा ही स्वीकार कर लेता है। न उसे बुराई में डुबाने की आकांक्षा है, न उसे भलाई में डुबाने की आकांक्षा है।

इसलिए संत का एक नया ही रूप भारतीय मन में है, वह साधु का नहीं है। साधु वह है जो असाधु के विपरीत है। संत वह है जो किसी कि विपरीत नहीं है। समग्र स्वीकार में है। जो भी है, ठीक है। संत वह है जो सर्व स्वीकार में है। जो भी है, ठीक है। बुराई भी ठीक है, भलाई भी ठीक है। पाप भी ठीक है, पुण्य भी ठीक है। यह अति कठिन है।

और इसलिए भारतीय धर्म ने जैसे गहराई और ऊंचाई पाई वैसा कोई भी धर्म छू नहीं सका। बाकी सब धर्म बचकाने हैं। बचकाने इस लिहाज से हैं कि आदमी के दृष्टिकोण से जगत को सोचा गया है उनमें। भारतीय धर्म विशिष्ट है, उसमें ईश्वर के दृष्टिकोण से जगत को सोचा गया है। आप फर्क समझ रहे हैं। आदमी के दृष्टिकोण से तो आदमी अपने हिसाब से सोचता है। जो अच्दा लगता है, जो बुरा लगता है वह बुरा। विराट के हिसाब को उसमें जगह नहीं है।

सभी धर्म, भारमीय धर्म को छोड़ कर, एंथ्रोपोसेंट्रिक है। आदमी केंद्र है। सब चीजों में आदमी केंद्र है तो जो भी आदमी के हित में है, वह शुभ है। और जो आदमी के अहित में है, वह अशुभ है। और आदमी के हित में सारे जगत का अहित होता रहे, तो भी शुभ है।

ईश्वर की दृष्टि से जगत का हिसाब।। और जिस दिन कोई व्यक्ति उस दृष्टि के अनुकूल जीने लगता है उस दिन वह ईश्वरीय हो जाता है। मनुष्य मनुष्य रहते ईश्‍वर नहीं हो सकता। और मनुष्य-केंद्रित धर्म कोई भी वास्तविक धर्म नहीं है। ईश्वर-केंद्रित धर्म, अनंत को ध्यान में रख कर, फिर हमारा शुभ और अशुभ कही टिकता नहीं। और साधु असाधु कहीं बिकता नहीं। और हमारा बुद्धिमान और बुद्धिहीन कहीं टिकता नहीं। हमारे हिसाब और हमारी गणनाएं सब खो जाती हैं।

कहा है।। "पाप और पुण्य मुझे छू नहीं सकते।" होता मै उनमें हूं, स्पर्श वे मुझे नहीं कर पाते।"मै शरीर, इंद्रिय और बुद्धि से रहित हूं। मैं शरीर, इंद्रिय और बुद्धि से रहित हूं।। इसे थोड़ा समझना पड़ेगा, क्योंकि इसमें तो बहुत भय मालूम पड़ेगा कि परमात्मा बुद्धि से रहित है। हम तो सोचते हैं मन में कि सारी बुद्धि उसकी है, सारी बुद्धिमत्ता उसकी है, सबसे ज्यादा बुद्धिमान, ज्ञान का सागर, अनंत ज्ञान, ऐसा हम सोचते हैं। यह सूत्र बहुत उलटी बात कहता है। यह कहता है।। बुद्धि से रहित! बुद्धि से रहित का अर्थ क्या है?

बुद्धि का अर्थ होता है, विचार की व्यवस्था। बुद्धि का अर्थ होता है, विचार का उपकरण। बुद्धि का अर्थ होता है, विचार का संस्थान। लेकिन विचार अज्ञानी के लिए जरूरी है। जिसे पता नहीं है वह विचार करता है। जिसे पता है वह विचार कैसे करेगा? तो बुद्धि अज्ञानी का उपकरण है, ज्ञानी का उपकरण नहीं है। ज्ञानी बुद्धिरहित हो जाता है।

बुद्धिरहि का मतलब यह है, कि बुद्धि का मतलब ही यह है कि कुछ मुझे पता नहीं हैं वह मुझे सोचना पड़ता है, सोचने की मेरे भीतर जो प्रक्रिया है, उनका नाम बुद्धि है। सोच-सोच कर मैं पता लगाता हूं।

तो ऐसा समझें।।

एक अंधा आदमी लड़की से टटोल-टटोल कर चलता है, क्योंकि उसके पास आंख नहीं है। इसलिए लकड़ी हाथ में रखता है, उससे टटोलता है। टटोल कर दरवाजा खोज लेता है। बुद्धि लकड़ी की तरह है अज्ञानी के हाथ में। उससे हम टटोलते हैं।। कहां है दरवाजा? दरवाजा पता तो नहीं है, तो टटोलते हैं, टकराते हैं भूल-चूक करते हैं, इसलिए बुद्धि का ढंग ही भूल-चूक करके सीखना है।। ट्रायल एण्ड एरर। करो कोशिश, भूल करो, सीखो। अंधा यही कर रहा है। टटोलता हे, यह दीवाल पाई, नहीं है; सिर टकरा गया, और जगह टटोला, और जगह टटोला। पच्चीस जगह टटोलता है, कहीं-कहीं खोज कर दरवाजा मिल जाता है, फिर उससे निकल जाता है। अंधे का भी टटोलना बंद होता जाएगा अगर उसी मकान में से रोज-राज निकलेगा। दरवाजे का उसे अंदाज होने लगेगा, तो फिर वह ऐसे जाएगा, टटोलेगा भी नहीं। लेकिन नये मकान मे फिर टटोलना पड़ेगा। पता हो जाती है तो धीरे-धीरे बुद्धि का उपयोग आप बंद कर देते है। रोज वही काम करते हैं तो उसमें बुद्धि का उपयोग नहीं होता। जैसे एक आदमी कार ड्राइविंग सीखता है, तो पहले बुद्धि का उपयोग करना पड़ता है। फिर जैसे-जैसे, जैसे-जैसे अनुभव हो जाता है, बुद्धि बिल्कुल छोड़ देता है। फिर वह सिगरेट पीता रहे, गाना गाता रहे, रेडियो सुनता रहे, बातचीत करता रहे, कार ड्राइव होती रहती है। अब इस अंधे को दरवाजा पता चल गया। अब यह निकल जाता है।

लेकिन कहीं अचानक कोई दुर्घटना का क्षण आ जाए तो बुद्धि का फिर उपयोग करना पड़ता है। क्योंकि इसका कोई अभ्यास नहीं था। दुर्घटना का अभ्यास करिएगा? भी कैसे? उसको अभ्यास हो नहीं सकता। वह तो घटती है। इसीलिए दुर्घटना कहते हैं। जिसका अभ्यास हो सके, उसका नाम दुर्घटना नहीं है। जिसका अभ्यास हो ही न सके और घटे, उसका नाम दुर्घटना है। इसलिए में थोड़ी सी बुद्धि की जरूरत पड़ती है। तब एकदम से चौंककर आदमी सोचना शुरू करता है।। क्या?

बुद्धि अज्ञानी का उपकरण है। जैसे लकड़ी अंधे का उपकरण है। बुद्धि टटोलने की व्यवस्था है।"ग्रोपिंग इन दि डार्क"। अंधेरे में टटोलना। परमात्मा बुद्धिरहित है। उसका अर्थ है कि उसके लिए अंधेरा नहीं है, उसका अर्थ है कि उस कुछ अज्ञान नहीं है। उसका अर्थ है कि जो भी है वह उसके सामने है। सोचने को कोई कारण नहीं है। इसलिए जिस उपकरण है, वह उपकरण होने की कोई जरूरत नहीं है।

बुद्धि सीमित, अज्ञानी का उपकरण है। और जब तक आप सीमित और अज्ञानी हैं तब तक बुद्धि की जरूरत पड़ेगी। या जब तक आप बुद्धि की जरूरत बनाए रखेंगे तब तक आप सीमित और अज्ञानी बने रहेंगे। या तो हिम्मत करें बुद्धि को छोड़ देने की, तो शायद उस परमात्मा में छलांग लग जाए जो बुद्धिरहित है। आप भी बुद्धिरहित होकर ही उसमें ही उतर पाएंगे। अगर बुद्धि लेकर वहां गये तो परमात्मा का दरवाजा आपको न मिलेगा। इसलिए बुद्धिमान अक्सर उससे चूक जाते हैं। कभी-कभी कोई कबीर, कभी कोई नानक, कभी कोई

मोहम्मद।। न पढ़े, न लिखे, कभी किसी ने जाना ही नहीं था इनमें भी बुद्धि है--अचानक उसमें छलांग लगा जाते हैं।

मोहम्मद को जब पहली दफे छलांग लग गई तो मुहम्मद को खुद ही भरोसा न आया कि मैं किसी को कहूंगा तो कोई मेरी मानेगा कि यह हो गया। तो मोहम्मद ने डरते-डरते अपनी पत्नी को यह बात बताई। डरता हूं किसी को बताने में ऐसा हो गया है। तो मोहम्मद की जो पहली अनुयायी थी वह उसकी पत्नी थी, मुहम्मद की पत्नी थी। और लिहाज से यह महान सफलता है। इस दुनिया में सबको परिवर्तित कर लेना आसान है, पत्नी को परिवर्तित करना मुश्किल है। इसमें बुद्ध को भी मुश्किल पड़ गई थी। मुहम्मद की यह अद्‌भुत सफलता है। मनुष्य के इतिहास में... पुरुषों में जो कई सफलताएं गिनी जाएं उसमें जरूर गिनना चाहिए। मोहम्मद की पहली अनुयायी उनकी पत्नी थी। फिर आहिस्ता-आहिस्ता मोहम्मद के निकटतम लोगों में मोहम्मद ने बात कही। और तब भी मोहम्मद को जो तकलीफ झेलनी पड़ी वह मोहम्मद के मुल्क के बुद्धिमान लोगों के द्वारा दी गई थी। क्योंकि बुद्धिमान यह मान सके कि यह आदमी पढ़ा, न लिखा, न बुद्धि का कोई सबूत देता है और इसको हो जाए, और हमें न हुआ हो।

कबीर को जो तकलीफ हमारे मुल्क में झेलनी पड़ी, पंडितों के कारण झेलनी पड़ी। क्योंकि पंडित यह मान न सके कि जुलाहा, कपड़ा बुनता रहा तक, कपड़ा रहा सड़कों पर बैठकर, अचानक यह परमज्ञानी हो गया। यह भरोसे की बात नहीं है।

तो क्या हमारा खयाल यह है ज्ञान जो है, वह बुद्धि के अभ्यास से होता है?

निश्चित ही इस जगत के सारे ज्ञान बुद्धि के अभ्यास से होते हैं। लेकिन उस जगत को कोई भी ज्ञान बुद्धि के अभ्यास से नहीं होता। यहां बुद्धि सहयोगी है, वहां बुद्धि बाधा है। यहां बुद्धि मार्ग है, वहां बुद्धि दीवाल है। संसार में जाना हो तो बुद्धि को बढ़ाते चले जाना। वहां अंधे की लकड़ी की बहुत जरूरत पड़ेगी, क्योंकि अंधों का लोक है वह। वहां जितनी सजग लकड़ी होगी, जितनी संवेदनशील लकड़ी होगी, उतनी सफलता मिल पाएगी। लेकिन अगर परमात्मा की तरफ जाना हो तो इस लकड़ी को छोड़ देना। क्योंकि वहां अधों का कोई प्रवेश नहीं है। वहां लकड़ी से टटोल कर नही पहुंचा जाता। वहां इस लकड़ी को छोड़ कर ही पहुंचा जाता है। क्योंकि बाहर जाना हो तो टटोलना पड़ता है, भीतर जाने के के लिए टटोलना क्या है, वहां तो हम हैं ही। सब लकड़ी वगैरह छोड़ देनी है, सब यात्रा बंद कर देनी है और आदमी वहां पहुंच जाता है।

यह सूत्र कीमती है कि मैं बुद्धि से रहित हूं। मैं शरीर से, इंद्रिय से, बुद्धि से रहित हूं। इंद्रियों की भी जरूरत दूसरे को जानने के लिए है। परमात्मा के लिए कोई भी दूसरा नहीं है। जैसा मैंने रात आपको कहा कि आप अपने को कैसे जानते हैं? बिना किसी इंद्रिय के। हां, दूसरे को जानते हैं तो इंद्रिय से जानते हैं। अगर परमात्मा एक है तो उसको इंद्रिय की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि वह दूसरा कोई है नहीं जिसे जाने, स्वयं को ही जानता है। शरीर भी नहीं है। शरीर का मतलब ही यह होता है।

शरीर का आपने कभी खयाल न किया होगा क्या मतलब होता है।

शरीर का मतलब होता है, आपके और विराट के बीच का संबंध। आपके चारों तरफ विराट फैला हुआ है, और आप यहां भीतर हैं, और आप दोनों के बीच जो संबंध का स्रोत है, वह शरीर है। ऐसा समझें कि आपके घर की दीवाल है, उससे आपके घर का कमरा बना हुआ है। लेकिन पृथ्वी की कोई दीवाल है? पृथ्वी में सब दीवालें हैं और सब मकान हैं, लेकिन पृथ्वी की कोई दीवाल नहीं हैं, क्योंकि किससे विभाजन करिएगा।

आपके शरीर की जरूरत है, क्योंकि आपको सबसे विभाजित होने की जरूरत है। परमात्मा पूर्णता का नाम है, समस्त अस्तित्व का नाम है। उसकी कोई दीवाल नहीं हो सकती ध्यान रहे दीवाल सदा दूसरे से पृथक करती है। अगर कोई दूसरा नहीं है इस अस्तित्व का कोई शरीर नहीं हो सकता। शरीर दीवाल है। पड़ोसी से भेद पैदा करवाती है। परमात्मा के लिए किसी शरीर की जरूरत नहीं है, क्योंकि उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है जिसका शरीर हो, जिससे भेद करना हो। समस्त अस्तित्व शरीरहीन है।

क्षुद्र के शरीर होते हैं, विराट का शरीर नहीं होता। क्षुद्र का शरीर जरूरी है, अन्यथा आपको पता ही नहीं चलेगा आप क्या हैं, कौन हैं, कहां हैं?

और इसी सूत्र से यह खयाल में ले लेना जरूरी है कि जब तक आपको लगता है आप शरीर हैं, तब तक आप क्षुद्र ही बने रहेंगे। जिस दिन आपको यह बोध होना शुरू होगा कि शरीर जरूर है मेरे पास, लेकिन मैं शरीर नहीं हूं, उस दिन आप शरीर के बाहर फैलना शुरू हो गये। जिस दिन आपको भी अनुभव होगा कि मैं अशरीरी हूं, उस दिन आप परमात्मा के साथ एक हो गये। जब तक आप इंद्रियों पर भरोसा रखेंगे तब तक आप संसार को जानेंगे। जिस दिन आप इंद्रियों का भरोसा छोड़ कर खोज करेंगे, उस दिन आप परमात्मा को जानेंगे। जब तक आप बुद्धि से चलेंगे तब तक आप ज्ञान में ही रहेंगे। जिस दिन बुद्धि को छोड़ कर चलेंगे, उस दिन ही ज्ञान की शुरुआत है।

सत्रहवां प्रवचन

हृदय-गुहा में प्रवेश--कैसे?

न भूमिरापो न च वह्निरस्ति न चानिलो मे। .स्ति न चाम्बरं च।
एवं विदित्वा परमात्मरूपं गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम्।। 23।।
समस्त साक्षिं सद असद्विहीनं प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपं।। 24।।
अथ कैवल्योपनिषद्समाप्तः। ओम शांतिः शांतिः शांति।

मेरे लिए भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश कुछ नहीं है। वही मनुष्य मेरे शुद्ध परमात्मस्वरूप का साक्षात्कार करता है, जो मायिक प्रपंचों से परे, सब के साक्षी, सत-असत अर्थात अस्तित्व-अनस्तित्व से परे, निराकार, हृदय की गुहा में स्थित मुझ परमात्मा को जान जाता है।। 23-24।।

इस प्रकार कैवल्य उपनिषद समाप्त होता है। ओम शांतिः शांतिः शांतिः।

इस सूत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात समझने की है।। "हृदय की गुहा में स्थित मुझ परमात्मा को" वही व्यक्ति उपलब्ध होता है जो निराकार को, सबके साक्षी को, सत-असत से परे जो है उस, अस्तित्व-अनस्तित्व से पार जो है उसे जानने में समर्थ हो जाता है। सबसे पहले या तो कोई व्यक्ति उस परम साक्षी को जानने में समर्थ हो जाए, तो हृदय की गुहा में प्रविष्ट हो जाता है। और या हृदय की गुहा में प्रविष्ट हो जाए, तो उस परम साक्षी को जानने में समर्थ हो जाता है। उस परम सत्ता को जानने वाला हृदय की गुहा में प्रवेश पाता है, या फिर हृदय की गुहा में प्रवेश करने वाला उस परम सत्ता को जान लेता है। ये दो ही उपाय हैं।

इसलिए दो ही निष्ठाएं हैं मनुष्य की साधना की।

इस देश में हमने जीवन के सत्य को जानने की दो निष्ठाएं मानी हैं। एक का नाम है सांख्य। सांख्य का अर्थ है, जो जान लेता है उस परम सत्ता को वह हृदय की गुहा में प्रविष्ट हो जाता है। दूसरे का नाम है योग। योग का अर्थ है, जो प्रविष्ट हो जाता है हृदय की गुहा में वह जान लेता है उस परम सत्ता को।

सांख्य शुद्ध ज्ञान है। योग साधना है। सांख्य कहता है।। करना कुछ भी नहीं है, सिर्फ जानना है। योग कहता है।। करना बहुत कुछ है और तभी जानना फलित होगा। और यह दोनों ही सही हैं। और यह दोनों ही गलत भी हो सकते हैं। ये निर्भर रकेगा आप पर। ये निर्भर करेगा साधक पर। अगर कोई साधक ज्ञान की अग्नि इतनी जलाने में समर्थ हो कि उस अग्नि कमें उसका अहंकार जल जाए सिर्फ ज्ञान की अग्नि ही रह जाए; ज्ञान ही रह जाए, ज्ञाता न रहे; भीतर कोई अहंकार का केंद्र न रह जाए, सिर्फ जानना मात्र रह जाए बोध रह जाए, अवेयरनेस रह जाए चैतन्य रह जाए, तो कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। जानने की इस अग्नि से ही सब कुछ हो जाएगा। जानने की ही चेष्टा को करना काफी है। जानने की ही स्थिति को बढ़ा लेना काफी है। जानने में रोज-रोज अग्रसर होते जाना काफी है। होश बढ़ जाए, जागृति आ जाए, तो पर्याप्त है।

लेकिन यह कभी करोड़ में एकाध आदमी को घटना घटती है। और जिस आदमी को करोड़ में भी यह घटना घटती है, वह भी न मालूम कितने जन्मों की चेष्टाओं का फल होता है। लेकिन जब भी सांख्य की घटना

किसी को घटती है तो वैसे व्यक्ति को प्रतीत होता है कि सिर्फ जानना काफी है। जानने से ही सब कुछ हो गया। लेकिन उसके भी अनंत-अनंत जन्म पीछे हैं। और अनंत जन्मों में करने की अनंत धाराएं बही हैं।

सांख्य योग के विपरीत बातें करता रहा है। करेगा। क्योंकि जिसको भी सांख्य की अवस्था उत्पन्न होगी, उसे लगेगा कि कुछ और तो करना ही नहीं पड़ता है। सिर्फ होश से भर जाना काफी है। लेकिन जो बेहोश पड़ा है, उसे होश से भर जाना ही तो सबसे बड़ी उलझन की बाता है। जिसकी नींद खुल गई, वह कह सकता है कि कुछ और मुझे करना नहीं पड़ा, नींद खुल गई और मैंने प्रकाश का दर्शन कर लिया। लेकिन जो सोया पड़ा है, और सोया ही नहीं शराब पीकर बेहोश पड़ा है, जहर खाकर बेहोश पड़ा है, मूर्छित है, उससे हम चिल्ला-चिल्ला कर कहते रहें कि जागो, सिर्फ जागना काफी है, नींद का टूट जाना काफी है, कुछ करने की जरूरत नहीं और सत्य उपलब्ध हो जाएगा।। ये बातें भी उसे सुनाई नहीं पड़ती।

जो शराब पीकर पड़ा है, पहले तो उसके पूरे संस्थान से शराब को अलग करना पड़ेगा। जो अभी मूर्छित है, पहले तो उसकी मूर्छा तोड़नी पड़ेगी, ताकि वह सुन सके। आंख खोलने की बात भी तो उसके भीतर पहुंचनी चाहिए।

इसलिए सांख्य मी मान्यता बिल्कुल सही होकर भी काम नहीं पड़ती है। कभी-कभी सांख्य का कोई एकाध व्यक्तित्व होता है, वह सांख्य की बातें कहे चला जाता है। मेरी खुद की मनोदशा वैसी रही है।। सांख्य की। पंद्रह वर्षों तक मैं निरंतर यही कहता रहा कि कुछ भी करना जरूरी नहीं है। सिर्फ होश से भर जाना काफी है। निरंतर लोगों से कहने के बाद मुझे खयाल हुआ कि उन्हें सुनाई ही नहीं पड़ता है। वे सोए हुए नहीं हैं, वे मूर्च्छित हैं। और उनकी समझ में भी आ जाता है, तब वह समझ मात्र बौद्धिक होती है, ऊपर-ऊपर होती है। शब्द पकड़ लेते हैं, सिद्धांत पकड़ लेते हैं। फिर उन्हीं सब शब्दों और सिद्धांतों को दोहराने भी लगते हैं। लेकिन उनके जीवन में कहीं कोई रूपांतरण नहीं होता।

तब मुझे दिखाई पड़ा कि सांख्य फूल है। और जब फूल खिलता है, तब हमें खयाल भी नहीं आता जड़ों का। जड़ें छिपी पड़ी होती है अंधेरे गर्त में, पृथ्वी में। उसका कोई खयाल भी नहीं आता। लेकिन वर्षों तक जड़ें निर्मित होती हैं, पौधा निर्मित होता है और तब कहीं फूल खिलता है। शायद फूल यह कह सके कि खिल जाना काफी है। बस खिल ही जाना है, और क्या करना है! और हवाओं में सुगंध बिखरनी शुरू हो जाती है। लेकिन फूल का किल जाना एक लंबी शृंखला का हिस्सा है। जब फूल खिलता है तो सारीशृंखला भूल जाती है। जब फूल खिलता है तब सारीशृंखला छिप जाती है। अंतिम फल जब आता है तो उस फल के आच्छादन में सब कुछ विस्मृत हो जाता है, जो लंबी यात्रा है।

तब मुझे लगना शुरू हुआ कि फूल खिल गया हो, तब तो ठीक है यह कहना कि फूल किल जाना काफी है। लेकिन फूल न खिला हो, तो किसी से यह कहे चले जाना कि फूल किलना काफी है, खतरनाक भी हो सकता है। क्योंकि वह व्यक्ति जड़ों को संभालने के लिए जो कर सकता था वह भी नहीं करेगा। और पौधे को बड़ा करने के लिए जो कर सकता था वह भी नहीं करेगा। और पौधे की संभाल जो रखनी थी वह भी नहीं रखेगा। अब तो वह भी यह सोचेगा, उसकी बुद्धि में भी यही विचार चक्कर काटेगा कि खिल जाना काफी है, किल जाएंगे। और खिल भी नहीं पाएगा। क्योंकि खिलना एक लंबीशृंखला का हिस्सा है।

वह लंबशृंखला योग है।

कृष्णमूर्ति के साथ यही भूल पूरे जीवन से चल रही है। वह लोगों से कह रहे हैं।। कुछ करने की जरूरत नहीं है। लोग समझ भी लेते हैं। वैसी ही समझ जिससे नासमझी मिछदी नहीं। सिर्फ छिप जाती है। लोग समझ

भी लेते हैं कि कुछ करना नहीं है। तो जगो कर रहे थे वह भी छोड़ देते हैं। और कृष्णमूर्ति जिस फूल के खिलने की बात कर रहे हैं वह फूल भी नहीं खिलता। तो बड़ी दुविधा में पड़ जाते हैं।

मेरे पास न-मालूम कितने लोग उन्हें सुननेवाले, जो वर्षों से।। चालीस वर्ष से, तीस वर्ष से सुनते हैं, उन्होंने मुझे आकर कहा कि हम बड़ी मुसीबत में हैं। मुसीबत यह है कि हमारी समझ में यह बात बिल्कुल आ गई कि करना कुछ भी नहीं है, यह हमारी समझ में इतनी आ गई है कि अब हम कुछ कर भी नहीं सकते; कुछ करते हैं, फौरन खयाल आता है कि करना तो बेकार है, वह फूल तो बिना किए ही खिल जाता है, वह तो निष्प्रयास से खिलता है, अप्रयत्न से खिलता है, फर्टलेस है, उसमें कोई साधना की जरूरत नहीं है, यह हमारी समझ में बहुत गहराई से आ गई है, अब हम कुछ कर भी नहीं सकते हैं, जो करते थे वह भी छूट गया है, और न करने से कृष्णमूर्ति जो कहते हैं होगा उसकी कोई झलक भी नहीं मिलती, वह फूल कहीं खिलता हुआ दिखाई भी नहीं पड़ता। दुविधा उनके चित्त में घनी हो गई है। क्योंकि अभी वे उस जगह नहीं पहुंचे थे वृक्ष की जहां फूल अपने आप खिलता है।

शायद वे अभी जड़ें ही हैं सिर्फ, या शायद अंकुरित ही हुए थे। या सिर्फ शाखाएं निकली थीं, पत्ते आने शुरू हुए थे। और अब वे कुछ भी करने को राजी नहीं हैं, पानी भी सींचने को राजी नहीं हैं, एक बागुड़ का घेरा भी लगाने को राजी नहीं है कि पौधे की रक्षा हो सके, अब वे सूरज की तरफ उठकर सूरज को पीने की भी आकांक्षा नहीं रखते हैं, और प्राण बेचैन हैं, फूल खिलता नहीं, फूल खिलने के लिए आतुर होना चाहता है, भीतर प्राणों में फूल की पीड़ा है प्रगट होने की।। लेकिन कुछ करना नहीं हैं।

तो एक तरफ सांख्य की यह दुविधा है कि सांख्य फूल की बात करता है और कठीनाई खड़ी होती है। दूसरी तरफ योग है। योग जड़ों की, भूमि की, पानी की, सूरज की गहन खोज करता है। लेकिन तब एक खतरा वहां भी घटित होता दिखाई पड़ता है। और वह खतरा यह कि आदमी क्रियाओं में ही लीन हो जाता है। जिस फूल के खिलने के लिए क्रियाएं शुरू की थीं वह फूल तो भूल ही जाता है, क्रियाएं इतनी संलग्न कर लेती हैं कि ऐसा लगता है इन क्रियाओं को करते जाना ही जीवन है। क्रियाएं पकड़ लेती हैं।

पतंजलि ने योग के आठ अंग कहे हैं जिनमें अंतिम तीन अंग धारणा, ध्यान, समाधि हैं। महत्वपूर्ण हैं। बाकी पांच उनकी तरफ ले जाने वाले प्राथमिक चरण हैं। समाधि फूल है। शेष सात उसका वृक्ष है। लेकिन अक्सर योगी आसन-प्राणायाम ही जीवन भर करते रहते है। जीवन भर वही करते रहते हैं। समाधि का फूल तो भूल ही जाता है, ये क्रियाएं अपने घर में महत्वपूर्ण हो जाती हैं। साधन साध्य बन जाते हैं। मार्ग ही मंजिल मालून होने लगता है, सांख्य की भ्रांति खडी होती कि मंजिल ही इतनी महत्वपूर्ण बन जाती है कि मार्ग की कोई जरूरत ही नहीं। और योग की भ्रांति यहां खड़ी होती है कि मार्ग इतना महत्वपूर्ण हो जाता है कि अगर मंजिल भी छोड़नी पड़े मार्ग के लिए तो हम मार्ग को ही पकड़ेंगे, मंजिल को नहीं पकड़ सकते। क्रियाओं से ग्रस्त आदमी के सामने अगर परमात्मा भी खड़ा हो तो वह कहेगा थोड़ी देर रुको, मैं पहले पूजा-पाठ कर लूं।

योग की एक भ्रांति भी, यह भ्रांति भी हजारों लोगों को भटकाती है। क्रियाएं ही। सांख्य की भ्रांति तो कभी-कभी पैदा होती है, क्योंकि सांख्य का व्यक्तित्व कभी-कभी पैदा होता है। इसलिए बहुत लोग उस झंझट में नहीं पड़ते। कृष्णमूर्ति जिंदगी भर से बोलते हैं, लेकिन हिंदुस्तान में मैं नहीं समझता कि पांच हजार लोगों से ज्यादा उनको सुनने व समझने वाले लोग हैं। और ये पांचा हजार भी वे ही लोग हैं। जो तीस साल से निरंतर उसको सुने जा रहे हैं। इनकी जिंदगी में कहीं में कहीं कोई क्रांति घटित होती मालूम नहीं होती। हां, शब्द इनके पास आ जाते हैं। क्रांतिकारी शब्द इनके पास आ जाते है। और ये उन को दोहरा कर, दोहरा-दोहराकर जीने

लगते हैं। और रोज-रोज इनको खटका भी लगा रहता है कि वह बात भीतर घटित नहीं हुई, वह फूल खिला नहीं है।

लेकिन योग की भ्रांति ज्यादा व्यापक है। क्योंकि पृथ्वी के अधिकतम लोग जब भी धर्म में उत्सुक होते है, तो तत्काल क्रिया में उत्सुक हो जाते हैं। स्वाभाविक है। क्योंकि बिना क्रिया के आदमी जिंदगी में कुछ भी तो नहीं पाता, तो धर्म को भी पाएगा। जैसे धन पाया जाता है प्रयास से, वैसा ही धर्म भी पाया जाएगा। परमात्मा को भी पाना है कुछ करके ही तो पाना होगा। यह तर्क सामान्यतः समझ में आता है। लेकिन खतरा इसका, दूसरा अधूरा हिस्सा इसका खतरा है। और वह यह कि सब क्रियाएं इतने जोर से मन को ग्रसित कर लेती हैं और मन क्रियाओं में रस लेता है कि फिर छोड़ना मुश्किल हो जाता है। मंजिल खो जाती है, मार्ग पकड़ जाता है।

इस हृदय की गुहा में पहुंचने के लिए किया क्या जाए?

तो मैं आपसे कहता हूं। सांख्य और योग को दो निष्ठाएं न समझकर एक ही निष्ठा के दो अंग समझें। योग को प्राथमिक और सांख्य को अंतिम समझें। योग को वृक्ष और सांख्य को फूल समझें। इसलिए मैं आपको इन दोनों को इकट्ठा जोड़ देता हूं।। सांख्य-योग।

करना तो पड़ेगा कुछ। क्योंकि जैसे हम हैं, वहां बिना किये नहीं हो सकता। लेकिन यह भी ध्यान रखना कि अगर करना ही रह गया तो भी वह घटना नहीं घटेगी। करना बहुत कुछ पड़ेगा और एक क्षण सब करना छोड़ भी देना पड़ेगा। जैसे कोई सीढ़ी पर चढ़ता है तो चढ़ता भी है और फिर छोड़ भी देता हैं। जैसे कोई दवा लेता है तो बीमारी ठीक हो जाती है तो दवा छोड़ भी देता हैं। जैसे कोई मार्ग पर चलता है और मंजिल आ जाती है तो मार्ग छोड़ ही देता है। छोड़ क्या देता है, मार्ग का मतलब ही होता है कि जिसको हमें प्रमिपल छोड़ते चलता है। माग का मतलब ही यह होता है। मंजिल की तरफ बढ़ने का मतलब है, मार्ग को छोड़ते चलना। रोज-रोज मार्ग को छोड़ते चलना है ताकि मंजिल करीब आती चली जाए। मंजिल मार्ग पर चल कर करीब आती है, उसका मतलब यह है की मार्ग को छोडकर करीब आती है। एक कदम मैं चला, एक कदम मार्ग मैंने छोड़ दिया। तो एक कदम मंजिल करीब आ गई। मार्ग पर चलना भी पड़ता है, मार्ग का पकड़ना भी पड़ता है, मार्ग का छोड़ना भी पड़ता है, तो ही मंजिल आती है।

लेकिन हमें दो से एक आसान लगती है बात कि अगर मार्ग को छोड़ना ही है पकड़ना क्यों? यही सांख्य की भूल बन जाती है। और या फिर हमारी समझ में आता है कि जिसको एक बार पकड़ लिया उसको क्या छोड़ना! जब पकड़ ही लिया, तो पकड़ ही लिया। फिर निष्ठापूर्वक उसको पकड़ ही रहेंगे, फिर छोड़ेंगे नहीं। इससे योग की भूल पैदा होती है।

सांख्य, योग, दोनों निष्ठाएं साधक को ध्यान में रहें, तो हृदय की गुफा बहुत शीघ्रता से मिल जाती है।

जो भी ध्यान के हम प्रयोग कर रहे हैं, उनमें दोनों का संयोग है। सुबह के चार चरणों में तीन चरण योग के हैं, चौथा चरण सांख्य का है। और तीन चरण इसलिए योग के हैं और एक सांख्य का हैं, क्योंकि हमारा व्यक्तित्व का तीन चौथाई हिस्सा सोया पड़ा है, और एक चौथाई ही मुश्किल से थोड़ा सा चेतन है। तो तीन चौथाई ता हमें श्रम करना पड़ेगा और एक चौथाई हमें विश्राम करना पड़ेगा। तीन चौथाई मार्ग के लिए और एक चौथाई मंजिल के लिए।

ध्यान रखन, तीन चरण ध्यान के, प्राथमिक तीन चरण, पहले तीन चरण वस्तुतः ध्यान नहीं हैं, केवल मूर्च्छा को तोड़ने की तैयारी हैं। मूर्च्छा टूट तो चौथा चरण ध्यान का फलित हो सकता है। और खयाल रखना कि तीन तो आपने किये और चौथा आप करेंगे नहीं। चौथा होगा, चौथे में आप सिर्फ विश्राम कर रहे हैं। चौथे का

अर्थ है कि आप अपने को खुला छोड़ रहे हैं; कुछ घटता हो, तो हम द्वार बंद नहीं रखेंगे। कुछ घटनता हो, तो हम तत्पर हैं। कुछ उतरता हो, तो हमारे भिक्षापात्र उसे झेलने को राजी हैं। कुछ आता हो, तो हम बाधा न डालेंगे। हम ग्राहक हैं चौथे में। सब तरफ से खुले। जो भी बरसेगा, हमारी तरफ से कोई रुकावट न होगी। अगर उसकी किरण आएगी तो हमारे दरवाजे बंद नहीं पाएगी। स्वागत का भाव लिये हम द्वार पर खड़े हैं, यह चौथे का मतलब हैं। तीन में हमने कुछ किया है; चौथे में कुछ हो, इसकी प्रतीक्षा है। तीन में प्रयास है, चौथे में प्रतीक्षा। चौथा सांख्य का हिस्सा है।

भूल यह होती है कि कुछ लोग चारों को सांख्य का हिस्सा बना लेते हैं, कुछ लोग चारों को योग का हिस्सा बना लेते हैं। तब हृदय की गुहा का खुलना बहुत मुश्किल हो जाता है।

इस सूत्र में दो बात है।। जो उस ज्ञान को उपलब्ध हो जाए उसकी हृदय की गुहा खुल जाती है, जिसके हृदय की गुहा खुल जाए वह उस ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। तो हम को दोनों तरफ से ठीक से समझ लें।

उसके ज्ञान को हम कैसे उपलब्ध हो जाएं? उसका ज्ञान कैसे घटिता होगा? इस पूरे केवल्य उपनिषद में जगह-जगह मैंने आपसे बात की है कि ज्ञान को बढ़ाने का एक ही उपाय है कि आपकी प्रत्येक क्रिया सजगतापूर्वक होने लगे, अमूर्छित होने लगे। ज्ञान को बढ़ाने का और कोई उपाय नहीं है। आमतौर से ज्ञान को बढ़ाने का उपाय हमें दिखता है शास्त्र, सिद्धांत, शब्द। वह ज्ञान को बढ़ाने का उपाय नहीं है, वह सिर्फ स्मृति को बढ़ाने का उपाय है। और स्मृति और ज्ञान में फर्क है।

स्मृति का अर्थ है दूसरे का जाना हुआ, उधार। ज्ञान का अर्थ है अपना जाना हुआ, निजी। निज। जिसको हम ज्ञान का बढ़ता कहते हैं।। हम कहते हैं फलां व्यक्ति के पास बहुत ज्ञान है।। तो अक्सर हमारा मलतब होता है बहुत जानकारी है, बहुत बड़ी स्मृति है। शास्त्र कंठस्थ है। गीता कंठ में है। वेद मुखाग्र हैं। यह ज्ञान नहीं है। यह स्मृति है। और स्मृति कोई बहुत बहुमूल्य चीज नहीं है। यांत्रिक है। यंत्र भी स्मृति रख लेते हैं। और जल्दी ही यंत्र ही स्मृति रखेंगे, आदमी यह बोझ यंत्रों पर छोड़ देगा। ज्ञान बडी दूसरी घटना है। मेरा जाना हुआ मेरी प्रतीती, मेरा अनुभव मेरा दर्शन जिसे मैनें ही जिया और चखा है। मेरा स्वाद। किसी और की दी गई खबर नहीं।

ज्ञान आत्म-साक्षात्कार है।। सीधा। न बीच में शास्त्र हैं, न सिद्धांत। तो ज्ञान को बढ़ाने के लिए अध्ययन मार्ग नहीं है। ज्ञान को बढ़ाने का मार्ग जागरण है। जितना ही मैं जागू अपनी क्रियाओं में, उतना मेरा ज्ञान बढ़ेगा, जगेगा। जागने का अर्थ है, जो भी कुछ मैं करूं वह इतनी तीव्रत से ध्यानपूर्वक हो कि उसमें मूर्छा जरा भी न रहे।

कभी एक छोटा-सा प्रयोग करें तब आपको पता चलेगा कि मूर्छा कितनी गहरी है। कभी अपनी घड़ी को देखें, उसमें सेकेंड को कांटा है। तय कर लें कि एक मिनट तक सेकेंड के कांटे का होशपूर्वक देखेंगे। एक मिनट, ज्यादा बड़ी नहीं है। एक चक्कर सेकेंड का कांटा पूरा लगाएगा। होशपूर्वक देखेंगे। होशपूर्वक का मतलब आपको समझा दूं, ताकि आपको प्रयोग आसान हो जाए।

यह जो कांटा सेकेंड का घूम रहा है, इसको भूलेंगे नहीं एक मिनट तक, याद रखेंगे।। यह सेकेंड कांटा जा रहा है, जा रहा है, साठ सेकेंड पूरे करेगा एक मिनट। आप चकित हो जाएंगे कि साठ सेकेंड में कम से कम तीन बार आप चूक जाएंगे। भूल जाएंगे कि क्या देख रहे है। कोई और ख्याल आ जाएगा। कोई और बात आ जाएगी। मन कहीं एक क्षण को छिटक जाएगा। कम से कम तीन बार। बीस सेकेंड भी खींचना मुश्किल है जाग्रत भाव को। तब आपको पता चलेगा कैसी मूर्छा है यह! मैं साठ सेकेंड तक एक कांटे के घूमने को भी स्मरणपूर्वक नहीं देख सकता हूं कि देखते वक्त मुझे याद बनी रहे कि मैं देख रहा हूं, कांटा घूम रहा है। कांटा घूमता रहेगा, एक

सेकेंड को आप चूक जाएंगे, तब आपको फिर से याद आएगा कि अरे, मैं भूल गया! बि तक आप देखेंगे कांटा दो-चार सेकेंड आगे जा चुका। उतने"गैप", उतने अंतराल में आप कहीं और चले गये! होश यहां न रहा।

ऐसा कोई भी काम रहे हों तो होशपूर्वक करने की कोशिर करें। अलग से समय देने की कोई जरूरत नहीं है। भोजन कर रहे हैं तो होशपूर्वक करें। भोजन चबा रहे हैं तो होशपूर्वक चबाएं। किसी को पता भी नहीं चलेगा कि आप कोई साधना में लगे हैं। सांख्य की साधना का पता भी नहीं चलाता सांख्य की साधना को कोई पता नहीं चलता कि कोई साधना कर रहा है कि नहीं कर रहा है। योग की साधना का पता चलता है, क्योंकि उसमें बाहर की क्रियाओं से प्रयोग करना होता है। सांख्य की तो अंतर्क्रिया है। श्वास चल रही है, इसका ही खयाल रखें बुद्ध ने इस पर बहुत जोर दिया।

बुद्ध ने बहुत जोर दिया है इस पर कि आदमी चल रहा है, बैठा है, उठा है, लेटा है, एक चीज तो सतत चल रही है, घड़ी के कांटे की तरह।। श्वास।। उसको देखते रहें। श्वास भीतर गई, तो होशपूर्वक भीतर ले जाएं। श्वास बाहर गई तो होशपूर्वक बाहर ले जाएं। चूके न मौका। एक भी श्वास बिना जाने न चले। थोड़े ही दिन में आप पाएंगे कि आपका ज्ञान बढ़ने लगा। ये श्वास पर जितना आपका ध्यान सजग होने लगेगा, उतना आपके भीतर ज्ञान बढ़ने लगेगा। अगर आप घंटे भर भी ऐसी स्थति बना लें कि जब चाहे घंटे भर श्वास को आते-जाते देख लें और कोई बाधा न पड़े, तो सांख्य का दरवाजा बिल्कुल निकट है। धक्का ही देने की बात है और खुल जाएगा।

बुद्ध ने श्वास पर।। अनापानसतीयोग, श्वास के आने-जाने का स्मृतियोग।। इस पर सारी, सारी दृष्टि बुद्ध ने इस पर खड़ी की है। बुद्ध कहते थे, इतना ही कर ले भिक्षु तो और कुछ करने की जरूरत नहीं है। यह बहुत छोटा काम लगेगा मालूम आपको। लेकिन जब घड़ी के कांटे को देखेंगे और साठ सेकेंड में तीन दफे चूक जाएंगे, तब पता चलेगा कि श्वास की इस प्रक्रिया में कितनी चूक हो जाएगी। लेकिन, शुरू करें, तो कभी अंत भी होता है। प्रारंभ करें, तो कभी प्राप्ति भी होती है। यह अंतिर्क्रिया है। यह राम-राम जपने से ज्यादा कठीन है। क्योंकि राम-राम जपने में होश रखना आवश्यक नहीं है। आदमी राम-राम जपता रहता है।। यंत्रवत। होश रखना आवश्यक नहीं है। और तब ऐसी हालत बन जाती है कि वह काम भी करता रहता है, राम-राम जपता रहता है। उसे न राम-राम का पता रहता है कि मैं जप रहा हूं।। जप चलता रहता है, यंत्रवंत हो जाता है। इसलिए अगर राम-राम भी जपना हो, तो राम-राम जपने में दोहरे काम करने जरूरी हैं।। जप भी रहे, और जप की होश भी रहे, तो ही फायदा है। नहीं तो बेकार है।

तो बहुत लोग जप कर रहे और व्यर्थ है। उनके जप ने उनकी बुद्धि को और मंदा कर दिया है, तीव्र नहीं किया। और उनके ज्ञान को बढ़ाया नहीं, और घटाया है। इसलिए अकसर आप देखेंगे कि राम-राम जपनेवाले राम-चदरिया ओढ़े हुए लोग बुद्धि के मामले में थोड़े कम ही नजर आएंगे। ज्ञान उनका जगता हुआ नहीं मालूम पड़ता, और जंग खा गया हुआ मालूम पड़ता है। जंग खा ही जाएगी बुद्धि। क्योंकि बुद्धि का वह जो बोध है, वह जो ज्ञान है, वह सिर्फ जागरण से बढ़ता है। कोई भी क्रिया अगर मूर्छित की जाए, तो घटता है। और हम सब क्रियाएं मूर्छित कर रहे हैं। उसी में हम राम-जप भी जोड़ लेते हैं। वह भी एक मूर्छित क्रिया हो जाती है।

बजाय एक नई क्रिया जोड़ने के, जो क्रियाए चल रही हैं उनमें ही जागरण बढ़ाना उचित है। और अगर राम की क्रिया भी चलानी शुरू कर दी हो, तो उसमें भी जागरण ले आएं। कुछ भी करें, एक बात तय कर लें कि उसे जागकर करने की सतत चेष्टा जारी रखेंगे। आज असफलता होगी, कल असफलता होगी।। कोई चिंता नहीं है। लेकिन हर असफलता से सफलता का जन्म होता है। और अगर अब खयाल जारी रहा और सतत चोट पड़ती

रही, तो एक दिन आप अचानक पाएंगे कि आप किसी भी क्रिया को समग्र चैतन्य में करने में सफल हो गये हैं। जिस दिन आप इस चैतन्य में सफल हो जाएंगे, उसी दिन सांख्य का द्वार खुल गया। और कुछ भी जरूरी नहीं है। और कोई बाहरी क्रिया जरूरी नहीं है। अंतर्गुहा में प्रवेश हो जाता है।

तब, तब हम जान लेते हैं अपने भीतर के साक्षी को, क्योंकि यह जागरण की क्रिया साक्षी की क्रिया है। जब मैं जागकर कुछ करता हूं तो मैं साक्षी जो जाता हूं, कर्ता नहीं होता। जब भी मैं सोकर कुछ करता हूं, तभी मैं कर्ता होता हूं और साक्षी नहीं होता। कुछ भी जागकर करें।। भोजन कर रहे है, जागकर करें, तब आप भोजन करनेवाले नहीं रह जाएंगे। भोजन की क्रिया को देखनेवाले हो जाएंगे। रास्ते पर चल रहें हैं, जागकर चलें, तो आप चलनेवाले नहीं रह जाएंगे; जो चल रहा है, उसके आप द्रष्टा और साक्षी हो जाएंगे।

तो जागरण की क्रिया बढ़ती जाए तो आपके भीतर साक्षी विकसित होता जाएगा। जिस दिन आपके भीतर साक्षी पूरी तहर कर्ता से मुक्त हो जाएगा, कर्ता की खोल बिल्कुल टूट जाएगी और साक्षी का अंकुर पूरा बाहर निकल आएगा, उसी दिन इस सूत्र का जो एक हिस्सा है वह आपके खयाल में आ जाएगा।

मेरें लिए भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश कुछ भी नही है। वही मनुष्य मेरे शुध्द परमात्म स्वरूप का साक्षात्कार करता है, जो मायिक-प्रपंची से परे, सबके साक्षी, सत-असत से परे, निराकार हृदय की गुहा में स्थित मुझ परमात्मा को जान लेता हैं।

यह सांख्य का, ज्ञान का, मात्र ध्यान का मार्ग है। भीतर का साक्षी खयाल में आ जाए, तो वह परम साक्षी तत्क्षण खयाल में आ जाता है। क्योंकि हमार भीतर का साक्षी उस परम साक्षी का फैला हुआ हाथ है। जैसे कोई एक छोटी-सी पत्ती वृक्ष पर होश भर जाए कि मैं कौन हूं, तौ क्या आप सोचते हैं उसी क्षण उसे पता नहीं चल जाएगा कि पूरा वृक्ष भी वही है। क्योंकि पत्ती सिर्फ वृक्ष का फैला हुआ एक छोटा-सा अंग है। अगर पत्ती जग जाए और उसे पता चल जाए मैं कौन हूं, तो उसे यह भी पता चल जाएगा कि वृक्ष कौन है। क्योंकि मैं और वृक्ष में तब कोई फासला नहीं होगा। यह मेरे भीतर जो छिपा हुआ प्रगट हो रहा है, यह उसी विराट का फैला हुआ हिस्सा है, उसी का एक हाथ है। अगर मैं भीतर जाग जाऊं अपने साक्षी के प्रति, तो तत्क्षण मेरे लिए वह विराट साक्षी भी अनुभव का हिस्सा हो जाता है।

तो हृदय की गुहा में जाने का एक तो मार्ग है ज्ञान प्रगाढ़ होता जाए, प्रखर होता जाए, तीव्र होता जाए और ऐसा क्षण आ जाए कि ज्ञान की अग्नि जागरण ही रह जाए और भीतर उस जागरण का कोई अहंकार केंद्र न हो।

दूसरी बात खयाल ले लें इस संबंध में। जितनी मूर्च्छा होती है उतना बड़ा अहंकार होता है। जितना जागरण होता है उतना बड़ा साक्षी होता है। और साक्षी और अहंकार में कोई संबंध नहीं है। साक्षी होता है, तो अहंकार नहीं होता। अहंकार होता है, तो साक्षी नहीं होता। वे दोनों साथ-साथ कभी मौजूद नहीं होते। इसलिए एक और मजे का अनुभव आप करेंगे, अब किसी क्रिया के प्रति आप जागकर साक्षी बन जाएंगे, तो उस क्षण में आप पाएंगे कि आप नहीं हैं।"मै" नहीं है। अहंकार उस क्षण अनुभव नहीं हो सकता।

इसलिए बुद्ध ने तो बहुत अद्‌भुत हिम्मत की बात कही। बुद्ध ने तो कहा है कि अहंकार है वहां और न आत्मा। क्योंकि मैं का कोई भाव ही नहीं रह जाता तो किसे आत्मा कहें? आत्मा का मतलब होता है, मैं। तो बुद्ध ने तो कहा कि जब पूर्ण जागरण होता है, तो वहां कोई आत्मा भी नहीं है। वहां सिर्फ जागरण ही रह गया, जागा हुआ कोई भी नहीं है। यह बहुत कीमत की बात है। क्योंकि जागा हुआ अगर अभी है वहां और जागरण है,

तब भी अभी दोन चीजें मौजूद रहीं। अगर वहां अभी कोई केन्द्र भी है जागा हुआ तो अभी दो चीजें मौजूद रहीं। तो बुद्ध ने कहा वहां कोई जागा हुआ नहीं है। बस जागरण है।

बुद्ध का कहने का मतलब यह है कि जब कोई व्यक्ति जागता है तो बुद्ध नहीं होता वहां कोई, बुद्धत्व होता है सिर्फ जागापन होता है।

इस साक्षी की अवस्था में हृदय की गुहा खुल जाती है। क्योंकि हृदय की गुहा पर जो पत्थर है, वह अहंकार का है। हृदय की गुहा पर जो बंद है द्वार वह अहंकार का है। जितना सघन"मै" है, उतना ही हृदय सिकुड़ जाता है। इसलिए कभी आपने खयाल किया, साधारण जीवन में जिनका जितना"मैं" सघन होता है, उनके पास हृदय उतना ही छोटा होता है।

इसलिए अहंकारियों को हृदय अपना काट कर अलग ही कर देना पड़ता है। हृदय के साथ अहंकार की तृप्ति नहीं हो सकती। और जिसको हृदय की तृप्ति करनी है, उसे सारी महत्वाकांक्षाएं छोड़ देनी पड़ती हैं। और सब अहंकार की यात्राएं बंद कर देनी पड़ती हैं। हृदय के मार्ग पर जाने वाला आदमी महत्वाकांक्षा के मार्ग पर नहीं जा सकता। इसलिए इस जगत में बड़ी दुर्घटना घटती है कि जिन लागों के हाथ में शक्ति हो तो लाभ हो, वे लोग शक्ति पर नहीं जाते। और जिनके हाथ में शक्ति होने से खतरा ही होगा, वे ही लोग शक्ति के मार्ग पर जाते हैं। जहां-जहां है, अहंकार वहां-वहां जाता है। जहां-जहां प्रेम है, हृदय वहां-वहां जाता है। प्रेम और शक्ति का कोई लेना-देना नहीं है।

अहंकार सिकोड़ देता है हृदय को, बंद कर देता है सब तरफ से। क्यों? क्या कारण है? अहंकार को हृदय से क्या डर है?

अहंकार को हृदय से डर है। क्योंकि हृदय दूसरे से जुड़ने का द्वार है। और अहंकार दूसरे से टूटने की प्रक्रिया है। मैं अलग, मैं भिन्न, यह अहंकार की आधारशिला है। और हृदय दूसरे से जोड़ता है। तू से जोड़ता है। अन्य से जोड़ता है। और अगर हम हृदय की ही मानते चले जाएं तो समग्र से जोड़ देता है। अगर हम अहंकार की मानते चले जाएं समग्र से तो तोड़ता ही है, अंततः किसी से भी जोड़ने की हालत नहीं रह जाती। आदमी बिल्कुल अलग। फिर भयंकर पीड़ा भी होती है। क्योंकि जितना ही आदमी दूसरे से टूट जाता है, उतना ही जीवन से टूट जाता है। जितना ही दूसरे से टूट जाता हे, उतना ही जड़े कट जाती हैं। इसलिए अहंकार अपनी पूर्ति में ही जीवन को दुख और नरक से भर लेता है।

हृदय जितना दूसरो से जुड़ता है, उतना आनंद हृदय से भरता चला है। क्योंकि दूसरों जीवन से जुड़ना है और नई जड़े खोजना है। और जिस दिन परमात्मा से जुड़ जाता है अर्थात सबसे जुड़ जाता है, उस दिन परम जीवन से जुड़ जाता है। परम स्त्रोत जीवन का उस दिन उपलब्ध हो जाता है। इस स्त्रोत को दुख का कोई पता ही नहीं है, पीड़ा को कोई पता ही नहीं है। अपने को तोड़ लेना ही पीड़ा है अस्तित्व से। और अपने को जोड़ देना ही आनंद है।

यह अहंकार की पर्त पत्थर या दीवाल।। सजग होते चले जाएं।। बिखर जाती हैं। एक उपाय है सांख्य की तरफ से। कठीन है यह। सुनने में सरल, समझने में सरल, उतरने में बहुत कठिन है। क्योंकि मूर्च्छा हमारी बीमारी है और जागरण का उपाय है यह। और मूर्च्छा हमारा अभ्यास है। इसलिए कठिन है। इसलिए कठिन है कि हमारी बीमारी ही मूर्च्छा है। और पद्धति है यह जागरण की। जाग हम सकते नहीं, यह तो हमारी तकलीफ है। और जागना इसमें उपाय है। इसलिए बहुत मुश्किल है। बहुत कठिन है?

तो दूसरे हिस्से से भी हम समझ लें। योग की तरफ से क्या मार्ग है?

योग आपको जागने को नहीं कहता। योग आपको कुछ क्रियाएं करने को कहता है; जिनसे जागरण फलित होता है। योग आपसे सीधा नहीं कहता जाग जाओ, योग आपसे कहता है यह करो, यह करो। लेकिन वे क्रियाएं ऐसी हैं कि उनके करने से जागरण पैदा होगा। जैसे बुद्ध ने कहा श्वास पर ध्यान रखो। यह सांख्य की प्रक्रिया हुई। योग कहता है ध्यान की फिकिर छोड़ो, पहले श्वास को ही व्यवस्थित करो। वह प्राणायाम है। ध्यान की फिकीर मत करो, क्योंकि ध्यान की तुमसे आशा नहीं है। लेकिन तुम तीव्र श्वास तो ले ही सकते हो। तो तीव्र श्वास लो। अब यह बहुत मजे की बात है कि जितनी धीमी श्वास हो, उतना इस पर ध्यान रखना मुश्किल होगा और जितनी तीव्र श्वास हो, ध्यान रखना आसान होगा। असल में मूर्छा के लिए, तोड़ने के लिए कुछ इतने तीव्र उपाय चाहिए कि आप चाहें तो भी सो न सकें। आप चाहें तो भी सो न सकें। इतनी गहरी चोट आप पर होनी चाहिए।

तो योग कहता हैं श्वास की तीव्र चोट करो। इतनी तीव्र चोट करो कि सोना मुश्किल हो जाए। मूर्छा मुश्किल जो जाए। यह जानकर आप हैरान होंगे कि प्राणायाम करनेवाले की नींद भी कम होती चली जाती है। साधारण नींद भी कम हो जाती है, वह गहरी मूर्छा पर चोट लगेगी।। लगेगी।। साधारण नींद भी कम हो जाती है। और अगर आप सतत प्राणायाम को प्रयोग करें तो नींद बिल्कुल भी समाप्त हो सकती है।

मेरे पास लंका से एक भिक्षु को लाया गया था। उसके बहुत इलाज किये लेकिन कोई उपाय कोई उपाय नहीं बना।। उसकी नींद खो गई थी एक-डेढ़ वर्ष से, बिल्कुल खो गई थी। और कोई"ट्रैकुलाइजर", कोई नींद की दवा नींद लाने में समर्थ नहीं होती थी, सिर्फ वह सुस्त पड़ जाता था। नींद तो नहीं आती थी औ सुस्ती उलटे आ जाती थी। तो नींद न आने की तकलीफ अलग थी और दवाओं की तकलीफ अलग थी। सुबह वह बिल्कुल लुंज-पुंज उठता था, और नींद तो आती ही नहीं थी।

तो मैंने उससे पूछा कि तुम साधना क्या कर रहे हो? उसने कहा कि साधना छोडिये, मुझे नींद के लिए कुछ बताइये। मैंने उससे कहा कि नींद के लिए मैं तभी कुछ बताऊंगा जब मैं जान लूं कि तुम साधना क्या कर रहे हो। तो उसने कहा कि मै "अनापानसतीयोग" का प्रयोग कर रहा हूं तीन साल से। तो मैंने उसे कहा, उसे तुम एक पंद्रह दिन के लिए बंद कर दो। उसने कहा कि यह कैसे मैं कर सकता हूं! तो मैंने कहा कि उसकी वजह से ही तेरी नींद बिल्कुल खो गई है। वह इतनी चेष्टापूर्वक कर रहा था और इतनी तीव्र श्वास लेकन "अनापान" का प्रयोग कर रहा था।। क्योंकि धीमी श्वास में मुश्किल होता है, झटके से जाएगी, तेजी जाएगी, तो खयाल रहेगा। उसने इतनी तेजी से श्वास लेनी शुरू कर दी उसकी वजह से नींद खो गई। क्योंकि शरीर में कार्बन की मात्रा कम हो जाए, तो नींद खो जाएगी। आक्सीजन की मात्रा बढ़ जाए तो नींद खो जाएगी।

योग कहता है कि अगर यह साधारण नींद पर चोट पहुंचती है, तो उस भीतरी नींद पर भी इससे चोट पहुंचती है। इसलिए कहता है।। तुम ध्यान की फिकिर न करो, पहले प्राण को शुद्ध कर लो। इतना शुद्ध कर लो कि प्राण के द्वारा मूर्छा में जितना सहयोग मिलता है, वह न मिले। योग कहता है कि हमें आशा कम है कि तुम जाग सकोगे अपनी कामवासना की तरफ, हम तुम्हें ऐसे आसन सिखाते हैं जिनसे तुम्हारी कामवासना की ऊर्जा नीचे की तरफ बहना बंद हो जाए। और अगर तुम्हारी काम-ऊर्जा ऊपर की तरफ बहने लगे, तो जागना आसन हो जाएगा।

क्या आपने कभी खयाला किया है कि दुनिया में अधिकतर लोग"सेक्स" का उपयोग नींद की दवा की तरह करतें हैं, कम से कम पुरूष। संभोग के बाद उनको तत्क्षण नींद आ जाती है। क्योंकि संभोग के साथ ही शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है। उस क्षीण अवस्था में निद्रा जल्दी पकड़ लेती है।

अगर कोई व्यक्ति काम-ऊर्जा को संभोग से व्यर्थ न करे, तो उसकी नींद कम हो जाएगी। अगर उसकी यह नींद कम हो जाए तो उसकी भीतरी नींद को भी चोट पहुंचना शुरू हो जाएगी। इसलिए ब्रह्मचर्य को जो उपयोग योग ने किया है, उसका कोई कामवासना से विरोध नहीं है, उसका केवल काम-ऊर्जा का एक अन्यथा उपयोग करना है; एक विधायक उपयोग करना है। लेकिन अगर कोई सिर्फ ब्रह्मचर्य साधने लगे और उस ऊर्जा का अन्यथा उपयोग न जानता हो, तो वह विकृत हो जाएगा।, विक्षिप्त हो जाएगा। यही मैं कह रहा था कि कुछ लोग क्रियाओं से बंध जाते हैं, ब्रह्मचर्य उनके लिए साध्य हो गया। लक्ष्य हो गया कि अगर ब्रह्मचारी हो गये तो बहुत कुछ हो गये। ब्रह्मचारी होने से कुछ होने वाला नहीं है। ब्रह्मचर्य सिर्फ प्रयोग है एक, किसी और प्रयोग में प्रवेश करने का। ऊर्जा ज्यादा हो तो व्यक्ति जाग सकेगा आसानी से। ऊर्जा कम हो तो जल्दी सो जाएगा और मूर्च्छित हो जाएगा।

तो योग कहाता है कि उस ऊर्जा पर हम सीधा काम करें, जागरण की हम फिकिर न करें। ऊर्जा बढ़ जाएगी तो आप जागेंगे। आपको यह अभी घड़ी के लिए मैंने कहा, जिस रात्रि आप संभोग में गये हों, उस संभोग के बाद इस कांटे पर ध्यान रखने की कोशिश करें, तो मैंने कहा तीन दफे तो आप छः दफे चूकेंगे। तब आपको पता चलेगा कि शरीर की ऊर्जा का जागरण से कोई संबंध है। आप दो-चार-दस दिन, पंद्रह दिन काम-ऊर्जा को नष्ट न किये हों, फिर इस घड़ी पर ध्यान रखें। तो हो सकता है आप एक बार भी न चूंके। आपका जागरण आपके भीतर ऊर्जा की मात्रा पर निर्भर करता है।

तो योग कहता है जागरण को हम सीधा नहीं छूते, हम आपकी ऊर्जा बचाने की चेष्टा करते है। आसन से, प्राणायाम से, प्रत्याहार से। योग कहता है कि ऊर्जा प्रतिक्षण नष्ट हो रही है इंद्रियों से। आप चौबीस घंटे देखते रहते हैं। वार्ध भी देखते रहतें है। जब देखने को कुछ नहीं होता, तब भी देखते है। तब भी आपको नहीं सूझता है कि आंख बंद कर लें। बैठे हैं दरवाजे पर, सड़क चल रही है उसी को देख रहे हैं। लोग आ-जा रहे हैं, उन्हीं को देख रहे हैं। जिस अखबार को दो दफे पढ़ रहे हैं। जिन बातों को हजार दफे कर चुके, फिर उन्हीं को कर रहे हैं। वही बात रोज। आप अपनी शक्ति खो रहे हैं।

तो योग कहता है, प्रत्याहार। अपनी शक्ति का बाहर मत जाने दो, भीतर ले जाओ। इसके दोहरे अंग हैं। एक तो अपनी शक्ति को व्यर्थ मत खाओ। आंख खोलने की जरूरत हो तो ही खोला। ओंठ खोलने की जरूरत हो तो ही खोलो। सुनने की जरूरत हो तो ही सुनो। बोलने की जरूरत हो तो ही बोलो। अन्यथा शक्ति को बचाओ। और अगर एक दफे आपको खयाल आए, तो आप खुद ही हैरान होंगे कि कम-से-कम आपके सौ में से नब्बे कृत्य व्यर्थ थे, जिनको करने की कोई जरूरत न थी। सो में से नब्बे मैं कह रहा हूं, इससे ज्यादा ही निकलेंगे। एक दिन भी अगर आप खयाल रखकर चलें कि जो जरूरी है वही बालूंगा, तो आप पाएंगे कि दिन भर में कितना कम बोलने की आवश्यकता रह जाती है। और एक और दूसरी मजे की बात पाएंगे कि जो-जो आप व्यर्थ बोलते थे उससे और नई झंझटे निकलती थीं, उनका हिसाब लगाना मुश्किल है।

आदमी की नब्बे प्रविशत मुसीबतें वह जो व्यर्थ की बातें कर लेता हे, उससे निकलती हैं। किसी से कुछ कह दिया, फिर उससे कुछ कह दिया, फिर सिलसिला जारी है, फिर उसका अंत नहीं होता।

व्यर्थ की बातें हम सुनते हैं। अगर एक आदमी मुझसे आकर कहता है कि फलां आदमी ने आपको गाली दी, तो मैं एकदम पूरी आत्मा को जगाकर सुनने लगाता हूं। क्या जरूरत थी? गाली ही दी थी न। तो उससे कहना था कि तुमने सुन लिया यह भी बुरा किया। तुम्हें उसी वक्त कान बंद कर लेने थे। क्योंकि गाली को भीतर क्यों जाने देना! और तुम मुझे किसलिए सुनाने चले आए हो? तुम पर किसी ने कचना फेंक दिया, अब तुम मुझे

और क्यों रहे हो उस पर! तुम्ही समझो। हो गई बात, समाप्त हो गई। व्यर्थ सुनकर हम भीतर, फिर काम भी तो करना पड़ेगा। एक किसी ने गाली दी है, उसको सुन लेने से तो निपटा नहीं होता। फिर भीतर सिलसिला चलता है। फिर शक्ति व्यय होती है। और हम चौबीस घंटे अपनी शक्ति को इसी तरह व्यर्थ करते हैं।

तो प्रत्याहार का पहला तो नियम यह है कि हम शक्ति को व्यर्थ न करें। और दूसरा नियम यह है कि जहां-जहां शक्ति मिल सकती हो, वहां-वहां से लें। अभी हम जहां-जहां खो सकते हैं, वहां-वहां खोते है। आप वृक्ष के पास बैठे हैं, अगर आप वृक्ष की तरफ आंखे एकाग्र कर लें और अनुभव करें कि वृक्ष से शक्ति आपकी तरफ प्रवाहित हो रही है, तो आप अपनी आंखो को ताजा करके वापस लौटेंगे। आपकी आंखे ताजगी, नई जिंदगी और नया रस लेकर वापस आ जाएंगी। आकाश के नीचे लेटे हैं, अगर धारणा करें कि आकाश से शक्ति आप में प्रवाहित हो रही है, तो शक्ति आप में प्रवाहित होगी।

अब वैज्ञानिक भी इसको स्वीकार कर रहे हैं कि प्राण जैसी ऊर्जा चारो तरफ व्याप्त है, वृक्षों में भी, पौधों में भी, चट्टानों में भी, आकाश में, तारों में, सब तरफ प्राण-ऊर्जा व्याप्त। अगर हम ग्राहक हो सकें, तो वह प्राण-ऊर्जा कहीं से भी भीतर ले जाई जा सकती है।

योग की प्रक्रिया यह थी कि सारा जगत प्राण का एक सागर है। और हम उस प्राण से जितना ले सकें, वह हमें लेते चलना चाहिए। कभी-कभी तो ऐसी घटनाएं घटी हैं कि यह प्राण लेने की प्रक्रिया इतनी आखिरी सीमा पर पहुंच गई कि फिर किसी और चीज की लेने की जरूरत ही न रही। महावीर ने बारह वर्ष में केवल तीन सौ पैंसठ दिन खाना लिया है। बारह वर्ष में तीन सौ पैंसठ दिन का मतलब हुआ एक वर्ष। कभी पद्रह दिन खाना न लेंगे, फिर एक दिन खाना ले लेंगे। कभी महीने भर खाना न लेंगे, फिर एक दिन खाना ले लेंगे।

लेकिन महावीर की प्रतिमा आपने देखी? वह कोई जैनी मुनियों जैसे नहीं है। उन जैसी सुंदर काया खोजनी मुश्किल है। उन जैसी स्वस्थ काया खोजनी मुश्किल है। वैसी काया न बुद्ध के पास है, न कृष्ण के पास है, न क्राइस्ट के पास है, न राम के पास है। असल में काया का पूरा सौंदर्य तो तभी पता चलता है जब वस्त्रहीन काया नग्न खड़ी होती है। हमारी काया का सौंदर्य तो वस्त्र को ही होता है। चेहरे को देख कर हम आदमी का पूरा अंदाजा लगाते हैं। वह सिर्फ अंदाज है। तो महावीर इतना कम भोजन लेकर इतने स्वस्थ, इतने ताजे क्यों हुए? योग की प्रक्रिया है। महावीर की सारी साधना योग की है, बुद्ध की सारी साधना सांख्य की है। इसलिए बुद्ध और महावीर में बड़ा विवाद है। और बुद्ध और महावीर के अनुयायियों में भारी संघर्ष है। महावीर महायोगी हैं। उन्होंने प्राण को सीधा आत्मसात करना शुरू कर दिया।

कुछ लोग जमीन पर कभी-कभी अचानक ऐसे हो जाते हैं। बंगाल में एक महिला था, प्यारीबाई। वह उन्नीस सौ तीस में मेरी। उसने पचास वर्ष तक कोई भोजन नहीं लिया और पानी नहीं पिया। उसका तो सारे चिकित्सकों ने अध्ययन किया। विश्वविद्यालयों ने उसकी फिकिर की, उस पर शोध हुए। उसके पति की मृत्यु हुई पचास साल पहले। बस उस दिन के बाद उसने खाना-पानी नहीं लिया। आकस्मित थी यह घटना लेकिन वह परिपूर्ण स्वस्थ थी पचास साल पहले। न केवल स्वस्थ थी, बल्कि उसका वजह कभी नहीं घटा। जितना वजह था उसका खाना बंद करने के दिन, उतना ही वजह सदा रहा। और चिकित्सक रहते थे कि वह पचास साल इसीलिए जी सकी, अन्यथा कभी की मर जाती। और कभी बीमार नहीं पड़ी। हुआ क्या उसे? चिकित्सक भी मुसीबत में थे कि हुआ क्या? हो तो जरूर कुछ रहा है। लेकिन क्या हो रहा है? किसी अज्ञात स्त्रोत से कोई से कोई जीवन-ऊर्जा उसे उपलब्ध हो रही है, नहीं तो जीने को कोई उपाय तो है नहीं। अगर हम देखें कि दीये में

बाती तो जल रही है और तेल है ही नहीं, तो एक ही अर्थ रह जाता है कि किसी अज्ञान स्त्रोतसे ईंधन उपलब्ध हो रहा है, जो उन्हें दिखाई नहीं देता।

जहां से हम ईंधनपा रहे हैं जीवन के लिए, वह भी अगर हम गौर से देखें तो हमें समझ में आ जाएगा। सूरज की किरण पौधे पर पड़ती हैं। पौधा"फोटो सिंथेसिस" के द्व सूरज की किरणों को आत्मसात करता है। पौधे के भीतर वह सूरज की किरण आत्मसात होकर विटामिन बनती है। फल से हम उसे लेते हैं। तब वह उसे पचा पाते हैं। लेकिन अब वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर पौधा पचा पाता है सीधी सूरज की किरण को... पौधा बीच के एजेंट का काम करता है। प्राण-ऊर्जा को पौधे पचाते हैं फिर हमारे पचाने के योग्य बनाते हैं, फिर हम उसको पचा पाते हैं। इसलिए हमें वनस्पति का या मांसाहार का उपयोग करना पड़ता है। कोई पहले पचारक निर्मित करता है। और इसीलिए मांसाहार में हमें दो एजेंट लेने पड़ते हैं। पहले पौधा है, फिर पशु उसे खाता हैं, फिर पशु के पचाए हुए को हम पचाते हैं।

शाकाहारी ज्यादा वैज्ञानिक है। वह कहता है, जब सीधा पौधे से पचाया जा सकता है, तो पशु को बीच से हटा दो। और योग कहता है आज नहीं कल, अगर हम सीधे प्राण को पचाना सीख जाएं तो पौधे को भी हटा दें। सीधी ऊर्जा को हम ले सकें।

प्रत्याहार के दो अंग हैं।। शक्ति को हम खोएं न, और जहां-जहां से शक्ति मिल सकती हो उसको लेते चले जाएं। ऐसे योग हमारे भीतर ऊर्जा का इतना संघट निर्मित कर देता है कि उसके भीतर जागरण के सिवाय उपाय नहीं रह जाता। फिर जागरण घटता है। और यह जागरण वहीं पहुंचा देता है, जहां सांख्य पहुंचाता है।

लेकिन मैं आपसे कहूंगा-योग और सांख्य को संयुक्त व्यवस्था मानकर चलें। दोनों जारी रखें। हृदय की गुहा खोलनी है, दोनों जारी रखें। ज्यादा गहरे परिणाम होंगे, जल्दी परिणाम होंगे, समय कम लगेगा, शक्ति कम व्यय होगी। एक तरफ ध्यान रखें कि जागरण बढ़ता जाए, दूसरी तरफ ध्यान रखें कि ऊर्जा संगृहीत होती चली जाए।

योग का प्रयोग करें, सांख्य पर ध्यान रखें, तो एक दिन वह द्वार खुल जाएगा जिसे हृदय की गुहा कहा है।

"इस प्रकार कैवल्य उपनिषद समाप्त होता है" कैवल्य उपनिषद तो समाप्त हो जाना बहुत आसान है, लेकिन जीवन का उपनिषद जब तक समाप्त न हो तब तक कैवल्य उपनिषद के समाप्त होने से क्या होगा? कैवल्य उपनिषद जहां समाप्त होता है, वहीं से आपको जीवन की एक यात्रा शुरू करनी चाहिए।

समझने की हमने कोशिश की, पर मैं आपको समझाऊं तो वह आपकी स्मृति ही बनेगी। ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए जो भी कहा है उसे भूलकर भी आप आपना ज्ञान मत समझना। सुना हुआ समझना। उधार समझना। किसी ने कहा है, ऐसा समझना। स्मृति समझना। यहां जो भी मैंने कहा है, वह आपके ज्ञान को बढ़ाने के लिए नहीं कहा है। बढ़ा भी नहीं सकता हूं, कोई नहीं बढ़ा सकता है। यहां जो मैंने कहा है वह आपकी प्यास बढ़ाने के लिए कहा है, ज्ञान बढ़ाने के लिए नहीं।

अगर प्यास बढ़े, तो ज्ञान की घटना किसी दिन घट सकती है। और अगर ज्ञान बढ़ जाए तो घटना वह कभी भी नहीं घटेगी।

तो आप यहां से ज्ञान बढ़ा कर मत लौटना। आपने कैवल्य उपनिषद समझ लिया, ऐसा सोच कर मत लौटना। सुना, स्मृति भी बन गई, लेकिन एक दुख, एक घान लेकर मन में लौटनाः इसे अभी जाना नहीं। एक प्यास लेकर लौटना कि कि कब वह क्षण आएगा, जब जो सुना है वह हम भी जान सकेंगे। और वह क्षण ऐसे ही बैठे-बैठे नहीं आ जाएगा। उसके लिए कुछ करना होगा।

इसलिए यहां मैं कैवल्य उपनिषद एक तरफ आपको समझा रहा था, दूसरी तरफ आपको कुछ करने के लिए कह रहा था। वह करना ही ज्यादा महत्वपूर्ण है। क्योंकि वह करना बढ़ता चला जाए, तो किसी दिन ज्ञान का दीया जल सकता है। हां, जिस दिन ज्ञान का दीया जलेगा उस दिन जो मैंने कहा है, उसकी सार्थकता खयाल में आएगी। अभी तो ज्यादा से ज्यादा मनोरंजन होगा। अच्छा लगेगा। सुखद मालूम होगा। लेकिन यह क्षण की बात है। उतरेंगे आबू पर्वत से और भूल जाएगा। कहीं कोई थोड़ी सी गूंज रह जाएगी।। कुछ अच्छी बात है, सुनी थी।। उसका कोई भी मूल्य नहीं है। प्यास, जलती हुई प्यास जगनी चाहिए।

और ऐसा लगना चाहिए कि अगर यह कैवल्य उपनिषद को कहनेवाले ने जाना, अगर यह कैवल्य उपनिषद को बोलनेवाले ने जाना, इस परम गुह्य आनंद की जो यह खबर दी, यह जो सुसमाचार है, इसे मैं भी जान सकता हूं। इसे जानने की मेरी भी क्षमता है। मैं भी मनुष्य हूं। मेरी भी वही संभावना है जो किसी और मनुष्य की है। और इसे न जानने से मैं पीड़ा और दुख और न मालूम कितने अनंत नरक भोग रहा हूं, उनसे भी मुक्ति हो सकती है। इसे जानने से मैं बंधन में पड़ा हूं, एक कारागृह है, इसे जानने से मैं भी स्वतंत्र हो सकता हूं। मैं भी उड़ सकता हूं मुक्ति के आकश में। इसे न जानने से मैं आड़ी-तिरछी जड़ें भर रह गया हूं, कहीं कोई फूल खिलता नहीं मालूम पड़ता। कहीं कोई सुगंध नहीं उठती। और प्राण रिक्त हैं, रीते हैं। इसे जानने से मेरे भीतर भी वह फूल खिल सकता है, जिसका नाम परमात्मा है। वह सुगंध बह सकती है, जिसका नाम स्वतंत्रता है।

यह कैवल्य उपनिषद उस स्वतंत्रता की केवल खबर है। संकेत है, इशारा है। यह कैवल्य उपनिषद तो समाप्त हुआ, यह संकेत तो समाप्त हुआ, लेकिन संकेतों की सार्थकता क्या है जब तक कोई उन संकेतों पर चल न पड़े! यात्रा पर न निकल जाए!

यहां से एक प्यास लेकर लौटें। लेकिन प्यास भी काफी नहीं है। क्यांकि कुछ लोग प्यासे भी रहें तो भी बैठे रहते हैं। प्रतीक्षा करते हैं कोई पिला दे, कोई पानी ले आए। प्यास काफी नहीं है, अकेली प्यास तो दीन भी कर सकती है, और उदास कर सकती है।। उससे तो बेहतर था प्यास ही न होती।। संकल्प भी चाहिए। यह जो प्यास जगे, तो इसकी खोज के लिए शक्ति को लगाने का संकल्प भी चाहिए। एक दृढ़ इरादा भी चाहिए। एक श्रद्धा और एक निष्ठा भी चाहिए।

तो एक संकल्प लेकर लौटें। और ध्यान रखें, संकल्प को जब पूरा करते हैं तभी पता चलता है कि कितनी शक्ति मेरे भीतर पूरा करने की थी। जब तक पूरा नहीं करते, तब तक शक्ति का भी कोई पता नहीं होता। शक्ति भी, अपनी शक्ति भी तभी पता चलती है जब सक्रिय होती है। खुद की शक्ति का भी हमें कोई अंदाज नहीं होता कि हम कितना कर सकते हैं, और जितना ज्यादा हम करते हैं उतना ही पता चलता है और भी ज्यादा कर सकते हैं।

हर एक कदम उठते ही दूसरे कदम को उठने शक्ति उपलब्ध हो जाती है। और एक-एक कदम चल कर आदमी हजारों मील का रास्ता तय कर लेता है। तो संकल्प करके लौटें। और संकल्प सक्रिय बनाएं, छोटा ही सही। यहां से बहुत से मित्र संन्यास लेकर लौट रहे हैं। यह सन्यास को लेना एक संकल्प बने। संकल्प का अर्थ है, यह संन्यास चौबीस घंटे स्मरण रहने लगे। उठते-बैठते, चलते-बोलते, बात करते स्मरण रहने लगे। इसका स्मरण अंतर ला देगा।

अगर कोई गाली दे, तो पहले स्मरण करना कि मैं संन्यासी हूं, फिर उत्तर देना। उत्तर दूसरा होगा। सिनेमा की खिड़की के पास टिकट की कतार में खड़े हो, खींसे में हाथ डालने के पहले-पहले स्मरण करना मैं सन्यासी हूं, फिर खीसे में हाथ डाल कर टिकट खरीदना। सिगरेट हाथ् में आ जाए और जलाने का मन हो, तब

पहले सोच लेना मैं संन्यासी हूं, फिर पीना। पीने की मनाही नहीं करता। सिनेमा जाने की मनाही नहीं करता। शराब पीने की मनाही नहीं करता। गाली देने की मनाही नहीं करता, चोरी करने की मनाही नहीं करता, बेईमानी की मनाही नहीं करता, सिर्फ एक आपको बात कहता हूं, कि कुछ भी करना पहले याद करना कि मैं संन्यासी हूं, फिर करना! फिर न हो सके तो मेरा उसमें कोई हाथ नहीं। इसलिए आपको रंग बदलने के लिए जोर देता हूं कि वह आपको स्मरण दिलाएगा। आपका नाम बदलना हूं कि पुरानी शृंखला से संबंध टूटेगा, एक नये केंद्र के आसपास नया व्यक्तित्व निर्मित होगा।

तो लौटकर कुछ करना। वह करना ही आपको योगी बना देगा। ध्यान सीखा है... बहुत मित्र हैं, यहां ध्यान कर जाते हैं, यहां अनुभव भी होता है, प्रीतिकर भी लगता है, कहीं ऊर्जा जाती हुई भी मालूम पड़ती है, फिर शिविर के बादशृंखला टूट जाती है। तो दुबारा जब शिविर में फिर आते है, फिर अ, ब, स, से शुरू होता है। ऐसे तो जन्मों-जन्मों तक शिविर में आ-आ जा सकते हैं, परिणाम नहीं होंगे। यहां तो हम सीखते हैं सिर्फ, इस सीखे हुए को करना है लौट कर। करेंगे, तो दूसरे शिविर में आप दूसरे आदमी आएंगे। यह गहराई अनंत है। छोटे-मोटे अनुभव से तृप्त मन हो जाना।

प्रकाश दिखाई पड़ जाए, सुखद है अनुभव, लेकिन तृप्त नहीं हो जाना है। आनंद भी मालूम होने लगे, तो भी सुखद है, तृप्त नहीं हो जाना है। परमात्मा की उपस्थिति भी मालूम होने लगे, कीमती है, लेकिन तृप्त नहीं हो जाना है। उस समय तक तृप्त होना हीं नहीं है जबतक कि स्वयं और परमात्मा में रत्ती भर का भी फासला है, तब तक तृप्त नहीं होना हैं। जिस दिन स्वयं का होना परमात्मा का होना जाए या परमात्मा का होना स्वयं को होना हो जाए, जिस दिन हृदय की गुहा में छिपे हुए परमात्मा का उदघाटन हो जाए, अनावरण हो जाए, उस समय तक तृप्त नहीं होना है। तब तक खोदते ही जाना है ध्यान से स्वयं को, तब तक साधते ही जाना है योग से स्वयं को, तब तक निखारते ही जाना है सांख्य से स्वयं को, तो एक जरूर घटना घटती है। वह घटना बिल्कुल ही सुलभ है। हाथ के भीतर है। पर हाथ बढ़ाना चाहिए। जीसस ने कहा है-खटखटाओ और द्वार खुल जाएंगे। लेकिन हम ऐसे अभागे हैं कि जन्मों-जन्मों तक द्वार पर बैठ कर खटखटाते भी नहीं। जीसस ने कहा हैः मांगो और मिल जाएगा। लेकिन हम ऐसे अभागे हैं कि उसके सामने ही खड़े रहते हैं और मांगते भी नहीं।

यहां से उसके द्वार को सतत खटखटाने का संकल्प लेकर लौटना। तो जो कैवल्य उपनिषद आज शब्दों में समाप्त हो गया है, वह एक दिन, किसी दिन आपके जीवन में भी समाप्त हो सकता है।

अब हम रात्रि के ध्यान के लिए तैयार हो जाएं।

कोई मित्र देखने आ गये हों वे चट्टान पर बैठ जाएं। यहां आस-पास न आएं। ध्यान करने वाले मित्रों के पास न आएं।